साहित्य अमृत

मासिक

साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक

वर्ष-२२ अंक-१ ❖ पृष्ठ १८२ | श्रावण-भाद्रपद, संवत्-२०७३ | अगस्त २०१६

स्वाधीनता विशेषांक

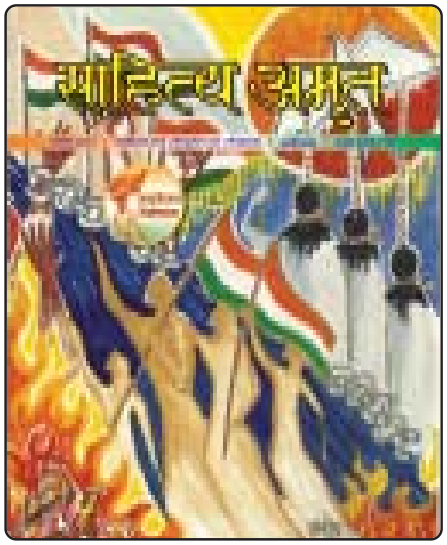

इस अंक में

संपादकीय

भारतीय स्वाधीनता संग्राम : एक विहंगम दृष्टि ७

प्रतिस्मृति

भारत की एक राष्ट्रीयता/ *पं. माधवराव सप्रे* १२

आलेख

भारत छोड़ो आंदोलन : स्वतंत्रता संघर्ष का एक स्वर्णिम अध्याय/ *ज्ञान प्रकाश पिलानिया* १७

वे उदारहृदय अंग्रेज, भारत जिनका घर बन गया/ *प्रकाश मनु* २२

बंदा सिंह बहादुर ने रचा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का स्वर्णिम अध्याय/ *कुलदीप चंद अग्निहोत्री* ३०

१८५७ का स्वातंत्र्य समर एवं स्वातंत्र्यवीर सावरकर/ *हरींद्र श्रीवास्तव* ३४

अब यह सच पढ़ाया जाए, सुभाष बाबू ने अंग्रेजों को भगाया/ *श्यामसुंदर पोद्दार* ४०

काकोरी-कांड : ऐतिहासिक मोड़सूचक घटना/ *मदनलाल वर्मा 'क्रांत'* ४२

अदम्य साहसी क्रांतिकारी महिला : दुर्गा भाभी/ *राजेंद्र राजा* ४७

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

सामान्य अंक—₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

आवरण : संदीप राशिनकर

साहित्य अमृत

मासिक

स्वाधीनता विशेषांक

वांची अय्यर : टिनेवेली घटना के नायक/ *उषा निगम* ५४

खुश रहो अहले वतन—वंदेमातरम्/ *रवि शर्मा 'मधुप'* ६०

स्वाधीनता संग्राम में पत्रकारिता की भूमिका/ *अरुण भगत* ६७

स्वतंत्रता संग्राम व हिंदी फिल्में/ *नरेंद्र भाटिया* ७२

लोकगीतों में स्वाधीनता की चेतना/ *विद्या विंदु सिंह* ७५

देशाभिमानियों का तीर्थ अंदमान/ *रशीदा इकबाल* ७८

उत्तर प्रदेश एवं क्रांतिकारी आंदोलन : एक सर्वेक्षण/ *हेरंब चतुर्वेदी* ८०

स्वातंत्र्य संग्राम में उत्तराखंड की भूमिका/ *राधिका नागरथ* ८७

स्वतंत्रता संग्राम में उत्तर-पूर्वांचल का योगदान/ *भूपेंद्र राय चौधरी* ९०

जब कश्मीर ने जिन्ना को खाली हाथ लौटाया/ *जवाहरलाल कौल* ९७

ओड़िशा में स्वतंत्रता संग्राम/ *शंकरलाल पुरोहित* १०४

१८५७ से १९४७ : गुजरात में स्वतंत्रता संग्राम/ *किशोर मकवाणा* १०८

स्वातंत्र्य समर में छत्तीसगढ़ का अवदान/ *रमेश नैयर* ११५

गोवा का स्वतंत्रता संग्राम/ *मेनिनो परस* ११८

आजादी की लड़ाई में झारखंड का योगदान/ *अनुज कुमार सिन्हा* १२२

दक्षिण भारत में स्वाधीनता आंदोलन/ *बी.वाइ. ललितांबा* १२६

भारत के स्वातंत्र्य समर में पंजाब ने निभाई केंद्रीय भूमिका/ *अशोक मलिक* १३२

पूर्वोत्तर भारत के स्वातंत्र्यवीर/ *स्वर्ण अनिल* १३८

बंगाल : स्वतंत्रता संग्राम का अग्रदूत/ *प्रियदर्शी दत्ता* १४२

१८५७ बिहार-झारखंड : काला पानी के कैदी/ *श्रीकांत* १४६

मध्य प्रदेश और स्वाधीनता आंदोलन/ *दिलीप बेहरे* १४८

स्वतंत्रता संग्राम और दिल्ली देहात/ *नलिन चौहान* १५०

महाराष्ट्र में स्वतंत्रता आंदोलन/ *दीपक हनुमंत जेवणे* १५३

स्वातंत्र्य समर का महानायक : राजस्थान का 'आउवा'/ *इंदुशेखर शर्मा* १५८

विदेशों में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन/ *राजीव गुप्ता* १६२

स्वतंत्रता संग्राम में हिमाचल का योगदान/ *दयाशंकर शुक्ल 'सागर'* १६८

स्वाधीनता आंदोलन में हरियाणा का योगदान/ *रामेंद्र सिंह* १७२

कविता

वंदे मातरम्/ *बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय* २०

माँ, मुझको तू मनु ही कहना/ *प्रतिमा अखिलेश* ३९

एक और पंद्रह अगस्त/ *मालिनी गौतम* ४६

आजादी की रानी मल्लम्मा/ *डी.एन. श्रीनाथ* ५६

आजादी के तराने/ *सं. राजेंद्र पटोरिया* १३५

नाटक

आजादी की ओर/ *सुधा शर्मा 'पुष्प'* ५७

राम झरोखे बैठ के

आजादी के बाद इंतजार के आयाम/ *गोपाल चतुर्वेदी* ६४

पुस्तक-अंश

कोल्हू का बैल/ *विनायक दामोदर सावरकर* १७०

❖

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ १७५

वर्ग पहेली १७६

साहित्यिक गतिविधियाँ १७७

भारतीय स्वाधीनता संग्राम एक विहंगम दृष्टि

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की एक लंबी गाथा है। १५ अगस्त, १९४७ को ब्रिटिश यूनियन जैक उतरने के बाद जब वाइसराय के निवास, लाल किले तथा अन्य सरकारी स्थानों पर तिरंगा झंडा फहराया गया, तो उसको ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को सत्ता का हस्तांतरण भी कहा जाता है। अतएव देश प्रतिवर्ष १५ अगस्त को स्वाधीनता दिवस के रूप में मनाता है। १४/१५ अगस्त की रात को संविधान सभा की बैठक में पं. जवाहरलाल नेहरू ने 'भारत की नियति से मिलन वाला' अपना प्रसिद्ध भाषण दिया, जिसको आज भी आदर से स्मरण किया जाता है। वैसे ऐसे भी बहुत से विद्वान्, प्रबुद्ध नागरिक हैं, जो केवल अंग्रेजों की करीब १५० वर्ष की गुलामी के अंत को ही स्वराज्य संग्राम की इति नहीं मानते हैं। उनकी मान्यता है कि भारत की परतंत्रता का प्रारंभ तो सिंध पर अरब आक्रमण से ही हो गया था। अतएव वास्तव में कहना चाहिए कि करीब २००० वर्षों की गुलामी के उपरांत ही भारतवासियों को स्वतंत्र जीवन जीने का अवसर मिला। खैर, हम इस वैचारिक मतभेद को यों ही छोड़ते हैं, क्योंकि अब देश ने १५ अगस्त को स्वाधीनता दिवस की मान्यता दी है। १५ अगस्त से भारतीय किसी सम्राट् की प्रजा नहीं वरन् स्वतंत्र नागरिक हो गए। अपनी नियति, अपना भविष्य बनाने का अधिकार स्वयं भारतीय नागरिकों को प्राप्त हो गया। विदेशी साम्राज्य ने देश की प्रगति का जो मार्ग अवरुद्ध कर रखा था, वह दूर हो गया। नागरिक अपना शासक चुनेंगे, यह अत्यंत दूरगामी राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन का सूचक है। १५ अगस्त, १९४७ से भारत प्रजातांत्रिक राष्ट्रों में गिना जाने लगा।

साधारणतया स्वाधीनता संग्राम के प्रारंभ की गणना १८५७ से की जाती है। जनमानस का उमड़ता असंतोष समय पाकर तत्कालीन व्यवस्था के प्रति विस्फोट के रूप में प्रकट हो गया। स्वातंत्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर की कालजयी पुस्तक '१८५७ का स्वातंत्र्य समर' आज भी रोंगटे खड़े कर देती है। १८५७ की घटनाओं का जो विकृत रूप अंग्रेज इतिहासकारों ने प्रस्तुत किया था, उसके प्रत्युत्तर में ब्रिटिश म्यूजियम और लाइब्रेरी के तत्कालीन दस्तावेजों की छानबीन के बाद सावरकर ने इस पुस्तक को तैयार किया था। युवा क्रांतिकारी सावरकर ने अपने गहन शोध द्वारा यह प्रमाणित किया कि १८५७ सिपाही बगावत नहीं बल्कि स्वाधीनता के लिए एक राष्ट्रीय संघर्ष था। संयोग है कि कार्ल मार्क्स के कुछ लेख अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे भारत के आर्थिक शोषण की पृष्ठभूमि में १८५७ की घटनाओं के समय एक अमेरिकी पत्र में प्रकाशित हुए, जिन्हें बाद में एक पुस्तिका के रूप में भी छापा गया। सावरकर की पुस्तक का मराठी से अनुवाद अंग्रेजी उनके अनेक साथियों ने किया। यह शायद पहला दृष्टांत है, जब कोई पुस्तक प्रकाशित होने के पहले ही प्रतिबंधित कर दी गई। फिर भी बड़ी सतर्कता बरतते हुए पुस्तक हॉलैंड में गुपचुप रूप में छपी और काफी प्रतियाँ डिकेंस के उपन्यासों के कवर में रखकर हिंदुस्तान पहुँचीं और वितरित हुईं। इस पुस्तक ने प्रतिबंध के बावजूद लाखों युवकों को वैचारिक प्रेरणा दी। इसका बड़ा लंबा रोमांचक इतिहास है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अनेकों पहलू हैं। यह अनेकों घटनाओं और व्यक्तियों के बलिदान से भरा पड़ा है। इसको एकांगी दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है। १८५७ के पहले कई जगह कृषक और जनजातियों ने सरकारी शोषण के विरुद्ध छोटे-मोटे विद्रोह किए, जो दबा दिए गए, पर असंतोष की आग सुलगती रही। इनको 'पीजेंट और ट्राइबल रिवोल्ट' कहा जाता है। इसी प्रकार मद्रास प्रेसीडेंसी में वेलोर के किले में भारतीय सिपाहियों ने अपने अधिकारियों के दुर्व्यवहार के विरुद्ध विद्रोह किया, जिसे बड़ी कठिनाई के बाद ही दबाया जा सका। कहने का तात्पर्य यह है कि इन स्थानीय घटनाओं ने विदेशी शासन के विरुद्ध एक वातावरण बनाने में बहुत सहायता की। सर्वसाधारण को यह भान होने लगा कि अंग्रेजी राज्य व्यवस्था अजेय नहीं है। उससे मुकाबला करने के लिए आवश्यकता है साधनों और आपसी एकता की।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की जो आग प्रज्वलित हुई, उसको समझने के लिए १८वीं सदी के अंत और १९वीं सदी की परिस्थितियों की ओर देखना पड़ेगा और कुछ उन कारणों पर भी विचार करना पड़ेगा, जिन्होंने शनैः-शनैः स्वाधीनता यज्ञ में आहुति का काम किया। अंग्रेजी राज्य के बढ़ते चरणों के साथ दो संस्कृतियों, एक प्राचीन भारतीय और एक आधुनिक पश्चिमी में संघर्ष प्रारंभ हो गया। अंग्रेजी शिक्षा के बढ़ते प्रचार से इस संघर्ष में और भी अभिवृद्धि होने लगी। इसका एक कारण बना ईसाई मिशनरियों की बढ़ती धर्मांतरण की प्रक्रिया। हिंदू धर्म और सामाजिक रीति-रिवाजों की कटु आलोचना होने लगी। ऐसा प्रचार होने लगा कि हर देशी प्रथा हीन और जघन्य है। ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होने से देश के कुछ प्रबुद्ध व्यक्तियों को चिंता होने लगी। ऐसे व्यक्तियों का एक वर्ग, जिसके प्रवक्ता अंग्रेजी भाषा से परिचित थे। वह चाहता था कि

कालांतर में जो कुरीतियाँ भारतीय समाज में आ गई हैं, उन्हें दूर किया जाए; किंतु भारतीय संस्कृति के जो मूल बिंदु हैं, उनको संरक्षित किया जाए। उन्हें दूसरे धर्मों की भी जानकारी थी। इसके मुख्य प्रतिनिधि राजा राममोहन राय थे, जो 'ब्रह्मसमाज' के प्रवर्तक बने। यह वर्ग अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी संस्कृति से परिचित होने के कारण 'हर भारतीय रीति-रिवाज और मान्यताएँ हीन हैं', ऐसे प्रचार का विरोध करने लगा। इस समय देश में कुछ ऐसे महापुरुषों का आविर्भाव हुआ, जिनकी भारतीय धर्म-संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा थी। वे अंधविश्वासों और कुरीतियों के विरोधी थे, उन्होंने भी पश्चिमी बौद्धिक आक्रमण का विरोध किया, उनके तर्क भारतीय प्राचीन ग्रंथों और परंपराओं पर आधारित थे। इस वर्ग के पुरोधा थे—स्वामी दयानंद सरस्वती, जिन्होंने 'आर्य समाज' की स्थापना की। उनके तर्कों और प्रचार ने देश के नागरिकों में एक आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत् करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस वर्ग में रामकृष्ण परमहंस भी हैं, जिन्हें अंग्रेजी का ज्ञान तो नहीं था, पर वे अपने तर्कों के आधार पर भारतीय धर्म विरोधियों को निरुत्तर कर देते थे। किंतु उनके विश्वविख्यात शिष्य स्वामी विवेकानंद, जो संयोग से पश्चिमी संस्कृति से भी परिचित थे, अपने गुरु के संदेश को नए ढंग से प्रस्तुत करने में सफल हुए। उन्होंने रामकृष्ण मिशन और आश्रम की स्थापना की। इस प्रकार की कुछ अन्य संस्थाएँ भी बनीं, पर यहाँ उनके विवरण में जाना संभव नहीं है। दो संस्कृतियों—पश्चिमी और पूर्वी, के टकराव की प्रक्रिया को पुनर्जागरण, नवजागरण, पुनरुत्थान या भारतीय रिनेसाँ की संज्ञा दी जाती है।

वास्तव में भारतीय आत्मा और अस्मिता ने इस प्रक्रिया के युग में एक नया मोड़ लिया। प्रयास होने लगा कि जीवन के हर क्षेत्र का पुनर्निरीक्षण होना चाहिए और कुरीतियाँ दूर करने की चेष्टा होनी चाहिए। यह प्रयास और यह आकांक्षा बहुमुखी थी। धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक पक्षों की जाँच-पड़ताल होने लगी। इस पुनर्निरीक्षण में वंचित, पिछड़े, अत्यंज, महिलाओं आदि की समस्याएँ सामने आने लगीं। इन समस्याओं के निराकरण के लिए कुछ प्रबुद्ध लोगों को लगा कि नवजागरण का राजनैतिक पहलू भी है। जब तक हम स्वयं अपने भविष्य के निर्धारण के अधिकारी नहीं होते हैं, इन सब समस्याओं का निदान लगभग कठिन है। समाज की उन्नति एक-दूसरे से संबंधित है। एक आत्ममंथन प्रारंभ हुआ। आखिर हम गुलाम क्यों? हमारी परतंत्रता के कारण क्या हैं? दूसरे देश कैसे शासित होते हैं और हमारा देश इतना गरीब व असहाय कैसे हो गया—यह जानने और समझने की उत्सुकता होने लगी। 'हमारे देश में हमारा राज्य कैसे हो', यह चिंता का विषय बना। दूसरे देशों के स्वतंत्रता के प्रयासों की खोजबीन होने लगी। इस प्रकार भारतीय नवजागरण ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि बना।

उसी समय एक सेवानिवृत्त सिविलियन ए.ओ. ह्यूम को, जो १८५७ में इटावा के कलेक्टर रहे थे, देश में विभिन्न वर्गों और स्थानों में बढ़ते हुए जन-असंतोष का अहसास हुआ। वे चाहते थे कि विदेशी शासन को जनता की भावनाओं का पता लगना चाहिए, उन भावनाओं को प्रकट करने का एक सुनियोजित माध्यम होना चाहिए। उसी उद्देश्य से १८८५ में 'कांग्रेस' की स्थापना हुई। वैसे बहुत से प्रबुद्ध भारतीय एवं अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी संस्कृति से परिचित महानुभाव चाहते थे कि देश के भविष्य के बारे में सोचने वाले लोग, जो अलग-अलग क्षेत्रों में रह रहे थे, उनको एक मंच पर लाने का प्रयास होना चाहिए। बंबई, कलकत्ता और मद्रास के बुद्धिजीवियों ने अपने प्रांतीय एसोसिएशन बना रखे थे, जो अपने ढंग से जनता के अभाव, अभियोगों को सरकार तक ले जाने में एक हद तक पूरी कोशिश कर रहे थे। इस प्रकार से एक प्रमुख राजनैतिक संस्था का स्थान कांग्रेस को मिल गया। प्रारंभ में कांग्रेस वर्ष में केवल एक बार मिलती, प्रस्ताव पास करती और सरकार से उनके कार्यान्वयन हेतु प्रार्थना करती। उसकी अपनी कोई स्थायी व्यवस्था नहीं थी। वह बहुत बाद में गांधी युग में विकसित हुई।

हम स्वतंत्रता इतिहास का सिलसिलेवार विवेचन नहीं कर रहे हैं। कुछ खास मुद्दों की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं। कालांतर में कांग्रेस की उदारवादी और सरकार से प्रार्थना करनेवाले नेतृत्व का विरोध नई पीढ़ी के कुछ प्रबुद्ध लोग करने लगे। उनमें प्रमुख थे—महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक, पंजाब के लाला लाजपतराय और बंगाल के बिपिन चंद्र पाल। यह त्रिमूर्ति 'लाल, बाल, पाल' के नाम से प्रसिद्ध हुई और नवयुवक उनका अनुसरण करने लगे। वे कांग्रेस को अधिक सक्रिय और जनोन्मुख बनाना चाहते थे, अतएव कांग्रेस में दो दल हो गए—नरम दल और गरम दल। गरम दल में वैचारिक पक्ष और बौद्धिक दर्शन प्रदान करनेवाले अधिकारी थे—अरविंद घोष, जो बाद में एक आध्यात्मिक दार्शनिक और योगी के रूप में श्रीअरविंद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कालचक्र तेजी से चल रहा था। वाइसराय लॉर्ड कर्जन ने बंगाल में बढ़ती हुई राजनैतिक चेतना को कुचलने के लिए बंगाल के विभाजन के विषबीज बोए। आसाम को अलग प्रांत बना दिया, ताकि वह मुसलिम बहुल प्रांत हो और मुसलमान बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना से अलग रहें। बंग-भंग में देशव्यापी आंदोलन खड़ा हो गया। विदेशी बहिष्कार और स्वदेशी के नारे देश भर में गूँजने लगे। बंकिम का 'वंदे मारतम्' देश का जनगीत बन गया। पूरे देश में 'वंदे मातरम्' मुखरित होने लगा। बंग-भंग ने स्वाधीनता संग्राम को अधिक बल और विस्तार दिया।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के चरित्र की एक और विशेषता है कि जब हम उस पर विहंगम दृष्टि डालते हैं तो दिखाई पड़ता है कि संवैधानिक विकास और स्वाधीनता संग्राम की गति उसको प्रभावित करती है। बंग-भंग और उसके उपरांत मिंटो मार्ले सुधार योजना। उसी प्रकार जालियाँवाला बाग कांड और फिर 'मांटेस्यू-चेम्सफोर्ड सुधार योजना'; नेहरू रिपोर्ट, साइमन कमीशन का आगमन और बायकाट, वाइसराय लिनलिथगो का अगस्त प्रस्ताव, असफल क्रिप्स मिशन एवं १९४२ का भारत छोड़ो आंदोलन, गांधीजी का दांडी मार्च, सत्याग्रह आंदोलन और उसके पहले अमृतसर कांग्रेस सत्र में पूर्ण स्वराज की माँग तथा गोलमेज सम्मेलन एवं प्रांतीय स्वायत्तता वाला ब्रिटिश संसद् का १९३५ का कानून और सात

राज्यों में कांग्रेस द्वारा मंत्रिमंडल गठन—ये महत्त्वपूर्ण बिंदु परिलक्षित होते हैं। यहीं क्रांतिकारी आंदोलन की महती भूमिका दृष्टिगोचर दिखाई देती है। क्रांतिकारी गतिविधियाँ बढ़ती हैं, पर यदि कांग्रेस कोई सक्रियता प्रदर्शित करती है तो वह थम सा जाता है, सरकारी दमन के डर से नहीं वरन् इस आशा और उत्सुकता में कि देखें ब्रिटिश सरकार अब क्या रुख अख्तियार करती है।

स्वाधीनता की लड़ाई का श्रेय अकेली कांग्रेस को ही नहीं दिया जा सकता। हाँ, वह उस समय मुख्यधारा में थी। बहुत से लोग कांग्रेस में थे, किंतु कुछ नीतियों के कारण, जैसे कम्युनल अवार्ड के प्रश्न पर विरोध, सरकार तो निरंतर मुसलमानों को स्वाधीनता संग्राम से अलग रखने में प्रयासरत थी। मुसलिम तुष्टीकरण की उसकी एक अपनी सोची-समझी चाल थी। सर सैयद अहमद खाँ, जो पहले संसदीय प्रणाली के पक्ष में थे, सरकार ने अपनी रणनीति बनाई, तो वह उसका विरोध करने लगे कि हिंदू बहुमत हमेशा इस प्रणाली के अंतर्गत रहेगा। आरक्षण और अलग निर्वाचन की माँग, १९०६ में बंग-भंग आंदोलन के दौरान ढाका में मुसलिम लीग की स्थापना, आगा खाँ के हाथ शिमला ऑपरेशन उसका जीता-जागता उदाहरण हैं। मुहम्मद अली जिन्ना, जिन्हें सरोजनी नायडू ने कभी हिंदू-मुसलिम एकता के दूत की संज्ञा दी थी, ने कितने पैंतरे बदले और भारत का विभाजन हो गया।

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जन्म हुआ। उसके संस्थापक केशव बलिराम डॉ. हेडगवार विदर्भ प्रांतीय कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। जब वह कलकत्ता में डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तब क्रांतिकारी दल में सक्रिय थे। डॉ. हेडगवार ने देखा कि देश की सबसे बड़ी आवश्यकता चरित्र-निर्माण की है। जब तक आत्मसम्मान की भावना नहीं होगी, देशप्रेम जाग्रत् होना कठिन है। कोहाट, पेशावर, भोपाल आदि दंगों में देखा गया कि संगठित न होने के कारण ही हिंदू जगह-जगह सताए जा रहे हैं। उनको संगठित करना अत्यावश्यक है। छुआछूत आदि कुरीतियों को दूर करना है। संघ के इस कार्य के लिए स्वयं गांधीजी ने भी प्रशंसा की है। डॉ. हेडगेवार स्वयं स्वतंत्रता सेनानी थे। नागपुर झंडा सत्याग्रह में स्वयंसेवकों ने भाग लिया। वे संगठन के तौर पर संघ को राजनीति से अलग रखना चाहते थे। वैसे व्यक्तिगत तौर पर स्वयंसेवकों को सत्याग्रह में भाग लेने की छूट थी। १९४२ के आंदोलन में बहुत से स्वयंसेवकों ने भाग लिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी स्वाधीनता संग्राम की ही उपज है, क्योंकि उस समय उसकी आवश्यकता महसूस की गई।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की एक और विशेषता है—देश के बाहर उसका फैलाव। क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ, सावरकर, मैडम कामा, डॉ. हरदयाल, वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय, रास बिहारी बोस, राजा महेंद्रप्रताप, एस.एम. बापट, डॉ. खानखोजे, मानवेंद्र राय, मौ. ओबेदुल्ला सिंधी, बरकतउल्ला भोपाली, तिरुमल आचार्य, वी.वी.एस. अय्यर आदि-आदि ने स्वाधीनता संग्राम हेतु अपने को पूरी तरह समर्पित कर दिया। गदर आंदोलन अमेरिका से शुरू हुआ, पर उसके पदचिह्न सुदूर एशिया में दिखाई दिए, खासकर जब द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान आजाद हिंद फौज की स्थापना हुई। हम केवल संकेत भर इस ओर कर रहे हैं, विस्तृत विवरण नहीं दे रहे हैं। उन्होंने भारत की स्वाधीनता के प्रश्न को बीसवीं सदी के प्रारंभ में ही विश्वपटल पर रख दिया था। गांधीजी और नेहरू की भूमिका कहीं बाद में प्रारंभ होती है। यही नहीं, इन क्रांतिकारियों ने अन्य देश, जो तब स्वतंत्र होने की कोशिश कर रहे थे, उनसे भी संपर्क स्थापित किए और विचार-विमर्श किया, किस प्रकार हम एक-दूसरे की सहायता कर सकते हैं और उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद से मिलकर किस प्रकार लड़ा जा सकता है। खासकर इन्होंने आयरलैंड, इजिप्ट, टर्की तथा अफ्रीका के विभिन्न भागों में स्वतंत्रता सेनानियों से संपर्क बनाए। देश के बाहर सक्रिय क्रांतिकारियों ने फ्रांस, इटली, रूस आदि के क्रांतिकारियों से संपर्क साधे। बम बनाने की विधि तो एक भारतीय क्रांतिकारी ने इसी प्रकार सीखी और उसका नुसखा बनाकर भारत भेजा, जहाँ उसकी प्रतियाँ बनाकर वितरित की गईं। भारत की स्वाधीनता की लड़ाई साम्राज्यवाद के विरोध का प्रतीक बन गई।

एक भ्रम फैलाया जाता है कि भारतीय स्वाधीनता युद्ध एक सामूहिक प्रयास नहीं था। अलग-अलग वर्ग और अलग-अलग क्षेत्रों की जो समस्याएँ थीं, उनके विरोध तक सीमित रहा। यह धारणा गलत है। स्वाधीनता की जो मूल धारा थी, उसमें संवेदना थी, लचीलापन था। किसी विशेष स्थान की समस्या हो या किसी विशेष वर्ग की, जैसे मजदूरों की, किसानों की, वे सब मूल धारा में समाहित हो गईं। उसी प्रकार हाशिए पर पड़े समूह, वंचित वर्ग, दलित, महिला, अस्पृश्य आदि सभी को मूल धारा ने अपना बना लिया, आत्मसात् कर लिया और उनकी कठिनाइयों के निराकरण की कोशिशें प्रारंभ हो गईं। स्वाधीनता संग्राम का चरित्र समावेशी था। कभी कहा जाता है कि उसका नेतृत्व मध्यम वर्ग, पढ़े-लिखे अथवा भद्र लोगों के हाथ में था। प्रारंभ में वह स्वाभाविक है। हर देश में हर आंदोलन इसी प्रकार शुरू हुआ। धीरे-धीरे ही सही, जैसे-जैसे जनता में चेतना बढ़ने लगी, केवल वकील या पढ़े-लिखे लोगों के हाथ में ही बागडोर नहीं रही, प्रत्युत उसने जन-आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया। इस दिशा में पहले लोकमान्य तिलक और तदुपरांत गांधीजी का योगदान रहा। गांधीजी ने नशाबंदी और विदेशी कपड़ों के बहिष्कार कार्यक्रम द्वारा महिलाओं को स्वाधीनता संग्राम में जोड़ लिया। महिलाओं की भागीदारी और उनके बराबरी का सम्मान। वही प्रवृत्ति हम क्रांतिकारी आंदोलन में भी देखते हैं, जहाँ महिलाओं की भागीदारी और उनके बलिदान की गाथाएँ आज भी गर्व से गाई जाती हैं। उसी प्रकार युवा और विद्यार्थी स्वाधीनता आंदोलन के मुख्य जमीनी कर्ता-धर्ता रहे और उनमें से अनेक ने बाद में उल्लेखनीय नेतृत्व प्रदान किया।

जिस प्रकार हमारा नवजागरण बहुआयामी था, उसका अनुसरण स्वाधीनता आंदोलन ने भी करना ही था। एक विदेशी लेखिका ने भारत की आर्थिक समस्या की चर्चा करते हुए उसे 'एरेस्टेड डेवलपमेंट' अथवा 'अवरुद्ध विकास' की संज्ञा दी। हम न केवल राजनैतिक दृष्टि से पराधीन थे, वरन् आर्थिक दृष्टि से भी हम ब्रिटिश शासन के अधीन थे। आज

स्वतंत्र भारत आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक—चहुँमुखी विकास के पथ पर अग्रसर है। हमारा संविधान उसका साक्षी है। अब स्वाधीन भारतीय नागरिकों पर निर्भर है कि वे किस प्रकार अपने अधिकारों का उपयोग करते हैं। संविधान सभा में डॉ. आंबेडकर की दी हुई चेतावनी इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन कर सकती है।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम का कमोबेश विस्तार पूरे देश में था। हर क्षेत्र के लोगों ने इसमें किसी-न-किसी रूप में भाग लिया। यह भी स्मरण रखना जरूरी है कि भारत में ही नहीं, विदेशों में जो अलख जगाई, उसमें भी भारत के हर क्षेत्र की भूमिका रही। चाहे इंग्लैंड में श्यामाजी कृष्ण वर्मा और विनायक दामोदर सावरकर के नेतृत्ववाले समुदाय को देखें, चाहे बर्लिन कमेटी अथवा अमेरिका में गदर पार्टी को लें। इनमें में हर क्षेत्र का प्रतिनिधित्व पाएँगे। सन् १९४६ तक दो भारत थे। एक था—ब्रिटिश साम्राज्य के अधिकार क्षेत्रवाला भारत और दूसरा, देशी रजवाड़ोंवाला भारत। ब्रिटिश भारत को नक्शे पर लाल रंग में दिखाया जाता था और देशी रियासतोंवाले भारत को पीले रंग में। पाकिस्तान बनने से ब्रिटिश भारत का एक बहुत बड़ा भाग भारत से अलग हो गया। प्राचीनकाल से भारत की परिकल्पना अखंड भारत की रही है—कश्मीर से कच्छ, हिमालय से कन्याकुमारी और पूर्व में कामरूप अथवा असम। सांस्कृतिक अवधारणाएँ भी यही रही हैं। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में उन क्षेत्रों का भी योगदान कम नहीं रहा, जो अब भारत में नहीं हैं। सीमा प्रांत में खान अब्दुल गफ्फार खाँ और उनके लाल कुरतीवालों के आंदोलन को कैसे नजरअंदाज किया जा सकता है। पेशावर में जब चंदसिंह गढ़वाली के नेतृत्व में फौज की टुकड़ी ने शांतिपूर्ण आंदोलन कर रहे लोगों के विरुद्ध अंग्रेजी अधिकारियों के आदेश को मानने से इनकार कर दिया, फिर उनके हथियार डलवा लिये गए और उनको आदेश न मानने की सजा मिली। इस प्रकरण से पूरे देश में एक उत्साह और गर्व की लहर फैल गई।

पश्चिमी पंजाब के शहीदों को कैसे विस्मृत किया जा सकता है। यही स्थिति पूर्वी बंगाल की रही, जो अब बँगलादेश का भाग है। जो स्वाधीनता संग्राम और क्रांतिकारी आंदोलन का गढ़ रहा है। १९४२ के आंदोलन में हेमू कलाणी और उन जैसे असंख्य बलिदानियों को कैसे भुलाया जा सकता है। सरदार पटेल की दूरदर्शिता और प्रयासों ने आज के भारत का निर्माण किया, जिसमें देशी रियासतें भी शामिल हो गईं। इन रजवाड़ों में भी स्वाधीनता संग्राम स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार पहले से ही ब्रिटिश भारत की देखा-देखी शुरू हो गया। प्रजा मंडल या अन्य भ्रमों से स्वायत्त शासन और निरंकुश सत्ता को समाप्त करने के आंदोलन चल रहे थे। बाद में पूरे भारत की रियासतों के नेताओं ने मिलकर 'ऑल इंडिया स्टेट पीपुल्स कॉन्फ्रेंस' की भी स्थापना की और देशी रियासतों में भी आंदोलन ने जोर पकड़ लिया। उदाहरण के लिए, राजस्थान में अजमेर क्रांतिकारियों और स्वाधीनता की गतिविधियों का केंद्र बना। श्यामजी कृष्ण वर्मा उदयपुर और अजमेर (ब्यावर) में रहे। राजस्थान में उन्होंने क्रांतिकारी आंदोलन की नींव रखी। वाइसराय हार्डिंग बम केस में राजस्थान के कुछ क्रांतिकारियों की भूमिका रही। राजस्थान के क्रांतिवीरों में अर्जुन लाल जोशी, केसरी सिंह वारहठ, प्रताप सिंह वारहठ, जोरावर सिंह वारहठ एवं गोपाल सिंह खरवा, ब्यावर के सेठ दामोदर दास सेठी के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। अन्य रियासतों में स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने कई महानुभावों ने १९४७ के उपरांत भी महती भूमिका निभाई।

आर.एल. हांडा ने अपनी पुस्तक 'हिस्टरी ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन प्रिंसली स्टेट्स' में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। संतोष का विषय है कि अलग-अलग रियासतों के स्वाधीनता संग्राम पर वहाँ के विश्वविद्यालयों में शोधकार्य प्रारंभ हो गया है और कुछ प्रकाशन सामने आए हैं।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई पत्र-पत्रिकाओं द्वारा और कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकों द्वारा भी लड़ी गई। उनके प्रकाशकों, संपादकों और लेखकों को भी यातनाएँ भुगतनी पड़ीं। पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें जब्त की गईं। यह लंबी कहानी है। इस माध्यम से जन-जागृति फैली, एक उत्साहवर्धक वातावरण बना, जिससे स्वाधीनता की लड़ाई को बहुत बल मिला। 'साहित्य अमृत' के अगस्त विशेषांक में प्रयास है कि पूरे भारत में राज्यवार के स्वाधीनता संग्राम की कुछ-न-कुछ झलकियाँ प्रस्तुत की जाएँ। 'साहित्य अमृत' वैसे भी निरंतर कोशिश करता है कि भूले-बिसरे अथवा समय के साथ हाशिए पर ला दिए गए और आज की पीढ़ी की आँखों से ओझल हुए साहित्यकारों, सांस्कृतिक पुरुषों एवं स्वाधीनता संग्राम के पुरोधाओं को स्मरण किया जाए। जो जान-बूझकर नेपथ्य में डाल दिए गए, उनके अवदान को भी रेखांकित किया जाए। ये हुतात्मा सदैव हम भारतीयों के लिए प्रेरणा के स्रोत रहेंगे।

एक धारणा प्रचलित है कि भारत की स्वाधीनता की प्राप्ति अहिंसा के बल पर प्राप्त हुई। यह एक भ्रांति है। ऐतिहासिक तथ्यों के विपरीत है। वैधानिक दृष्टि से सत्ता का हस्तांतरण शांतिपूर्ण ढंग से भले ही हुआ हो, पर उस समय भी पंजाब और बंगाल में खून-खराबा हो रहा था। लाखों शरणार्थी इधर से उधर आ-जा रहे थे। इन विस्थापितों की अपनी करुण-गाथा स्पष्ट बताती है कि जल्दबाजी के कारण, दूरदर्शिता की कमी के कारण आजादी प्राप्त करने के लिए हमें कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। इसके साथ ही १८५७ से लेकर न केवल क्रांतिकारियों और सामान्य लोगों ने भी छोटे-बड़े आंदोलनों में अपने जीवन की बाजी लगा दी। १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन में गांधीजी आंदोलन छेड़ने के पहले वाइसराय से संपर्क करना चाहते थे और उसके बाद आंदोलन की क्या रूपरेखा होगी, वह जनता को मार्गदर्शन के लिए सूचित करना चाहते थे, पर उसके पहले ही वे और कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य बंबई में ही गिरफ्तार हो गए।

आंदोलन का नेतृत्व जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अरुणा आसफ अली आदि ने सँभाला। गांधीजी के नारे 'करो या या मरो' का स्थानीय नेताओं ने अलग-अलग अर्थ लगाया। सरकारी दमन के विक्षोभ के कारण वास्तव में वह अहिंसक नहीं रहा। १९४२ में प्राणों का उत्सर्ग करनेवाले क्या भुलाए जा सकते हैं। वैसे भी स्वाधीनता आंदोलन के

समय गांधीजी और उनके कुछ अनुयायियों राजेंद्र प्रसाद, पटेल, कृपलानी ने अहिंसा को जीवन के सबसे बड़ा सिद्धांत रूप में स्वीकार किया था। नेहरू और आजाद ने तो स्पष्ट लिखा है कि उनके लिए तो उस समय स्वराज प्राप्त करने की परिस्थिति के अनुसार वह केवल एक रणनीतिक या स्ट्रेटेजी थी। क्रांतिकारी प्रणाली में विश्वास न रखने के बावजूद कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता—मोतीलाल नेहरू, मालवीयजी, सुभाषचंद्र बोस, पुरुषोत्तम दास टंडन तथा अन्य अनेकों नेता क्रांतिकारियों की आर्थिक सहायता करते थे। गणेशशंकर विद्यार्थी भी ऐसा ही करते थे। वह अपने पत्र 'प्रताप' के माध्यम से समय-समय पर क्रांतिकारी काम करते रहे। सरदार भगतसिंह तो लंबे अरसे तक नाम बदलकर प्रताप कार्यालय, कानपुर में रहे। विद्यार्थीजी को सब जानकारी थी। अंग्रेजों द्वारा राजद्रोह और काकोरी डकैती केस, मेरठ का समिरेजी केस आदि में अहिंसावादी नेता उनके बचाव में खड़े होते, उन मुकदमों के लिए धन एकत्र करते थे। आजद हिंद फौज ट्रायल के समय जवाहरलाल नेहरू भी अपनी बैरिस्टरी का चोगा पहनकर बचाव टीम में सांकेतिक रूप में शामिल हो गए। जनरल शाहनवाज, कर्नल ढिल्लों, सहगल अहिंसक स्वतंत्रता सेनानी नहीं थे। १९४७ में स्वराज प्राप्त करने के बाद स्वाधीनता आंदोलन के इस पक्ष को इतिहास में भुलाने की भरपूर चेष्टा की गई, पर इतिहास झुठलाया नहीं जा सकता।

द्वितीय विश्व युद्ध में नेताजी सुभाषचंद्र बोस द्वारा भारत की आजादी के लिए 'इंडियन नेशनल आर्मी' का नेतृत्व किया। युद्ध के समय और विशेषतया जब युद्ध समाप्त हो गया तथा आई.एन.ए. के अफसरों का ट्रायल लाल किले में शुरू हुआ, उस समय देश कितना आंदोलित था, भावनाओं में कितना उबाल था, उसका आभास आज की पीढ़ी नहीं कर सकती। ब्रिटिश सरकार को मालूम होने लगा था कि भारत में अब उनके दिन पूरे हो गए हैं। दमनचक्र द्वारा भारत को अब और दबाया नहीं जा सकता। कराची और बंबई में जल सेना विद्रोह, जिसे आर.आई. रिवोल्ट के नाम से जाना जाता है, उसी प्रकार वायु सेना में भी विद्रोह ने अंग्रेजों की आँखें खोल दीं। उनको विश्वास हो गया कि वे सेना के किसी विभाग पर पूरा विश्वास नहीं कर सकते हैं और जल्दी-से-जल्दी भारत छोड़ देने में ही उनकी भलाई है। तत्कालीन वाइसराय वैवेल, सेना प्रमुख ऑकिनलेक ने इस विषय में अपनी राय ब्रिटिश कैबिनेट को भेजी। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने भी यह माना है। उन्होंने भारत छोड़ने के पहले भरसक कोशिश की और तरह-तरह की तरकीबों से भारत-विभाजन का आयोजन किया, ताकि खंडित भारत सदैव कमजोर रहे, पर उसकी नियति कुछ दूसरी ही है। यहाँ आई.एन.ए. और जल सेना तथा वायु सेना के विद्रोहों के विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को आखिरी धक्का आई.एन.ए. और जल सेना के विद्रोहों ने दिया। हजारों जानें गईं। क्या इनके बलिदान को हम नकार सकते हैं ? क्या नेताजी की तपस्या और बलिदान को देश विस्मृत कर सकता है ? जिस प्रकार लोकमान्य तिलक और गांधीजी को जन-आंदोलन निर्माण का श्रेय है, वहीं द्वितीय विश्व युद्ध में सर्वप्रथम महिलाओं का एक लड़ाकू दस्ता यानी रानी लक्ष्मीबाई रेजीमेंट तैयार करने का श्रेय नेताजी सुभाषचंद्र बोस और आजाद हिंद फौज को जाता है। यह देश का दुर्भाग्य है कि इन तथ्यों को प्रकाश में लाने के सुनियोजित प्रयास तक नहीं हुए हैं। समय आ गया है कि स्वाधीनता संग्राम का प्रामाणिक इतिहास लिखा जाए।

स्वाधीनता दिवस के पुनीत पर्व पर देशवासी स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेनेवाले लाखों हुतात्माओं और भारत माँ के वीर सपूतों को श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं और उनके प्रति नतमस्तक होते हैं। साथ-ही-साथ देश की सीमाओं पर और देश के अंदर उस स्वाधीनता की रक्षा करनेवाले थल, वायु और जल सेना के जवानों एवं पुलिस, अर्ध-सैनिक बलों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, उनकी कुरबानियों को याद करते हैं। उनको आश्वस्त करते हैं कि देश हर प्रकार से उनके और उनके परिवारों के साथ है।

इस पुनीत अवसर पर किसी और विषय की चर्चा नहीं करना चाहते थे; किंतु इस समय देश की सीमाओं पर तथा आंतरिक खतरे बढ़ते जा रहे हैं। इसलामिक स्टेट और पाकिस्तान की आई.एस.आई. भारत में अशांति फैलाने पर तुले हुए हैं। पाकिस्तान इस समय कश्मीर घाटी में अत्यंत सक्रिय है। हर प्रकार से जनता को भड़काने की कोशिश कर रहा है। जितने चरमपंथी एवं आतंकवादी संगठन हैं, चाहे वे किसी नाम से जाने जाएँ, एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। अल बगदादी की खिलाफत का क्षेत्र सिमट रहा है, अमेरिका और रूस के आक्रमणों के कारण वह हताश है। उसके सुषुप्त सेल या मॉड्यूल भारत में जगह-जगह हैं। हम व्यर्थ के विवाद में फँसे हैं। पढ़े-लिखे, टेकनोलॉजिस्ट, डॉक्टरों आदि के मोबाइल नंबर और विवरण आतंकवादी दल बहुत सालों से एकत्र कर रहे हैं। हमने दस वर्ष पहले कर्नाटक में यह जाना। इसकी सूचना केंद्र सरकार को बहुत पहले से है। मदरसों के द्वारा नीचे के वर्ग तक पहुँचा जा रहा है। यह दो तरफा मार है। दोनों में कोई भेद नहीं है। इसलामिक स्टेट की दृष्टि में केवल वहाबी मत माननेवाले ही सच्चे मुसलमान हैं, अन्य मुसलमान भी काफिर हैं, जिस प्रकार अन्य धर्म के अनुसरण करनेवाले। इस स्तंभ में हम दो वर्षों से प्राय: सावधानी बरतने की चर्चा कर रहे हैं। फ्रांस के नीस शहर में बैस्टील दिवस इन कठमुल्लों और चरमपंथियों ने जो हैवानियत दिखाई है, वह मानवता को झकझोर देनेवाली है। पर यह विषय राजनीति और दलीय मतभेदों से ऊपर है। पूरे विश्व को एक साथ आकर मानव-जाति को कलंकित करनेवाले इन नरपिशाचों का प्रतिकार करना होगा। कहावत है कि सतर्कता ही स्वतंत्रता की कीमत है।

स्वाधीनता दिवस के पुनीत अवसर पर 'साहित्य अमृत' के सुधी पाठकों और संपूर्ण देशवासियों को बधाई! इस अंक के लिए बहुत कम समय में प्रदेशवार स्वाधीनता संग्राम में योगदान विषयक सारगर्भित लेख देने के लिए सभी सम्मानित लेखकों का आभार और उन्हें साधुवाद!

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

भारत की एक राष्ट्रीयता

● पं. माधवराव सप्रे

राष्ट्र-दृष्टि से हिंदुस्तानियों को, विशेषत: हिंदुओं को, और फलत: हिंदुस्तान को अत्यंत निकृष्ट और प्रतिकूल दशा में दिखलाने का प्रयत्न अब तक अनेक पश्चिमी लेखकों ने किया है। हिंदुस्तान-संबंधी जो इतिहास-ग्रंथ हमारे विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाते हैं, उन्हें एक बार ध्यानपूर्वक देखिए। वहाँ यही बातें सिद्धांत रूप से पाई जाएँगी कि हिंदुस्तान एक देश नहीं है, हिंदुस्तानियों में राष्ट्रीयता के आवश्यक अंगों का अभाव है, हिंदुओं को 'राष्ट्र' संज्ञा प्राप्त नहीं हो सकती, भारतीय राष्ट्र एक भ्रामक शब्द है। इन लेखकों का मत है कि हिंदुस्तान के निवासियों में उद्देश्यों की एकता नहीं है; उनमें अनेक जातियाँ हैं; उनके विचारों और आचारों में समता नहीं है; उनके रहन-सहन में बहुत भिन्नता दीख पड़ती है; उनकी भाषा एक नहीं है और उनका कोई विश्वसनीय प्राचीन इतिहास भी नहीं है।

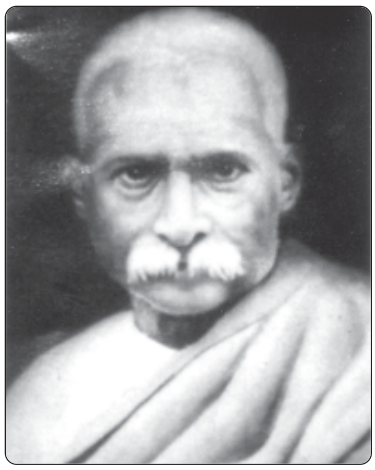

स्व. पं. माधवराव सप्रे

इसी विचार-पद्धति का संस्कार बहुत समय तक हमारे मस्तिष्क पर होते रहने से, हमारे कुछ देशभाई भी ऐसी ही ऊटपटाँग बातें करने लगते हैं। विदेशियों की तरह वे भी केवल बाहरी भिन्नताओं पर अधिक जोर दिया करते हैं और भीतरी समता या एकता पर कुछ ध्यान नहीं देते। भाषा ही का उदाहरण लीजिए। इस बात को भारतवर्ष के छोटे और बड़े सभी शुभचिंतक मानते हैं कि भारतवर्ष की शिक्षा देशी भाषाओं के ही द्वारा होनी चाहिए। परंतु मैसूर के Mysore Economic Journal नामक एक अँगरेजी-पत्र में, एक लेखक महाशय, विदेशी संस्कारों की अधिकता के कारण, अँगरेजी भाषा के महत्त्व और उसी के द्वारा शिक्षा देने के पक्ष में जोर देते हुए लिखते हैं—

'India is not one people, one language; India is many peoples, many tongues. There is, in this vast land, only one available medium of communication and that is English. The conditions of educated life and enterprise in this land call insistently for one common tongue. In India English is that common tongue.'

भावार्थ यह है कि हिंदुस्तान एक राष्ट्र नहीं—इसकी कोई एक भाषा नहीं। इसमें भिन्न-भिन्न जाति के लोग रहते हैं; भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हैं। इस बृहत् देश में केवल अँगरेजी भाषा ही विचार-विनिमय का एकमात्र साधन है। शिक्षित लोगों की परिस्थिति और उद्योग के कारण इस देश में एक सर्वसाधारण भाषा की अत्यंत आवश्यकता हुई है, और वह भाषा अँगरेजी है।

इस अभागे देश पर खेद प्रकट करते हुए भी उक्त लेखक महाशय अँगरेजी भाषा के कृत्रिम महत्त्व को बाल भर भी घटाना नहीं चाहते; क्योंकि उनके मतानुसार इस देश की वर्तमान उन्नति का कारण सिर्फ यही है कि लाखों हिंदुस्तानियों ने अँगरेजी को अपनी मातृभाषा के समान मान लिया है, "Millions of our fellow-countrymen are to-day forging ahead because they have learnt to use English as a second mother-tongue." अधिक क्या कहें, भारतवासियों में जो स्वदेश-प्रेम, सहकारिता, सार्वजनिक कल्याण के लिए स्वार्थ-त्याग आदि गुण देख पड़ते हैं, वे सब अँगरेजी भाषा ही के बदौलत हैं! देखिए इस विषय पर लेखक महाशय का कथन क्या है। "All this is possible only because India's sons and daughters, throughout this vast land, have realised that in the English language they have a common medium of fellowship; they have made this medium their own and they are now in the position of being able to press forward in mutual co-operation." इस पर टीका-टिप्पणी करना वृथा है।

ऐसे विपरीत विचारों के कारण हमारे देश की बहुत हानि हुई है, हो रही है, और यदि रोकने का प्रयत्न न किया जाएगा तो होती रहेगी। जब-जब इस देश के निवासी राष्ट्रीय भावों से प्रेरित होकर अपनी उन्नति का प्रयत्न करने लगते हैं; जब-जब भारतवासी एक-चित्त होकर अपने राष्ट्रीय हानि-लाभ तथा स्वत्वों का कुछ विचार करने लगते हैं, तब-तब इस कटाक्ष का आघात भी उन्हें सहना पड़ता है कि वे 'राष्ट्र' संज्ञा के पात्र नहीं हैं—उनमें राष्ट्रीयता ही नहीं है। इन निराधार और असत्य आक्षेपों का उत्तर कई बार दिया गया है; परंतु हमारे कुछ देश-भाइयों के मन में पूर्वोक्त कुसंस्कारों की जड़ इतनी दृढता के साथ जम गई है कि इन आक्षेपों के उत्तर बार-बार दुहराने से सिवा लाभ के कोई हानि नहीं। जो लोग भारत की एक-राष्ट्रीयता के विरुद्ध ऐसे अपसिद्धांतों

का प्रचार करते हैं, वे सत्य का अपलाप करते हैं—अपलाप न सही, अपने भ्रम का निदर्शन करते हैं। इस लेख में हम इन आक्षेपों का सप्रमाण खंडन करके अपने पाठकों को यह बतलाना चाहते हैं कि भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास है, हम लोगों में आंतरिक एकता का अभाव नहीं है और इसीलिए यह देश 'राष्ट्र' संज्ञा का यथार्थ पात्र है।

मानव-जाति के प्राचीन इतिहास के तत्त्वों की खोज करनेवालों ने निश्चय किया है कि जब इंग्लैंड आदि यूरोपीय देशों के निवासी अत्यंत असभ्य अवस्था में थे; जब वे लोग जंगलों, पर्वतों और गुहाओं में रहकर केवल आखेट से अपनी जीविका चलाते थे; और जब उन्हें खेतों तथा गाँवों का स्वप्न में भी ध्यान न था; उस समय हिंदू लोग एक जीते-जागते राष्ट्र के अवयव थे। आर्य लोग उस समय भी सरस्वती और गंगा के किनारे अपना जीवन खेती इत्यादि में व्यतीत करते थे। जब संसार के अर्वाचीन उन्नत देशों के पूर्वज घोर अज्ञान के अंधकार में पड़े थे, तब भारत में आर्य जाति की ज्ञानज्योति प्रज्वलित हो रही थी और अपनी दिव्य प्रभा से संसार के दूसरे देशों को भी लाभ पहुँचाती थी। खेद है कि अपरिपक्व विचार और भ्रम के कारण कई पाश्चात्य पंडितों ने यह लिख मारा है कि हिंदुओं का कोई राष्ट्र ही नहीं। यह देखकर भी प्रत्येक सहृदय मनुष्य को दुःख होता है कि हमारे समकालीन अनेक भारतवासी ऐसे हैं, जिन पर यूरोपियन सभ्यता और शिक्षा का अनुचित परिणाम हुआ है और जो हिंदुओं के इतिहास को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। लोग विचार किए बिना ही कह बैठते हैं कि भारतवर्ष का कोई प्राचीन इतिहास ही नहीं। परंतु पूर्ण विचार करने से ज्ञात होगा कि उनके कथन में बहुत थोड़ा सत्यांश है। भारतवर्ष का इतिहास है जरूर, परंतु वह दुर्दैववश योग्य-क्रमानुसार लिखा हुआ नहीं मिलता। क्या यह सच है कि हमारे प्राचीन ग्रंथों में इतिहास का कुछ भी पता नहीं? क्या इतिहास-प्रसिद्ध तक्षशिला और पाटलिपुत्र के शिलालेखों से यह बात सिद्ध नहीं होती कि भारतवर्ष का इतिहास है? हाँ, यह सच है कि आधुनिक पद्धति और क्रम के अनुसार लिखा हुआ इतिहास इस समय उपलब्ध नहीं। परंतु इससे हम यह नहीं मान सकते कि भारतवर्ष का इतिहास है ही नहीं।

सदा सर्वदा होनेवाली लड़ाइयों के कारण तथा चोरों और डाकुओं के डर से लोग अपनी जान बचाने की चिंता में यदि इतिहास लिखने की ओर दुर्लक्ष्य करने लगे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इतिहास पढ़नेवालों को मालूम होगा कि इन कठिनाइयों की परवा न करके यदि उस समय कोई इतिहास लिख भी लेता तो राजा उसे प्रकाशित न करने देता। औरंगजेब ने अपने समय के इतिहास को प्रकाशित करने की सख्त मनाही कर दी थी। इन्हीं सब कारणों से आज हम देखते हैं कि हिंदू-जाति में इतना अंधविश्वास तथा पुरानी बातों पर उचित से अधिक दृढ विश्वास पाया जाता है।

यथाक्रम इतिहास न होने के दो कारण हैं। पहला अंतरंग कारण, प्राचीन समय की पुस्तकों का परिशीलन करने से मालूम हो जाएगा कि वे काल्पनिक कथा-कहानियों से भरी पड़ी हैं। यह बात सभी देशों की प्राचीन पुस्तकों में पाई जाती है। बहुत से शब्दों के आडंबर में सत्यांश की मात्रा कम रहती है। हिंदुओं के प्राचीन ग्रंथों का भी यही हाल है। उनमें काव्यानुयायिनी भाषा-शैली और अलंकारों की तथा आश्चर्य, वीभत्स और वीर-रस की ओर उचित से अधिक ध्यान दिया गया है। प्राचीन समय के सभी देशों में किसी इतिहास-प्रसिद्ध घटना अथवा क्रांति का सरल और ज्यों-का-त्यों वर्णन करने पर कम ध्यान दिया गया है। फलतः बहुत सी महत्त्वपूर्ण तथा सत्य, और महत्त्व-रहित सारहीन बातों की ऐसी खिचड़ी बन गई है कि सच बात को ढूँढ़ निकालना कुछ कठिन हो गया है। ऐसी बातों को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि पुराने इतिहासकारों का मन सत्य को छिपाने की ओर था। जो दोष उन ग्रंथों में आ गए हैं, उनका कारण यही है कि अपनी बातों का वर्णन करने में हर एक ग्रंथकार दूसरों के आश्चर्ययुक्त वर्णन का अतिक्रमण करना चाहता था। इससे सत्य इतिहास की कुछ अह्वेलना स्वाभाविक ही हो गई। और आज हम सत्य घटनामय तथा क्रमबद्ध इतिहास के बदले ऐसा इतिहास देखते हैं, जिसमें मुख्य बात की ओर दुर्लक्ष्य होकर लेखन-कला के विकसित अंगों पर तथा कवि की प्रतिभा-शक्ति पर ही अधिक ध्यान दिया गया है।

दूसरा, बाह्य कारण हमारे देश के इतिहास-ग्रंथों में उपर्युक्त दोष के सिवा और भी कई बातें हैं, जिनके कारण भारत का क्रमानुसार लिखित इतिहास प्राप्त नहीं। प्राचीन काल में भारतवर्ष को कई ऐसी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं, जिनसे यह देश डगमगाने लगा था। मुसलमानों ने लगातार कई वर्षों तक हिंदुस्तान पर चढ़ाइयाँ कीं। उस समय के कुछ हिंदू राजाओं में मित्रभाव न था। वे आपस में लड़-लड़कर मुसलमानों से सहायता माँगते थे। फल यह हुआ कि हिंदुओं पर इन मुसलमान राजाओं के शासनकाल में बहुत अत्याचार होने लगा। प्राचीन समय की दशा का विचार करने से अब भी हमारा हृदय दुःख से विदीर्ण होने लगता है। हिंदुओं की स्वाभाविक उन्नति पर इन सब बातों का बहुत बुरा परिणाम हुआ—उनकी नैतिक और मानसिक उन्नति रुक गई।

इस प्रकार जिन-जिन बातों को हिंदू लोग पवित्र और उपयोगी समझते थे, जिन पर उनका दृढ विश्वास और प्रेम था, जिनसे प्राचीन समय की घटनाओं का हमें पता लग सकता था, वे सब तो किसी न किसी तरह नष्ट कर दी गईं। यदि हमारे देश में उस समय इतने उपद्रव न होते तो क्या हमें आज इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बातों की कमी मालूम होती? सदा सर्वदा होनेवाली लड़ाइयों के कारण तथा चोरों और डाकुओं के डर से लोग अपनी जान बचाने की चिंता में यदि इतिहास लिखने की ओर दुर्लक्ष्य करने लगे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इतिहास पढ़नेवालों को मालूम होगा कि इन कठिनाइयों की परवा न

करके यदि उस समय कोई इतिहास लिख भी लेता तो राजा उसे प्रकाशित न करने देता। औरंगजेब ने अपने समय के इतिहास को प्रकाशित करने की सख्त मनाही कर दी थी। इन्हीं सब कारणों से आज हम देखते हैं कि हिंदू-जाति में इतना अंधविश्वास तथा पुरानी बातों पर उचित से अधिक दृढ विश्वास पाया जाता है।

यद्यपि उस समय भारतवर्ष के बहुत से लोगों में अज्ञान और अंधकार फैला हुआ था, तथापि इस देश में ऐसे भी कई प्रखर-बुद्धिशाली विद्वान् और महात्मा उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने अपनी पवित्र जन्मभूमि के नाम को अपने कार्यों से अमर कर दिया है। प्राचीन समय में यह देश तत्त्वज्ञान, वैद्यक, ज्योतिष, छंदशास्त्र, संगीत आदि शास्त्रों में पारंगत था। महात्मा बुद्ध के समान धर्मगुरु, कालिदास से कवि, ब्रह्मगुप्त के सदृश गणितशास्त्र-प्रवीण और श्रीशंकराचार्य्य से तत्त्वज्ञानी महात्माओं की जननी यही भारतमाता है। प्राचीन स्थानों के शिलालेखों और उपलब्ध सामग्रियों से पता लगता है कि भारतवर्ष में पुराने जमाने में अनेक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे। भारतवर्ष की वर्तमान दशा को भी देखकर हमें हताश होने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। हमारे देश में अब भी रवींद्रनाथ टैगोर से लेखक, श्रीरामकृष्ण परमहंस से आत्मज्ञानी, गोखले और मालवीयजी के समान राजनीतिज्ञ, बाबू सुरेंद्रनाथ के समान वक्ता, लोकमान्य तिलक के समान राष्ट्रकल्याण के लिए आत्मसमर्पण करनेवाले अलौकिक पुरुष और गांधी के समान सत्याग्रही कर्मवीर उत्पन्न होते हैं। हमारे ही कई देश-भाई यहाँ के शासन में बड़े-बड़े पदाधिकारी हैं। इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि भारतवर्ष जीता-जागता राष्ट्र है—वह निस्तेज और निस्सत्त्व नहीं है। अन्य देशों के समान यहाँ के भी लोगों में शक्ति और प्रतिभा है। और यदि हमें योग्य अवसर प्राप्त हो तो हम भी कुछ करके दिखा सकते हैं।

भारतवर्ष के सच्चे इतिहास का पता लगाने के लिए जो सहायक सामग्री इस समय उपलब्ध है, उसको हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। पहला भाग अलिखित सामग्री का और दूसरा लिखित सामग्री का।

ऊपर कहा जा चुका है कि हमें इतिहास के संबंध की सत्य बातें अवश्य मिल सकती हैं, परंतु अविश्वसनीय तथा काल्पनिक बातों के मिश्रण के कारण कुछ कठिनाई हो गई है। इतिहास-शोधकों का काम है कि वे सत्य और असत्य बातों को छानकर अलग-अलग कर दें। अलिखित सामग्री के विभाग में भग्न मंदिर, टूटे-फूटे किले, विशाल राजप्रासाद, बड़े-बड़े तालाब आदि हैं, जिनसे हमें इतिहास-संबंधिनी कुछ-न-कुछ बातें अवश्य मालूम हो सकती हैं। भिन्न-भिन्न पुराने मंदिरों से, वहाँ पर मनाए जानेवाले त्योहारों से, वहाँ के वाद्यों और नृत्य से हमें ऐतिहासिक बातों का कुछ पता अवश्य लग सकता है। मंदिरों के जड़ाऊ गहने तथा उनकी मूर्तियाँ हमें बताएँगी कि उनके बनानेवाले कौन थे, वे किस समय और कहाँ रहते थे। बड़े-बड़े सघन जंगलों और मरुस्थलों से जहाँ पर किसी समय शक्तिसंपन्न तथा वैभवशाली राजा राज्य करते थे, राक्षसों के क्रूर कृत्यों की कहानियों से और पुराने खँडहरों से हमें किसी दुष्ट राजा के कृत्यों का पता लगेगा। देश में अब भी भाटों की कमी नहीं है। ये लोग पुराने जमाने में अपने-अपने राजाओं की कीर्ति गाया करते थे। ऐसे भाटों के गानों से भी हमें इतिहास की बहुत बातें मालूम हो सकती हैं। देश में कितने ही स्थानों पर मिलनेवाले शिलालेख तथा मंदिरों में बड़ी सावधानी से रखे हुए ताम्रपत्र बहुधा किसी-न-किसी राजा के विजय से संबंध रखते हैं। हर्ष की बात है कि आजकल पाटलिपुत्र और तक्षशिला की जमीन खोदकर उसमें से ऐसे कई शिलालेख तथा मूर्तियाँ आदि निकाली गई हैं, जिनसे इतिहास-विषयक कई बातों का पता लगता है। सारांश, गाँवों की कहानियों और दंतकथाओं से, लोगों की रीति-नीति और त्योहारों से तथा और-और बातों से इतिहास की छटा झलकती है। ये सब बातें हिंदुस्तान के पूर्व वैभव तथा इतिहास के स्मारक रूप हैं।

दूसरा विभाग है लिखित साधनों का। प्राचीन आर्य अनेक विषयों में प्रवीण थे। रामायण तथा महाभारत से हमें इतिहास के संबंध में कई महत्त्वपूर्ण विषयों का ज्ञान होता है। वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, अर्थशास्त्र, युद्धविद्या आदि के ग्रंथों से भी हमें इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने में बहुत सहायता मिल सकती है।

परंतु हमारे मार्ग में बहुत सी कठिनाइयाँ भी हैं। ये कठिनाइयाँ हमें उपलब्ध सामग्री प्राप्त करने तथा उसको पढ़ने-समझने के विषय की हैं। पहले हम अलिखित सामग्रियों के पाने में जो कठिनाइयाँ हैं, उनके विषय में कुछ कहना चाहते हैं। भारतवर्ष के इतिहास की सामग्री इकट्ठा करनेवाले और उसे पढ़नेवाले में परिश्रम और संतोष आदि गुण होने चाहिए। कई बार उसे हताश होना पड़ेगा, कई बार उसे कठिन परिश्रम करना पड़ेगा। परंतु इतिहास का सच्चा भक्त और शोधक वही हो सकेगा, जो इन कठिनाइयों की परवा न करके अपना मार्ग-क्रमण बराबर करता चला जाएगा। उसे कई पहाड़ों पर चढ़ना होगा कई नदियाँ पार करनी पड़ेंगी, इतिहास-प्रसिद्ध स्थानों में भ्रमण करना होगा, और लोगों के सामाजिक त्योहारों के समय उपस्थित होना पड़ेगा। उसे स्वयं कई बार पूछताछ करनी होगी, कई संन्यासियों और ग्राम के बड़े-बूढ़ों से बातें करनी होंगी, सुनी हुई बातों को योग्य रीति से सिलसिलेवार लिखना होगा और उन्हें क्रमानुसार चित्रित करना पड़ेगा।

भारतवर्ष, विस्तार में रशिया को छोड़कर सारे यूरोप के बराबर है। इतने विस्तृत देश का इतिहास लिखना कोई सरल बात नहीं। इस देश में सर्वत्र एक ही भाषा का प्रचार नहीं है। लोगों की रीतियों में भी भिन्नता है। इन दोनों बातों के कारण इतिहास-संबंधी ज्ञान प्राप्त करने में बहुत कठिनाई पड़ती है। इसके सिवा हिंदू-राष्ट्र अपनी पुराणप्रियता और संकुचित स्वभाव के लिए प्रसिद्ध ही है। इस कारण जिन लोगों को इतिहास-संबंधिनी कुछ बातें मालूम होती हैं या जिनके पास शिलालेख या ताम्रपत्र होते हैं, वे उन्हें छिपाकर रखते हैं। इससे उन बातों का पता नहीं लगता, जिनकी सहायता से इतिहास की उन बातों पर कुछ प्रकाश पड़े, जो हमें मालूम नहीं हैं।

इसी तरह की अनेक कठिनाइयाँ लिखित सामग्री के संबंध में भी हैं। प्राचीन समय की भाषाओं में लिखी हुई किताबों का पढ़ना सरल

नहीं है। इन भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त करना बहुत कठिन है। यद्यपि प्रयत्न करने पर बहुत से लोग इस कठिनता को दूर कर सकते हैं, तथापि प्राचीन समय के बड़े-बड़े मूल्यवान् ग्रंथों में से सत्य बातों को ढूँढ़ निकालना और भी कठिन है। क्योंकि भाषा-संबंधिनी कठिनता के साथ विविध टीका-ग्रंथों के कारण सत्यार्थ का ज्ञान प्राप्त करना बड़ा कष्टसाध्य है। काव्यरस, कल्पनाशक्ति, इतिहास और अलंकृत भाषा का कहीं-कहीं ऐसा असंगत और अस्वाभाविक मिश्रण पाया जाता है कि नीरक्षीर-विवेक करना असंभव हो जाता है।

हर्ष की बात है कि वर्तमान समय में ब्रिटिश राज्य के छायाछत्र में अनेक सुविधाओं के कारण उपर्युक्त कठिनाइयाँ धीरे-धीरे लुप्तप्राय हो रही हैं। रेलगाड़ी, डाकघर, ट्राम और मोटर आदि नए-नए वाष्प तथा विद्युतसंबंधी आविष्कारों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर हम सरलता से और बहुत थोड़े समय में पहुँच सकते हैं। यात्रा करना अब सहज हो गया है। प्रत्येक मनुष्य का जीवन सुरक्षित है। देश में सर्वत्र शांति का राज्य फैला हुआ है। इसलिए बहुत से नए-नए सार्वजनिक विद्यालय, उत्तम संस्थाएँ तथा सर्वोपयोगी प्रथाएँ प्रचलित हो रही हैं। विद्यापीठों, अजायबघरों, धार्मिक संघों, सामाजिक और राष्ट्रीय सम्मेलनों तथा छोटी-बड़ी सर्वोपयोगिनी पुस्तकों के प्रकाशन से हमें इतिहास-संबंधी बहुत से विषयों का ज्ञान होता जाता है। पूर्व और पश्चिम के संयोग से भी हमें बहुत लाभ हुआ है। वर्तमान समय में यूरोप में ऐसे कई विद्वान् हैं, जो भारत के प्राचीन इतिहास को पूज्य दृष्टि से देखते हैं। अमेरिका में श्रीमती सत्यबाला देवी के गायन से भारतवर्ष के संगीत के विषय में आदर-बुद्धि जाग्रत् हुई है। पाठक जानते ही होंगे कि श्रीस्वामी विवेकानंदजी के व्याख्यानों का अमेरिकन शिक्षित प्रजा पर कितना प्रभाव पड़ा था। जर्मन और विलायती विश्वविद्यालयों में भारत की प्राचीन भाषाओं की शिक्षा दी जाती है। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि भारतवर्ष पृथ्वी के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान पर विराजमान है। इस बात को भारत के नूतन विद्वानों ने और भी सिद्ध कर दिया है। भारत के कई विद्वान् अमेरिका के विद्यालयों में ऊँचे पदों पर विराजमान हैं। हाल ही में डॉक्टर जे.सी. बोस के आविष्कारों ने पश्चिम में एक नए ज्ञान का प्रचार कर दिया है। जो देश केवल भौतिक विषयों में ही सदा निमग्न रहते थे, जिन्हें आध्यात्मिक बातों का पहला पाठ भी मालूम न था, जो पैसे की हाय-हाय में अपने सर्वस्व का सत्यानाश कर रहे हैं, उन्हें यह प्राचीन भारत ऊँची आवाज से सिखाता है कि पैसा और विषयोपभोग ही मनुष्यता का अंतिम लक्ष्य नहीं। बड़े-बड़े भौतिक आविष्कारों में, बड़ी-बड़ी मोटरें और हवाई जहाज बनाने में ही अपनी सारी बुद्धि का व्यय कर देना और उसी को अपने जीवन का परम साध्य समझना सर्वथा अनुचित है। मन, आचरण तथा आत्मा की उन्नति करना और सारे विश्व में भ्रातृभाव की जागृति करना मनुष्य का मुख्य धर्म तथा कर्तव्य है। सारांश यह कि भारत के धर्मज्ञान, आध्यात्मिक विचार और तत्त्वविवेक संबंधी उपदेशों से इस देश का और इंग्लैंड का परस्पर संबंध और भी अधिक दृढ हो जाएगा। इससे समस्त संसार को भी लाभ होगा। परंतु इस काम के लिए हमारे शासकों और इंग्लैंड के निवासियों के विचार कुछ अधिक उदार और व्यापक होने चाहिए।

प्रत्येक हिंदू के विचार, शब्द और कर्म में सांसारिक विषय-वासनाओं की ओर स्वाभाविक घृणा रहती है। सबके विचारों में आध्यात्मिकता का एक आवश्यक अंश पाया जाता है। सभी हिंदुओं के जीवन, रहन-सहन और रीति-रस्म में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से एकता और सदृशता का तत्त्व विद्यमान रहता है। इस प्रकार सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक बंधनों से सब हिंदू एकता के सूत्र में बँधे हुए हैं और उनके ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण की नौका एक ही है। ये बंधन औपचारिक तथा बाहरी नहीं हैं; इनका उद्‌गम हृदय से, मन से और आत्मा से है।

इस प्रकार, उपलब्ध सामग्री की सहायता से और परस्पर आदरभाव की जागृति से, हमारे राष्ट्र का क्रमानुसार संपूर्ण इतिहास लिखना कोई कठिन बात नहीं है। ऊपर बतला दिया गया है कि हमें उचित और आवश्यक सामग्री की कुछ कमी नहीं। कमी है केवल सद्‌भावपूर्ण परिश्रमी विद्वानों की, जो इस विपुल सामग्री का संग्रह करके उसके सदुपयोग तथा सहायता से इतिहास लिखने का प्रयत्न करें। फिर आप ही मालूम हो जाएगा कि 'भारतवासियों का न तो कोई प्राचीन इतिहास है और न उनको राष्ट्र-संज्ञा ही दी जा सकती है', इस कथन में कहाँ तक औचित्य और सत्यता है।

कुछ लोग 'हिंदूराष्ट्र', 'राष्ट्रीय बुद्धि', हिंदुस्तान की 'राष्ट्रीय उन्नति' इत्यादि इस लेख में आए हुए शब्दों पर आक्षेप करेंगे, क्योंकि उनकी समझ में हिंदुस्तान के संबंध में ये सब शब्द भ्रामक, अर्थहीन और महत्त्व-रहित हैं। भाषा और आचार-विचार की विभिन्नता के आधार पर वे कहते हैं कि हिंदुओं को 'राष्ट्र' संज्ञा ही नहीं दी जा सकती। वे अपने आक्षेप की पुष्टि में जातिभेद और आपस की फूट आदि बातों को भी पेश करते हैं। एक प्रांत का मनुष्य दूसरे प्रांत के मनुष्यों के यहाँ भोजन नहीं कर सकता। शैव और वैष्णव परस्पर के देवताओं को नहीं मानते। नीच मानी गई जाति का मनुष्य तो इन दोनों के मंदिरों में पैर भी रखने से वंचित है। ऐसी ही कुछ बातों के आधार पर आक्षेप करनेवाले अपने पक्ष का मंडन किया करते हैं। हम मानते हैं कि उक्त विचार-प्रणाली में कुछ सत्यांश अवश्य है; परंतु उसका प्रतिपादन करनेवाले यह नहीं जानते कि हर एक प्रश्न का विचार दो भिन्न दृष्टियों, 'विनाशक' और दूसरी 'सहायक' से किया जा सकता है। उनकी विचार-शैली में प्रस्तुत प्रश्न के दूसरे पक्ष का कुछ भी विचार नहीं किया गया। यद्यपि ऊपर-ही-ऊपर देखनेवालों की दृष्टि से इस देश में बाहरी भिन्नता मालूम होती है, तथापि इस भिन्नता में ही सच्ची एकता छिपी हुई है और इसी का पता लगा लेना विचार तथा बुद्धि का काम है। किसी लेखक ने बहुत ठीक कहा है कि "There is unity in diversity" अर्थात् विभिन्नता में भी एकता रहती है। देखिए परमेश्वर, आत्मा, सृष्टि और शरीर के संबंध में प्रत्येक हिंदू के विचार एक ही से हैं। पुनर्जन्म और

पूर्वजन्म के सिद्धांतों पर सब लोगों का विश्वास है। प्रत्येक हिंदू की पूजा करने की विधि, मित्रों के प्रति आचरण, अतिथिसेवन, संध्यावंदन आदि में सदृशता है। प्रत्येक हिंदू का वैवाहिक, धार्मिक तथा अंतिम संस्कार प्राय: एक ही पद्धति से किया जाता है। उत्तरी हिंदुस्तान का हिंदू भी देवताओं में उसी प्रकार विश्वास रखता है, तीर्थस्थानों में जाने की उसकी उसी प्रकार उत्कट अभिलाषा होती है, त्योहारों को वह उसी तरह मनाता है, जैसे दक्षिणी हिंदुस्तान का हिंदू किया करता है।

प्रत्येक हिंदू के विचार, शब्द और कर्म में सांसारिक विषय-वासनाओं की ओर स्वाभाविक घृणा रहती है। सबके विचारों में आध्यात्मिकता का एक आवश्यक अंश पाया जाता है। सभी हिंदुओं के जीवन, रहन-सहन और रीति-रस्म में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से एकता और सदृशता का तत्त्व विद्यमान रहता है। इस प्रकार सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक बंधनों से सब हिंदू एकता के सूत्र में बँधे हुए हैं और उनके ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण की नौका एक ही है। ये बंधन औपचारिक तथा बाहरी नहीं हैं; इनका उद्‌गम हृदय से, मन से और आत्मा से है। बाहरी बंधनों पर हिंदू लोग विश्वास नहीं रखते और न उनकी परवा ही करते हैं। इसलिए हम जोर देकर कह सकते हैं कि प्रत्येक हिंदू, सभ्यता की तथा अन्य सब दृष्टियों से भी समान है और हिंदू एक जीवित राष्ट्र का नाम है। शरीर के एक भी अवयव के अस्वस्थ होने से जिस तरह सारे देह में पीड़ा होती है, उसी तरह हमारा हिंदू-राष्ट्र एक बृहत् शरीर है और भिन्न-भिन्न प्रांतों तथा स्थानों के निवासी उसके अवयव हैं। यह बात तो सिद्ध ही है कि शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों में कुछ-न-कुछ विशेषता या भिन्नता होती ही है; परंतु उन सबके मेल से ही हमारा शरीर बनता है। उसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रांतों के हिंदू हमारे हिंदू-राष्ट्र रूपी शरीर के अवयव हैं और उन सबसे मिलकर यह हिंदूराष्ट्र बना है। क्या आक्षेप करनेवाले कोई विद्वान् महाशय आंतरिक एकता-सूचक इन सब बातों को समझ लेने पर यह कहने का साहस कर सकते हैं कि हिंदुओं में एकता नहीं है अथवा वे 'राष्ट्र' संज्ञा के पात्र नहीं?

आक्षेप करनेवाले फिर भी कह सकते हैं कि यद्यपि हिंदुओं की एक-राष्ट्रीयता इस प्रकार सिद्ध हो गई तथापि मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि भिन्न-भिन्न जातियों तथा उनके विभिन्न धर्मों के रहते हुए भारत की एक-राष्ट्रीयता कैसे मानी जा सकती है? इसका समाधान करने में अधिक विस्तार न करके केवल यह कह देना काफी होगा कि विभिन्न धर्म-मतों और जाति-भेदों से किसी राष्ट्र की एकता में कोई बाधा नहीं आती। संसार के अन्य देशों के इतिहास से हमें इस विषय का निर्णय करने में बहुत सहायता मिल सकती है। जो बात हम इंग्लैंड में २०० वर्ष पहले देखते थे, ठीक वही बात आज हमारे देश में दिखाई पड़ती है। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि उस समय इंग्लैंड में ईसाई-धर्म के विभिन्न शाखावलंबियों में आपस में बड़ी शत्रुता, मतभेद और झगड़ा होता था। एक धर्ममत का माननेवाला दूसरे धर्ममतवाले को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता था। उच्च वर्ग या जाति के जमींदार और धनवान् लोग निकृष्ट वर्ग या जाति के गरीब आदमियों पर हर प्रकार का अत्याचार करते थे। ग्रीस और रोम के इतिहास में भी वहाँ के विभिन्न वर्गों या जातियों के निवासियों के विनाशक और विरोधपूर्ण झगड़ों के विषय में अनेक बातें मिलती हैं। फ्रांस में तो इन्हीं कारणों से विलक्षण क्रांति हुई और एक नूतन राष्ट्र संगठित किया गया। धर्म और जाति की अनेक विभिन्नताओं के होते हुए भी पश्चिमी देशों ने राष्ट्रीय एकता स्थापित की है। राष्ट्रीय एकता की भावना को जाग्रत्, उन्नत और सुदृढ करने के लिए कई देशभक्तों ने जीवनदान तक किया है। राष्ट्रीय ज्ञान तथा शिक्षा का उचित प्रसार और वृद्धि होने के कारण फल यह हुआ कि पाश्चात्य देशों के लोग राष्ट्रीय दृष्टि से आज दुनिया में सबसे अधिक सभ्य समझे जाने लगे हैं। यदि मनुष्य की शक्ति और स्वभाव में सभी जगह एकता है तो भारत-निवासी भी अपने पाश्चात्य बंधुओं के समान राष्ट्रीय उन्नति करने में समर्थ हो सकते हैं। हमारी उन्नति के लिए यह बात अत्यंत आवश्यक है कि अब जाति और धर्म की विभिन्नताओं पर आवश्यकता से अधिक जोर या महत्त्व न देकर, इस देश के निवासियों में केवल भारत की एक-राष्ट्रीयता का भाव ही सदैव जाग्रत् किया जाए।

हम यह जान गए हैं कि सब हिंदू एक ही तथा पूर्व-संगठित राष्ट्र के अवयव हैं। प्रत्येक हिंदू में आंतरिक एकता तथा सहानुभूति जाग्रत् है। जो कुछ बाहरी भेद दिखाई पड़ता है, उसे अपने राष्ट्रीय अनैक्य का प्रमाण न समझ लेना चाहिए। यदि हमारी श्रेष्ठ सभ्यता की रचना के आधारभूत सिद्धांतों में कुछ भयंकर दोष होता—यदि हमारी वर्णव्यवस्था और धर्म की बाहरी उपाधियों के कारण सचमुच ही हिंदू-राष्ट्र में अंतरंग और तीव्र अनैक्य होता—तो यह कदापि संभव न था कि अनेक शताब्दियों से दीन दशा में रहकर भी, इस समय हिंदू-राष्ट्र में सजीवता के चिह्न देख पड़ते। इस देश के अन्य धर्मों और जातियों के विषय में विचार करने पर मालूम होता है कि भारतवासियों के लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है कि दीनदयालु परमेश्वर ने उनपर ब्रिटिश जाति के समान स्वातंत्र्य-प्रिय और न्यायी राष्ट्र की सत्ता स्थापित कर दी है। अतएव एक ही साम्राज्य के व्यापक तथा अटल छत्र के नीचे रहते हुए यदि सब हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि परस्पर भातृ-भाव की वृद्धि करें, इस देश को अपनी जन्मभूमि समझकर इसको प्रत्यक्ष जननी के समान प्यार करें और इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय भाव से प्रेरित होकर एक साथ मिल-जुलकर प्रयत्न करें, तो हम समस्त संसार से पुकारकर कह सकते हैं कि यह प्राचीन भारत एक जीवित राष्ट्र है—इसकी राष्ट्रीयता में संसार की कोई भी विरोधिनी शक्ति बाधा नहीं डाल सकती। हमें पूर्ण आशा तथा विश्वास है कि स्वतंत्रता-प्रेमी ब्रिटिश जाति भारत की एक-राष्ट्रीयता को कार्यक्षम रीति से सफलतापूर्वक सिद्ध होने देने में सहायक होकर स्वयं अपना और सारे संसार का कल्याण करने का यश प्राप्त करेगी। *(सरस्वती, मार्च १९१८)*

सा अ

(सौजन्य : माधवराव सप्रे स्मृति समाचार-पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल)

भारत छोड़ो आंदोलन : स्वतंत्रता संघर्ष का एक स्वर्णिम अध्याय

● ज्ञान प्रकाश पिलानिया

प्रोफेसर बिपिन चंद्र के अनुसार 'भारत छोड़ो आंदोलन' (अगस्त-क्रांति) भारतीय जनता की वीरता और लड़ाकूपन की अद्वितीय मिसाल है। उसका दमन भी उतनी ही पाशविक और अभूतपूर्व था। मार्च-अप्रैल १९४२ में, ब्रिटिश सरकार के कैबिनेट मंत्री स्टैफोर्ड क्रिप्स के मिशन की विफलता से भारतीय जनता की निराशा और क्षोभ की सीमा न रही। क्रिप्स मिशन ने पूर्ण स्वाधीनता के स्थान पर 'डोमिनियन राज्य' का विकल्प सुझाया। इस लॉलीपोप को कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया। तब युद्ध में दक्षिण-पूर्व एशिया से ब्रिटेन पीछे हट रहा था, सिंगापुर और सान पर जापान का कब्जा हो गया था। कलकत्ता पर बम गिराए जाने लगे थे, मलाया और बर्मा को अंग्रेजों ने खाली कर दिया था। परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासन में जनसाधारण की आस्था डगमगाने लगी। अनाज की जमाखोरी से जनता भूखों मरने लगी। गांधीजी को लगने लगा कि संघर्ष अनिवार्य है और देर करना उचित नहीं। उनके प्रस्ताव, 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' पर कांग्रेस कार्यसमिति ने वर्धा में १४ जुलाई, १९४२ को संघर्ष के निर्णय को स्वीकृति दे दी। अगस्त में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में इस प्रस्ताव का अनुमोदन होना था। तिलक निर्वाण-दिवस (१ अगस्त) पर जवाहरलाल नेहरू ने घोषणा की, 'संघर्ष, निरंतर संघर्ष! मेरा यही उत्तर है एमरी-क्रिप्स को।'

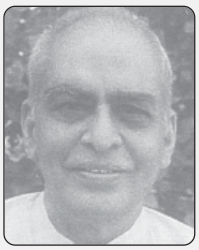

लोकप्रिय राजनेता एवं लेखक। संप्रति राज्य सभा के सदस्य।

एक ऐतिहासिक सभा ८ अगस्त, १९४२ को बंबई के ग्वालियर टैंक मैदान में हुई। महात्मा गांधी ने 'करो या मरो' का नारा देते हुए उद्‌बोधन दिया, 'एक मंत्र है, छोटा सा मंत्र है, जो मैं आपको देता हूँ। उसे आप अपने हृदय में अंकित कर सकते हैं और अपनी साँस-साँस द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। वह मंत्र है, करो या मरो, या तो हम भारत को आजाद कराएँगे या इस कोशिश में जान दे देंगे। अपनी गुलामी का स्थायित्व देखने के लिए हम जिंदा नहीं रहेंगे।' भाषण में सबसे पहले उन्होंने स्पष्ट किया कि 'असली संघर्ष इसी क्षण में शुरू नहीं हो रहा है। आपने सिर्फ अपना फैसला करने का संपूर्ण अधिकार मुझे सौंपा है। अब मैं वायसराय से मिलूँगा और उनसे कहूँगा कि वे कांग्रेस का प्रस्ताव स्वीकार कर लें। इसमें दो या तीन सप्ताह लग जाएँगे। इतना आप निश्चित जान लें कि मैं आजादी से कम किसी भी चीज से संतुष्ट होनेवाला नहीं।' सभा में उमड़ते जन-समुद्र पर गांधीजी के भाषण का बिजली जैसा असर हुआ। जनता का उत्साह हिलोरें लेने लगा, जय-जयकार होने लगी। भाषण में विभिन्न वर्गों को स्पष्ट निर्देश दिए गए थे। छात्र पढ़ाई छोड़ें। किसान कर न दें, मालगुजारी न दें। सैनिक अपने देशवासियों पर गोली चलाने से इनकार कर दें। राजा-महाराजा भारतीय जनता की प्रभुसत्ता स्वीकार करें। जमींदारी प्रथा खत्म हो। जन समुदाय भी गांधीजी की हरावल में हर कुरबानी करने को आतुर था।

इससे पहले कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव औपचारिक रूप से पारित करे, गिरफ्तारी और दमन के आदेश रातोरात जारी हो गए। वायसराय लिनलिथगो ने गांधीजी के भाषण को 'युद्ध घोषणा' माना। ९ अगस्त के सूर्योदय से पहले ही बापू सहित कांग्रेस के सभी बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर अज्ञात स्थानों पर भेज दिया गया। युद्ध की आड़ लेकर सरकार ने अपने को सख्त-से-सख्त कानूनों से लैस कर लिया था, जिनका इस आंदोलन के कुचलने के लिए बेरहमी से प्रयोग किया गया। सरकार के इस अनपेक्षित हमले से देश भर में तूफान-सा आ गया। लाखों लोग ग्वालियर टैंक में पुन: आयोजित सभा में उमड़ पड़े। अरुणा आसफ अली ने तिरंगा फहराया और जमींदोज हो गई। नेताओं की जगह जाबाँज उत्साही युवकों, मजदूरों, किसानों और विद्यार्थियों ने ले ली। जनता ने खुलेआम विद्रोह कर दिया। गाँवों में, शहरों में, कारखानों में, फैक्टरियों में, स्कूलों में, कॉलेजों में, समाज के हर तबके में, स्वयंस्फूर्त स्थानीय नेतृत्व उभर आया। प्रांतीय तथा स्थानीय स्तर के नेता, जो गिरपतार होने से बच गए थे, अपने-अपने इलाकों में जाकर, प्रतिरोधात्मक गतिविधियों का संचालन करने लगे। बाद में, आंदोलन की बागडोर, अच्युत पटवर्धन, अरुणा आसफ अली, राममनोहर लोहिया, सुचेता कृपलानी, छोटूभाई पुराणिक, बीजू पटनायक, आर.पी. गोयनका, जयप्रकाश नारायण जैसे नेताओं ने सँभाल ली। उषा मेहता और लोहिया बंबई शहर से 'कांग्रेस रेडियो' का गुप्त संचालन करते रहे। ९ अगस्त को बंबई में हड़ताल रही, पूना और अहमदाबाद में भी यही हुआ। सरकार से जनता का टकराव हुआ। १० अगस्त को दिल्ली, कानपुर, इलाहाबाद,

वाराणसी, पटना आदि शहरों में हड़ताल रही तथा बड़े-बड़े जुलूस निकले। सरकार ने प्रेस का गला घोंट दिया। बहुत से अखबार कुछ समय के लिए बंद रहे। 'नेशनल हेराल्ड' और 'हरिजन' पर ताला लग गया। परंतु सैकड़ों गैर-कानूनी पत्रिकाएँ भी देशभर में निकलती रहीं। अहमदाबाद के कारखाने ढाई-तीन महीने तक बंद रहे, बंबई में एक सप्ताह और जमशेदपुर में १३ दिन बंद रहा। मजदूरों ने आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

काशी विश्वविद्यालय के छात्रों ने गाँवों में अलख जगाई। उनके नारे थे—थाना जलाओ, स्टेशन फूँक दो, कचहरियों पर आक्रमण करो, पुल उड़ाओ, टेलीफोन-तार लाइनें काटो आदि। देहात में भी जैसे ही खबर पहुँचने लगी, तो वहाँ भी विद्रोह का सिलसिला चल पड़ा, आग फैलती गई। जगह-जगह विशाल भीड़ ने सरकारी सत्ता के प्रतीकों पर आक्रमण किया, रेल पटरियाँ उखाड़ दीं, सार्वजनिक भवनों पर तिरंगा फहराया, तहसीलों-जिला मुख्यालयों पर सत्याग्रहियों ने गिरफ्तारी दीं। स्कूलों-कॉलेजों में हड़ताल हो गई। छात्रों ने जुलूस निकाले, गैर-कानूनी परचे बाँटे। रेलगाड़ियों पर राष्ट्रीय ध्वज भी फहराया गया। बिहार और यू.पी. में तो विद्रोह जैसा माहौल बन गया। देश के कुछ हिस्सों में समानांतर सरकारों की भी स्थापना हुई। पहली ऐसी सरकार बलिया में चित्त पांडे के नेतृत्व में बनी, जिसका पूर्ण प्रभुत्व एक सप्ताह तक चला। बंगाल के मिदनापुर जिले के तामलुक में १७ दिसंबर, १९४२ को 'जातीय सरकार' का गठन हुआ, जिसका अस्तित्व सितंबर १९४४ तक रहा। महाराष्ट्र के सतारा में 'प्रति सरकार', जिसके प्रमुख नेता वाई.बी. चह्वाण थे, १९४५ तक कायम रही। सरकारी आकड़ों के अनुसार ९ से १६ अगस्त तक २५० रेलवे स्टेशन, ५०० डाकघर, १५० थानों पर हमले कर क्षति पहुँचाई गई। टेलीफोन तारों के कटने की हजारों घटनाएँ हुईं। जनता का यह खुला विद्रोह था।

'करो या मरो'—सड़कों पर उतरा जन-सैलाब

९ अगस्त, १९४२ गांधीजी के 'करो या मरो' के ऐतिहासिक नारे के दिन देशभर में चेतना का जो प्रवाह बना, वैसा कभी देखने में नहीं आया। देश के हर कोने में बाल, युवा व वृद्ध कर गुजरने और मरने की तैयारी लेकर उठ खड़े हुए। हर कोई नेता बनकर स्वयं सवाल कर रहा था और उत्तर भी स्वयं खोज रहा था। पहला अवसर था, जब आंदोलन की अगुवाई के लिए किसी नेता या बड़े आदमी की जरूरत नहीं थी। लाठी-गोली खाने और स्वयं को मिटा देने का संकल्प लेकर लाखों लोग सड़कों पर आ गए। एक साथ, एक ही समय में 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का नारा गूँज उठा। हिमाचल से कन्याकुमारी तक तिरंगा झंडा आन-बान और शान बन गया। 'वंदे मातरम्' अभिवादन हो गया। ९ अगस्त, १९४२ को पहली बार देश में समलक्ष्य बना। सारे देश में आजादी की तड़प इतनी तीव्र बन गई कि सभी एक साथ खड़े हो गए। छोटे बच्चों के स्कूलों का बहिष्कार करना, 'इनकलाब जिंदाबाद, वंदे मातरम्' के साथ गांधीजी की जय, अंग्रेज भारत छोड़ो के नारे लगाते हुए सड़कों पर आ जाना, लाठी और गोली के लिए तैयार रहना, बहुत बड़ी घटना थी।'

अंग्रेजी सरकार द्वारा जनता पर जुल्म का कहर ढहाया गया, हवाईजहाज से मशीनगनें भी चलाई गईं, कोड़ों से पीटा गया, गाँवों में आग लगाई गई, सामूहिक जुरमाना (कुल ९० लाख रुपए) वसूल किया गया। १९४२ के अंत तक ६० हजार लोगों को गिरफ्तार किया गया, २६ हजार लोगों को सजा दी गई और १८ हजार नागरिकों को भारत रक्षा नियमों के तहत बंद रखा गया। फायरिंग में कितने मरे, इसकी गिनती नहीं की। सरकारी दमन और जुल्म से आहत होकर १० फरवरी, १९४३ को पूना के आगा खाँ पैलेस में नजरबंद गांधीजी ने २१ दिन का उपवास शुरू कर दिया। उपवास की खबर जंगल में आग की तरह फैल गई। देशभर में हड़तालों, प्रदर्शनों, जुलूसों और जनसभाओं का ताँता लग गया। सामूहिक उपवास हुए। लेकिन ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने एक शर्मनाक बयान दिया, 'हम एक कमबख्त बुड्ढे के सामने कैसे झुक सकते हैं, जो हमेशा हमारा दुश्मन रहा है।' वायसराय लार्ड वैवल ने भी वही लज्जाजनक राग अलापा और महात्मा की मौत का इंतजार करते हुए कहा, 'गांधी के न रहने पर, जो वर्षों से समझौता न होने देने के लिए हर कोशिश करता रहा है, समझौते की संभावना काफी बढ़ जाएगी।' एक ओर तो पूरा देश गांधीजी की जान बचाने के लिए प्रार्थना कर रहा था और दूसरी ओर सरकार अंतरिम सरकार की तैयारी में जोर-शोर से मशगूल थी। सरकारी कार्यालयों में आधे दिन की छुट्टी घोषित करने की भी योजना बन गई थी। परंतु सरकार की बद-मुराद पूरी नहीं हुई। गांधीजी ने हमेशा की तरह अदम्य संजीवनी शक्ति का परिचय देते हुए सरकार को मात दे दी और मरने से इनकार कर सरकारी इरादों पर पानी फेर दिया। गांधीजी के उपवास का उद्देश्य पूरा हुआ, जनसाधारण में अनोखे आत्मबल का संचार हुआ। सारी दुनिया के सामने सरकारी दमन का पर्दा फाश हुआ और विदेशी सरकार के मुँह पर कालिख पुत गई। आखिर, सरकार को झक मारकर बीमारी के आधार पर गांधीजी को ६ मई, १९४४ को रिहा करना पड़ा।

१९४२ के 'भारत छोड़ो' ऐतिहासिक आंदोलन की सबसे बड़ी

खूबी यह रही कि इसके द्वारा आजादी की माँग राष्ट्रीय आंदोलन की पहली माँग बन गई। अब पीछे कदम नहीं हटाया जा सकता था। इस आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष था, देश की आजादी की जंग में आम जनता की हिस्सेदारी तथा समर्थन। देश भर के युवा एवं किसान, इस आंदोलन की जान थे। वास्तव: में कांग्रेस के शीर्ष नेतृत्व को, आंदोलन की स्पष्ट रूपरेखा तय करने या आंदोलन की अगुवाई करने का अवसर ही नहीं मिला। इसी आशंका से ८ अगस्त, १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस द्वारा पारित प्रस्ताव में स्पष्ट कहा गया था, 'एक ऐसा समय आ सकता है, जब निर्देश जारी करना संभव न हो सके या निर्देश लोगों तक पहुँच ही न सकें या कोई कांग्रेस समिति कार्य न कर सके। अगर ऐसा होता है, तो प्रत्येक पुरुष और स्त्री को, जो इस आंदोलन में भाग ले रहा है···अपने काम का खुद ही फैसला करना होगा। हर भारतीय को, जो आजादी चाहता है और उसके लिए प्रयत्नशील है, अपना मार्गदर्शक खुद बनना होगा।' जनता समय की माँग पर खरी उतरी और औपचारिक नेतृत्वविहीन आंदोलन को स्वत:स्फूर्तता के बल पर चलाती रही। इसी दौरान २१ अक्तूबर, १९४३ को सिंगापुर में, सुभाषचंद्र बोस ने अस्थायी आजाद हिंद सरकार की स्थापना की। १८ फरवरी, १९४४ को बंबई में नौ-सेना ने विद्रोह कर दिया। परिणामत: जनता भयमुक्त हो गई। अंग्रेजी शासन की नींव हिल गई। अगस्त क्रांति का धरती में सुप्त बीज १५ अगस्त, १९४७ को देश की आजादी के स्वर्णिम प्रभात में पल्लवित हुआ। अंग्रेजों को आखिर भारत छोड़ना पड़ा।

सी-४०३, स्वर्ण जयंती सदन, डॉ. बी.डी. मार्ग
नई दिल्ली-११०००१
दूरभाष : ०९८६८१८११६६

धर्मपाल

● **श्रीकृष्ण 'सरल'**

यशपाल तो क्रांतिकारी आंदोलन में कूद ही पड़े थे। उन्होंने अपने छोटे भाई धर्मपाल को अपनी माँ की देखरेख के लिए घर छोड़ दिया था। वैसे तो उनकी माताजी अध्यापिका थीं और वे स्वयं अपना तथा दोनों बच्चों का खर्च भी चला रही थीं; लेकिन जब से यशपाल ने क्रांति के क्षेत्र में कदम रखा था, उनकी माताजी की नौकरी डाँवाँडोल होने लगी थी। उन्हें बार-बार पाठशालाएँ बदलनी पड़ी थीं। इन्हीं स्थितियों को देखते हुए यशपाल ने धर्मपाल को प्रेरणा दी थी कि वह कोई काम सीख ले और गृहस्थी के संचालन में माताजी का सहायक बने। बिजली का काम सिखानेवाले एक विद्यालय में धर्मपाल ने बिजली का काम सीख लिया था और वह अपनी रोजी-रोटी अच्छी तरह चलाने लगा था।

उन दिनों क्रांति से बचकर रहना बड़ा मुश्किल था। वे लोग, जिनके दिलों में थोड़ी-बहुत भी देशभक्ति थी, भारत माता की अनसुनी नहीं कर पाते थे। कहीं-कहीं तो परिवार के सभी सदस्य भारत की मुक्ति के आंदोलन में कूद पड़े थे। चाफेकर बंधु नाम से तीन सगे भाई फाँसी पर चढ़ चुके थे। चारों सान्याल बंधु भी क्रांति में गले-गले डूबे हुए थे। फिर भला धर्मपाल अपने भाई यशपाल के चरणचिह्नों पर क्यों न चलते!

इधर यशपाल घर से फरार हुए, उधर धर्मपाल क्रांति के अखाड़े में कूद पड़े। उस समय पंजाब में क्रांतिकारियों का एक ही संगठन था, जिसका नाम 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' था। भगतसिंह, यशपाल और चंद्रशेखर आजाद आदि क्रांतिकारी इसी संगठन के सदस्य थे। लाहौर के इंद्रपाल ने पहले इसी संगठन में काम किया था; लेकिन महत्त्वपूर्ण भूमिका न मिलने के कारण लाहौर में उसने अपना अलग क्रांतिकारी संगठन खड़ा कर लिया था और उसका नाम रखा था 'आतिशी चक्कर'। कई नवयुवक इस 'आतिशी चक्कर' के सदस्य बन गए थे। इन लोगों ने अपने ढंग से कुछ बम भी तैयार कर लिये थे और पंजाब के छह स्थानों पर एक ही तारीख को एक ही समय बम विस्फोट किए थे; जिनमें कुछ पुलिसवाले मारे गए थे। उस घटना के पश्चात् इन लोगों की धर-पकड़ प्रारंभ हो गई। उसी क्रम में धर्मपाल भी गिरफ्तार कर लिये गए। जैसाकि पुलिसवालों का नियम होता है, गिरफ्तार व्यक्ति से उसके साथियों के नाम और उनके विभिन्न अड्डों की जानकारी भी ली जाती है, धर्मपाल को भी उस प्रक्रिया से गुजरना पड़ा।

पुलिस ने धर्मपाल को कई प्रकार की यातनाएँ दीं; पर वह उससे कुछ भी भेद पाने में असमर्थ रही। पुलिस ने उसे यातना देने का और कड़ा उपाय अपनाया। एक व्यक्ति के फैले हुए हाथों का जितना फासला होता है, उतने फासले पर जेल की दीवार में लोहे के दो कड़े लगा दिए गए और उन कड़ों में धर्मपाल के दोनों हाथ फँसा दिए गए; अर्थात् वह खड़ा तो रह सकता था, पर बैठ नहीं सकता था; क्योंकि ऊपर लोहे के कड़ों में हाथ फँसे हुए थे। उसे इस स्थिति में छह दिन रखा गया। केवल शौच जाने के और खाना खाने के समय उसके हाथ खोले जाते थे। जरूरत पूरी होने पर उसे फिर उसी प्रकार टाँग दिया जाता था। धर्मपाल इस दंड से भी विचलित नहीं हुआ और उसने अपने संगठन के विषय में कुछ भी नहीं बताया। छह दिन के पश्चात् उसने भूख हड़ताल का सहारा लिया और तब कहीं उसे दीवार से उतारा गया। इन यातनाओं के पश्चात् उसे मुकदमे के दौर से गुजरना पड़ा। जेल की लंबी सजा ने उसके हौसले पस्त नहीं किए और अपने क्रांतिकारी जीवन में उसने कोई धब्बा नहीं लगने दिया।

वंदे मातरम्

● **बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय**

स्वतंत्रता का यह महामंत्र कार्तिक सुदी नवमी शक संवत् १७१७ (७ नवंबर, १८७५) के दिन बंकिमचंद्रजी की कलम से अवतीर्ण हुआ। १९०५ के बंगभंग विरोधी आंदोलन में यह रण-गर्जना बन गया, स्वतंत्रता का प्रतीक हो गया। अंग्रेजों के हृदय में 'वंदे मातरम्' का डर समा गया। इस मंत्र की यही विशेषता है कि बच्चों से बूढ़ों तक, महिलाओं से निःशस्त्र सत्याग्रहियों और सशस्त्र संग्राम खड़ा करनेवाले क्रांतिकारियों तक, सभी के लिए इसने विदेशी सत्ता के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा दी। दुनिया के विविध देशों में भी स्वतंत्रता के संग्राम हुए हैं। उनके स्वतंत्रता-इतिहास में 'वंदे मातरम्' जैसा उदाहरण कहीं नहीं मिलता है। इन दो शब्दों ने एक जादुई मंत्र की भाँति समूचे देश में जो क्रांति कर दी, वह अभूतपूर्व तथा अपवाद ही है।

मूल पाठ

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्।
शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्॥ १॥

कोटि-कोटि कंठ कलकल-निनाद-कराले
कोटि-कोटि भुजैर्धृत खरकरवाले
अबला केन मा एतोबले।
बहुबलधरिणीं नमामि तारिणीम्
रिपुदलवारिणीं मातरम्॥ २॥

तुमि विद्या तुमि धर्म्म
तुमि हृदि तुमि मर्म्म
त्वं हि प्राणाः शरीरे
बाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि माँ भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गड़ि मंदिर-मंदिरे मातरम्॥ ३॥

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरधारिणीं
कमला कमलदल विहारिणीं
वाणी विद्यादायिनीं, नमामि त्वाम्
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्
सुजलां सुफलां मातरम्
वंदे मातरम्॥ ४॥

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्
धरणीं भरणीं मातरम्।
वंदे मातरम्॥ ५॥

भावानुवाद

हे माता! तुम्हें प्रणाम है।

महाद्वीप जैसा यह हमारा विशाल देश प्रचुर मात्रा में सृष्टि-सौंदर्य और विविधता से संपन्न है। गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी जैसी सदानीरा महानदियों का जल पवित्र है। ऐसे पावन जल से सिंचित यहाँ की धरती फलों, फूलों और धन-धान्य से समृद्ध हो गई है। इस लहलहाती फसल के कारण तुम हमें श्यामल वर्ण की प्रतीत हो रही हो। मलयगिरि से निकली हुई वायु वहाँ के चंदन वृक्षों की शीतल सुगंध अपने साथ ला रही है। यहाँ के चंदन जैसे वृक्ष भी खुद घिसकर दूसरों को प्रफुल्लित करने का तत्त्वज्ञान कहते हैं।

स्वच्छ-धवल तारों के प्रकाश के कारण यहाँ का समूचा आकाश तेजोमय हो जाता है। ऐसे तेज से यहाँ की रातें पुलकित हो जाती हैं। इन तारों से बादल रहित स्वच्छ आसमान जिस तरह सुशोभित होता है, उसी तरह दिन में यहाँ की जमीन पर पसरी हुई हरियाली के कारण भी तुम्हारी धरती सुंदरता प्राप्त करती है। ऐसे तुम सौंदर्यशालिनी माता, अपनी संतानों का लालन-पालन करने के लिए कष्ट उठाती हो; फिर भी अपने मुख पर मुसकराहट, प्रसन्नता और शांति का भाव धारण करके अपने कष्टों का आभास तुम हम संतानों को नहीं होने देतीं। हमारे उत्कर्ष के लिए अपनी मिठास भरी वाणी से प्रोत्साहित करती रहती हो। इसलिए हे माते! मैं तुम्हें वंदन करता हूँ। ऐसी हमारी इस माता पर हम संतानों को भी गर्व है।

हमारे करोड़ों कंठों से तुम्हारी ही जय-जयकार होती है। हमारे करोड़ों हाथों में चमकनेवाले शस्त्रों से सबको तुम्हारे सामर्थ्य की प्रतीति होती है। फिर तुम्हारे इन संगठित और सामर्थ्यवान पुत्रों के होते हुए तुम्हारे जैसी बल-संपन्न माता की तरफ टेढ़ी नजर से देखने की किसी की हिम्मत ही नहीं होगी। फिर तुम्हें अबला कहने की धृष्टता कौन करेगा? तुम तो बहुबलधारिणी हो। यहाँ आक्रमण करने की बात सोचनेवाले दुश्मन का खात्मा करके सबको तारनेवाली ऐसी तेजस्विनी तुम हो। इसलिए हे माते! हम तुम्हें प्रणाम करते हैं।

हे भूमाते! तुम ज्ञानमयी हो, ज्ञानदायिनी हो, तुम तो विविध ज्ञान-शाखाओं की जननी हो, तुम धर्मस्वरूप हो। तुम्हारी रक्षा करना ही हमारा धर्म है; क्योंकि तुम हमारे अंत:करण का ही एक हिस्सा हो। हे माते! हमारी भुजाओं की शक्ति तुम ही हो। हमारे हृदय में स्थित जो भक्ति है, वह तुम ही हो। तुम्हारी भक्ति करना ही हमारे

जीवन का निष्कर्ष है। हमें सब तरफ तुम्हारी ही प्रमिमाएं दिखती हैं। मंदिर-मंदिर में तुम्हारे ही रूप का दर्शन हमें होता है। इसलिए हे माते! हम तुम्हें प्रणाम करते हैं।

हे जगन्माते! तुम इस हाथों में दस शस्त्र धारण करके शत्रु का नाश करनेवाली भीषणस्वरूपा दुर्गा-काली हो और कमल-पुष्पों में विराजमान कमला भी तुम हो। विद्यादायिनी सरस्वती भी तुम ही हो। हे ऐश्वर्यदायिनी माँ! तुम्हारी और किसी के साथ तुलना हो ही नहीं सकती। तुम पवित्र जल से युक्त और फलों से समृद्ध हो। यहाँ की लहलहाती फसल के कारण तुम्हारा रूप श्यामल वर्ण का प्रतीत होता है। सरल चारित्र्य का आदर्श जिसे कहना चाहिए, ऐसी प्रसन्नवदना तुम ही हमें धारण करती हो। तुम ही हमारा लालन-पालन करती हो। हे माते! तुम्हें प्रणाम है।

वे उदारहृदय अंग्रेज, भारत जिनका घर बन गया

● प्रकाश मनु

भारतीय स्वाधीनता संग्राम कई तरह से अनोखा है। एक ऐतिहासिक प्रयोग, जो शायद अपनी मिसाल खुद है। इसलिए दुनिया के बहुत सारे चिंतकों को वह एक अबूझ, रहस्यपूर्ण पहेली सा लगा था। शायद आज भी लगता है। संसार उसे समझने की कोशिश करता है, पर अवाक् ही रह जाता है। दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल, साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल··· ! गीत की पंक्तियाँ ऊपर से देखने पर भले ही एक पहेली सरीखी लगें, पर जब हम इसे महात्मा कहे जानेवाले राजनीति के एक करिश्माई व्यक्तित्व की लड़ाई के तौर-तरीकों से जोड़कर देखते हैं, अहिंसा को लेकर किए गए दुनिया के अब तक के सबसे बड़े और अद्‌भुत प्रयोग के रूप में देखते हैं, तो चीजें कुछ साफ होने लगती हैं। साथ ही इस विलक्षण स्वाधीनता संग्राम के पीछे शक्ति-स्रोत के रूप में भारतीय जनता की जिस असाधारण दृढता और आत्मशक्ति का पता चलता है, उससे समझ में आता है कि आज भी कोरी किताबों से इस महान् ऐतिहासिक प्रयोग को समझनेवालों की मुश्किल क्या है।

ठीक इसी तरह कोरी राजनीति की भाषा से सीधे-सरल, एक पसली के, लेकिन विराट् महात्मा गांधी की असाधारण आत्मिक शक्ति को समझ पाना भी सरल नहीं है। उन्होंने जिस अहिंसा को अपनी शक्ति, अपनी ढाल बनाया, उसे लेकर प्रयोग बुद्ध और महावीर की इस धरती पर हजारों बरस पहले प्रारंभ हो गए थे। प्राचीन चिंतन की ये गूँजें इस देश की हवाओं में आज भी घुली-मिली सी हैं कि शस्त्र और ताकत से नहीं, प्रेम से दिलों को जीत लेने से जो विजय हासिल होती है, असल में वही स्थायी विजय है। कलिंग में रक्त की नदियाँ बहाने के बाद अशोक को भी यही समझ में आया था, और इससे केवल अशोक का ही हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ, इस महादेश में और भी बहुत कुछ बदल गया था। किसी अच्छे, बड़े और शक्तिशाली राज्य का उद्‌देश्य अपनी सीमाओं को लहू से सींचना नहीं, प्रजा की बेहतरी और कल्याण है। लोकतंत्र का यह सत्य इसी देश की मिट्‌टी से निकला और अब सारी दुनिया में फैल चुका है।

चलिए, फिर थोड़ी सी गांधीजी की बात करें, जिन्होंने शस्त्र और ताकत की बजाय भारत की विशाल जनता के आत्मबल पर भरोसा किया और उसे जगाने का काम किया। उन्होंने भारत की आजादी की लड़ाई को भारत के प्रेम और अहिंसा के महान् आदर्शों के जरिए हासिल करने का लक्ष्य सामने रखा। अब तक प्रेम और अहिंसा की बात तो सब करते थे, पर सोचते थे कि ये बस कहने की बातें हैं, इनका व्यवहार से कोई संबंध नहीं है। या फिर ये अधिक-से-अधिक निजी आदर्श हो सकते हैं, इनका किसी बड़ी राजनीतिक लड़ाई में कोई मतलब नहीं। यानी ये असंभव आदर्श हैं। कहो, पर सिर्फ कहो। करनी से इनका कोई वास्ता नहीं। गांधीजी ने तय किया, वे इसी असंभव को संभव करेंगे और प्रेम तथा अहिंसा के जरिए आजादी लेकर दिखा देंगे। और सचमुच, भारतीय जनता का सत्याग्रह और दृढ प्रतिरोध देखते-ही-देखते दुनिया का सबसे बड़ा और विलक्षण शस्त्र बन गया, जिसने इतनी बड़ी आततायी फिरंगी सरकार को हिला दिया।

फिर इस लड़ाई के तौर-तरीकों पर भी जरा विचार करें। गांधीजी ने चरखा और खादी को लेकर जब पूरी बुलंदी से आवाज उठाई और उसे स्वराज ही नहीं, देश की आजादी की लड़ाई के साथ जोड़कर देखा तो उनके बहुत से शिष्यों और अनुयायियों को भी परेशानी हुई। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि चरखे का आजादी से क्या मतलब है, खादी का आजादी से क्या मतलब है ? यहाँ तक कि गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर भी अचकचाए और उन्होंने अपनी असहमति जाहिर की। बहुत से अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों ने हँसी-ठट्‌ठा किया, देखो तो गांधी को, यह चरखे से आजादी लेने चला है ! पर जो बात पढ़े-लिखे लोगों को अजूबा लगी, गाँव के सीधे-सादे अनपढ़ लोगों को नहीं। देखते-ही-देखते चरखा घर-घर पहुँच गया। खादी गाँव-गाँव पहुँच गई। गाँव के निर्धन किसान, मजदूर हों या पढ़े-लिखे लोग, सबके तन पर खादी विराज गई। यह कोई साधारण सफलता नहीं थी, क्योंकि इसके प्रतीकार्थ गहरे थे। अपनी शक्ति से भीषण दमन-चक्र चलानेवाले अंग्रेजों ने जब देखा कि अरे,

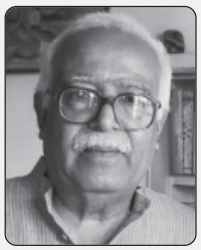

वरिष्ठ कवि-कथाकार। 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद' उपन्यास चर्चित हुए। 'एक और प्रार्थना', 'छूटता हुआ घर' कविता-संग्रह तथा 'अंकल को विश नहीं करोगे', 'अरुंधती उदास है' समेत ग्यारह कहानी-संग्रह। शिखर साहित्यकारों से मुलाकात, संस्मरणों और आलोचना की कई पुस्तकें। साहित्य अकादमी के पहले बाल-साहित्य पुरस्कार, उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'बाल-साहित्य भारती' पुरस्कार तथा हिंदी अकादमी के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित।

गांधी की फौज तो गाँव-गाँव, गली-गली पहुँच गई है, ऐसी जगहों पर भी, जहाँ पुलिस या अंग्रेजी फौज का पहुँचना तक संभव नहीं, तो वे घबराए। उन्हें हर खादीधारी गांधी का सिपाही लगता था, हर घर में चरखे की घूँ-घूँ आजादी···आजादी की गूँज उठाती महसूस होती थी। गांधीजी के एकदम देशी तरीकों से आजादी की चिनगारी घर-घर पहुँच गई थी, और एक छोटा सा इशारा होते ही वह विप्लव में बदल सकती थी। यह क्या किसी करिश्मे से कम था?

यह करिश्मा अहिंसा का तो था ही, पर साथ ही इस देश की विराट् जनता के आत्मबल का भी था, जिसे गांधीजी ने पहली बार जगाया। और नतीजा सामने था। अंग्रेजी सत्ता ने कुछ भय, कुछ विस्मय के साथ अहिंसा की इस ताकत को महसूस किया, जिसने उसके हाथ-पैरों को मानो बाँध दिया था। माना कि बंदूक की गोली में ताकत होती है, पर अगर हजारों निहत्थे सत्याग्रही सीना खोलकर सामने आ जाएँ, तो बंदूक की ताकत को भी झुकना पड़ता है। इसीलिए नमक आंदोलन में, सविनय अवज्ञा आंदोलन में और सबसे बढ़कर १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन में भारतीय जनता का जो विराट् प्रतिकार अंग्रेजी सत्ता को झेलना पड़ा, और शांतिपूर्ण अहिंसा की जिस नैतिक ताकत को उन्होंने महसूस किया, उसकी कोई काट उनके पास नहीं थी। इसी से भारतीय जनता में निर्भीकता का गुण आया और सामने दर्जनों सिपाही बंदूकें लेकर खड़े हों तो भी निहत्थे वंदेमातरम् और भारत माता की जय कहते हुए उनसे टकराने का साहस भी।

बचपन की 'वुड'—एनी बेसेंट

अलबत्ता भारतीय स्वाधीनता संग्राम कई मायनों में अनूठा और अप्रतिम था, जिसकी तमाम व्याख्याएँ हुई हैं, आगे भी होंगी, पर अब तक तो शायद कोई पूर्ण नहीं है। यह शायद कोटि-कोटि जनता के भीतर छिपे विराट् आत्मबल को कुछ घिसे हुए शब्दों और किताबों के सहारे समझना है, जो अकसर संभव नहीं होता।

इसी तरह भारत की आजादी की लड़ाई की बहुतेरी गुत्थियाँ और भी थीं, जिन्हें ऊपर-ऊपर देखने पर शायद कुछ खास न लगे, पर जब हम उसकी पूरी अर्थवत्ता को थाहने की कोशिश करते हैं तो बड़ी हैरानी होती है कि अच्छा, ऐसा हुआ था, या कि ऐसा भी संभव है? जिस देश की अन्यायी सरकार हमारे देश में भीषण दमनचक्र चला रही थी, उसी देश के अनेक संवेदनशील और उदार लोगों द्वारा एक नैतिक आवेश के साथ भारतीयों के दुःख-सुख से एकाकार होकर उसके लिए आवाज उठाना और अपने ही देश की सरकार के उत्पीड़न का पूरी ताकत के साथ विरोध करना भी एक ऐसा ही करिश्मा है, जिसे ठीक-ठीक समझना अभी बाकी है। शायद इसीलिए अंग्रेज मूल के ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं, जिन्होंने अपना पूरा जीवन भारतीय संस्कृति को समझने के साथ-साथ यहाँ की दीन-दुःखी जनता की सेवा के लिए अर्पित कर दिया।

अगर ऐसे कुछ नामों पर विचार करें तो एनी बेसेंट, दीनबंधु एंड्रूज, भगिनी निवेदिता, सेवियर दंपती, नेल्ली सेनगुप्ता, मीरा बहन, कजिंस दंपती समेत बहुत से नाम सामने आते हैं, और बाद में तो ऐसे लोगों की झड़ी ही लग गई, जो भारत की जनता को उसकी पूरी तकलीफों के साथ समझने और उससे एकाकार होने की कोशिश कर रहे थे। यहाँ तक कि भारत ही उन्हें अपना घर लगने लगा था, जिसके दुःख-सुख से वे विकल होते थे और भारतीय स्वाधीनता सेनानियों के साथ आवाज उठाकर अपना विरोध दर्ज करते थे।

□

जिन बड़ी शख्सियतों ने भारत और यहाँ की संस्कृति से प्रभावित होकर भारत को अपना कर्मक्षेत्र बनाया और भारत के पुनर्जागरण तथा स्वाधीनता संग्राम में बढ़-चढ़कर भाग लिया, उनमें एनी बेसेंट का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वे भारत में आकर भारत की ही पुत्री बन गईं और भारतीय जनता के दुःख-दर्द से इस कदर एकाकार हो गईं कि न सिर्फ महात्मा गांधी उनसे बड़ा स्नेह करते थे, बल्कि भारत की जनता ने भी उन्हें सिर-आँखों पर बैठाया। यहाँ तक कि अंग्रेजी शासन को उन्हें गिरफ्तार भी करना पड़ा। तो भी एनी बेसेंट ने मानवता और सच्चाई के लिए संघर्ष की अपनी राह को नहीं छोड़ा।

एनी बेसेंट का जीवन भी एक सीधी लकीर में चलनेवाला न था। १ अक्तूबर, १८४७ को लंदन में जनमी एनी बेसेंट शुरू से ही स्वाधीन प्रकृति की थीं। हर चीज के बारे में अपने ढंग से विचार करके काम करना उन्हें अच्छा लगता था। बचपन में उनका नाम 'वुड' था। बड़े होने पर सन् १८६७ में पादरी फ्रेंक बेसेंट से उनका विवाह हुआ। पति धार्मिक मामलों में कट्टर थे। एनी बेसेंट को यह बात अच्छी न लगती थी। अपनी बेटी की घोर बीमारी के कारण तो उनके हृदय में ऐसी उथल-पुथल मची कि वे नास्तिक बन गईं। उधर पति अत्यंत कट्टर धार्मिक विचारों के थे। लिहाजा कुछ वर्ष बाद वे पति से अलग रहने लगीं।

अब एनी बेसेंट ने लिखने का क्षेत्र अपनाया। वे विद्रोही स्वभाव की तो थी हीं। रूढ़ियों और अंधविश्वासों का विरोध करनेवाले उनके लेखों ने पूरे समाज में हलचल मचा दी। बहुत से लोग उनके विरोधी हो गए, पर एनी बेसेंट पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे निर्भीकता से अपने विचारों को प्रकट करतीं। यहाँ तक कि वहाँ रहते हुए उन्होंने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का समर्थन किया। एनी बेसेंट शायद जीवन भर नास्तिक ही बनी रहतीं, अगर थियोसोफिकल सोसाइटी की संस्थापक मैडम ब्लैवेत्सकी से उनकी मुलाकात न होती। मैडम ब्लैवेत्सकी के कारण उनके विचार बदले और उन्हें कर्मकांड से अलग सच्ची आस्तिकता की राह मिली। सन् १८९३ में एनी बेसेंट थियोसोफिकल सोसाइटी का प्रचार करने के लिए भारत आईं तो इस महान् देश की जनता और उसकी प्राचीन संस्कृति ने उन्हें इतना अधिक प्रभावित किया कि वे हृदय से भारत से प्रेम करने लगीं। धीरे-धीरे भारत ही उनका प्रिय कर्मक्षेत्र बन गया। भारत के प्राचीन

गौरव को जगाने के काम में वे जुट गईं। उनका कहना था कि प्राचीन धर्म और संस्कृति के जरिए ही भारत अपनी पुरानी शान और खोए हुए गौरव को फिर से हासिल कर सकता है।

धीरे-धीरे एनी बेसेंट भारत के स्वाधीनता संग्राम से भी जुड़ीं। भारतीय जनता पर अंग्रेजी शासकों द्वारा किए जा रहे अत्याचारों को देख उनका हृदय रोता था। उन्होंने प्राणपण से उसका विरोध करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने 'कॉमनवील' तथा 'न्यू इंडिया' नाम से पत्र निकाले, जिनमें उनके विद्रोही और क्रांतिकारी विचारों से भरे लेख छपते तो सारी जनता और नेताओं का ध्यान उधर जाता। यहाँ तक कि अंग्रेजी सत्ता भी चौकन्नी होकर एनी बेसेंट की गतिविधियों पर नजर गड़ाए हुए थी।

एनी बेसेंट का कहना था कि भारत को स्वतंत्रता की कोई भीख नहीं माँगनी चाहिए, बल्कि स्वतंत्रता पर तो भारत और यहाँ की जनता का स्वाभाविक अधिकार है। यहाँ तक कि उन्होंने लोकमान्य तिलक की तरह ही स्वराज्य और होमरूल यानी स्वयं अपना शासन करने की नीति को भरपूर समर्थन दिया। उनके इस प्रभावशाली व्यक्तित्व और तेजस्विता के कारण वे कांग्रेस की अध्यक्ष चुनी गईं और पूरे देश में घूम-घूमकर उन्होंने स्वाधीनता का अलख जगाया। घबराकर अंग्रेज सरकार ने १५ जून, १९१७ को उन्हें गिरफ्तार कर लिया, जिससे पूरे देश में क्रोध और उत्तेजना की लहर फैल गई।

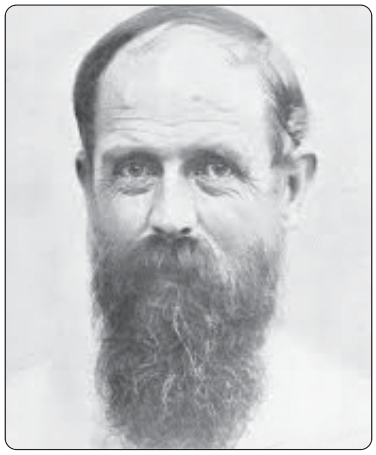

दीनबंधु सी.एफ. एंड्रूज

सीधी-सरल लेकिन बेलाग बात कहने वाली एनी बेसेंट ने अपना पूरा जीवन भारतीय जनता के उत्कर्ष और मानवता की सेवा में लगा दिया। इस कारण भारतीय जनता का भी बहुत प्रेम उन्हें मिला। एनी बेसेंट जैसे विदेशी नाम को पुकारना गाँव-देहात की निरक्षर जनता के लिए आसान नहीं था। पर प्रेम शब्दों का मुहताज तो नहीं। वह तो सीधे-सादे और अटपटे शब्दों में ही दिलों से दिलों तक पहुँच जाता है। इसीलिए भारतीय जनता से अथाह प्रेम करनेवाली एनी बेसेंट हजारों-हजार भारतीयों के लिए 'बीबी वासंती' बन गईं। और लाखों भारतीयों के हृदय की धड़कन बन चुकी एनी बेसेंट भी इससे खुश होती थीं।

इसी तरह भारत के स्वाधीनता संग्राम का पुरजोर समर्थन करने वाले एक और उदारहृदय अंग्रेज सी.एफ. एंड्रूज का हृदय भी भारत की जनता के सुख-दु:ख से सराबोर था और भारत उन्हें अपना घर लगने लगा था। उन्होंने दीन-दु:खी भारतीयों की सेवा के लिए अपना पूरा जीवन अर्पित कर दिया। इसलिए महात्मा गांधी ने उन्हें 'दीनबंधु' की उपाधि ने नवाजा था। आज हम उन्हें 'दीनबंधु एंड्रूज' के नाम से ही अधिक जानते हैं।

१२ फरवरी, १८७१ को इंग्लैंड के न्यू कैसल नगर में जनमे सी.एफ. एंड्रूज के माता-पिता दोनों ही बहुत सीधे-सरल और धार्मिक विचारों के थे। इसका प्रभाव एंड्रूज पर भी पड़ा। खासकर माँ से उन्हें जो प्रेम मिला, उसी ने उनके जीवन में ऐसी करुणा भर दी कि एंड्रूज का पूरा जीवन ही बदल गया। वह एक ऐसी करुणा मूर्ति बन गए, जिनसे लोगों को बहुत प्रेरणा मिलती थी। एंड्रूज अकसर बचपन की एक घटना को याद किया करते थे। वे अभी छोटे ही थे कि बुरी तरह बीमार पड़ गए। सभी का कहना था कि अब इस बालक के बचे रहने की कोई उम्मीद नहीं। लेकिन उनकी माँ ने रात-दिन एक करके उनकी सेवा की। और यों ममतामयी माँ ने अपने प्यार और जीवट से उन्हें मौत के मुँह से खींच लिया। एंड्रूज इस बात को कभी नहीं भूल पाए। उनके मन में बस एक ही तड़प थी, ''मैं सारी दुनिया को वैसा ही प्यार दे सकूँ, जैसा मुझे अपनी माँ से मिला है।''

बचपन में ही एंड्रूज को भारत के बारे में एक किताब पढ़ने को मिली। इस किताब का एंड्रूज के मन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे मन-ही-मन भारत से प्रेम करने लगे। उनका मानो सपना ही यह था कि वह कभी भारत जाएँ। खुद अपनी आँखों से वहाँ के लोगों और स्थानों को देखें तथा अपना पूरा जीवन वहीं बिताएँ। रात-दिन मानो यही सोचा करते थे। एक दिन उन्होंने माँ से कहा, ''माँ-माँ, सुनो! कल से मुझे खाने में थोड़े चावल भी दिया करो।''

माँ ने हैरान होकर पूछा, ''क्यों बेटा? क्या तुझे चावल बहुत अच्छे लगते हैं?''

इस पर एंड्रूज ने बड़े भोलेपन से कहा, ''माँ, आपको तो पता ही है ना, मुझे बड़े होकर भारत जाना है और वहीं रहना है। मुझे पिताजी ने बताया है कि वहाँ सभी चावल खाते हैं। मैं अभी से इसका अभ्यास करूँगा। तभी तो वहाँ ठीक से रह पाऊँगा।''

और सचमुच एंड्रूज बड़े होकर न सिर्फ भारत आए, बल्कि भारत के स्वाधीनता संग्राम से गहराई तक जुड़े। महात्मा गांधी और गुरुदेव टैगोर से वे बहुत प्रभावित थे। अवसर आने पर वे अंग्रेजी सत्ता को इस तरह ललकारते थे कि लोग हैरान रह जाते थे। जब अंग्रेजी शासन की ओर से यह कहा गया कि भारत की आजादी के लिए प्रयत्न करनेवाले तो सिर्फ कुछ सिरफिरे लोग ही हैं, तो एंड्रूज ने इसका बहुत करारा जवाब दिया था। इससे देश-विदेश में रहनेवाले भारतीय उन्हें प्यार करने लगे थे। अंग्रेजी शासक एंड्रूज के इन विचारों को पसंद नहीं करते थे, पर वे लाचार थे। सी.एफ. एंड्रूज सेंट स्टीफन कॉलेज में पढ़ाते हुए अपना बाकी समय दीन-दुखियों की सेवा में लगाते थे। सन् १९०७ में जब लाला लाजपत राय को कैद से रिहा किया गया तो सेंट स्टीफन कॉलेज के छात्र इस खुशी में कॉलेज में रोशनी करना चाहते थे। उन्होंने इसके लिए एंड्रूज से आज्ञा माँगी तो उनका जवाब था, ''ऐसी धूम से दीये जलाओ कि दीवाली लगने लगे।'' उसके बाद तो स्टीफन कॉलेज में जो फिजाँ दिखाई दी, उसकी कल्पना ही की जा सकती है।

दीनबंधु एंड्रूज का स्वभाव ऐसा था कि उनके पास जो कुछ भी होता, उसे वे किसी गरीब, जरूरतमंद आदमी को दे देते। दीन-दु:खी आदमी का दर्द वे नहीं देख सकते थे। इसलिए उनकी जेब हमेशा खाली ही रहती

थी। कभी उनका कोट गायब हो जाता, कभी अन्य कपड़े। कभी-कभी तो वे इतनी तंगी की हालत में होते कि चिट्ठी का जवाब देने के लिए पैसे भी उनके पास नहीं होते थे। पर एंड्रूज का मन विशाल था, इसीलिए सभी उनसे बहुत प्रेम करते थे।

५ अप्रैल, १९४० को इस महान् भारतभक्त साधक का देहांत हुआ। एक ऐसा भारतभक्त, जिसकी साँस-साँस में इस देश की जनता के लिए प्यार बसा हुआ था, और जो अंतिम समय तक भारत के स्वाधीनता संग्राम का पुरजोर समर्थन करता रहा। इसीलिए महात्मा गांधी हों या गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर, सभी उनसे बहुत प्रेम करते थे।

स्वामी विवेकानंद की विलक्षण शिष्या भगिनी निवेदिता का जीवन भी ऐसी ही विलक्षण भारतभक्ति और आत्मोत्सर्ग का उदाहरण है। युवावस्था में ही स्वामी विवेकानंद की प्रेरणा से वे भारत आईं और जीवन भर देश और देशवासियों की सेवा करते हुए भारत की सच्ची बेटी बनकर रहीं। उनके जीवन का एक-एक पल इस देश और देशवासियों के लिए समर्पित था। और कोई आश्चर्य नहीं कि भगिनी निवेदिता एक झटके में पश्चिमी जीवन की समस्त सुख-सुविधाओं को छोड़कर भारत आईं, तो यहाँ की धर्मप्राण निर्धन जनता से जुड़ने में उन्हें जरा भी कठिनाई नहीं हुई। हँसते-हँसते उन्होंने यहाँ की कठिन परिस्थितियों, दु:ख, अभाव और कई तरह की मुश्किलों को झेला।

भगिनी निवेदिता (मार्गेट नोबेल)

भगिनी निवेदिता न सिर्फ कोटि-कोटि देशवासियों के हृदय से जुड़ीं, बल्कि अंग्रेज सरकार द्वारा भारत के स्वाधीनता सेनानियों के दमन और उत्पीड़न से इस कदर व्यथित हुईं कि उन्होंने आजादी के लिए लड़ने वाले वीर युवकों और देशभक्तों को अपना भरपूर भावनात्मक समर्थन दिया। खुद अंग्रेज सरकार इस बात से हैरान-परेशान थी कि उनके देश से आई यह बहादुर और हिम्मती स्त्री किस कदर निर्भयता और समर्पित भाव से आंदोलित भारतवासियों के साथ खड़ी है और उसके मन में इस देश के स्वाधीनता सेनानियों के लिए अथाह प्रेम और सहानुभूति है। पर निवेदिता के लिए इसमें कुछ भी अटपटा नहीं था। जैसे हर देशवासी इस देश को आजाद देखना चाहता था, वैसे ही निवेदिता भी। उनके लिए यह भारत और भारतवासियों के हृदय से जुड़ने की अत्यंत स्वाभाविक परिणति थी और वे इसके लिए कोई भी खतरा उठाने के लिए तैयार थीं।

सबसे बड़ी बात तो यह कि उनके लिए धर्म और अध्यात्म की गूढ़ चिंताएँ तथा स्वतंत्रता सेनानियों को नैतिक समर्थन देना, ये दो अलग-अलग बातें नहीं, वस्तुत: एक ही बात थी और यही सीख उन्हें अपने गुरु से मिली थी। स्वामी विवेकानंद ने बार-बार यह बात दोहराई कि जब देश और जनता संकट में हो तो अपनी एकांत साधना में लीन होना सच्चा धर्म नहीं है। बल्कि वे तो सच्चा संन्यासी भी उसी को मानते हैं, जो दूसरों के दु:ख और कष्ट दूर करने के लिए हर पल व्याकुल रहे और आगे बढ़कर दीन-दुखियों के आँसू पोंछे।

निवेदिता तथाकथित सभ्य यूरोप की रुग्णताओं से अपरिचित न थीं, जिसमें दिखावटी मुसकराहट के मुलम्मे के नीचे बहुत सारा हाहाकार छिपा हुआ है। स्वामी विवेकानंद ने भी इस ओर भगिनी निवेदिता का ध्यान खींचा था। उन्होंने कहा था, ''पश्चिम में सामाजिक जीवन एक अट्टहास के समान है, पर उसके नीचे है करुण क्रंदन। अंत में रह जाती है केवल एक सिसकी। बाहर तफरीह, तमाशा है। वास्तव में भीतर करुण वेदना भरी है। यहाँ भारत में ऊपर दीखती है उदासी और दुख, पर नीचे छिपी है बेफिक्री और मौजमस्ती।'' विवेकानंद ने मानो चार पंक्तियों में ही पूर्व और पश्चिम के अंतर को निवेदिता की आँखों के आगे साकार कर दिया था।

इस बात को भगिनी निवेदिता ने भी अपने ढंग से महसूस किया था। इसीलिए वे स्वामीजी के अन्य शिष्यों की तरह पश्चिम से पूर्व में आईं नहीं, बल्कि भारत आकर उनका पुनर्जन्म हुआ। भारत आने के बाद न सिर्फ मार्गेट नोबेल का जीवन बदला, बल्कि उनके मन, सोचने-विचारने के ढंग, सामाजिक धारणाओं और कल्पनाओं में भी जैसे आमूलचूल बदलाव आ गया। पुरानी निवेदिता की काया में एक नई निवेदिता सामने आई। थोड़े ही समय में निवेदिता के भीतर आए इस बड़े बदलाव, उनके गहरे समर्पण और पूरी तरह भारतीय समाज से एकमेक हो जाने की खूबी का बयान करते हुए रोम्या रोलाँ लिखते हैं—

''वे अट्ठाईस वर्ष की थीं, जब उन्होंने अपने भाग्य को स्वामीजी के हाथों में सौंप देने का संकल्प किया। जनवरी १८९८ के अंत में वे हिंदू स्त्रियों की शिक्षा के कार्य के लिए भारत आ गईं। उन्होंने मारग्रेट को हिंदू बनने के लिए बाध्य किया, जिससे कि वे अपने विचारों, कल्पनाओं, संस्कारों से हिंदू बन सकें। यहाँ तक कि अपने अतीत की स्मृति भी भुला सकें। उसने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया और वह पहली पाश्चात्य स्त्री थी, जिसे भारतीय संन्यासी के रूप में दीक्षा मिली।...''

१२ नवंबर को दुर्गा पूजा के दिन निवेदिता का कन्या विद्यालय शुरू हुआ। उस दिन स्वामी विवेकानंद अस्वस्थ थे। इसलिए उन्होंने निवेदिता को अपना आशीर्वाद दिया। उन्हें प्रसन्नता थी कि निवेदिता को आखिर काम करने का सही रास्ता मिल गया है। स्वामीजी चाहते थे कि भगिनी निवेदिता अपना पश्चिमी रंग-ढंग और सोच-विचार छोड़कर पूरी तरह भारतीय स्त्री के रूप में स्वयं को ढाल लें, और इसके लिए बहुत सतर्क ढंग से वे कोशिश कर रहे थे। उन्होंने बेलूर मठ में उन्हें सबके लिए भोजन बनाने का जिम्मा दिया। उनके हाथ का बना खाना सब खाएँ, इस बात को लेकर वे सतर्क थे। वे चाहते थे कि निवेदिता पूरी तरह भारतीयता में खुद को ढाल ले और कोई उसे अपने से अलग न समझे। साथ ही निवेदिता की भी वे बहुत कड़ी परीक्षा ले रहे थे, ताकि पिछले संस्कार भूलकर वे पूरी तरह हिंदू धर्म के आचार-विचार ग्रहण कर ले। कई बार उन्हें उन

पर बहुत क्रोध आता और वे तनिक रोष में उन्हें समझाते कि तर्क और अहंकार नहीं, उन्हें सरल प्रेम और आस्था का पथ ग्रहण करना चाहिए।

स्वामी विवेकानंद के जाने के बाद भी अपने गुरु के प्रति निवेदिता की भक्ति और समर्पण में तनिक भी कमी नहीं आई। स्वामीजी के छोटे भाई भूपेन की क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण जब अंग्रेजी पुलिस उनके पीछे पड़ी हुई थी तो निवेदिता ने उनकी हरसंभव सहायता की। उन्हें न सिर्फ उन्होंने अज्ञातवास में मदद की, बल्कि पुलिस की सतर्क निगाहों से बचकर चुपके से विदेश चले जाने में भी मदद की। यही नहीं, भगिनी निवेदिता निर्भीकता से अंग्रेजी साम्राज्य के अत्याचारों के प्रति रोष प्रकट करते हुए, अपने ढंग से क्रांतिकारियों की मदद करती रहीं। इस तरह वे कर्मयोगी होने के साथ-साथ जाने-अनजाने भारत के स्वाधीनता संग्राम में भी शामिल हो गईं। इस पर रामकृष्ण मिशन के अधिकारियों ने उन्हें मिशन छोड़ने के लिए कहा, तो भगिनी निवेदिता इस बात के लिए तैयार हो गईं। पर इस देश की जनता और दैन्य-दारिद्र्य की मार झेल रहे असंख्य लोगों के लिए जो-जो उन्हें उचित जान पड़ा, उससे पीछे कदम उठाना उन्होंने उचित नहीं समझा।

श्रेष्ठ गुरु की इस श्रेष्ठ शिष्या की दार्जिलिंग में मृत्यु हुई। वहीं उनकी समाधि भी है। जीवन भर दीन-दुखियों की सेवा करते हुए, अंत में इसी भारत की मिट्टी में वे चुपचाप विलीन हो गईं।

स्वामी विवेकानंद के अंग्रेज मूल के शिष्यों में सेवियर दंपती भी इसी तरह भारत और यहाँ की संस्कृति से अथाह प्रेम करने वाले समर्पित साधक थे, जिनका उत्तर जीवन भारत में ही बीता। एक बार स्वामीजी विदेशी शिष्यों के सामने अपने एक सुंदर सपने का जिक्र कर रहे थे। उन्होंने कहा, ''मेरा मन है कि हिमालय की उपत्यकाओं में एक ऐसा आश्रम हो, जहाँ भारतीयों के साथ-साथ विदेशी लोग भी रहें और वहाँ रहकर निरंतर साधना करते हुए भारतीय संस्कृति और अध्यात्म को गहराई से जानें। पर इसके लिए धन कहाँ से आएगा, यह एक बड़ी समस्या है।'' कैप्टन सेवियर ने यह सुना तो कहा, ''आप चिंता न करें, धन की व्यवस्था हो जाएगी।'' सेवियर दंपती ने तत्काल ब्रिटेन में अपनी संपत्ति बेचकर सारा धन विवेकानंद को सौंपा, जिससे हिमालय की उपत्यकाओं में प्रकृति की सुंदर दृश्यावलियों के बीच मायावती अद्वैत आश्रम की स्थापना हुई। सेवियर दंपती ने यहीं रहकर अध्यात्म साधना करते और सबको प्रेम बाँटते हुए, अपना जीवन बिताया, और यहीं आखिरी साँस ली। भारत उनका घर ही नहीं था, भारत उनका मुक्तिद्वार भी बन गया।

□

भारत आकर भारत को ही अपना घर मानने वाली अंग्रेज मूल की महिलाओं में एक महत्त्वपूर्ण नाम नेल्ली सेनगुप्ता का भी है, जिन्होंने अपना पूरा जीवन भारत की आजादी और उसकी दु:खी पीड़ित जनता की सेवा में लगा दिया। नेल्ली सेनगुप्ता अत्यंत मेधावी, सुरुचि-संपन्न तथा दृढ विचारों की महिला थीं। इसलिए खराब से खराब स्थितियों में भी तमाम मुश्किलों के बावजूद वे झुकी नहीं और आगे बढ़कर राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में हिस्सा लेती रहीं।

१२ जनवरी, १८७६ को कैंब्रिज में जनमी नेल्ली के व्यक्तित्व में एक ऐसी विनम्र दृढता है, जिसका विरोधी भी सम्मान करते हैं। वे बचपन से ही बड़े उदार विचारों की थीं और वे सिर्फ जन्म या नस्ल के आधार पर किसी को छोटा मानने के खिलाफ थीं। आगे चलकर जब उन्होंने भारत के स्वाधीनता संग्राम की मूल प्रेरणा को समझा और दुखी भारतवासियों के दिलों का दर्द पास जाकर महसूस किया तो उनके ये विचार और दृढ हो गए तथा वे अपने पति जतिनमोहन सेनगुप्ता के साथ अन्यायी अंग्रेज सत्ता से लड़ने के लिए आगे आईं।

शुरू में जब जतिनमोहन सेनगुप्ता से जब उनका विवाह हुआ, तो जतिन के परिवारजनों और बंगाल के लोगों ने इसे ज्यादा पसंद नहीं किया था। सोचा गया कि नेल्ली के लिए बंगाल की जीवन-शैली और परंपराओं में ढल पाना असंभव होगा। पर नेल्ली ने किसी भारतीय वधू की तरह इस तरह खुद को भारतीय रंग-ढंग में ढाला कि देखने वाले सचमुच चकित और चमत्कृत रह गए। फिर उनकी विनम्रता और सुरुचि का इतना प्रभाव पड़ता कि जो भी उनसे एक बार मिल लेता, वही उनका प्रशंसक बन जाता। धीरे-धीरे जिन लोगों ने इस विवाह को लेकर संदेह और पूर्वग्रह पाल लिये थे, वे ही जतिनमोहन से कहने लगे, ''आपने सचमुच अपने लिए एक आदर्श पत्नी चुनी है!''

नेल्ली सेनगुप्ता

और सच तो यह है कि जतिन सेनगुप्त, जिन्हें भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के इतिहास में देशभक्त सेनगुप्त कहकर भी याद किया जाता है की अपार लोकप्रियता के पीछे नेल्ली के इस उदारतापूर्ण व्यवहार का भी हाथ था, जिसके सभी कायल थे।

नेल्ली सरल और विनम्र होने के साथ-साथ अत्यंत निर्भय महिला भी थीं। पति जतिनमोहन को स्वाधीनता संग्राम में भाग लेते देख वे पूरी तरह उनका साथ देने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर आगे आ गईं। सन् १९२१ में उन्हें जेल जाना पड़ा। पर जेल के कष्टों ने उनके भीतर की प्रबल राष्ट्रीय भावनाओं को कम करने की बजाय और बढ़ा दिया। वे और अधिक सक्रियता से स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़ीं। सन् १९३० में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान उनके एक भाषण को आपत्तिजनक करार देकर अंग्रेज सत्ता ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। पर नेल्ली जरा भी विचलित हुईं। उलटे उन्होंने अंग्रेजी सत्ता को चेतावनी दी कि अन्याय और दमन से सच्चाई की आवाज को दबाया नहीं जा सकता।

नेल्ली सेनगुप्ता चार महीने जेल में रहीं, पर अंग्रेज सरकार उनके लौह इरादों को नहीं बदल सकी। जनता उन्हें जी-जान से चाहती थी और पति के साथ-साथ खुद उनकी लोकप्रियता दिनोदिन बढ़ती जा

रही थी। सन् १९३३ में नेल्ली के व्यापक योगदान को स्वीकार करते हुए उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया तो सभी ने इसकी खुले दिल से प्रशंसा की। सचमुच नेल्ली इस बात की नजीर थीं कि कोई विदेशी महिला जब भारत आकर यहाँ के लोगों और जनता से प्रेम करने लगती है, तो उसका आदर्श व्यक्तित्व, जीवन और लड़ाइयाँ किस रूप में सामने आती हैं। स्वयं अंग्रेज होते हुए भी अंग्रेजी सत्ता का तीखा विरोध और प्रतिकार करते हुए उन्हें जरा भी झिझक न हुई। सारी दुनिया में उनके संघर्ष की गूँजें-अनगूँजें पहुँचीं और इससे भारत के स्वाधीनता संग्राम को एक नैतिक बल और देश-विदेश में प्रचार मिला।

देश-विभाजन के बाद नेल्ली अपने पति की जन्मभूमि चटगाँव चली गईं और जनता की सेवा में लग गईं। अपने अंतिम दिनों में वे बीमार पड़ गईं, तो उन्हें चिकित्सा के लिए भारत लाया गया। २३ अक्तूबर, १९६३ को इस विनम्र, लेकिन समर्पणशील वीर महिला का देहांत हुआ। पर भारत की मिट्टी से बेइंतिहा प्यार करनेवाली इस बहादुर आंग्ल महिला ने यह दिखा दिया कि एक स्त्री भी चाहे तो अपने लौह इरादों से बड़े काम कर सकती है। सच ही भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में जतिनमोहन सेनगुप्ता के साथ-साथ नेल्ली सेनगुप्ता के नाम को भी कभी भुलाया नहीं जा सकता।

ऐसी ही एक और दृढ महिला थीं, मीरा बहन। गांधीजी से सादगी का पाठ सीखकर भारत और भारतवासियों की सेवा में जीवन समर्पित करनेवाली मेंडेलीन, जो बाद में 'मीरा बहन' बन गईं। उन्होंने भी भारत के स्वाधीनता आंदोलन में पूरे समर्पण और प्राणपण से हिस्सा लिया। हालाँकि उन्होंने अपने लिए एक बिल्कुल अलग भूमिका चुनी। उन्होंने महात्मा गांधीजी की सेवा और प्रतिदिन के कामों में सहायता का निश्चय किया, ताकि वे अधिक निश्चिंत भाव से अपना काम कर सकें। निष्कंप भाव से इस भारत के महानायक की सेवा करके उन्होंने परोक्ष रूप से देश और मानवता की ही सेवा की, जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

मीरा बहन (मेंडेलीन स्लेड)

२२ नवंबर, १८९२ को एक सुसंस्कृत आंग्ल परिवार में जनमी मीरा बहन का वास्तविक नाम था—मेंडेलीन स्लेड। उन्होंने महात्मा गांधी को देखा तो उन्हें तत्क्षण लगा कि उनका ध्येय सत्य और अहिंसा के इस पुजारी की सेवा करना है, ताकि उनके कामों का प्रकाश लोगों तक अधिक-से-अधिक पहुँच सके। शुरू में लोगों को विश्वास नहीं था कि वे भारतीय रंग-ढंग में ढल सकेंगी। पर मीरा बहन का समर्पण सच्चा था और उनके भीतर एक बच्चे जैसी निर्मल और निर्भीक आत्मा थी। लिहाजा जब उन्होंने महात्मा गांधी की सेवा का व्रत लिया, उसी समय से वे खुद-ब-खुद भारतीय पद्धति में ढलती चली गईं। वे अत्यंत सादा जीवन व्यतीत करती थीं। खादी पहनती थीं तथा सूत कातने में भी खासी निपुण हो गई थीं।

बचपन से ही मीरा बहन के हृदय में प्रकृति तथा मनुष्यमात्र के लिए अगाध प्रेम था। वे अत्यंत कल्पनाशील और भावप्रवण थीं तथा संगीत में उनकी खासी रुचि थी। रोम्या रोलाँ की पुस्तक 'ज्याँ क्रिस्तोफर' पढ़कर वे इतनी प्रभावित हुईं कि खुद उनसे मिलने जा पहुचीं। रोम्या रोलाँ ने उनसे बातें करके उनके सच्चे प्रेमल हृदय को जान लिया। उन्होंने उनसे महात्मा गांधी के व्यक्तित्व की चर्चा की और कहा कि उनसे मिलकर उन्हें अच्छा लगेगा। मीरा बहन ने रोम्या रोलाँ द्वारा लिखी गई महात्मा गांधी की जीवनी पुस्तक पढ़ी और गांधीजी से मिलने के लिए खासी उत्सुक हो उठीं। महात्मा गांधी के व्यक्तित्व और आदर्शों को जानने के बाद उन्होंने सादगी का व्रत लिया। वे पूरी तरह शाकाहारी बन गईं। सादा कपड़े पहनने तथा फर्श पर सोने लगीं। २१ अक्तूबर, १९२५ को एक जहाज पर सवार होकर वे बंबई आ पहुँचीं। गांधीजी ने सरदार पटेल समेत कई लोगों को उनके स्वागत के लिए तथा उन्हें लेने भेजा।

जब वे महात्मा गांधी से मिलने जा रही थीं तो उनकी छवि और विचारों की कल्पना में वे इस कदर खो गईं कि उन्हें अपनी देह तक का बोध न रहा। गांधीजी ने साबरमती आश्रम में एक कमरा उनके लिए तैयार करा रखा था। वहाँ मीरा बहन आश्रम के कठोर नियमों का पालन करती हुई औरों की तरह फर्श पर सोने लगीं। जल्दी ही उन्होंने धुनाई और कताई का काम सीख लिया और बहुत अच्छी हिंदी बोलने तथा पढ़ने-लिखने लगीं।

इसके बाद मीरा बहन ने समर्पित होकर गांधीजी के हर काम में हाथ बँटाना शुरू कर दिया। वे उनकी बेटी बनकर रहने लगीं और गांधीजी की छोटी-बड़ी हर असुविधा का खयाल रखती। सन् १९३१ में दूसरे गोलमेज सम्मेलन में वे महात्मा गांधी के साथ लंदन गईं। १९३७ में उड़ीसा में गांधीजी की हरिजन-यात्रा में भी वे उनके साथ थीं। १९४२ में भारत छोड़ो आंदोलन में महात्मा गांधीजी की गिरफ्तारी के समय भी मीरा बहन उनके साथ थीं। आगा खाँ महल में नजरबंदी के समय उन्होंने एक कमरे में बाल कृष्ण का मंदिर बना लिया था। उसे वे सुंदर फूलों से सजाती थीं। महात्मा गांधी को भी उसे देखकर अच्छा लगता था। नजरबंदी से रिहा होने के बाद मीरा बहन ने रुड़की और हरिद्वार के बीच एक स्थान पर 'किसान आश्रम' की स्थापना की।

पर आजादी के बाद मीरा बहन को लगा कि गांधीजी के आदर्श कहीं पीछे छूटते जा रहे हैं। जो लोग गांधीजी का नाम लेकर सरकार चला रहे हैं, उनकी सच्ची आस्था गांधीजी में नहीं है। वे इस बात से बहुत दुखी और निराश थीं। आखिर सन् १९५८ में भारत की तत्कालीन हालत से दु:खी होकर मीरा बहन देश छोड़कर चली गईं और आस्ट्रिया के एक गाँव में जाकर बस गईं। पर वहाँ भी वे एकदम भारतीय वेशभूषा में रहती थीं। उन्होंने संन्यासियों जैसे गेरुए वस्त्र पहनने शुरू कर दिए

थे तथा भारतीय ढंग का भोजन करने लगी थीं। वहाँ सभी उन्हें भारतीय महिला के रूप में ही जानते और पुकारते थे।

मीरा बहन ने युगनायक महात्मा गांधी के निकट रहकर तथा पल-प्रतिपल उनकी सेवा करते हुए अपने सामने इतिहास को बनते और नई-नई शक्लें लेते देखा। उन्होंने अनेक अवसरों पर महात्मा गांधी और अंग्रेजी सरकार के बीच मध्यस्थता का काम भी किया और कई ऐतिहासिक क्षणों की वे साक्षी बनीं, पर इसे लेकर उनके मन में कहीं कोई घमंड न था। वे अत्यंत सरल और भावनाशील महिला थीं, जिनके लिए अपना काम पूरे समर्पण के साथ करना ही जीवन का सबसे बड़ा सुख था। इस लिहाज से मीरा बहन ने एक सार्थक और सक्रिय जीवन जिया, जिसे भुलाया नहीं जा सकता है।

इन संवेदनशील और उदारहृदय महिलाओं में एक नाम 'वैल्दी फिशर' का भी है, जिन्होंने भारत को अपना देश समझा और अपना पूरा जीवन भारत की दीन-दरिद्र जनता की सेवा में लगा दिया। वे आराम और सुख-सुविधाओं की जिंदगी छोड़कर गरीब जनता की सेवा और उसे ज्ञान का प्रकाश देने में इस कदर जुट गईं कि साधारण व गरीब लोग उन्हें 'ज्ञान की देवी' मानने लगे। अपने अकेले दम पर उन्होंने भारत में एक शिक्षा आंदोलन चला।

वैल्दी फिशर

१८ सितंबर, १८६८ को न्यूयॉर्क में जनमीं वैल्दी फिशर यों तो बचपन से ही सरल, उदार और करुणामयी थीं और किसी का दु:ख, संताप उन्हें बहुत जल्दी छू जाता था। पर सन् १९४६ में पति के निधन के बाद जब वे विश्व-यात्रा पर निकलीं तो उनका हृदय पूरी तरह करुणा से आप्लावित था। उन्हें ईश्वर और मनुष्य ही नहीं, पेड़-पौधों और घाटियों सभी से प्रेम था। सभी में उन्हें ईश्वर की ही झलक दिखाई देती थी।

कविगुरु रवींद्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी के कामों से वैल्दी फिशर को बड़ी प्रेरणा मिली, जो अपनी पूरी शक्ति से इस पराधीन देश की आत्मा में लौ और उजाला पैदा कर रहे थे। उन्होंने बड़ी गहराई से गुरुदेव टैगोर तथा महात्मा गांधी के कामों का अध्ययन किया और खुद भी कुछ ठोस काम करने के लिए उत्सुक हो उठीं। भारत देश और यहाँ की जनता के लिए उनके मन में सच्ची करुणा पैदा हो चुकी थी। उन्हें लगा यहाँ के लोग भोले और सरल है और अशिक्षा तथा साधनहीनता के कारण संताप झेल रहे हैं। अगर इन्हें सही राह मिले, तो ये देश का इतिहास बदल सकते हैं। सन् १९४६ में वैल्दी फिशर महात्मा गांधी से मिलीं और उन्हें अपने निश्चय के बारे में बताया। सुनकर महात्मा गांधी ने कहा, ''अगर तुम्हें भारत की जनता की सेवा करनी है तो गाँवों में जाओ। भारत गाँवों में निवास करता है।''

वैल्दी फिशर जब गाँव-गाँव जाकर मिलीं, तो वे इस देश की इस करुण सच्चाई को और भी करीब से जान पाईं कि भूख, गरीबी, अशिक्षा और दैन्य ने किस तरह भारत को ग्रस रखा है। आखिर लखनऊ में उन्होंने निरक्षरता को दूर करने के लिए लिटरेसी हाउस की नींव डाली। शुरू में गांधीजी की सर्व-धर्म की पाँच प्रार्थनाओं से प्रारंभ किया गया और फिर लोगों को शिक्षित करने की आसान और सरल राहें खोज निकाली गईं। वे चाहती थीं कि लोगों को सिखाने का तरीका सरल तो हो ही, वह आनंदपूर्ण भी हो। सभी आनंद से सीखें और सिखाएँ तथा शिक्षा के साथ-साथ नृत्य, नाटक और दूसरी कलाओं का भी विकास हो। वे स्वयं इन कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती और दूसरों को भी खूब प्रोत्साहित करती थीं, ताकि उनका संकोच दूर हो और ज्ञान की एक उज्ज्वल धारा बहे। सबके दिलों में एक नया उजाला पैदा हो।

वैल्दी फिशर गांधीजी की सच्ची शिष्या थीं। उनके हृदय में भारत और यहाँ की जनता के लिए सच्चा प्रेम था। इसीलिए जो संकल्प उन्होंने किया था, उसे आखिरी साँस तक प्राणपण से निभाया। वे बार-बार कहा करती थीं, ''अँधेरे को कोसते रहने की बजाय एक मोमबत्ती जलाना कहीं अच्छा है।'' और सचमुच अपने लिटरेसी मिशन के जरिए वे सदियों से अंधकार में पड़े भारत की आत्मा में उजाले की कुछ किरणें भरने में कामयाब हुईं। वैल्दी फिशर का यह मिशन एक गहरे संकल्प और समर्पण की ही मिसाल है।

यों तो उदारहृदय विदेशियों की यह शृंखला बहुत बड़ी है, जिन्होंने भारत की मिट्टी में अपने सपने बोए और लोगों की खुशहाली के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। पर इनमें ब्रिटेन के आयरलैंडवासी कजिंस दंपती को तो भुलाया ही नहीं जा सकता। जिस समय एनी बेसेंट भारत आईं तो उनके साथ सहायक के रूप में मार्गरेट कजिंस और उनके पति जेम्स कजिंस भी थे। एनी बेसेंट के साथ कजिंस दंपती ने भी भारत को ही अपना देश मान लिया और उनका पूरा जीवन भारतीय जनता की सेवा में ही बीता। जेम्स कजिंस ने तो अपना नाम भी बदलकर जयराम कजिंस रख लिया था।

मार्गरेट कजिंस ने पूरे भारत की परिक्रमा करने और यहाँ की सीधी-सादी जनता से मिलकर यहाँ के रीति-रिवाज और भारतीय संस्कृति को जाना। साथ ही उन्होंने महसूस किया कि अंग्रेजी शासन द्वारा दी गई शिक्षा-दीक्षा ठीक नहीं है। भारत के लोगों को भारतीय संस्कृति के अनुरूप शिक्षा दी जानी चाहिए। इसी तरह लड़कों के साथ-साथ लड़कियों को पढ़ाने के लिए एक मुहिम छेड़ने की जरूरत है। उन्होंने साफ-साफ कहा कि भारत में ही शिक्षा की नींव रखने के लिए पहले तो अंग्रेजों द्वारा दी जा रही गलत शिक्षा को भुलाए जाने की जरूरत है। उसके बाद ही भारतीय संस्कृति के अनुरूप सही शिक्षा दी जा सकेगी। आखिर चित्तूर में एक नगर मदनपल्ली में उन्होंने आदर्श विद्यालय की स्थापना की, जिसे एक और शांतिनिकेतन कहकर लोग आदर से याद करते थे। मार्गरेट कजिंस और उनके पति जयराम कजिंस ने भारतीय जनता की

सेवा का एक सही माध्यम चुना और फिर जीवन इसी में निछावर कर दिया। सबको प्रेम बाँटनेवाली देवी के रूप में मार्गरेट कजिंस और एक आदर्श शिक्षाशास्त्री के रूप में जयराम कजिंस को भला कौन भूल सकता है, जो ब्रिटेन से आकर भारत के ही हो गए और जिनका एक ही सपना था कि भारत की जनता अपनी संस्कृति को और भी गहराई से जाने और उससे प्रेम करना सीखे, क्योंकि उसमें विश्व को प्रकाशित करनेवाली निर्धूम लौ और उजाला है।

भारत की संस्कृति और यहाँ की जनता से बेशुमार प्रेम करनेवाले अंग्रेज मूल के लोगों की परंपरा यहीं खत्म नहीं हुई, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में ऐसे लोगों की ऐसी समर्पित पीढ़ी नजर आती है, जिसे भौतिकवाद के अँधेरे बियावान में भटकाव के बाद, भारत में रोशनी की किरण और भविष्य का उजाला नजर आता है। यहाँ तक कि विज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले अंग्रेजों को भी भारत एक दुर्दमनीय आकर्षण के साथ खींचता दिखाई देता है। ५ नवंबर, १९१८ को ऑक्सफोर्ड में पैदा हुए जे.बी.एस. हाल्डेन ऐसे ही वैज्ञानिक थे, जिन्हें इस प्राचीन देश की धरती का आकर्षण यहाँ खींच लाया। भारत में आकर न वे सिर्फ पूरी तरह भारतीय सभ्यता में रच-बस गए, बल्कि साथ ही भारत की वैज्ञानिक प्रगति और अनुसंधान में उन्होंने खासा योगदान दिया।

प्रोफेसर हाल्डेन का पूरा नाम थाजोन बर्डन शेंडरसन हाल्डेन। उनके पिता जोन स्पोट हाल्डेन प्रसिद्ध शरीर-क्रिया विज्ञानी थे। छोटी उम्र से ही हाल्डेन की विज्ञान में इतनी गहरी रुचि हो गई कि वे पिता के अनेक प्रयोगों में हाथ बँटाने लगे। पिता उनकी प्रतिभा के साथ-साथ खतरों से खेलने के उनके साहस को देखकर भी चकित थे। हाल्डेन की अधिक रुचि जीव-जंतुओं और किस्म-किस्म के पौधों में थी। उन्होंने विधिवत् विज्ञान की शिक्षा नहीं ली थी। पर अपनी गहन अंत:दृष्टि के कारण अकसर वे चीजों की तह तक पहुँच जाते और अपने एकदम मौलिक के किस्म के निष्कर्षों से सभी को चकित कर देते थे। जैनेटिक्स में उनकी खोजों की इस मौलिकता की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान गया। १९३२ में वे रायल सोसाइटी के फेलो बने। हाल्डेन की पत्नी डॉक्टर हैलेन स्पर्वे भी प्रसिद्ध वैज्ञानिक थीं।

हाल्डेन अकसर भारत आया करते थे। यह प्राचीन देश अपनी विविधता, जीव-जंतुओं और वनस्पति संपदा के कारण लगातार उन्हें आकर्षित करता था। भारतीयता और भारत के अहिंसा दर्शन से भी हाल्डेन प्रभावित थे। लिहाजा वे इंग्लैंड छोड़कर पत्नी डॉ. हैलेन स्पर्वे के साथ भारत आ गए और यहीं की नागरिकता ग्रहण कर ली। वे इस कदर भारतीय हो गए कि उन्होंने यहीं की वेशभूषा अपना ली। धोती-कुरता पहनना उन्हें अच्छा लगता था और हाल्डेन अपनी इस भारतीय पोशाक में फबते भी खूब थे।

हाल्डेन ने कलकत्ता के सांख्यिकी संस्थान में खासा काम किया। बाद में उड़ीसा सरकार के आग्रह पर वे भुवनेश्वर आ गए। उन्हें जैनेटिक्स एंड बायोमीटरी प्रयोगशाला का निदेशक बनाया गया। जीवन भर वे यहीं अनुसंधान में जुटे रहे। अंत में १ दिसंबर, १९६४ को कैंसर से उनकी मृत्यु हुई। इससे पहले उन्होंने कैंसर पर एक अद्‌भुत कविता 'कैंसर इज ए फनीथिग' लिखी थी। उन्हें पता था कि कैंसर के कारण उन्हें जल्दी ही चले जाना है, पर इससे भयभीत होने के बजाय वे और अधिक धुन के साथ अपने काम में जुट गए।

हाल्डेन की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी डॉ. हैलेन स्पर्वे हैदराबाद चली गईं, जहाँ १९७८ में उनकी मृत्यु हुई। उड़ीसा यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर एंड टेक्नोलॉजी में बनाया गया 'हल्डेन हॉल' आज भी हमें इस दिलखुश धुनी वैज्ञानिक की याद दिलाता है, जो भारत में जनमा भले न हो, पर जिसका पोर-पोर भारतीय संस्कृति में रचा-बसा था।

□

इन सच्चे और उदार लोगों की जीवन-गाथाएँ आज हमें किसी भावुक कहानी सरीखी लगती हैं और समझना मुश्किल हो जाता है कि जब अंग्रेजी सत्ता भारत में अपना क्रूर और अन्यायी दमन-चक्र चला रही थी, भारतीय जनता को भीषण उत्पीड़न से गुजरना पड़ रहा था, भारतीयों को असभ्य कहकर हिकारत से देखने वाले अंग्रेजों की कोई कमी न थी, तो ऐसे उदारहृदय और संवेदनशील अंग्रेज कहाँ से आ गए, जिन्हें भारत और यहाँ की संस्कृति उम्मीदों की एक रोशन मीनार सरीखी लगती थी और दुखी दुर्बल भारतीय जनता की सेवा में असीमित आनंद मिलता था। संभवत: वे अंग्रेजी सत्ता के दमन-चक्र के पाप का एक नैतिक प्रक्षालन कर रहे हों। यह भी भारत और भारतीय संस्कृति के एक विराट् आत्मबल की विजय थी, जिसे विवेकानंद ने समझा था और गांधीजी ने जिसे अपनी राजनीतिक लड़ाई के अमोघ अस्त्र में बदल दिया।

एक आश्चर्य की बात यह है कि गांधीजी की और खुद जनता के हृदय में छिपी इस आत्मशक्ति को गाँव-देहात के अनपढ़ स्त्री-पुरुषों तथा 'गान्ही बाबा' की जय कहनेवाले इस देश के दीन और निर्बल लोगों ने सबसे पहले समझा था, पढ़े-लिखे किताबी लोगों ने बहुत देर में, जिन्हें गांधीजी के तौर-तरीके ही नहीं, उनकी नैतिक भाषा को समझने में दिक्कत आती थी, जिसमें वे सत्य के प्रयोगों वाली शब्दावली में या फिर सविनय अवज्ञा सरीखे पदों से राजनीतिक आंदोलन खड़ा करने की बात करते थे, और अंतत: कामयाब भी हो जाते थे।···पर हाँ, मीलों दूर बैठे बहुतेरे विदेशियों को गांधीजी की पुकार को सुनने में कोई मुश्किल नहीं आई और वे इस देश में जन-जन की सेवा के लिए दौड़े चले आए। ठीक वैसे ही, जैसे गांधीजी पहले विवेकानंद ने दुनिया को भारतीय संस्कृति की महानता का अहसास कराया था और भगिनी निवेदिता और सेवियर दंपती समेत बहुत से अंग्रेजी मूल के लोग न सिर्फ भारत आए, बल्कि भारत को ही उन्होंने अपना घर मान लिया और पूरा जीवन भारतीय जनता की सेवा में ही गुजार दिया।

५४५ सेक्टर-२९,
फरीदाबाद-१२१००८ (हरियाणा)
दूरभाष : ०९८१०६०२३२७

आलेख

बंदा सिंह बहादुर ने रचा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का स्वर्णिम अध्याय

● कुलदीप चंद अग्निहोत्री

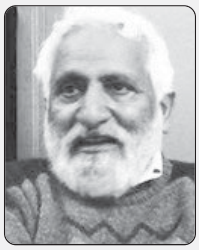

सुपरिचित लेखक। हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के धर्मशाला क्षेत्रीय केंद्र के निदेशक और भीमराव आंबेडकर पीठ के अध्यक्ष रहे। हिमाचल प्रदेश में दीनदयाल उपाध्याय महाविद्यालय की स्थापना की। लगभग दो दर्जन से अधिक देशों की यात्रा; पंद्रह से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति भारत-तिब्बत सहयोग मंच के अखिल भारतीय कार्यकारी अध्यक्ष और दिल्ली में 'हिंदुस्थान समाचार' से संबद्ध।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अठारहवीं शताब्दी के शुरू में ही हुई दो लड़ाइयाँ अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं। इन दोनों लड़ाइयों ने पश्चिमोत्तर भारत में विदेशी मुगल वंश के कफन में कील का काम किया। ये लड़ाइयाँ थीं पंजाब में सरहिंद और गुरदास नंगल की। इन दोनों लड़ाइयों का नेतृत्व बंदा सिंह बहादुर ने किया। बंदा सिंह बहादुर को इस संग्राम के लिए गुरु गोविंद सिंह ने तैयार किया था। मध्य एशिया से आए मुगल वंश ने भारत पर कब्जा करने की शुरुआत १५२६ में की थी। जिन दिनों बाबर ने हिंदोस्तान पर हमला किया था, उन्हीं दिनों भारत में एक ऐतिहासिक गुरु परंपरा प्रारंभ हुई थी, जिसके वानी गुरु नानक देव थे। उसी गुरु परंपरा के दशम गुरु श्री गोविंद सिंह हुए।

गुरु गोविंद सिंहजी का जन्म १६६६ में हुआ था और लक्ष्मण देव (जो कालांतर में बंदा सिंह बहादुर के नाम से विख्यात हुए) का जन्म १६७० (मृत्यु ९ जून, १७१६) में हुआ था। गोविंद राय का जन्म उस पाटलिपुत्र में हुआ था, जहाँ से शताब्दियों पहले अशोक महान् की सेनाएँ निकली थीं और लक्ष्मण देव का जन्म उस जम्मू-कश्मीर में हुआ था, जहाँ से सम्राट् ललितादित्य ने कभी सांस्कृतिक भारत का स्वप्न देखा था। लक्ष्मण देव का जन्म राजौरी में हुआ था। लक्ष्मण देव और गोविंद सिंहजी का आपस में कोई पारिवारिक संबंध नहीं था, लेकिन कालांतर में दोनों का ऐसा संबंध विकसित हुआ, जिसने भारत का इतिहास बदल दिया।

लेकिन इस इतिहास को जानने से पहले भारत में विदेशी मुगल वंश के बारे में जानना लाभदायक होगा। भारत में मुगल वंश का कब्जा मध्य एशिया के बाबर (१४८३-१५३०) के हमले से शुरू हुआ था। बाबर के हमले से पहले दिल्ली पर अफगानिस्तान के इब्राहिम लोदी का राज चल रहा था। अफगानी लोदियों में फूट पड़ गई थी। इब्राहिम लोदी के परिवार के एक दौलत खान लोदी ने इब्राहिम लोदी को शासनच्युत करने के लिए मध्य एशिया से बाबर को हमले के लिए निमंत्रण भेजा। बाबर इस अवसर की तलाश में ही था। समरकंद में वह तीसरी बार हार चुका था। पानीपत के मैदान पर १५२६ को लोदी और बाबर की सेना का भयंकर युद्ध हुआ। इब्राहिम लोदी की पराजय हुई और बाबर ने जीत हासिल की। भारतभूमि से एक विदेशी शासन का अंत हुआ और दूसरे विदेशी शासन का प्रारंभ हुआ।

लेकिन इसके साथ ही मुगल वंश को भारत से उखाड़ फेंकने का संघर्ष भी उसी समय शुरू हो गया था। अगले साल ही १५२७ में राजस्थान के राणा साँगा ने आगरा के पास खानवा गाँव में बाबर की विदेशी सेना को ललकारा। भयंकर युद्ध हुआ। भारतमाता का दुर्भाग्य ही कहना होगा कि राणा साँगा पराजित हो गए और विदेशी साम्राज्य की जड़ें जमने लगीं। इसे ईश्वरीय संकेत ही कहा जाना चाहिए कि उत्तरी भारत के कुछ हिस्से पर कब्जा जमा लेने के चार साल बाद ही १५३० में बाबर की मौत हो गई। लेकिन इसी बीच बाबर के कब्जे में पेशावर से लेकर आगरा तक का सारा इलाका आ चुका था। इसमें उस समय का पूरा पंजाब व दिल्ली-आगरा आता था। लेकिन दस साल बाद ही हुमायूँ को भारत से भागना पड़ा। एक दूसरी विदेशी ताकत अफगानों ने अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त करने की कोशिश की। लेकिन दस साल बाद १५५५ में हुमायूँ ईरानी सहायता से फिर भारत में घुसने में कामयाब हो गया। लेकिन १५५६ में उनकी मौत हो गई। उनके मरने पर अकबर (१५५६-१६०५) ने उसके उत्तराधिकारी के रूप में भारत पर उज्बेकों

का कब्जा जारी रखा। लेकिन मुगल सत्ता को एक बार फिर चुनौती मेवाड़ की ओर से ही मिली। १५७६ में महाराणा प्रताप के नेतृत्व में अकबर की सेना को चुनौती दी गई। हल्दीघाटी की लड़ाई के नाम से विख्यात इस युद्ध ने अकबर को चैन से नहीं बैठने दिया। महाराणा प्रताप की शौर्य कथा लोक गाथाओं में बदल गई। अकबर को लंबे काल तक राजस्थान के अनेक हिस्सों में विद्रोहों से जूझते रहना पड़ा। १५९७ में महाराणा प्रताप की मौत हुई तो अकबर चैन से बैठ सका। अकबर के बाद मुगल वंश की पताका जहाँगीर (१६०५-१६२७) के हाथ में आ गई।

अब एक बार फिर उस दश गुरु परंपरा की बात, जिसका जिक्र हमने ऊपर किया है। १४६९ में भारतभूमि पर गुरु नानक देव का जन्म हुआ था। १५२६ में जब बाबर अपनी सेना लेकर अफगानिस्तान को पार करता हुआ पंजाब की ओर बढ़ा तो गुरु नानक देवजी ने इसके दूरगामी दुष्परिणामों को देख लिया था और इसे हिंदुस्तान पर हमला घोषित कर भविष्य की रणनीति का संकेत भी दे दिया था। सत्रहवीं शताब्दी के शुरू में ही बाबर के उज्बेक वंश की चौथी पीढ़ी ने भारत के कुछ हिस्सों की सत्ता सँभाली तो उधर गुरु नानक देवजी द्वारा स्थापित गुरु परंपरा के पाँचवें गुरु श्री अर्जुन देवजी गद्दीनशीन हुए। अर्जुन देवजी के नेतृत्व में भारत नई अँगड़ाई ले रहा था।

जहाँगीर ने गद्दी पर बैठते ही अपना पहला प्रहार किया। गुरु अर्जुन देवजी को १६०६ में मुगल वंश ने शहीद कर दिया। अब विदेशी मुगल वंश को भारत से बाहर निकालने का एक नया मोर्चा पंजाब में शुरू हो गया था। अभी तक यह लड़ाई राजस्थान के रेगिस्तानों में ही लड़ी जा रही थी। जैसे-जैसे मुगल वंश की सेनाएँ भारत में आगे बढ़ती जा रही थीं, वैसे-वैसे उनके खिलाफ संघर्ष भी फैलता जा रहा था। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते मुगल वंश की कमान औरंगजेब (१६५८-१७०७) ने सँभाल ली। लेकिन इस शताब्दी के मध्यकाल तक मुगलों के विरोध के भी अनेक मोर्चे खुल चुके थे। पंजाब में हिंद की चादर गुरु तेगबहादुर ने इसका विरोध किया तो औरंगज़ेब ने उन्हें दिल्ली में शहीद करवा दिया। उधर असम को औरंगजेब की सेनाएँ घेरे हुए थीं। भारत का उत्तर-पूर्व खतरे में था। यहाँ मुगल वंश की ताकत को असम सेनापति लचित बड़फूकन ने ब्रह्मपुत्र की लहरों पर सरायघाट में १६७१ में औरंगजेब की सेना को शिकस्त दी। उधर दक्षिण में शिवाजी महाराज (१६३०-१६८०) ने मुगल वंश को गहरी शिकस्त दी और १६७४ में मुगल वंश की विजय पताका का उपहास करते हुए अपना राज्याभिषेक किया। मुगल सत्ता का व्यावहारिक अंत महाराष्ट्र में हो गया था। औरंगजेब ने किसी तरह पंजाब में किला बचाए रखने का प्रयास किया। उसने हिंद की चादर गुरु तेग बहादुरजी को १६७५ में शहीद करवा दिया। हिंद की चादर के सुपुत्र श्री गुरु गोविंद सिंहजी ने १६९९ में शिवालक की उपत्यकाओं में एक राष्ट्रीय सम्मेलन कर खालसा पंथ की स्थापना कर दी। यही खालसा पंथ कालांतर में मुगल वंश का काल सिद्ध हुआ।

गुरु गोविंद सिंहजी ने पंजाब में मुगल वंश की नींव को हिला दिया था। बाबर से शुरू हुआ मुगल वंश औरंगजेब तक आते-आते लड़खड़ाने लगा था। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं में उसे घेर लिया गया था। अंतिम प्रहार गुरु गोविंद सिंहजी ने किया। मुगल वंश का पतन शायद कहीं पहले हो जाता, लेकिन घर के जयचंदों ने लड़ाई को लंबा खींच दिया। इन संघर्षों का ही परिणाम था कि औरंगजेब की मौत के बाद लाल किले की सत्ता कमजोर होती गई। औरंगजेब की मौत के बाद गुरु गोविंद सिंहजी भी उसी ओर प्रस्थान कर गए थे, जहाँ शिवाजी ने मुगल सत्ता को परास्त कर दिया था। आगे की लड़ाई जारी रखने के लिए उन्हें किसी योग्य पात्र की तलाश थी। बंदा बहादुर गुरुजी की उसी तलाश का उत्तर था।

पंजाब में मुगल वंश की सत्ता के दो बड़े केंद्र सरहिंद और लाहौर थे। सरहिंद का नबाव वजीर खान बहुत ही जालिम और खूँखार था। उसने गुरु गोविंद सिंहजी के दो अबोध पुत्रों को दीवार में चिनवाकर शहीद कर दिया था। वह केवल शासक नहीं था बल्कि भारतीयों को बलपूर्वक अपने मजहब इसलाम में दीक्षित करके सबसे बड़ा गाजी भी बना हुआ था। मध्य एशिया के इन मुगल शासकों को पंजाब के मैदानों में पहली बार चुनौती खालसा पंथ ने दी थी, जिसका निर्माण गोविंद सिंहजी ने १६९९ में शिवालक की उपत्यकाओं में किया था। इधर पंजाब में गुरु गोविंद सिंहजी का खालसा मुगल साम्राज्य को चुनौती देकर राष्ट्र मुक्ति का रास्ता तलाश रहा था, उधर नांदेड में गोदावरी के तट पर माधोदास दास अपनी तपस्या में लीन इस नश्वर संसार से अपनी मुक्ति का रास्ता तलाश रहा था। राजौरी से चला लक्ष्मण देव ही गोदावरी तट पर तपस्या में लीन माधोदास था। गुरु गोविंद सिंहजी भी यात्रा करते हुए नांदेड पहुँचे। पता चला गोदावरी के तीर पर माधोदास संन्यासी तपस्या कर रहा है। महाराष्ट्र में दोनों की भेंट गोदावरी के तट पर सितंबर १७०८ में हुई। गुरुजी ने माधोदास दास को स्व मुक्ति के स्थान पर राष्ट्रमुक्ति का मंत्र दिया। तुम अपनी मुक्ति तलाश रहे हो, उधर पूरा देश आततायियों के अत्याचारों से त्रस्त है। उसे इस समय उचित नेतृत्व की आवश्यकता है। मानो माधोदास को मंत्र मिल गया हो। मध्य एशिया से आकर भारत पर राज्य कर रहे मुगलों के अत्याचारों से साधारण जन की मुक्ति का मंत्र।

गुरुजी ने अपने शिष्यों का दरबार बुलाया। उन्होंने माधोदास वैरागी को बंदा बहादुर बना दिया। गुरुजी ने माधोदास को पंजाब चले जाने की सलाह दी, जहाँ राष्ट्रमुक्ति का यज्ञ हो रहा था और खालसा अपने प्राणों की आहुति उसमें डाल रहे था। उस यज्ञ की ज्वाला मंद न पड़ जाए, यही माधोदास को देखना था। स्वतंत्रता की ज्वाला को निरंतर प्रज्वलित किए रहना। इससे पहले महाराष्ट्र में आने से पहले गुरुजी १७०५ में औरंगजेब के नाम जफरनामा लिखकर आए थे। जफरनामा यानी विजय का पत्र।

गुरुजी ने जफरनामा के माध्यम से एक प्रकार से भविष्यवाणी कर दी थी, अब मुगल वंश की पराजय ज्यादा दूर नहीं है। बंदा बहादुर को अब उसी भविष्यवाणी को पूरा करना था। सितंबर १७०८ के अंत में माधोदास, जो अब बंदा बहादुर बन गया था, गुरुजी का आशीर्वाद प्राप्त करके पश्चिमोत्तर की ओर चल पड़ा, जहाँ उसे मुगल वंश के शासन का अंत करना था। स्वतंत्रता की उस चिनगारी को सुलगाए रखना था, जिसे गुरु गोविंद सिंहजी ने अपने समस्त परिवार की आहुति देकर जलाया था। उधर सरहिंद का नबाव वजीर खान भी चुप नहीं बैठा था। वह दक्षिण भारत में भी गुरुजी की पदचापों को कान लगाए सुन रहा था। उधर गुरुजी ने बंदा बहादुर को पंजाब की ओर प्रस्थान करवाया, इधर सरहिंद के नबाव के भेजे पठान गुरुजी के पास नांदेड पहुँच गए। उन्होंने धोखे से गुरुजी पर उस समय घातक शस्त्र प्रहार किया, जब वे तपस्या में लीन थे। यही प्रहार अंततः प्राणलेवा सिद्ध हुआ। ७ अक्तूबर, १७०८ के दिन भारत के आकाश से एक सूर्य अस्त हो गया। इस सूर्य के अस्त होने की सूचना बंदा बहादुर को मिली। वह अभी नांदेड से बहुत दूर नहीं गया था। उसका चित्त दोलायमान हो गया। वापस जाकर अपने गुरु के पार्थिव शरीर को श्रद्धा-सुमन अर्पित किए या फिर पीछे मुड़कर न देखा। आगे बढ़ता जाए, उस कार्य की पूर्ति के लिए, जिसे गुरुजी उसे सौंपकर परलोक को प्रस्थान कर गए थे। चरैवेति-चरैवेति।

मुगल वंश के शासक औरंगजेब की भी मौत हो चुकी थी। उसका उत्तराधिकारी बहादुर शाह प्रथम (१७०७-१७१२) दिल्ली के लाल किले से मध्य एशिया का परचम जिंदा रखे हुए था। उसे भी सूचना मिल चुकी थी कि गोदावरी तट का साधक गुरुजी की प्रेरणा से अब राष्ट्र साधक बन गया है और स्थान-स्थान पर लोगों के हाथों में स्वतंत्रता की मशाल थमाता हुआ उत्तर-पश्चिम की ओर अग्रसर है। मुगल रास्ते में ही बंदा बहादुर को पकड़ लेना चाहते थे, ताकि स्वतंत्रता की आग जन-जन के सीने में न धधक उठे। उधर बंदा बहादुर भी दिल्ली से बचता हुआ पंजाब की ओर बढ़ रहा था, ताकि सरहिंद से मुगल सत्ता उखाड़कर लाल किले को घेरा जाए। सरहिंद की धरती बंदा बहादुर की प्रतीक्षा कर रही थी। यहीं गुरुजी के दो सुपुत्रों ने अन्याय और मतांतरण का विरोध करते हुए आत्माहुति दी थी। बंदा बहादुर को मुगल गुप्तचरों को धोखा देते हुए किसी भी कीमत पर सरहिंद की धरती पर नबाव वजीर खान की बलि देकर धरती माँ का कर्ज चुकाना था।

बंदा बहादुर महाराष्ट्र से राजस्थान के रास्ते से होता हुआ हिसार पहुँच ही गया। राजस्थान में पहले ही विदेशी मुगल शासकों के खिलाफ विद्रोह की चिनगारियाँ सुलग रही थीं। इसलिए राजस्थान के रेगिस्तान में सुरक्षित रहना मुश्किल नहीं था। यही कारण था कि बंदा बहादुर को नांदेड से हिसार तक पहुँचने में एक साल लग गया। लेकिन इसका लाभ भी हुआ। महाराष्ट्र से पंजाब तक हल्ला पड़ गया कि मुगल वंश की कब्र पंजाब के मैदानों में तैयार हो गई है। बंदा बहादुर हिसार होते हुए टोहाना, सोनीपत, कैथल, सामाना और सढ़ौरा तक आ पहुँचा। इन सभी स्थानों का राज्य उसने अपने अधीन कर लिया। मुगल शासकों द्वारा अपने समर्थकों को दी गई जमींदारियाँ समाप्त कर दीं। जमीन उसी की, जो उसे जोतेगा। मुगल सत्ता के अधिकारियों को पदच्युत कर नए अधिकारी नियुक्त किए। यह बंदा बहादुर का प्रभाव ही था कि डाके और राहजनी समाप्त हो गई। मुगल सत्ता से लड़ने के इच्छुक युवक दूर-दूर से खिंचे आने लगे। मुगल सत्ता के प्रतीक सरहिंद पर हमला करने से पहले बंदा बहादुर को शक्ति का संचय करना था। उसने सढौरा से लगभग पाँच कोस दूर, नाहन नगर के दक्षिण में शिवालक की उपत्यकाओं में मुखलीसर नामक स्थान पर फरवरी १७१० में अपनी राजधानी स्थापित की। बंदा बहादुर ने इसका नामकरण 'लोहगढ़' किया। लोहगढ़ का दुर्ग पर्वत शिखर पर स्थित था। जल्दी ही लोहगढ़ विदेशी सत्ता के विरोध का प्रतीक बन गया। दोनों ओर से तैयारियाँ होने लगीं।

बंदा बहादुर को अंततः सरहिंद में ही मुगल सल्तनत से दो-दो हाथ करने थे। इसलिए वह अपनी मुक्ति का मोह छोड़कर राष्ट्र मुक्ति के लिए इस नए रास्ते का पथिक बना था। दिन-रात इसी की तैयारियों में लगा रहता। नबाव वजीर खान ने भी हवा को सूँघ लिया। हवा ही बताने लगी थी कि इस बार का मुकाबला अभूतपूर्व होगा। उसने भी मुकाबला करने के लिए तैयारियाँ शुरू कर दीं। अल्लाह-हू-अकबर के नारों से आकाश गूँजने लगा।

उधर बंदा बहादुर के बारे में भी जन उत्साह बढ़ता जा रहा था। जन-जन में चर्चा हो रही थी। बंदा बहादुर को कोई नहीं मार सकता। वह चाहे तो पूरी सेना को अदृश्य कर दे। जब चाहे अपने पक्ष में भूत-प्रेतों को बुला ले। वायु देवता उसके संकेत पर चलते हैं। उसकी इच्छा हो तो क्षण भर में अंधड़ आ जाए। दिन में अँधेरा छा जाए। वह चाहे तो वजीर खान को कुत्ता बनाकर दरवाजे पर बाँध ले। अस्त्र-शस्त्र तो उसके पास से गुजर नहीं सकता। जाहिर है कि मुगल सेना में बंदा बहादुर की अलौकिक शक्तियों को लेकर भय उत्पन्न होता। बंदा बहादुर ने लगभग तीन महीने अपने प्रशासन को स्थापित करने में लगाए। अब वह और समय नहीं गँवा सकता था। उसे अपने लक्ष्य को भेदना था, जिसके लिए वह गोदावरी तट से चलकर शिवालक की उपत्यकाओं में पहुँचा था। सरहिंद विजय का जयघोष बंदा बहादुर ने कर दिया था। वह अपनी जन सेना लेकर सरहिंद की ओर चल पड़ा। सरहिंद से बीस किलोमीटर पहले चप्पड़चिड़ी नामक स्थान पर वजीर खान की सेना से मुकाबला हुआ। १२ मई, १७१० का दिन था। चप्पड़चिड़ी की धरती पर उस दिन इतिहास रचा गया। दो जिन लड़ाई चली और उसका अंत १४ मई को नबाव

वजीर खान की मौत में हुआ। नबाव के मरते ही मुगल सेना में भगदड़ मच गई और उसके पैर उखड़ गए। बंदा बहादुर को फतह हासिल हुई। एक सैनिक वजीर खान का सिर काटकर भाले पर लगाकर हाथी के हौदे पर जा बैठा। विजयी सेना जयघोष करती हुई सरहिंद की ओर बढ़ चली। शाम होते होते विजयी सेना सरहिंद के दरवाजे तक पहुँच गई। अगले दिन दोपहर होते-होते सरहिंद के दरवाजे टूट गए और २८ परगनावाले इस प्रांत पर बंदा बहादुर का कब्जा हो गया। मुग़ल सत्ता का अंत हुआ।

बंदा बहादुर ने प्रांत का प्रशासन चलाने के लिए अनेक अधिकारी नियुक्त किए और स्वयं लोहगढ़ को वापस चला गया। १४ मई, १७१० से सरहिंद स्वतंत्र हुआ और वहीं से शुरू हुई बंदा बहादुर की लाहौर को भी स्वतंत्र करवा लेने की रणनीति। वह अपनी जन सेना लेकर जून १७१० को लाहौर की ओर चल पड़ा। मलेरकोटला, मोरिंडा, होशियारपुर, जालंधर, बटाला, अमृतसर से होता हुआ सब स्थानों से मुगलसत्ता का अंत करता हुआ बंदा बहादुर लाहौर के दरवाजों तक पहुँच गया। लाहौर का सूबेदार उस समय सैयद वंश का इस्लाम खान था। सैयद लोग भारत में इस्लाम स्थापित करने के लिए अरब से आए थे और यहाँ मुगलों से मिल गए थे। उसने लाहौर शहर के तमाम दरवाजे बंद करवा दिए थे। बंदा बहादुर ने लाहौर की घेराबंदी कर दी। लाहौर के अंदर तो बंदा बहादुर दाखिल नहीं हो सका, लेकिन शहर की दीवारों से बाहर इस्लाम खान का शासन व्यावहारिक रूप से समाप्त हो गया था। लाहौर से दिल्ली के बीच का सारा इलाका स्वतंत्र हो चुका था।

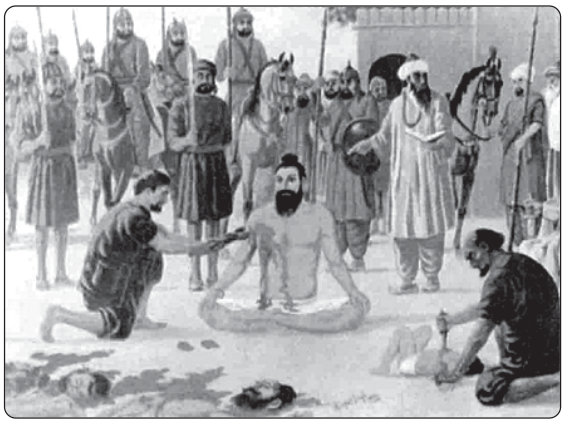

लेकिन इसके साथ ही दिल्ली में मुगल सल्तनत के लिए खतरे की घंटी बजने लगी थी। दिसंबर १७१० तक बहादुर शाह ने बंदा को पकड़ने के लिए आदेश जारी कर दिए। लेकिन बंदा बहादुर था कि उसका कुछ पता नहीं चल रहा था। क्या धरती निगल गई? आम जनता में तो पहले ही बंदा बहादुर की अलौकिक शक्तियों की प्रसिद्धि थी। बंदा बहादुर की तलाश पंजाब के मैदानों में हो रही थी, लेकिन वे अपने पुश्तैनी इलाकों में चले गए थे। वे पहाड़ के भीतर चले गए थे। वहाँ उन्होंने विवाह कर लिया था। वे अब गृहस्थ जीवन में चले गए थे। एक बेटे के पिता बन गए थे। लेकिन आखिर वे कब तक शिवालक की पहाड़ियों में गुमनाम जीवन जीते रहते। वे वापस रणक्षेत्र में आ गए। इस बार उन्होंने अपना मोर्चा गुरुदासपुर के पास गुरुदासपुर नंगल नामक स्थान पर लगाया। सरहिंद के बाद अब गुरुदासपुर नंगल में भारत का नया इतिहास लिखा जानेवाला था।

उधर दिल्ली के तख्त पर १७१३ में फारुख सियार बैठा, इधर गुरुदासपुर नंगल में हवाएँ आग उगलने लगीं। स्थान-स्थान से स्वतंत्रता सेनानी गुरुदासपुर नंगल में एकत्र होने लगे। मुगल सेनाओं ने गुरुदासपुर नंगल को घेर रखा था। बंदा बहादुर ने गुरिल्ला युद्ध प्रणाली को अपना लिया था। थोड़ी सी संख्या में बंदा के सैनिक बाहर निकलते। अचानक मुगल सेना पर धावा बोलते। जब तक मुगल सेना कुछ समझ पाती, तब तक वे अपना काम पूरा कर गायब हो जाते। अनेक बार अफवाह उड़ती कि बंदा बहादुर एक साथ ही कई स्थानों पर देखा गया। मुग़ल सेना के होश फाख्ता हो जाते। उधर दिल्ली से आदेश आता, किसी भी तरह बंदा को जिंदा या मुर्दा पकड़कर पेश किया जाए। आठ मास तक लुका-छिपी का यह खेल चलता रहा। घेरा सख्त होता जा रहा था। उसके कुछ साथी साथ छोड़कर चुपचाप वहाँ से चले भी गए। नवंबर १७१५ तक किले के अंदर सैनिकों के भूखे मरने की नौबत आ गई। आर-पार की स्थिति हो गई थी। बंदा बहादुर ने १७ दिसंबर को किले के दरवाजे खोल दिए। अंतिम लड़ाई लड़ी गई। दोनों पक्षों के अनेक सैनिक मारे गए। मुगल सेना ने दो सौ सैनिकों को बंदी बना लिया। बंदा बहादुर को जंजीरों में जकड़ दिया गया। सिक्खों के सिर काटकर नेजों पर लहराए जाने लगे। जंजीरों में बँधे हुए लगभग सात सौ का यह काफिला बंदा बहादुर समेत लाहौर से होता हुआ दिल्ली की ओर चल पड़ा। तीन सौ कटे हुए सिर छकड़ों में लादकर साथ ले जाए जा रहे थे। २९ फरवरी, १७१६ को यह काफिला दिल्ली पहुँचा। कई दिन तक इन बंदियों का सार्वजनिक कत्लेआम होता रहा। मुगल शासकों ने इन बंदियों को बचने के लिए मुसलमान बन जाने का विकल्प दिया। लेकिन सभी ने मरना कबूल किया, पर इसलाम स्वीकार करना नहीं।

अंत में ९ जून, १७१६ को बंदा बहादुर को जंजीरों में बाँधकर लाया गया। उनका पिंजरा हाथी पर रखा हुआ था। उसकी गोद में उनका चार साल का बेटा अजय सिंह था। मुगल सैनिकों ने अजय को मारकर उसका जिगर बंदा बहादुर के मुँह में डाल दिया। उनकी आँखें निकाल ली गईं। फिर एक-एक कर उनके शरीर के अंग काट डाले गए। फिर चमड़ी उतारी गई। अंत में उनका शीश काट दिया। स्वतंत्रता के इतिहास के एक और अध्याय का अंत हो गया।

स्वतंत्रता संग्राम के इस अध्याय को बीते आज तीन सौ साल हो गए हैं। चप्पड़चिड़ी की लड़ाई ने मुगल साम्राज्य की कब्र खोद दी थी। लेकिन छोटी चप्पड़चिड़ी और बड़ी चप्पड़चिड़ी में उस अध्याय का कोई निशान नहीं बचा था। पंजाब सरकार ने भारतीय इतिहास के इस स्वर्णिम अध्याय को अमर करने के लिए विजय-स्तंभ का निर्माण कराया और ३० नबंवर, २०११ को उसका उद्घाटन किया।

उप कुलपति
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला-१७६२१५ (हि.प्र.)

१८५७ का स्वातंत्र्य समर एवं स्वातंत्र्यवीर सावरकर

● हरींद्र श्रीवास्तव

पहली मई को आम तौर पर 'मई दिवस' भी कहा जाता है। इस दिन समूचे विश्व में 'मजदूर दिवस' मनाया जाता है। रूस एवं अन्य साम्यवादी देशों में तो इसका राष्ट्रीय महत्त्व है। इस दिन यहाँ भव्य शोभा यात्राएँ निकाली जाती हैं और मजदूरों के जलसे-जुलूस होते हैं। यूरोप में, विशेषकर इंग्लैंड में यह दिन वसंतागमन का प्रतीक माना जाता है। स्थान-स्थान पर रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम, लोकनृत्य एवं सौंदर्य प्रतियोगिताएँ होती हैं। सन् १८५७ की विफल क्रांति के बाद लंदन में यह दिन भारतीय क्रांतिकारियों पर इंग्लैंड की महान् विजय के रूप में भी मनाया जाने लगा था।

स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर

पर १९०७ की पहली मई मानो कुछ अलग ही रंग लेकर आई। तब अंग्रेजों के एक विशिष्ट वर्ग ने यह दिन तथाकथित 'गदर' के पचास वर्ष पूरे होने पर भारतीय विप्लवियों पर अंग्रेजों की महान् विजय के रूप में 'विशेष धन्यवाद दिवस' के तौर पर मनाने का निश्चय किया। न केवल लंदन की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में, वरन् भारत में भी, अंग्रेजभक्त समाचार-पत्रों में मानो एक-से-एक सज-धज के साथ 'विजय विशेषांक' निकालने की होड़ सी लग गई। इनमें छपे अग्रलेख व अन्य स्तंभों ने पत्रकारिता के नैतिक मूल्यों व मापदंडों को जैसे ताक पर रख दिया। इनमें से अधिकांश में जान-बूझकर भारतीय क्रांति के सेनानियों व शहीदों की खिल्ली उड़ाई गई। कइयों ने तो उन्हें 'लुटेरे' और 'हत्यारे' तक कह डाला।

६ मई को लंदन के प्रमुख दैनिक 'डेली टेलीग्राफ' ने अपनी सुर्खी में कहा—'५० वर्ष पूर्व इसी सप्ताह हमने वीरतापूर्वक अपने साम्राज्य की रक्षा की।'

लगभग पूरे सप्ताह भारत में अंग्रेजी शासन की आवश्यकता व सार्थकता के समर्थन में चर्चाएँ व गोष्ठियाँ होती रहीं। सप्ताहांत तक तो यह स्थिति पराकाष्ठा पर पहुँच गई। यहाँ तक कि कई स्थानों पर अश्लील नाटक भी खेले गए। इन्हीं में से एक में, जो विशेष रूप से जल-थल सेना के 'खेल-कूद समारोह' के लिए तैयार किया गया था, दिल्ली के कश्मीरी गेट पर हुए भारतीय हमले को अत्यंत विकृत रूप में प्रदर्शित किया गया। खुले मैदान में खेले गए एक अन्य नाटक में भी 'गदर' की कुछ झलकियाँ प्रस्तुत की गईं, जिनमें तात्या टोपे, नाना साहेब व रानी झाँसी जैसे शूरवीरों को लुच्चे-लफंगों और डाकुओं के रूप में दिखाया गया।

यह ओछी, छीछालेदर करते हुए इन सिरफिरे फिरंगियों को कदाचित् तनिक भी भान नहीं था कि यह सबकुछ करके वे अपने ही लिए मुसीबत के बीज बो रहे हैं। अपमान और व्यंग्य का एक-एक शब्द 'इंडिया हाउस' नामक मधुमक्खी के छत्ते में पत्थर की तरह चोट करता रहा, जहाँ हर व्यक्ति कौटिल्य की इस कूटनीति का समर्थक था कि साम, दाम, दंड अथवा भेद जैसे भी हो, दुश्मन का दमन करो।

चरित्र-हनन का यह घिनौना स्वाँग सप्ताह के साथ ही समाप्त हो गया। और फिर? फिर जैसे इस स्वर्ण जयंती समारोह के सफल समापन पर गद्‌गद ये लंदनवासी अपनी नियमित दिनचर्या पर लौट गए। एक शराबखाने से दूसरे शराबखाने में भटकना; थोड़ी यहाँ, थोड़ी वहाँ पीकर बहकना, फिर धुत्त होकर नशे की अकड़ में यह देखना कि उसकी गरदन अधिक तनी है या बोतल की?

अब बारी आई सावरकर के 'इंडिया हाउस' की। वैसे उस समय भी, जब ये अंग्रेज अपने आलोचना उत्सव में रत थे, वहाँ का वह नक्षत्र-मंडल चुपचाप हाथ पर हाथ रखकर मात्र स्वप्नलोक में ही नहीं विचर रहा था। हर तरह से चौकन्ने होकर वे बस अवसर की तलाश में थे। और १० मई को वह दिन भी आ गया। प्रतिशोध के इस महानाटक की पटकथा, संवाद, पात्रचयन, अभिनय आदि सबकुछ सावरकर द्वारा पूर्व निश्चित थे। देर थी तो बस परदा उठने की।

नाटक का श्रीगणेश हुआ एक सभा से, जिसका आयोजन 'इंडिया हाउस' में ही क्रांति की स्वर्ण जयंती मानने के लिए किया गया था। भवन अत्यंत सुरुचिपूर्ण ढंग से फूलों-वंदनवारों एवं तोरणद्वारों से सजाया गया था। मंच पर क्रांति के योद्धाओं, हुतात्माओं के आदमकद चित्र रखे थे। 'इंडिया हाउस' मानो पूरे भारत की झाँकी बन गया था। यूरोप के कोने-कोने से आए २०० से भी अधिक भारतीयों ने इस समारोह में भाग लिया। स्वयं सावरकर ने इस समारोह का वर्णन इस प्रकार किया है—

''बरतानिया में रहनेवाले भारतीयों का इतना सुंदर समारोह पहले कभी नहीं हुआ। बहुत दिनों से लोग इस समारोह की प्रतीक्षा कर रहे थे।

मई के प्रारंभ से ही गली-गली में जाकर हर भारतीय को तैयार किया गया कि वे इस सभा में आएँ। कार्यक्रम तथा समारोह के ब्योरे प्रस्तुत किए गए। कार्यकर्ता चुने गए। प्रचारक जा-जाकर हर भारतीय को १८५७ का महत्त्व समझाते। धीरे-धीरे लंदन के सारे भारतीयों का जोश भड़क उठा। अंत में १० मई को इंडिया हाउस के आस-पास भारतीय ही भारतीय दिखाई देने लगे। असल में यह समारोह तो एक बहाना था जिसकी आड़ में तरुण क्रांतिकारी भावी क्रांति का प्रचार करना चाहते थे। इंडिया हाउस रोशनियों और फूलों से सजाया गया। भगवा परदों पर फूलमालाएँ व झंडियाँ लगाई गईं। स्वर्णाक्षरों तथा दूसरे रंगों में भी बहादुरशाह, नाना साहब, रानी लक्ष्मीबाई, राजा कुँवर सिंह व मौलवी अहमद शाह के नाम लिखे गए। कुछ अन्य भारतीय देशभक्तों के चित्र भी लगाए गए। फूलों और दीपदानों के कारण एक मंदिर का सा वातावरण बन गया था, जिसमें लंदनवासी भारतीयों को स्वत: ही भारतमाता की याद आ गई।

सुपरिचित क्रांतिकारी लेखक।

''समारोह का आरंभ हुआ राष्ट्रीय गान से। बड़े जोरों से 'वंदे मातरम्' के नारे लगाए गए, जो इंडिया हाउस की दीवारों से गूँजकर आसपास की सड़कों तक फैल गए। साढ़े चार बजे समारोह के अध्यक्ष सरदार सिंह राणा, जो उन दिनों पेरिस में रह रहे थे, कुछ नेताओं के साथ पधारे। वे अपने साथ मदाम कामा का एक बहुत उत्साहवर्धक संदेश भी लेकर आए थे। राष्ट्रीय गान के बाद श्री वी.वी.एस. अय्यर ने राष्ट्रीय प्रार्थना की। इंडिया हाउस खचाखच भर गया था। बहुत से लोगों को बैठने की जगह न मिल पाने के कारण खड़े रहना पड़ा।''

अब सावरकर ने स्वयं मंच पर आकर ओजस्वी व्याख्यान दिया। इस क्रांति को अंग्रेजों द्वारा 'गदर' की शरारतपूर्ण संज्ञा दिए जाने को आड़े हाथों लेते हुए सावरकर ने इसे 'भारत का प्रथम स्वातंत्र्य समर' कहकर पुनर्परिभाषित किया। रानी लक्ष्मीबाई, मंगल पांडे, नानाजी, तात्या टोपे, कुँवर सिंह, मौलाना अहमद साहब, अजीमुल्ला खाँ और बहादुरशाह आदि क्रांतिरत्नों को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई। अन्य व्याख्यानों के बाद श्रोताओं ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए त्याग करने व कष्ट झेलने की प्रतिज्ञा की। उपस्थित छात्रों ने हाथों में टोपी लेकर चंदा एकत्र किया, जिसमें लोगों ने दिल खोलकर दान दिया। अंत में १८५७ की स्मृति में चपातियाँ व प्रसाद बाँटा गया।

अगले दिन ऑक्सफोर्ड और कैंब्रिज विश्वविद्यालयों में पढ़नेवाले भारतीय छात्र जब अपनी-अपनी कक्षाओं में गए तो उनकी बाजुओं पर तिल्ले-जरी से कढ़े कामदार बिल्ले टँके हुए थे, जिन पर सुंदर अक्षरों में अंकित था—'१८५७ के वीर अमर रहें'।

इस मुँहतोड़ जवाबी काररवाई से अंग्रेज बौखला उठे। बसों, रेलों में यात्रा करते हुए इन विद्यार्थियों की यात्रियों के साथ तू-तू, मैं-मैं भी हुई। कई स्थानों पर अंग्रेज सिपाहियों के साथ झड़पें भी हुईं। कुछ कॉलेजों में मार-पीट की नौबत तक आ गई। इंजीनियरिंग के एक विद्यार्थी मदनलाल धींगरा ने यह बिल्ला अपने नए सूट पर तमगे की तरह सजाया। इसे लेकर उसकी कई अंग्रेज विद्यार्थियों के साथ हाथापाई हो गई।

'ये लोग और देशभक्त, छी-छी!' एक अंग्रेज प्रोफेसर ने हिकारत से हरनाम के तमगे की ओर देखते हुए उसका उपहास किया, 'ये तो लुटेरे और देशद्रोही थे। इस बिल्ले को उतार फेंको।'

'जी नहीं', हरनाम का दो टूक उत्तर था, 'हमारे यहाँ और शायद विश्व में हर कहीं, देश पर मरनेवालों को ही देशभक्त कहा जाता है···आपके यहाँ इन्हें देशद्रोही कहा जाता हो तो और बात है।'

'बकवास बंद करो।' प्रोफेसर गुस्से में चीखा। हरनाम सिंह तो चुप हो गया और उसने बिल्ला नहीं उतारा। परिणामस्वरूप उसे कक्षा से निकाल दिया गया और बाद में कॉलेज से भी। पंजाब ही के नाभा रियासत के एक अन्य जोशीले युवक आर.एम. खान के साथ भी यही हुआ। कई अन्य विद्यार्थियों को भी अपनी छात्रवृत्ति गँवानी पड़ी और इंग्लैंड छोड़कर स्वदेश लौटना पड़ा। पर दूसरी ओर कुछेक भारतीय ऐसे दब्बू भी निकले, जो अपने कमरों में ही मुँह छुपाए, दुम दबाए चुपचाप इन घटनाओं को दूर से ही देखते रहे। जीवनी लेखक कीर ने ऐसे अय्याश कायरों को 'अंग्रेज दाइयों की छाती से चिपके दुधमुँहे पिल्ले' कहकर लांछित किया है। वास्तव में इन भारतीय का लक्ष्य न तो ज्ञान प्राप्त करना था और न ही अपने साथियों को संगठित करना। उनका तो एकमात्र उद्देश्य था, भारत लौटकर अच्छी-से-अच्छी नौकरी प्राप्त करना। विलायत जाना ब्रिटिश शासकों की आँखों में एक बहुत बड़ी योग्यता थी। वहाँ से कोई डिग्री या डिप्लोमा लकर आना तो और भी ऊँची बात समझी जाती थी।

पर कैसी क्रूर विडंबना है कि जब देश स्वतंत्र हुआ तो इन्हीं दब्बुओं और पिछलग्गुओं को राष्ट्र के सर्वोच्च पदों पर आसीन किया गया। आज भी इन्हीं को भारत के स्वाधीनता संघर्ष का सरदार कहा जाता है।

ब्रिटिश सरकार में भी इन घटनाओं से काफी हलचल मची। 'द टाइम्स' व 'जॉनबुल' जैसे पत्रों ने अपने विशेष प्रतिनिधियों को इस समस्त कांड के सरगना सावरकर से भेंटवार्त्ता के लिए भेजा। पर जिस प्रकार के सावरकर की छवि लेकर वे 'इंडिया हाउस' गए, वह सावरकर से मिलते ही चूर-चूर हो गई। सावरकर के क्रांतिकारी कार्य-कलापों को लेकर जो छवि उनके मन पर अंकित थी, उसके अनुरूप इस व्यक्ति को हट्टा-कट्टा, दाढ़ी-मूँछ बढ़ाए, खौफनाक चेहरे, गरजती आवाज और दहकती आँखोंवाला गुस्सैल पुरुष होना चाहिए था। पर वे जिस सावरकर से मिले, वह एक मोहक आकृति, मधुर स्वरवाला और सुसंस्कृत सुशील युवक निकला।

'तार की भाँति छरहरे इस शरीर में बिजली की-सी कौंध है। ए वायरी बॉडी विद ए फायरी सोल', 'द टाइम्स' के संवाददाता ने उनके विषय में लिखा। 'जॉन बुल' के पत्रकार ने इस व्यक्ति के ललाट पर

एक विचित्र 'ओजस्विता की आभा' देखी। 'मैनचेस्टर गार्जियन' ने उसे 'ऐसे समर्पित व्यक्तित्व' की संज्ञा दी, 'जिसके समक्ष कोई भी शिथिल पड़ सकता है।' 'द डेली न्यूज' के संवाददाता ने यद्यपि सावरकर की विचारधारा की कड़ी आलोचना की, फिर भी वह उनके 'खनकते स्वर' से प्रभावित हुए बिना न रह सका।

अगले वर्ष १९०८ में फिर यही तूफान उठा, उसी ऐतिहासिक १० मई को, जिसकी प्रतीक्षा सावरकर आतुरता से कर रहे थे। बीते वर्ष की भाँति ही 'इंडिया हाउस' में एक सभा का आयोजन हुआ। इसके लिए जो निमंत्रण-पत्र छपे, वे भी प्रतिशोध व क्रांति की प्रतीक लाल स्याही में थे। 'द टाइम्स' ने उसे 'लाल दस्तावेज' की संज्ञा दी तथा हूबहू अपने पत्र में प्रकाशित भी किया—

'१८५७ के भारतीय राष्ट्रीय जागरण की स्मृति में रविवार, १० मई, १९०८ अपराह्न चार बजे इंडिया हाउस-६५, क्रामवेल एवन्यू, हाईगेट, उत्तर लंदन में भारतीयों की एक विराट् सभा होगी। आप और आपके सभी भारतीय मित्र सादर आमंत्रित हैं।'

सभा का सबसे ओजस्वी कार्यक्रम था सावरकर द्वारा पढ़ा गया 'हे हुतात्माओ' शीर्षक का वह लेख, जो विशेष रूप से इसी दिन के लिए लिखा गया था। इस क्रांतिकारी लेख को लेकर मिली-जुली प्रतिक्रियाएँ हुईं। एक ओर जहाँ अंग्रेजी समाचार-पत्रों ने इसे 'प्रतिशोधपूर्ण', 'देशद्रोहयुक्त', 'उकसाऊ', 'दिशाभ्रामक' आदि विशेषणों से संबोधित किया, वहाँ दूसरी ओर आयरलैंड के पत्रों ने इसे 'देशभक्ति का महाकाव्य' कहा। न्यूयॉर्क के ही एक अन्य आयरिश पत्र 'गैलिक अमेरिकन' ने इसे 'नस-नस में क्रांति की चेतना फूँक देनेवाला' संदेश कहा। चट्टानों को चीरने, पत्थर को पिघलाने, पानी में आग लगा देनेवाले और मृत में भी प्राण फूँक देनेवाले इस मूल अंग्रेजी लेख का एक अंश इस प्रकार है—

''वह भारतीय स्वातंत्र्य समर, जिसका उद्गम १० मई, १८५७ को हुआ, आज दिनांक १० मई, १९०८ को समाप्त नहीं हुआ है, और यह तब तक समाप्त नहीं होगा, जब तक ऐसी १० मई नहीं आती, जब इस महाक्रांति की संपूर्ण लक्ष्य-प्राप्ति न हो जाए, अर्थात् जिस दिन भोर की पहली किरण संपूर्ण स्वाधीनता के इस स्वप्न को साकार न कर दे, और जब तक भारत माँ के भाल पर उन मणियों का मुकुट न सुशोभित हो, जो या तो विजय की ज्योति से जगमगा रहा हो या फिर हुआत्माओं की रक्तिम आभा से।''

वास्तव में १९०७ में मनाई गई १८५७ की स्वर्ण-जयंती के बाद से ही (जिसमें सावरकर ने तथाकथित 'गदर' की कुसंज्ञा को नकारते हुए उसे 'स्वातंत्र्य समर' के नाम से सम्मानित किया था) सावरकर इस महान् घटना का सच्चा और सविस्तार इतिहास लिखने के लिए अधीर हो रहे थे। उनके मस्तिष्क में इस ऐतिहासिक क्रांति को लेकर ऐसा ग्रंथ रचने की परिकल्पना थी, जिसमें इस घटना के कारणों व परिणामों की निष्पक्ष विवेचना और व्याख्या हो सके।

ऐतिहासिक क्रांति पर ऐतिहासिक ग्रंथ

इतिहास के पुनर्लेखन की बात उनके मन में फाँस बनकर धँसती चली गई। अंतत: उन्होंने स्वयं ही इस कार्य का बीड़ा उठाया और जी-जान से इस कार्य में जुट गए। अब उनका अधिकांश समय विशाल इंडिया ऑफिस पुस्तकालय में ही बीतता। यहाँ आकर अध्ययन के लिए उन्हें विशेष आज्ञा भी एक अंग्रेज महिला ने दिलवाई, जो वहीं के एक बंगाली प्रबंधक श्री मुखर्जी की पत्नी थीं। सावरकर दिन-रात फाइलों और पुस्तकों के ढेर में डूबे रहते। विश्वास किया जाता है कि इस क्रांति से संबद्ध इस पुस्तकालय में शायद ही कोई दस्तावेज हो, जो सावरकर की नजर से न गुजरा हो। इतिहास ग्रंथ, डायरी, यात्रा-वर्णन, सैनिक-पत्राचार, युद्ध-संधियों के ब्योरे, चित्र-मानचित्र, अदालती काररवाइयाँ, समाचार-पत्रों की कतरनें और भी न जाने क्या-क्या। डेढ़ वर्ष जी-तोड़ परिश्रम करते हुए सावरकर ने लगभग १५०० संदर्भ-ग्रंथों का अध्ययन किया। अंतत: जो ग्रंथ प्रकाश में आया, उसने विश्व में हलचल मचा दी। इतिहास की इस ऐतिहासिक पुस्तक का 'रचना इतिहास' भी कितना रोमांचक है। इसके लिए स्वयं सावरकर द्वारा लिखित भूमिका एवं इसके प्रथम हिंदी अनुवादक पुणे के पंडित गणेश रघुनाथ वैशंपायन द्वारा विक्रमी संवत् २००३ में प्रकाशित पुस्तक के इतिहास एवं ग्रंथ के कुछेक प्रसंगों का उद्धरण आवश्यक है।

समर्पण एवं प्रथम संस्करण में लेखक की भूमिका

''स्वधर्म तथा स्वदेश की स्वतंत्रता के लिए लड़ते-लड़ते मरण का वरण करनेवाले हे वीरो! यह कृतज्ञ इतिहास पावन स्मृति में ही समर्पित है। स्वदेश के लिए युद्ध करने को सिद्ध हुए वीरो, तुम कौन थे? तुम्हारे नाम क्या थे? साधना की उज्ज्वल ज्योति तुम्हारे हृदय में प्रदीप्त हो उठने पर तुम्हारा नेतृत्व करनेवाला वह वीर कौन था, जिसने तुम्हें इस भयंकर रण की प्रेरणा दी थी? हमारा कितना दुर्भाग्य है कि मानवता की सेवा के लिए अपने प्राणों को समर्पित करनेवालो, तुम्हारे नाम और तुम्हारा ठाँव भी हमें विदित नहीं। तो फिर यह इतिहास रचना तुम्हारी गुमनाम स्मृति को ही समर्पित है। विजय भले ही तुम्हारे हाथों से निकल गई हो, किंतु तुमने अपनी आन और सम्मान तथा यश पर आँच नहीं आने दी। तुम्हारा रक्त भूतकाल की तिलांजलि और आगामी वीरों के लिए संजीवनी सिद्ध हो। तुम्हारे पराक्रम से अतीत की कीर्ति को चार चाँद लगें और वह भविष्य की प्रेरणा तथा चैतन्य की निधि बने, यही आकांक्षा है।''

—वि.दा. सावरकर

भूमिका

५० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। परिस्थितियाँ भी बदल गई हैं तथा दोनों पक्षों के प्रमुख अभिनेता भी काल कवलित हो चुके हैं। अब १८५७ का युद्ध प्रचलित राजनीतिक क्षेत्र की सीमाओं को पार कर गया है, अत: उसे इतिहास की श्रेणी में स्थान देना ही उपयुक्त होगा।

उपरोक्त दृष्टि से जब मैंने १८५७ के विद्रोह के भव्य और महान् दृश्य का सूक्ष्म निरीक्षण करना आरंभ किया तो मैं आश्चर्यचकित रह गया। मैंने देखा कि दिवंगत वीरों की आत्माएँ शहादत के तेज और आशा से प्रदीप्त हो रही थीं। मुझे उनके भस्मावशेषों में भी प्रेरणा के पुष्प परिलक्षित हुए। इतिहास के एक नितांत उपेक्षित कोने में गहराई से दबा

दिए गए इस दृश्य को देखकर मेरे देशबंधु भी निराशा का ही अनुभव करेंगे। किंतु वह निराशा नितांत ही मधुर होगी। मैं खोज की किरणों के द्वारा उस समय का वास्तविक दृश्य अपने देशवासियों के समक्ष प्रस्तुत करूँगा। इसी भावना से मैं चेष्टारत रहा और आज मैं भारतीय पाठकों के समक्ष १८५७ की घटनाओं का महत्त्वपूर्ण और रोमांचकारी चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ हो पाया हूँ।

जिस राष्ट्र को अपने अतीत के संबंध में ही वास्तविक ज्ञान न हो, उसका कोई भविष्य भी नहीं होता। किंतु जहाँ यह तथ्य है, वहाँ यह भी एक महान् सत्य है कि किसी राष्ट्र को अपने गौरवपूर्ण अतीत की मस्ती में ही लिप्त न रहते हुए भविष्य को सँवारने की दृष्टि से भी उसका उपयोग करने की क्षमता संपादित करनी अपेक्षित है। किसी राष्ट्र को अपने देश के इतिहास का दास नहीं, अपितु स्वामी बनना चाहिए, क्योंकि अतीत के कार्यों की पुनरावृत्ति महत्त्वपूर्ण होने पर भी वज्रमूर्खता ही है। छत्रपति शिवाजी के समय में मुसलमानों के प्रति द्वेष-भावना न्यायपूर्ण भी थी और आवश्यक भी। किंतु केवल उसी स्थिति को आधार बनाकर आज भी उसी द्वेष-भावना को पनपाना मूर्खता ही होगी।

इस ग्रंथ में मैंने जो प्रमाण प्रस्तुत किए हैं, वे प्राय: अंग्रेज लेखकों द्वारा लिखित विवरणों से ही लिये गए हैं। अपने पक्ष के क्रियाकलाप का विवरण उन्होंने जिस विस्तार तथा श्रद्धासहित किया है, उतनी ही निष्क्रियता सहित दूसरे पक्ष के क्रियाकलाप का विवरण प्रस्तुत करने का न्याय उनके द्वारा प्रदर्शित किया जाना असंभव था। यह भी संभव है कि इस ग्रंथ में वर्णित अनेक प्रसंग त्रुटिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत हुए हों अथवा अनेक आवश्यक प्रसंगों का उल्लेख करना भी रह गया होगा, किंतु आज भी यदि कोई देशभक्त इतिहास-लेखक उत्तर भारत में जाकर उन लोगों से जानकारी उपलब्ध करे, जिन्होंने प्रलयंकर संग्राम को अपनी आँखों से देखा है अथवा जिन्होंने इसमें योगदान भी दिया है, तो आज भी इस महान् युद्ध के संबंध में वास्तविक तथ्यों को सुरक्षित रखने के साधन उपलब्ध हो सकते हैं। यदि शीघ्रातिशीघ्र इस दृष्टि से प्रयास न किया गया तो फिर वे साधन उपलब्ध न हो सकेंगे। एक अथवा दो दशकों में इस युद्ध का दर्शन करनेवाली अथवा सक्रिय योगदान देनेवाली पीढ़ी ही लुप्त हो जाएगी। जब उन महान् वीरों का साक्षात् दर्शन तो कर ही नहीं पाएँगे, हमारे लिए उनके कार्यों का पूर्ण विवरण भी इतिहास में प्रस्तुत कर पाना असंभव हो जाएगा। क्या अत्यधिक विलंब हो जाने के पूर्व ही कोई देशभक्त इतिहासकार इस महान् राष्ट्रीय क्षति को रोकने के लिए कृतसंकल्प नहीं होगा?

१८५७ का भारतीय 'स्वातंत्र्य समर' जिस प्रकार वस्तुस्थिति का विवरण प्रस्तुत करनेवाला रोमांचक इतिहास है, उसी प्रकार इस ग्रंथ का अपना ही रोमांचकारी इतिहास है। ग्रंथ के लेखक स्वर्गीय स्वातंत्र्य वीर सावरकर का महान् जीवन-वृत्त तो अनेक अद्‌भुत प्रसंगों से परिपूर्ण रहा ही, किंतु इस ग्रंथ के लेखन और प्रकाशन की कहानी भी अद्‌भुत और अनुपम है। जिस प्रकार कंस की अत्याचारी सत्ता ने भगवान् श्रीकृष्ण को जनमते ही नहीं, वरन् जन्म लेने से पूर्व हत्या कर देने का निश्चय किया था, उसी प्रकार ब्रिटिश शासन ने भी इस ग्रंथरूपी कृष्ण को जन्म (मुद्रित होने) से पूर्व ही मार डालने की ठान ली थी। भगवान् कृष्ण के समान इस ग्रंथ को भी महाकाल की क्रूर दृष्टि से बचने के लिए दूर-दूर जाना पड़ा।

इस ग्रंथ में जिन महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया गया है, उनमें से छोटी-से-छोटी घटना को भी प्रामाणित ग्रंथों के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है।

अंत में मैं अपनी यह इच्छा भी व्यक्त कर देना अपना पावन कर्तव्य समझता हूँ कि शीघ्रातिशीघ्र किसी भारतीय लेखक द्वारा १८५७ की यह महान् गाथा ऐसे ढंग से लिखी जानी चाहिए कि वह विस्तार से लिखित होने पर भी सुसंगत हो और देशभक्ति से ओत-प्रोत होने पर भी इतिहास की दृष्टि से प्रामाणिक हो। यह गाथा इतनी सुंदर होनी चाहिए कि मैंने जो यह विनम्र ग्रंथ की रचना की है, लोग उसे शीघ्रातिशीघ्र विस्मृत कर दें।

लंदन — विनायक दामोदर सावरकर

१० मई, १६०७

ग्रंथ का रोमांचकारी इतिहास

१८५७ का भारतीय 'स्वातंत्र्य समर' जिस प्रकार वस्तुस्थिति का विवरण प्रस्तुत करनेवाला रोमांचक इतिहास है, उसी प्रकार इस ग्रंथ का अपना ही रोमांचकारी इतिहास है। ग्रंथ के लेखक स्वर्गीय स्वातंत्र्य वीर सावरकर का महान् जीवन-वृत्त तो अनेक अद्‌भुत प्रसंगों से परिपूर्ण रहा ही, किंतु इस ग्रंथ के लेखन और प्रकाशन की कहानी भी अद्‌भुत और अनुपम है। जिस प्रकार कंस की अत्याचारी सत्ता ने भगवान् श्रीकृष्ण को जनमते ही नहीं, वरन् जन्म लेने से पूर्व हत्या कर देने का निश्चय किया था, उसी प्रकार ब्रिटिश शासन ने भी इस ग्रंथरूपी कृष्ण को जन्म (मुद्रित होने) से पूर्व ही मार डालने की ठान ली थी। भगवान् कृष्ण के समान इस ग्रंथ को भी महाकाल की क्रूर दृष्टि से बचने के लिए दूर-दूर जाना पड़ा।

ग्रंथ को लिखने के उद्‌देश्य का स्पष्टीकरण स्वयं वीर सावरकर ने ही 'अभिनव भारत' की ओर से 'तलवार' नामक पत्र में प्रकाशित अपने एक लेख में व्यक्त कर दिया था। यह पत्र पेरिस से प्रकाशित हुआ करता था। स्वातंत्र्य वीर सावरकर ने अपने इस लेख में लिखा था कि ''स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए भारत एक बार पुन: उठे और पराधीनता से मुक्ति के लिए भारतीय जनता का स्वातंत्र्य युद्ध यशस्वी हो। यही १८५७ का स्वातंत्र्य समर नामक ग्रंथ लिखे जाने का उद्‌देश्य है।'' वीर सावरकर चाहते थे कि स्वातंत्र्य युद्ध की सफलता हेतु राष्ट्र पूरी तरह तैयार हो। इस कार्य के लिए जो संगठन तथा कार्यपद्धति क्रांतिकारी दल के सदस्यों को अपनानी आवश्यक है, उसकी रूपरेखा इस ऐतिहासिक ग्रंथ के पुरोधाओं के मुख से अपने विचारों और कार्यपद्धति का दिग्दर्शन जनता जनार्दन को कराया।

सन् १९०७ में जिन दिनों स्वातंत्र्य वीर सावरकर ने इस ग्रंथ की

रचना की, उन दिनों देश की परिस्थिति भी कम विपरीत न थी। क्रांति का खुला समर्थन करना तो दूर, इंडियन नेशनल कांग्रेस के नरमदलीय नेता इस शब्द का उच्चारण मात्र सुनने से घबराते थे। ऐसे समय कांग्रेस के मंच से ब्रिटिश शासन के समक्ष झोली फैलाकर सुधारों की भीख माँगना ही पुनीत कार्य समझा जाता था। स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए क्रांति के शब्दों से भी उस समय के महान् नेतागण परिचित नहीं थे। इस विपरीत परिस्थिति में भी भारत की तरुणाई के सुप्त पौरुष को जाग्रत् करने के लिए ही सावरकर ने इस ग्रंथ की रचना की थी।

वह ग्रंथ, जिसने ब्रिटिश सत्ता को हिला दिया

वीर सावरकर की यह निश्चित मान्यता थी कि सैनिकों और सैनिक विभागों में राष्ट्रभक्ति की पावन ज्योति को जाग्रत् किए बिना क्रांति का स्वप्न कदापि साकार नहीं हो सकता। इस ग्रंथ की रचना से ५० वर्ष पूर्व हुए इस क्रांति समर के इतिहास ने यह तथ्य असंदिग्ध रूप में प्रस्तुत कर दिखाया कि हमारे महान् पूर्वजों ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अंग्रेजों की सेना के ही भारतीय सैनिकों का सक्रिय ही नहीं, अपितु सशस्त्र सहयोग प्राप्त करने में भी सफलता प्राप्त की थी। उन्होंने भारत माता को पराधीनता की शृंखलाओं से मुक्ति दिलाने हेतु सशस्त्र संग्राम का आयोजन कर स्वातंत्र्य लक्ष्मी का जय-जयकार किया था।

वीर सावरकर ने इस सत्य को हृदयंगम कर लिया था कि यदि १८५७ के महान् संग्राम के इतिहास को क्रांतिकारी दृष्टिकोण से भारतवासियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा तो भारत की तरुणाई में एक नवीन जागृति और स्फूर्ति की लहर व्याप्त होगी और वह अँगड़ाई लेकर उठ बैठेगी। उसे इस बात का विश्वास हो जाएगा कि आज की स्थिति में १८५७ के प्रयोग का पुन: परीक्षण ही स्वातंत्र्य आंदोलन की सुनिश्चित सफलता का केंद्र-बिंदु सिद्ध होगा। भारतवासियों को उनके हृदय की भाषा में ही इस महान् राष्ट्रीय संग्राम का विवरण वीर सावरकर ने इस महान् ग्रंथ के माध्यम से सुनाया है।

वीर सावरकर ने १९०७ में जब अपने इस ग्रंथ की मराठी भाषा में रचना पूर्ण की, उस समय उनकी आयु केवल २४ वर्ष की थी। लंदन में अभिनव भारत की ही एक शाखा 'फ्री इंडिया सोसाइटी' की बैठकों में सावरकर इस ग्रंथ के कतिपय अध्यायों का अंग्रेजी अनुवाद अपने भाषणों के माध्यम से प्रस्तुत किया करते थे। संभवत: इन्हीं भाषणों के आधार पर ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के सतर्क अधिकारियों को इस ग्रंथ की मूल प्रवृत्ति का अनुमान लग गया था। वे समझ गए थे कि यह ग्रंथ नितांत विद्रोह-प्रेरक कृति होगी। कुछ ही दिनों में वीर सावरकर ने देखा कि उनके इस मूल ग्रंथ के दो अध्याय ही लुप्त हो गए हैं। उन्हें कुछ समय पश्चात् विदित हुआ कि ये दोनों अध्याय किसी-न-किसी माध्यम से स्कॉटलैंड यार्ड की गुप्तचर पुलिस के अधिकार में जा पहुँचे हैं। किंतु इस घटना से वे निराश नहीं हुए। क्रांतिकारियों ने भारतीय कस्टम विभाग और डाक-विभाग की क्रूर और गिद्ध दृष्टि से बचाकर इसकी मूल पांडुलिपि भारत पहुँचा दी थी। ग्रंथ तो इच्छित स्थान पर पहुँच गया, किंतु क्रांति के इस ज्वालापुंज पर दृष्टिपात करते ही महाराष्ट्र के बड़े-से-बड़े मुद्रणालयों का भी साहस ठंडा गया और उनमें से कोई भी इसको प्रकाशित न कर पाया। अंतत: अभिनव भारत के ही एक सदस्य, स्वराज्य नामक पत्र के संपादक ने इस ग्रंथ को अपने मुद्रणालय में मुद्रित करने का संकल्प लिया। किंतु ब्रिटिश सरकार भी पूर्णत: सतर्क और सजग थी। अत: ज्यों ही उन्हें यह सूचना प्राप्त हुई कि महाराष्ट्र में ही इस ग्रंथ का मुद्रण आरंभ हो रहा है तो उसने तत्काल भारत सरकार को सूचित कर दिया और सभी प्रमुख मुद्रणालयों पर छापे मारे गए तथा तलाशियाँ ली गईं।

अभिनव भारत के जिस साहसी सदस्य के पास यह पांडुलिपि थी उसे सौभाग्यवश पुलिस के ही एक अधिकारी ने छापा मारे जाने से पूर्व ही इसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। इस स्थिति में ग्रंथ के मुद्रित होने की कोई आशा ही नहीं रह गई थी। अत: यह पांडुलिपि लंदन तो नहीं, किंतु पेरिस भेज दी गई और वहाँ से वह स्वातंत्र्य वीर सावरकर के पास पहुँच गई। भारत में इस ग्रंथ का मुद्रित हो पाना तो अब असंभव ही है, यह समझकर १९०८ में इसे जर्मनी में मुद्रित कराने का निश्चय किया गया, क्योंकि वहाँ संस्कृत ग्रंथ मुद्रित होते थे। किंतु जर्मनी के कंपोजीटरों को तो मराठी भाषा से नाममात्र का भी परिचय नहीं था, साथ ही वहाँ का देवनागरी टाइप भी बड़ा भद्दा और विचित्र था। अत: पर्याप्त व्यय करने के पश्चात् इस विचार का परित्याग करना पड़ा।

इन सब असुविधाओं को दृष्टिगत रखकर अब इस ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद करने का निश्चय किया गया और इंग्लैंड में आई.सी.एस. तथा बैरिस्टरी का अध्ययन करनेवाले बैरिस्टर फड़के तथा श्री अय्यर आदि भारतीय छात्रों ने यह दायित्व सँभाला। ये छात्र अभिनव भारत के छात्र थे। जब इसका अंग्रेजी अनुवाद पूर्ण हो गया तो श्री वी.वी.एस. अय्यर ने इसको पूर्णरूपेण पढ़कर भाषा प्रवाह की दृष्टि से एकरूपता प्रदान की और अब उन्हीं के निरीक्षण में इसको इंग्लैंड में ही मुद्रित कराने का निर्णय किया गया। किंतु ब्रिटिश गुप्तचर भी निरंतर सक्रिय थे। अत: उन्होंने इस ग्रंथ को जब्त करने आदि की धमकियाँ देकर उसका वहाँ मुद्रण असंभव बना दिया। अब यह अंग्रेजी पांडुलिपि पेरिस भेजनी पड़ी। किंतु उन दिनों फ्रांसीसी सरकार भी ब्रिटेन से डरती थी। अत: अंग्रेजों के इंगित पर फ्रांसीसी गुप्तचरों ने भी दमन और आतंक के हथकंडे अपनाए। परिणामत: यह ग्रंथ फ्रांस में भी न छप सका। किंतु इन संपूर्ण परिस्थितियों में भी क्रांतिकारी हताश नहीं हुए। अब उन्होंने हॉलैंड के एक मुद्रणालय को वीर सावरकर के इस महान् ग्रंथ को मुद्रित करने के लिए तैयार कर

लिया। साथ ही उन्होंने जोर-शोर से यह प्रचार भी किया कि ग्रंथ का मुद्रण फ्रांस में हो रहा है। अंग्रेजों के गुप्तचरों ने फ्रांस के सभी मुद्रणालयों का कोना-कोना छान मारा, किंतु उन्हें ग्रंथ के स्थान पर केवल निराशा ही हाथ लगी। इससे पहले कि हॉलैंड में इस ग्रंथ का मुद्रण के संबंध में ब्रिटिश गुप्तचरों को कुछ विदित हो पाता। यह ग्रंथ मुद्रित होकर तैयार हो गया। वहाँ से इसकी सभी प्रतियाँ फ्रांस पहुँचा दी गईं, जहाँ उन्हें गुप्त रूप से प्रसारित करने हेतु छिपाकर रखने की व्यवस्था की गई थी। वीर सावरकर की क्रांतिकारी भावगति और इस ग्रंथ में प्रस्तुत प्रामाणिक जानकारी की कल्पना मात्र से ही अंग्रेज गुप्तचर प्रकंपित थे। मुद्रण और भाषण स्वातंत्र्य का डिंडिम नाद करनेवालों ने इस ग्रंथ के संबंध में यह निश्चित समझकर भी कि इस ग्रंथ का मुद्रण अभी नहीं हो पाया है, इस पर प्रतिबंध लगा दिया था। प्रकाशित होने से पूर्व ही किसी पुस्तक पर प्रतिबंध लगाए जाने की यह घटना विश्व में अभूतपूर्व थी।

हॉलैंड में इस पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण के प्रकाशित होने के उपरांत इसकी सैकड़ों प्रतियाँ अनेक उपायों द्वारा भारत भेजी गईं। एक उपाय यह था कि इन प्रतियों पर 'पिकविक पेपर्स', 'स्काट्स वर्क्स', 'डान क्विकजोट' आदि के आवरण चढ़ा दिए जाते थे। कतिपय प्रतियाँ कृत्रिम खानोंवाले संदूकों में भी भेजी गईं। इसी प्रकार का एक संदूक स्वर्गीय सर सिकंदर हयात खाँ भारत लाए थे। वह भी अभिनव भारत के सक्रिय सदस्य थे और उन दिनों लंदन में ही छात्र थे। उनका इस महान् ग्रंथ की प्रतियों से भरा हुआ संदूक गुप्तचर विभाग की गुप्त दृष्टि से सकुशल बच निकला। इसी प्रकार यह पुस्तक अनेक वरिष्ठ नेताओं, पुस्तकालयों, महाविद्यालयों और क्रांतिकारियों तक ही नहीं पहुँची, अपितु सैनिकों के पास भी जा पहुँची। तदुपरांत १९०९ में इस पुस्तक का फ्रांस से प्रकाशन हुआ और आयरलैंड, फ्रांस, रूस, जर्मन, मिस्र तथा अमरीका के क्रांतिकारियों ने भी इस महान् ग्रंथ का खुले हृदय से स्वागत किया। इधर १९१० ई. में इंग्लैंड तथा भारत के शासकों ने अभिनव भारत के दमन का कार्यक्रम अपनी पूर्णशक्ति से चलाया। कई क्रांतिकारी फाँसी पर लटका दिए गए तो अनेक को कालापानी की काल कोठरियों में ठूँसकर नारकीय यातनाएँ दी गईं। वीर सावरकर को भी इसी वर्ष दो जन्मों के आजन्म कारावास (५० वर्ष) का कठोर और अभूतपूर्व दंड दिया गया। उनका यह दंड विश्व के इतिहास की अनोखी घटना है।

२५५-सी, मियाँवाली कॉलोनी
गुरुग्राम-१२२००१ (हरियाणा)
दूरभाष : ०९५८२२२२८४२

कविता

माँ, मुझको तू मनु ही कहना

● प्रतिमा अखिलेश

न शृंगार न कोई गहना
मुझको सैनिक भेष में रहना,
सीमा प्रहरी बनूँ देश की
माँ! मुझको तू मनु ही कहना।

मनु नाम में छिपी धीरता
शक्ति साहस शौर्य वीरता,
बलिदानी रानी की स्मृति
इसी नाम में जीवित है न,
माँ! मुझको तू मनु ही कहना।

मुक्त गगन साँसें गरबीली
भावनाएँ मन में जोशीली,
आज हमें देने की खातिर
कल रानी ने कफन था पहना,
माँ! मुझको तू मनु ही कहना।

मैं प्रतिरूप नए देश का
नूतन क्षमता परिवेश का,
कर्मपथ पर ध्वज फहराती
आज गढ़ूँ अपनी नई सेना,
माँ! मुझको तू मनु ही कहना।

कितना मुश्किल है माँ घर में
छिपे शुत्र से लड़ना, पर मैं,
प्रबल वेग से टूट पड़ूँगी
कोई मुझे छोटा समझे न,
माँ! मुझको तू मनु ही कहना।

कंगन नहीं कृपाण चाहिए
गद्दारों के प्राण चाहिए,
एक अश्व विश्वासों का और
सुंदर-मुंदर सी दो बहना,
माँ! मुझको तू मनु ही कहना।

मोतीबाई जूही झलकारी
बन जाए जो आज की नारी,
तो फिर मुश्किल नहीं जरा भी
दुर्ग दुर्विचारों के ढहना,
माँ! मुझको तू मनु ही कहना।

नहीं डरूँगी दुर्गम पथ से
महामेघ के उड़ते रथ से,
मेरे हौसले सीख गए हैं
आँधी औ' वर्षा को सहना,
माँ! मुझको तू मनु ही कहना।

दृढ संकल्प किया है मैंने
महासंग्रामी इस जीवन में,
होके विवश जीने से अच्छा,
है अंगार बनकर दहना,
माँ! मुझको तू मनु ही कहना।

दादू मोहल्ला, संजय वार्ड,
सिवनी-४८०६६१ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४०७८१४९७५

अब यह सच पढ़ाया जाए

सुभाष बाबू ने अंग्रेजों को भगाया

● श्यामसुंदर पोद्दार

मोदी सरकार ने सुभाष बाबू से संबंधित सभी गोपनीय फाइलों को सार्वजनिक कर दिया है। अब उनका कर्तव्य है कि सुभाष बाबू के साथ राजनेताओं व इतिहासकारों द्वारा किए गए अन्याय से उन्हें न्याय दिलवाए।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस

कांग्रेस के हाथों में सत्ता का हस्तांतरण इसलिए नहीं हुआ था कि उन्होंने अंग्रेजों को हिंदुस्तान से भगाया था। उनके हाथों सत्ता का हस्तांतरण इसलिए हुआ था कि उन्होंने १९४५ के केंद्रीय असेंबली का चुनाव इस आश्वासन के आधार पर जीता था कि देश का विभाजन कांग्रेस कभी नहीं होने देगी। इससे पहले १९४२ के कांग्रेस के 'भारत छोड़ो आंदोलन' को पूर्णत: विफल करने के बाद ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विन्सेंट चर्चिल ने गर्व के साथ कहा था, 'मैं महामहिम सरकार का प्रधानमंत्री इसलिए नहीं हूँ कि ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त कर दूँ।'

३ जून, १९४७ को प्रधानमंत्री सर क्लीमेंट एटली ने ब्रिटेन की संसद् में इंडिया इंडिपेंडेंस एक्ट संसद् पटल पर रखा, तब विपक्ष के नेता विन्सेंट चर्चिल ने प्रधानमंत्री सर एटली से प्रश्न किया कि इस कानून को पास करने के अलावा कोई विकल्प नहीं कि भारतवर्ष को स्वाधीन न करके ब्रिटेन के लिए बचाया जा सके। ब्रिटेन के हाथ से भारतवर्ष निकला जा रहा है। इससे अत्यंत दु:खी सर एटली अधिक कुछ नहीं कह सके। सर चर्चिल ने प्रश्न का उत्तर सिर्फ दो वाक्यों में दिया— भारतवर्ष को स्वतंत्रता प्राप्त करने का कारण वहाँ की सेना सिर्फ रोटी के लिए अंग्रेजों की वफादार नहीं रही एवं ब्रिटेन के पास वह शक्ति नहीं है कि हिंदुस्तानी सेना को अपने नियंत्रण में रख सके।

हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम गिराने के बाद जब जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया तब १५ अगस्त, १९४५ को सुभाष बाबू ने कहा था—हमारी आजादी की लड़ाई जारी रहेगी और एक दिन हम आजाद होंगे।

आजाद हिंद आंदोलन के चलते स्वाधीनता आंदोलन में एक नई उपलब्धि हुई। रोटी-रोजी के चलते अंग्रेजों के प्रति वफादार रहनेवाली भारतीय सेना देश के स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति वफादार बन गई। इसका चरम प्रहार १८ फरवरी, १९४६ को देखने को मिला और यह स्वतंत्रता संग्राम का स्वर्णिम दिवस बन गया। जब भारतीय नौसेना के सैनिकों ने बंबई में एच.एन.आई.एम. के ऊपर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। दूसरी तरफ यह विद्रोह नौसेना के २२ जहाजों व तटवर्ती नौ वाहिनी में फैल गया। २१ फरवरी, १९४६ कासल बैरक में नौसेना के सैनिकों ने स्वाधीनता का प्रयत्न आरंभ कर दिया। कराची में विद्रोह आरंभ हुआ। हिंदुस्तान से ब्रिटेन की सेना पर तोपें दागी जानी लगीं। यूनियन जेक उतारकर तिरंगा झंडा फहराने लगा।

बंबई व कलकत्ता के बाद दूसरे शहर प्रतिवाद में मुखर होने लगे। अंग्रेज आतंकित हो गए। पुलिस थाना, डाकघर, ट्राम, डिपो व शराब की दुकानें जलाई जाने लगीं। वाई.एम.सी.ए. के केंद्र भी अछूते नहीं रहे। सब मिलाकर ७८ जहाज, २० बेड़ा व २० हजार के लगभग नौसेना के सैनिक इस विद्रोह में शमिल हुए। इसके साथ-साथ बंबई, मद्रास, पुणे, कलकत्ता, जशोहर तथा अंबाला में भारतीय वायु सेना के सैनिकों ने हड़ताल आरंभ कर दी। अंग्रेज शासक भारतीय सैनिकों के विद्रोह से थर-थर काँपने लगे।

चारों तरफ अपनी विजय के अभियान में पागल ब्रिटिश शासकों ने आजाद हिंद फौज के सेनापति व सैनिकों पर अत्याचार किए। इनको वैधानिक दंड देने की व्यवस्था कायम की। ब्रिटिश सरकार के प्रधान सेनापति ने आजाद हिंद फौज के सेनापति सहगल, ढिल्लों और शाहनवाज को आजीवन कारावास की सजा सुनाई। इस दंड प्रक्रिया स्वरूप उत्पन्न नौसेना विद्रोह से लेकर जन विद्रोह को दबाने में असमर्थ भारतीय नेताओं को बुलाकर कहा, 'अविलंब आप लोग इस विद्रोह को शांत करवाइए। विद्रोही सैनिकों से कह दीजिए कि आजाद हिंद फौज के सेनापति व

पेशे से इंजीनियर एवं उद्यमी, पर विगत चार दशकों से स्वतंत्र लेखन, जो समाचार-पत्रों में सतत प्रकाशित होते रहते हैं। इनके ऐतिहासिक शोधों की पाठकों में बड़ी सराहना होती है।

अन्य सैनिकों का कारादंड प्रधान सेनापति माफ करेंगे व भारतवर्ष को आजादी दी जाएगी।' २३ जनवरी, १९४६ के दिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सरदार पटेल व मुसलिम लीग के जिन्ना इस समाचार को लेकर बंबई गए एवं विद्रोही सैनिकों को आश्वासन दिया कि अविलंब आजाद हिंद फौज के सेनापति व सैनिकों की दंड प्रक्रिया बंद होगी। हम लोग जल्द ही स्वाधीनता प्राप्त करेंगे। आप लोग अपनी-अपनी जगह चले जाएँ।

स्वतंत्र भारत के राजनेताओं ने देश को आजादी दिलानेवाले सुभाष बाबू व आजाद हिंद फौज के साथ कैसा व्यवहार किया, उसको दिखाने के लिए आजाद हिंद फौज की डॉक्टर कर्नल लक्ष्मी सहगल ने मुझे ९ दिसंबर, २००४ को एक पत्र लिखा, उसके कुछ अंश प्रस्तुत कर रहा हूँ—

''१९४७ में देश के आजाद होने के बाद से ही मैं लगातार देश के प्रधानमंत्रियों, विशेष रूप से पंडित जवाहरलाल नेहरू से संपर्क कर देश की आजादी में सुभाष चंद्र बोस और आई.एन.ए. के योगदान को मान्यता देने की माँग को लेकर संपर्क करती आ रही हूँ। यहाँ तक कि हमारे दुश्मन (ब्रिटिशों) ने खुलेआम स्वीकार किया कि हम सुभाषचंद्र बोस व आई.एन.ए. के कारण भारत को आजाद कर रहे हैं, क्योंकि उन्होंने भारतीय सेना की वफादारी बदल दी, लेकिन आज तक आई.एन.ए. को 'देशद्रोही' माना जाता है।''

—आपकी

—डॉ. (कर्नल) लक्ष्मी सहगल, आई.एन.ए.

भारतीय सैनिकों में सुभाष बाबू की लोकप्रियता को देखकर नेहरू सरकार ने सेना के बंबई मुख्यालय से १६ फरवरी, १९४९ के आदेश संख्या एस १५५२११-१ द्वारा सुभाष चंद्र बोस की फोटो लगाने, दिखाने व चिपकाने की मनाही कर दी।

सुभाष बाबू व आजाद हिंद फौज के साथ पिछली सरकारों ने जो अन्याय किया है, मोदी सरकार को उसे तुरंत समाप्त कर आनेवाली पीढ़ी को इतिहास की सटीक जानकारी देनी चाहिए।

पोद्दार विहार, प्लॉट नं. ११४१,
मधुसूदन नगर, तुलसीपुर
कटक-७५३००८ (उड़ीसा)
दूरभाष : ०९८६१०१३१५५

वेलू थंपी

● **श्रीकृष्ण 'सरल'**

ट्रावनकोर राज्य की प्रजा अपने ही राज्य के दीवान के अत्याचारों से दु:खी हो गई। वह उनपर झूठे-झूठे आरोप लगाकर, उन्हें जेल में डालकर यातनाएँ देता था। वह दीवान अपने राजा के पास इन लोगों को पहुँचने नहीं देता था। इस कारण राजा को असलियत का पता ही नहीं चलता था।

उस राज्य में वेलू थंपी नाम का एक होनहार, योग्य एवं पहुँचवाला व्यक्ति था, जो कभी-कभी महाराज से मिल आया करता था। ट्रावनकोर की जनता ने वेलू थंपी को ही माध्यम बनाकर अपनी फरियाद अपने राजा बलराम वर्मा के पास भिजवाई। महाराज वेलू थंपी पर विश्वास करते थे। उन्होंने अपने राज्य के दीवान के कार्यों की गुप्त जाँच की और जनता तथा वेलू थंपी की शिकायत को सही पाया। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने पूर्व दीवान को गिरफ्तार करके उसके स्थान पर वेलू थंपी को ही दीवान नियुक्त कर दिया।

इस मामले में अंग्रेज रेजीडेंट मकाले ने हस्तक्षेप किया; क्योंकि उसे पूर्व दीवान ने घूस दे-देकर खुश कर लिया था। रेजीडेंट मकाले ने ट्रावनकोर के महाराज बलराम वर्मा को आदेश दिया कि वे पूर्व दीवान को पुनर्स्थापित करके वेलू थंपी को गिरफ्तार कर लें। राजा ने यह आदेश मानने से इनकार कर दिया। फलस्वरूप युद्ध की नौबत आ गई। रेजीडेंट के पास एक विशाल सेना रहा करती थी, जिसका खर्च राजा को देना पड़ता था। मकाले की सेना ने ट्रावनकोर राज्य पर आक्रमण कर दिया। वेलू थंपी स्वयं राजा की ओर से युद्ध का संचालन कर रहा था। सन् १८०८ में दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में अंग्रेजी सेना की पराजय हुई और रेजीडेंट मकाले को ट्रावनकोर से भागना पड़ा। उसने मद्रास से बहुत बड़ी कुमुक मँगवाकर ट्रावनकोर राज्य पर भयानक आक्रमण कर दिया। उसकी सेना बहुत विशाल और शस्त्र-सज्जित थी।

वेलू थंपी ने सोचा कि व्यर्थ ही जनता का खून-खराबा होगा। उसने अपने राजा को परामर्श दिया कि आप मुझे विद्रोही घोषित करके मेरे भाग जाने की खबर फैला दें। जब अंग्रेजी सेना को यह खबर मिली तो उसने वेलू थंपी की खोज प्रारंभ कर दी। एक देशद्रोही ने अंग्रेजी सेना को यह सूचना दे दी कि वेलू थंपी नगर के बाहर पुराने मंदिर में छिपा हुआ है। अंग्रेजी सेना ने वेलू थंपी को पुराने मंदिर में घेर लिया।

अंग्रेजों के हाथों गिरफ्तार होने के स्थान पर वेलू थंपी ने आत्मबलिदान का सहारा लिया। उसने अपनी कटार से स्वयं अपनी इहलीला समाप्त कर ली।

आलेख

काकोरी-कांड : ऐतिहासिक मोड़सूचक घटना

● मदनलाल वर्मा 'क्रांत'

जैसा कि हम इतिहास के माध्यम से जान चुके हैं कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध पहले सेना खड़ी हुई, फिर समृद्ध वर्ग उठा और उसके बाद मध्ययम वर्ग भी खुलकर सामने आ गया। डकैतियों के द्वारा उन अमीरों से पैसा लूटा जाता था, जो संपन्न वर्ग के थे तथा अंग्रेजों की सहायता करते थे और इससे प्राप्त धन का उपयोग क्रांतिकारी कार्यों में ही किया जाता था, व्यक्तिगत कार्यों में नहीं।

ऐतिहासिक काकोरी रेलवे स्टेशन

मैनपुरी षड्यंत्र : सुविख्यात लेखक श्री मन्मथनाथ गुप्त के शब्दों में संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) में यही एक ऐसा षड्यंत्र था, जिस पर बंगाल के क्रांतिकारियों का कोई प्रभाव नहीं था। इसके कर्ता-धर्ता पं. गेंदालाल दीक्षित थे। उन्होंने 'शिवाजी समिति' के नाम से एक संस्था बना रखी थी। लक्ष्मणानंद ब्रह्मचारी के साथ मिलकर यमुना और चंबल के बीच रह रहे कई कुख्यात डाकुओं को इस संस्था के अंतर्गत संगठित किया। पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' १६ वर्ष की आयु में ही इनके दल में शामिल हो गए थे। 'मैनपुरी की प्रतिज्ञा', जो एक लंबी कविता के रूप में थी, 'बिस्मिल' ने ही लिखी थी। इनकी काव्य-प्रतिभा और राष्ट्रभक्ति से गेंदालाल बहुत ही प्रभावित हुए और इन्हें अपने दल का सक्रिय सदस्य बना लिया। गेंदालालजी ने 'बिस्मिल' के साथ ग्वालियर राज्य में कई डाके डलवाए, जिनमें शाहजहाँपुर के पं. देवनारायण भारतीय और इटावा के मुकुंदीलाल आदि कई युवक शामिल हुए। मैनपुरी षड्यंत्र में जब हथियार लाते हुए सदस्य पकड़े गए तो गेंदालालजी उन्हें छुड़ाने गए और थाने में जाकर कहा, 'इन मासूम बच्चों को क्या मालूम, मैं बताऊँगा, मुझसे पूछिए।' सबको छोड़ दिया गया और गेंदालाल को गिरफ्तार कर लिया। बाद में मौका पाकर गेंदालालजी हवालात से भाग निकले और फरार हो गए। गेंदालालजी की मृत्यु के पश्चात् रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने 'मातृवेदी' नाम से एक संस्था बनाई, जिसमें पंद्रह-सोलह साल के उत्साही नौजवान थे। इन्होंने भी कई डकैतियाँ डालीं। मैनपुरी की डकैती उनमें प्रमुख थी। मैनपुरी षड्यंत्र का मुकदमा चला और मुकुंदीलाल को छह वर्ष की कड़ी सजा दी। उनका परिवार तबाह हो गया। सब जमीन-जायदाद बिक गई। रही-सही उनके जेल जाने पर उनके परिवारजनों के भरण-पोषण में खर्च हो गई, परंतु मुकुंदीलाल को अपने परिवार, अपनी पत्नी और बच्चों किसी की कोई परवाह नहीं थी। ऐसे थे वे लोग। रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने ऐसी डुबकी लगाई कि अंत तक पुलिस के हाथ नहीं आए। ऐसा कहते हैं कि जब दल से पुलिस की मुठभेड़ हो गई थी तो किसी दरोगा ने इन पर गोली चला दी। फायर की आवाज होते ही पास बह रही नदी में चिल्लाकर कूद गए और मीलों दूर पानी के अंदर-अंदर तैरते हुए चले गए। साथियों ने समझा कि 'बिस्मिल' पुलिस की गोली से मारा गया। इनके ही एक साथी देवनारायण ने इनके घर आकर शाहजहाँपुर में खबर दे दी कि रामप्रसाद मारे गए और उनके घरवालों ने उस पर विश्वास करके मरणोपरांत होनेवाले सारे संस्कार दिन-तेरहवीं कर डाले।

पं. रामप्रसाद बिस्मिल

सन् १९१८ में जब आम-मुआफी में मैनपुरी षड्यंत्र के सभी लोगों पर मुकदमा उठा लिया तो 'बिस्मिल' सार्वजनिक रूप से पुन: प्रकट हो गए। मैनपुरी षड्यंत्र के पश्चात् 'बिस्मिल' ने पिनहट, कोसमाँ, रूहरबरबई आदि ग्रामों में भूमिगत जीवन व्यतीत करते हुए कई पुस्तकें भी लिखीं और बाद में उन्हें 'सुशील माला' के अंतर्गत स्वयं ही प्रकाशित भी किया। पुस्तकें थीं—'मन की लहर', 'बोल्शेविकों की करतूत' और 'कैथेराइन'।

शाहजहाँपुर आकर 'बिस्मिल' ने पारिवारिक हालत सुधारने के लिए रेशमी कपड़ा बुनने का कारोबार शुरू किया, किंतु जैसा कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

'नींद आती है कब उल्फत के तलबगारों को,
फ़िक्र रहती है कि मकतल में किसे याद किया।'

और कुछ ही दिनों बाद वे क्रांतिक्रारी दल में पुन: सक्रिय हो गए। तब तक सभी अनुशीलन समितियाँ प्राय: शिथिल हो चुकी थीं। कई साथी गिरफ्तार हो चुके थे, अत: बिस्मिल के आने से संगठन में पुन: जान आ गई। उन्होंने नेतृत्व अपने हाथ में लिया और पूरे उत्तर भारत तथा मध्य प्रांत से लेकर महाराष्ट्र तक कुल ५६ जिलों में समिति का अभूतपूर्व संगठन खड़ा किया।

जैसे-जैसे दल का काम बढ़ा, उसके खर्चे भी बढ़े। समाज के लोगों से कब तक आर्थिक सहायता ली जाती? वैसे भी नरेन गोसाईं की मुखबरी पर कई संभ्रांत लोगों को पुलिस ने पकड़ा

था और उन्हें परेशान भी किया था। अत: उन लोगों ने सहयोग देना बंद कर दिया था। रईसों के घरों में भी कई डकैतियों डालीं, किंतु कुछ खास रकम हाथ नहीं आई। एक बार तो ऐसी ही एक डकैती में रामप्रसाद 'बिस्मिल', जो उस डकैती का नेतृत्व कर रहे थे, की बाईं आँख भी फूटते-फूटते बची थी। आम जनता के विरोध और असहयोग की भी आशंका थी, क्योंकि किसी शहर या गाँव में, किसी के घर में घुसकर डकैती डालने का अर्थ यह था कि गाँव-मुहल्ले के सामान्य लोग क्रांतिकारियों के खिलाफ खड़े हो सकते थे, इनका मुकाबला कर सकते थे, गिरफ्तार करवा सकते थे और मौका लगने पर जान से मार भी सकते थे।

उधर दल के ही कुछ लोगों ने विदेशों से शस्त्र प्राप्त करने की व्यवस्था की थी, जिसके लिए धन की तत्काल आवश्यकता थी। ऐसे में यह विचार रामप्रसाद 'बिस्मिल' के मस्तिष्क में आना स्वाभाविक था कि यदि सरकारी खजाने को ही किसी प्रकार लूट लिया जाए तो 'मियाँ की जूती, मियाँ की सिर' वाली कहावत चरितार्थ हो जाएगी। सामान्य लोगों का कोपभाजन भी नहीं बनना पड़ेगा और सरकार को भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। जहाँ लाखों रुपए रोज की आमदनी है, वहाँ दस-बीस हजार लूट लेने से राजकोष में कौन सा घाटा आ जाएगा।

अशफाक उल्ला खाँ

परंतु अशफाक उल्ला इस कांड के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि ट्रेन-डकैती डालने या सरकारी खजाना लूटने से सरकार हमारे संगठन को नेस्तनाबूद करने में कोई कसर बाकी नहीं रखेगी। ऐसा करना सरकार के लिए एक खुली चुनौती होगी और फिर वह चुप नहीं बैठेगी। हो सकता है कि दल के सभी लोग गिरफ्तार हो जाएँ और उन्हें लंबी सजा हो जाए तथा देश की आजादी खटाई में पड़ जाए। लेकिन सरफरोशी की तमन्ना दिल में लिए हुए 'बिस्मिल' को अपने सखा 'अशफाक' का यह तर्क स्वीकार नहीं हुआ और जैसा कि उनका स्वभाव था, वह जब एक बार किसी काम को करने की ठान लेते तो उसे बीच में छोड़ते नहीं थे, फिर परिणाम चाहे कुछ भी हो और वही हुआ, 'बिस्मिल' के संकल्प के आगे किसी की एक न चली।

इस योजना में बहुत लोगों का भाग लेना तय था, किंतु ऐसे दुस्साहसपूर्ण कार्यों के लिए आगे आना भी कोई कम जीवट की बात नहीं थी। अत: बहुत से लोग तो उस दिन कन्नी काट गए। कुल दस लोग ही 'एक्शन' के लिए काकोरी कांड में शरीक हुए। ये दस लोग थे—पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफाक उल्ला खाँ, राजेंद्र लाहिड़ी, शचींद्रनाथ बक्शी, मुकुंदीलाल, चंद्रशेखर 'आजाद', मन्मथनाथ गुप्त, बनवारी लाल, केशव और मुरारीलाल। *(इनमें से चंद्रशेखर 'आजाद', केशव और मुरारी कभी पकड़े नहीं जा सके।*

बटुकेश्वर दत्त

'हिंदुस्तान प्रजातांत्रिक संघ', जिसके सेनापति डॉ. रामप्रसाद 'बिस्मिल' थे, की ओर से जनवरी १९२५ में 'क्रांतिकारी' शीर्षक से एक परचा पूरे देश में बाँटा गया था, जो अंग्रेजी में

जाने-माने लेखक। लालबहादुर शास्त्री के जीवन पर लिखी उनकी पहली कृति 'ललिता के आँसू. विश्व के १०० शीर्षस्थ प्रबंध काव्यों में शुमार हैं। क्रांतिकारियों पर उनका उल्लेखनीय कार्य है, इसके लिए उन्हें भारत सरकार द्वारा 'सीनियर फेलोशिप' प्रदान की गई, इसके अलावा अनेकों पुरस्कार व सम्मान प्राप्त।

था। संक्षेप में उसका सार यह था—''हिंदुस्तान प्रजातांत्रिक संघ' का एकमात्र उद्देश्य सशस्त्र तथा संगठित क्रांति द्वारा Federal Republic of United States of India अर्थात् भारत के सम्मिलित राज्यों का एक ऐसा प्रजातांत्रिक संघ अथवा एक ऐसी शासन व्यवस्था स्थापित करना है, जिसमें सभी प्रांतों को अपने घरेलू विषयों में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होगी तथा प्रत्येक बालिग और सही दिमागवाले व्यक्ति को वोट देने का अधिकार होगा, साथ ही ऐसी शासन पद्धति समाज को देना, जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण नहीं होगा।'' यह परचा मूल रूप से अंग्रेजी में तैयार किया गया था। इसे तैयार करने में शचींद्रनाथ सान्याल, यदुगोपाल मुखर्जी और रामप्रसाद 'बिस्मिल' की भूमिका थी।

इस परचे में एक उल्लेखनीय बात यह थी कि दल के समक्ष जहाँ वर्तमान संदर्भ में ताजा-ताजा स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्र रूस का आदर्श था, वहाँ भारतवर्ष में आदिकाल से चली आ रही प्राचीन ऋषियों-मुनियों की समाज-व्यवस्था और शासन-पद्धति का भी आदर्श था। यहाँ पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि उन लोगों के समक्ष भारतीय परंपरा का आदर्श ही प्रमुख था। रूस की बात तो कुछ लोगों को दल में जोड़ने के उद्देश्य से जान-बूझकर रखी गई थी, यह उन लोगों को तुष्ट करने के लिए था, जो रूस का समर्थन करते थे। यह परचा पेशावर से लेकर रंगून तक एक ही साथ, एक ही रात में मुख्य स्थलों पर चिपका दिया गया था। परचे में दल के प्रमुख के रूप में नीचे विजयकुमार का छद्म नाम मुद्रित किया गया था। बाद में काकोरी-कांड के दौरान हस्तलिपि-विशेषज्ञों ने इस परचे के साथ एक और परचा साक्ष्य के बतौर प्रस्तुत किया था, जो बिस्मिल की गिरफ्तारी के समय उनके कुरते की जेब से प्राप्त हुआ था, उस परचे में लिखा था—

''दादा का श्राद्ध नंबर एक पर तेरह को होगा। मैं अनाथालय में मिलूँगा। रुद्र।'' यह कूट भाषा में था, जिसका अर्थ यह था कि १३ अक्तूबर, १९२५ को हरिद्वार रेलवे स्टेशन के एक नंबर प्लेटफार्म पर स्थित डाकघर को लूटने की योजना है, सभी लोग मेरठ के अनाथालय में एकत्र हों, वहीं से एक्शन के लिए चलेंगे। यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि रामप्रसाद के हस्ताक्षर यदि जल्दी में 'राप्र' इस

प्रकार हिंदी में किए जाएँ तो वह रुद्र ही पढ़ने में आएगा। वस्तुत: इसी तर्क के आधार पर मुकदमे के दौरान हस्तलिपि विशेषज्ञ से उनके हस्ताक्षर प्रमाणित करके दिखाए थे।

इससे स्पष्ट है कि बिस्मिल ने ९ अगस्त, १९२५ को काकोरी ट्रेन डकैती कांड करने के बाद हरिद्वार में १३ अक्तूबर, १९२५ को डाकघर लूटने की योजना भी पहले से ही बना ली थी, जो उनकी गिरफ्तारी के कारण कामयाब न हो सकी। इसके बाद भी उनकी कुछ योजनाएँ रही होंगी, किंतु वे सब धरी-की-धरी रह गईं। उसी दिन हरिद्वार में ही उदासीन साधुओं के एक बहुत बड़े अखाड़े का खजाना लूटने की भी योजना थी, जिसे 'बिस्मिल' स्वयं जाकर देख आए थे।

चंद्रशेखर आजाद

काकोरी-कांड की पृष्ठभूमि में क्रांतिकारियों की क्या योजना थी, इसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। बहरहाल, इसका एक पक्ष, जो उसी कांड के एक सजासाफ्ता क्रांतिकारी और आजादी के बाद संसद् सदस्य रहे श्रीयुत योगेशचंद्र चटर्जी के शब्दों में रखना भी यहाँ पर अप्रासंगिक न होगा—

''गांधीजी का असहयोग आंदोलन १९२१ से शुरू होकर १९२२ में खत्म हो चुका था। अब वह आंदोलन चला तो क्रांतिकारी भी उसमें तन-मन-धन से शामिल हुए थे। वे लोग तो सच्चे देशभक्त थे। अत: आजादी के ऐसे आंदोलन से अपने को अलग कैसे कर लेते, परंतु जब गांधीजी ने घबराकर खुले 'असहयोग आंदोलन' को बंद कर दिया, तब क्रांतिकारी लोग फिर से अपने गुप्त क्रांतिकारी कार्य में जुट गए। फिर क्या था, ब्रिटिश हुकूमत को मिटाने का काम बहुत ही जोर-शोर से चल निकला। क्रांतिकारी तो जान हथेली पर रखकर चलनेवाले ठहरे, लिहाजा ब्रिटिश हुकूमत उनसे बहुत ज्यादा घबराती थी।''

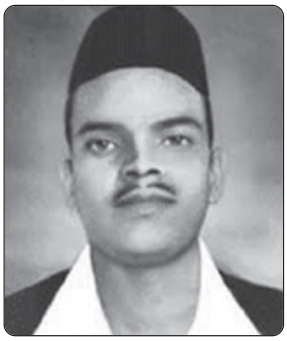
राजगुरु

''एक मजबूत शासन को पलटना कोई मामूली बात नहीं थी। इतनी बड़ी साजिश के लिए बहुत सारे पैसे की जरूरत थी, इसलिए सरकारी खजाने को लूटने की योजना बनी और वह सफल भी हुई। इस कांड को देख-सुनकर अंग्रेजों के तो होश उड़ गए। ब्रिटिश हुकूमत परेशान हो गई कि जैसे भी हो, काकोरी-कांड के जिम्मेदार व्यक्तियों को जितनी भी जल्दी हो, मिटा दिया जाए। अन्यथा ये लोग यदि जिंदा बने रहे तो अंग्रेजों को देश छोड़कर भागना पड़ेगा।''

भगतसिंह

इससे स्पष्ट होता है कि बिस्मिल ने काकोरी-कांड करके ब्रिटिश सरकार का तख्ता उलटने की पूरी योजना बना ली थी। उसी योजना का एक अंग यह भी था कि संपूर्ण देश में क्रांतिकारियों को सरकार के ही पैसे से शस्त्र खरीदकर दिए जाएँ और फिर एक ही रात में समूचे देश में बहुत बड़े पैमाने पर अंगेज अधिकारियों को एक साथ मार दिया जाए, जिससे अंग्रेज सरकार घबराकर देश छोड़ने को मजबूर हो जाए। ठीक १८५७ के गदर की पुनरावृत्ति करना ही उनके मस्तिष्क में रहा होगा। किंतु हाय रे देश का दुर्भाग्य! एक बार फिर योजना के साथ धोखा हो गया।

यही कारण था कि जब 'हैमिल्टन' की अदालत में 'बिस्मिल' आदि अनेक क्रांतिकारियों को फाँसी की सजा हुई और फिर इसकी अपील अवध चीफ कोर्ट लखनऊ में की गई तो चीफ जस्टिस सर लुइस शर्ट ने अपने फैसले में लिखा—'यह डकैती हिंदुस्तान में डाली जानेवाली अन्य डकैतियों जैसी नहीं है वरन् एक भयंकर साजिश की शुरुआत है।' और यहीं नहीं, अपने फैसले में पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' को 'महाभयंकर षड्यंत्रकारी' की उपाधि से विभूषित करते हुए फाँसी की सजा बरकरार रखी। साथ-ही-साथ उसने अशफाक उल्ला खाँ को रामप्रसाद का सहकारी (लेफ्टीनेंट) करार दिया और उन्हें भी 'सजा-ए-मौत' का हसीन तोहफा भेंट किया। अन्य लोगों में ठाकुर रोशन सिंह व राजेंद्रनाथ लाहिड़ी को फाँसी की सजा दी गई। 'बिस्मिल' के साथियों में जिस-जिसका व्यक्तित्व उसे प्रभावशाली लगा, उसे जिंदा नहीं छोड़ा। काकोरी कांड के फैसले का समाचार जैसे ही अदालत से बाहर आया, समूचे देश में सनसनी फैल गई। चूँकि इन सभी कैदियों पर राजनैतिक षड्यंत्र का आरोप था। अत: राजनैतिक कैदियों को मिलनेवाली सुविधाओं के लिए देशव्यापी आंदोलन छेड़ा गया। कैदियों ने जेलों में ही अनशन किया। परिणामत: दामोदर स्वरूप सेठजी इतने कमजोर हो गए कि सरकार को विवश होकर उन्हें जेल से छोड़ना पड़ा। बाद में उनकी अपने घर पर ही मृत्यु हो गई। अन्य कैदियों की हालत भी चिंताजनक हो गई थी। प्रसिद्ध पत्रकार श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने प्रांतीय होम मेंबर ऑनरेबल मोहम्मद सईद अहमदखान साहब (नवाब छतारी) को तार और पत्र भेजकर इन कैदियों के साथ जेल में विशेष व्यवहार किए जाने का अनुरोध किया। पहले तो वे मान गए, बाद में पता चला कि किन्हीं अज्ञात कारणों से उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी' ने भी एक प्रस्ताव पारित करके काकोरी के कैदियों के साथ विशेष व्यवहार किए जाने की माँग की। २२ जून, १९२७ को संयुक्त प्रांत की कौंसिल में भी यह सवाल बड़े जोर-शोर से उठाया गया, किंतु गवर्नर साहब ने 'सॉरी' कहकर उनकी माँग को एक बार में ही ठुकरा दिया।

इस प्रकार सरकार का रुख स्पष्ट हो जाता है कि वह इन कैदियों को जेल में ही अत्याचार करके मार डालने पर तुली हुई थी। विशेष व्यवहार या 'बी' श्रेणी की माँग मंजूर कर लेने का अर्थ यह होता है कि ये कैदी जेल में भी कुछ दिन आराम से रह लेते, जैसा कि प्राय: सभी राजनैतिक कैदियों के साथ होता है, किंतु वहाँ तो मामला ही कुछ और था। जब 'चीफ कोर्ट' से भी

अपील खारिज हो गई तो तत्कालीन प्रांतीय विधान परिषद् के सदस्य ठाकुर मनजीतसिंह (एम.एल.सी.) ने कौंसिल के आगामी अधिवेशन में फाँसी की सजा को काले पानी की सजा में बदलने के लिए इस आशय का एक प्रस्ताव भी सामूहिक रूप से तैयार किया। असेंबली मेंबरों (एम.एल.ले.) को अलग से एक पत्र भी लिखा कि सब मिलकर एक प्रस्ताव का समर्थन करें। दूसरी ओर पं. मदनमोहन मालवीय आदि अनेक नेताओं ने प्रांतीय गवर्नर से मिलकर इन नवयुवकों की सजाएँ काम करने के लिए प्रार्थना की। इस प्रकार की प्रार्थना (मर्सी-अपील) असेंबली और स्टेट कौंसिल के सदस्यों ने वाइसराय से भी की; किंतु वे सभी प्रार्थनाएँ अस्वीकार कर दी गईं। हाँ, इतना अवश्य हुआ है कि इस लिखा-पढ़ी में फाँसी देने की पहली तारीख, जो १६ सितंबर निश्चित हुई थी, वह आगे बढ़ गई और फिर ११ अक्तूबर को फाँसी देना तय किया गया।

राजेंद्र लाहिड़ी

अभियुक्तों ने सरकार के मनोभाव जान लिए थे और भारत सरकार से कुछ होता न देख उन्होंने इंग्लैंड स्थित प्रिवी कौंसिल में अपने मामले की अपील करने का निश्चय किया। उन्होंने अपना यह विचार वाइसराय को लिखकर भेजा, जिसका परिणाम यह हुआ कि फाँसी की दूसरी तारीख (११ अक्तूबर) भी टल गई। अंग्रेजी सल्तनत के जमाने में न्याय बड़ा ही महँगा पड़ता था। जब सरकार ने हर हाल में कैदियों को कड़ी-से-कड़ी सजा दिलवाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी थी, यहाँ तक कि उस जमाने में काकोरी कांड पर सरकार की ओर से १० हजार की डकैती पर १० लाख रुपया खर्च किया गया, जो आजकल के जमाने के ३० करोड़ रुपए के बराबर था, फिर भला अभियुक्तों से कहाँ संभव था कि वे इस मामले में पैरवी कर पाते। फिर भी येन-केन-प्रकारेण पैसे का प्रबंध करके इंग्लैंड के मशहूर वकील श्री एस.एल. पोलक के माध्यम से 'प्रिवी कौंसिल' के न्यायाधीशों को 'मर्सी-अपील' के कागजात सौंपे गए। किंतु अफसोस, उन क्रूर न्यायाधीशों ने इसकी सुनवाई करना तो दूर, इसे इस लायक भी न समझा कि इस पर विचार ही कर लेते। 'अपील' खारिज हो गई। २९ अक्तूबर, १९२७ को प्रांतीय कौंसिल में काकोरी के कैदियों का प्रश्न फिर उठाया गया। पं. गोविंद बल्लभ पंत ने सरकार को खूब आड़े हाथों लिया। बहुत देर तक सवाल-जवाब होते रहे, किंतु बेहया सरकार टस-से-मस न हुई।

१९ दिसंबर को अभियुक्तों को फाँसी देना निश्चित हो चुका था। संपूर्ण प्रांत में बड़ी बेचैनी पैदा हो गई। १७ दिसंबर को प्रांतीय कौंसिल में फिर यह प्रश्न पं. गोविंद बल्लभ पंत ने उठाया। उन्होंने सदन के अध्यक्ष महोदय से यह प्रार्थना भी कि सब काम बंद करके पहले इस मामले पर विचार कर लिया जाए। पहले तो वह इस पर टाल-मटोल करते रहे, किंतु दोपहर बाद तीन बजे के लगभग सदस्यों ने यह प्रश्न फिर उठाया तो वे इस पर बहस के लिए राजी हो गए। किंतु दुर्भाग्य से उस दिन शनिवार होने के कारण सदन की बैठक तीन बजे के कुछ ही देर बाद स्थगित हो गई। अगले दिन रविवार था। फिर भी कौंसिल के सभी मेंबरों ने होम-मेंबर नवाब छतारी के पास बड़ी दौड़-धूप की, किंतु कहीं कोई सुनवाई नहीं हुई, इस प्रकार प्रांतीय कौंसिल के सदस्यों को एक शब्द भी कहने का मौका दिए बिना ही सोमवार को कौंसिल की अगली मीटिंग शुरू होने से चार घंटे पहले ही प्रांत के तीन होनहार युवक फाँसी के तख्ते पर टाँग दिए गए। देश उनके नेतृत्व से वंचित रह गया। 'काकोरी-कांड' के प्रमुख कर्ता-धर्ता तो पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल ही थे, अत: उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जाने के बाद दल का नेतृत्व पं. चंद्रशेखर 'आजाद' के पास आ गया और सरदार भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, बटुकेश्वर दत्त आदि अनेक नवयुवक इस दल के साथ जुड़ गए। यद्यपि ये लोग, जब 'बिस्मिल' जेल में थे और उन पर मुकदमा चल रहा था, तभी काफी सक्रिय हो चुके थे, किंतु प्रकाश में तब आए जब केंद्रीय असेंबली में बम फेंका गया और क्रांतिकारी परचे बाँटे गए। पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने ही उन्हें शस्त्रादि चलाने, दल का नेतृत्व सँभालने और क्रांतिकारी षड्यंत्रों की योजनाएँ बनाने का प्रशिक्षण दिया था।

बाद में पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' का यही 'हिंदुस्तानी प्रजातांत्रिक संघ' 'आजाद' और भगतसिंह के नेतृत्व में 'हिंदुस्तानी समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना' में बदल गया। जैसा कि प्रकृति का नियम भी है कि सूर्य पहले उगता है, फिर संपूर्ण ऊँचाई पर पहुँचकर प्रचंड वेग से तपता है और शाम होते होते धीरे-धीरे ढल जाता है। यही इस क्रांतिकारी-आंदोलन के साथ हुआ। साम्राज्यवादी शक्तियों के मुकाबले में खड़े होनेवाले ये तेजस्वी युवक साधारण तबके से आए थे। आम आदमी के जीवन को बेहतर बनाने की तमन्ना उनके दिमाग में थी। इसके लिए देश को आजाद कराना उनका पहला लक्ष्य था, जिसमें किसी हद तक वे कामयाब भी हुए और आगे चलकर कुछ ही दिनों बाद अंग्रेजों को यह देश छोड़ देना पड़ा। किंतु जैसा कि 'बिस्मिल' ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि समाज के संपन्न वर्ग के लोग सत्ता-परिवर्तन होते ही उस पर अपना अधिकार कर लेते हैं, वही इस देश के साथ भी हुआ। आजादी के संघर्ष का नाटक करके, बलिदानों की नींव पर महल खड़ा करके, मंदिर के पुजारी बनने का ढोंग रचानेवाले संपन्न वर्ग के लोग भारतमाता को फिर से मंदिर में कैद करके आम जनता के अधिनायक बन बैठे; जन-गण-मन की बात भूल गए।

'काकोरी-कांड' का ऐतिहासिक मूल्य बस इतना ही रह गया कि कुछ सिरफिरे युवा लड़कों ने अंग्रेजी सरकार का तख्ता पलटने के लिए से एक दिन सरकारी खजाना लूट लिया और फिर वे अपनी इस 'सरफरोशी की तमन्ना' को फाँसी के रूप में पूरा करके इस दुनिया से कूच कर गए। पर वास्तव में यह स्वार्थी दुनिया तो उन जैसे देवताओं के लिए बनी ही नहीं थी। वे तो वास्तव में पराधीनता के उस युग में दिव्य-आलोक को धारण कर किसी और ही लोक से यहाँ आए थे और अपने कल्पना-लोक में स्वर्ग-लोक की वीथियों का निर्माण करके समूचे विश्व को अपनी अद्भुत आभा की एक झलक दिखाकर अपने प्यारे परमात्मा के पास चले गए।

वस्तुत: 'बिस्मिल' के बलिदान की कहानी इतने से ही खत्म नहीं हो जाती। 'काकोरी-कांड' की घटना तो उनके जीवन की शुरुआत थी। इसके आगे वे क्या करने वाले थे, यह उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है। प्रसन्नता इस बात की है कि डॉ. केशव हेडगेवार ने 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' के संविधान को हू-ब-हू 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' की कार्यपद्धति में अपना लिया और बिस्मिल के बताए हुए मार्ग पर चलकर समग्र क्रांति करने का संकल्प ले लिया, जो हमें पूरा होता दिखाई दे रहा है।

साहित्य कुटीर, साइट-२/४४
विकासपुरी, नई दिल्ली-११००१८
दूरभाष : ९२८९४४०६४२

कविता

एक और पंद्रह अगस्त

● मालिनी गौतम

लीजिए…
एक और पंद्रह अगस्त आ गया
ढोल-नगाड़ों के साथ!

क्या अबकी बार
टूटेगी नींद कुंभकर्ण की… ?
या प्रगाढ़ निद्रा में ही
सुनाई देती रहेंगी
मधुर स्वरलहरियाँ

ऐ मेरे वतन के लोगों,
यंत्रवत् लहराए जाएँगे तिरंगे
सभी शैक्षणिक, सामाजिक व
प्रशासनिक संस्थाओं की इमारतों पर,
रोबोट की तरह सलामी दाग देंगे हाथ!

मन में बिना किसी
आस्था और भावना के
एक दिन का वेतन
काट लिये जाने के डर से
एकत्र हुए कर्मचारी,
उपस्थिति कम हो जाने के भय से
जबरन आए हुए विद्यार्थी,
आजादी का अर्थ तक न जाननेवाले
नन्हे-मासूम बच्चों की प्रभात फेरियाँ,
व्हाट्स एप और फेसबुक पर
अपने प्रोफाइल पिक्चर में तिरंगा लगाकर
एक दिन के लिए
फिल्मी गीतों की जगह
राष्ट्रभक्ति के गीतों को
अपनी रिंग टोन बनाकर
अपनी देशभक्ति का परिचय देते
नवयुवक व नवयुवतियाँ,
बेड टी का जायका लेते-लेते
लाल किले के कार्यक्रम का
आनंद लेनेवाले
देश के सज्ज नागरिक,
सब मिलकर मना ही लेंगे
एक और पंद्रह अगस्त
आजादी के किले में लग जाएगी
एक और सेंध!

वहीं देश के किसी अंतरिम गाँव में
किसी वृद्धा की आँखों में
आज भी तैरता होगा प्रश्न—
कि भैया जे आजादी का होवे है
फटे-पुराने, जर्जर वस्त्रों में लिपटी
माँ भारती काँपते हाथों से
टटोलती रहेंगी थिगड़े
और विस्फारित नजरों से देखती रहेंगी
अपने भावी कर्णधारों को
जिन्होंने उनकी अस्मिता को
सरेआम नीलाम करके
हिला दी है नींव आजादी की!

आज भी बिछी हुई हैं
शकुनि की बिसातें
नित्य खेला जा रहा है द्यूत
दु:शासन का अट्टहास
अब किसी को सुनाई नहीं देता
हर रोज होता है
एक द्रौपदी का वस्त्र हरण
इस बार तो दुर्योधन की
जंघा भी हो जाएगी वज्र की,
अपने गांडीव की प्रत्यंचा चढ़ाए
विवश खड़े हैं पांडुपुत्र
कृष्ण की सहायता के बिना
क्या संभव होगा जीतना महाभारत
आखिर कब तक हम
करते रहेंगे इंतजार
एक और कृष्ण का?

सुपरिचित रचनाकार। अब तक 'बूँद-बूँद अहसास' (कविता-संग्रह); 'दर्द का कारवाँ' (गजल-संग्रह); 'गीत अष्टक तृतीय' (साझा गीत-संकलन) एवं प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति एसोसिएट प्रोफेसर (अंग्रेजी), कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, संतरामपुर (गुजरात)।

४/४७५, मंगल ज्योत सोसाइटी
संतरामपुर-३८९२६० (गुजरात)
दूरभाष : ०९४२७०७८७११

अदम्य साहसी क्रांतिकारी महिला : दुर्गा भाभी

● राजेंद्र राजा

'यथानाम तथागुण' को सार्थक करनेवाले लोग दुनिया में अपवाद रूप में ही मिलते हैं। दुर्गा भाभी भी उसी श्रेणी की एक महिला थीं, जिसने बचपन से अपने नाम के अनुरूप अपने पूरे जीवन को ढाल लिया था। दुर्गा के पूर्वज मूलत: गुजरात प्रांत के नागर ब्राह्मण थे, जो अपने व्यापार के सिलसिले में इलाहाबाद के निकट शहजादपुरा में आ बसे थे तथा एक बड़े जमींदार के रूप में ख्याति प्राप्त हुए। लेकिन दुर्गा के पिता बाँके बिहारी भट्ट की पैतृक कार्य में कोई रुचि नहीं थी, इसलिए जमींदारी का कार्य छोटे भाई को सौंपकर उच्च शिक्षा प्राप्त कर इलाहाबाद में बैरिस्टर जिला जज के पद पर आसीन रहे। दुर्गा का जन्म इसी पावन नगरी, त्रिधाराओं के संगम इलाहाबाद में कटरा बस्ती मोहल्ले में 'सात अक्तूबर उन्नीस सौ सात', हिंदुओं के प्रसिद्ध पर्व नवरात्रि की 'दुर्गा अष्टमी' के शुभ दिवस पर हुआ। जिसे पाकर माँ यमुना देवी तथा बाँकेबिहारी भट्टजी के आनंद की कोई सीमा नहीं रही। इस परिवार में दुर्गा से तीन वर्ष बड़ा बेटा जया कृष्ण और अब नवजात दुर्गा बिटिया ने परिवार को पूर्णता से भर दिया। दुर्गाष्टमी के दिन जन्म लेने तथा हाव-भाव, चेहरे के तेज को देखकर स्वत: ही माँ-बाप ने उसका नाम 'दुर्गा' रख दिया, जो जीवन की सार्थकता के साथ जुड़ा रहा।

वीर हुतात्मा दुर्गा भाभी

उदास बचपन

दुर्गा अभी पूरे एक वर्ष की भी नहीं हो पाई थी कि अचानक माँ यमुना देवी का देहांत हो गया। जज साहब इस घटना से बुरी तरह टूट गए। उनके सम्मुख एक वर्ष की दुर्गा तथा चार वर्ष के बेटे जयकृष्ण की परवरिश का प्रश्न एक पहाड़ बनकर खड़ा हो गया। लोगों के आग्रह तथा दबाव के सम्मुख भी जज साहब दूसरी शादी के लिए तैयार नहीं हुए, तब विवश होकर जज साहब अपनी विधवा बहन को अपने घर ले आए तथा दुर्गा अपनी बुआ को माँ मानने लगी। परिवार में अभी लोग उस शोक से उबर भी नहीं पाए थे कि बेटा जयकृष्ण क्षय रोग से ग्रसित हो गया तथा अच्छे-से-अच्छा उपचार भी उस बालक को नहीं बचा पाया। दुर्गा तो पूरी तरह यह समझ पाने की स्थिति में भी नहीं थी कि यह क्या हो रहा है? हँसता-खेलता परिवार पूरी तरह लुट गया। अब जज साहब में वैराग्य इतना बढ़ा कि एकमात्र पुत्री दुर्गा से भी विमुख से रहने लगे। दुर्गा अभी प्रारंभिक शिक्षा भी पूरी नहीं कर पाई थी कि वह अपनी बुआ, जिसे वह माँ समझती थी, के साथ गाँव शहजादपुर चली आई और पिता बाँके बिहारी गंगा के किनारे बाबा मणिराम के आश्रम में ही अपना अधिकांश समय बिताने लगे। अब उनके जीवन का मात्र एक ही ध्येय शेष था कि किसी-न-किसी तरह दुर्गा के हाथ पीले हो जाएँ तो वे पूर्णत: संन्यासी बन जाएँ। दुर्गा की बुआ, जिनके अपने भी चार बेटे थे, बहुत ही अनुशासनप्रिय एवं 'डंडा-छोड़ा, बालक बिगड़ा' की घोर समर्थक थीं। वह दुर्गा को अनुशासन के नाम पर प्रताड़ना के निकट ले जाती थीं। उसकी पढ़ाई-लिखाई तक बंद कर दी गई तथा सभी दुर्गा को ऐसी हेय दृष्टि से देखने लगे, जैसे यह अपशकुन बनकर आई हो—'जिसने आते ही माँ को खा लिया और कुछ दिनों बाद भैया को डस गई।'

बाल विवाह

पिता बाँके बिहारी भट्ट के साथ-साथ बुआ का मन यही था कि अब दुर्गा का विवाह कर देना चाहिए। वह अभी ग्यारहवें वर्ष में कदम रख ही पाई थी कि उसे शादी के बंधन में बाँध दिया गया। यह विवाह कराने में बुआ की विशेष भूमिका रही। जिस बालक भगवतीचरण से दुर्गा का परिणय बंधन हुआ, उनका परिवार भी गुजरात से आगरा आया तथा इसी आगरा में भगवतीचरण का जन्म हुआ था। भगवतीचरण के पिता पंडित शिवचरण वोहरा रेलवे विभाग में एक उच्च अधिकारी तथा राजभक्त थे, जिसके आधार पर उनका तबादला लाहौर शहर के लिए हो गया तथा उन्हें रालभक्ति के पुरस्कार के रूप में 'राय बहादुर' का खिताब भी प्राप्त हो गया। यह परिवार 'वोहरा परिवार' के नाम से जाना जाता था। गुजरात में पैसों का लेन-देन करनेवाले 'वोहरा' कहलाते थे, इसीलिए यह शब्द उनका उपनाम बन गया। बुआ का परिवार भी गुजरात से आकर आगरा में विस्थापित हुआ था, इसलिए दोनों परिवारों का पूर्व परिचय था। बुआ के सबसे बड़े बेटे को 'राय बहादुरजी' ने लाहौर में रेलवे विभाग में नौकरी दिलवाई थी, इससे यह परिचय अभी तक बना हुआ था। रायबहादुर शिवचरण वोहराजी को भगवतीचरण से बड़ा एक बेटा और था, जिसका नाम उमाचरण था। उमाचरण के जन्म के उपरांत उनकी पत्नी का देहांत हो गया तथा विवश होकर शिवचरण वोहराजी को दूसरा विवाह करना पड़ा। यह भगवतीचरण उसी दूसरी पत्नी से पैदा हुआ था। भगवतीचरण बहुत ही कुशाग्र बुद्धिवाला बालक था। वह

धीर-वीर-गंभीर प्रवृत्ति का होनहार युवक था, इसलिए रायसाहब उसे उच्च शिक्षा हेतु 'बाहर' भेजना चाहते थे, लेकिन भगवतीचरण पिता की तरह राजभक्त नहीं 'देशभक्त' था। बचपन से इसमें अंग्रेजों के प्रति विद्रोह भाव पनपता रहा, जिसने आगे चलकर भगवतीचरण को एक बहुत बड़ा देशभक्त क्रांतिकारी बना दिया। रायसाहब का बड़ा बेटा पहले ही विवहित था, इसलिए दुर्गा का संबंध छोटे बेटे भगवतीचरण से पक्का हो गया तथा दुर्गा ग्यारह वर्ष और भगवतीचरण पंद्रह वर्ष के इस विवाह-सूत्र में बँध गए, लेकिन भगवतीचरण अपनी शिक्षा ग्रहण के कार्य से जुड़े रहे। दुर्गा की शादी के बाद उनके पिता बाँके बिहारी ने अपना इलाहाबाद का मकान तथा गाँव के हिस्से की जमीन-जायदाद दुर्गा के नाम कर दी तथा स्वयं अपनी पेंशन पर संन्यासी रूप में जीवन बिताने लगे।

'भाभी' उपनाम की प्राप्ति

युवक भगवती चरण ने नेशनल कॉलेज, लाहौर से १९२४ में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली, लेकिन उनका रुझान सरकारी नौकरी की ओर न होकर आजादी-प्राप्ति के हिंतचिंतन की ओर बढ़ता गया। इसी दौरान उसका परिचय अन्य युवा देशभक्तों भगत सिंह, सुखदेव, यशपाल, अहसान अली आदि से भी होता चला गया तथा क्रांतिवीरों का एक समूह तैयार होने लगा। शादी के कुछ समय बाद राय बहादुर साहब भी इस दुनिया से कूच कर गए। राय बहादुर साहब के लाहौर में छह मकान थे, लेकिन बड़े भाई उमाचरण को भगवती चरण के मित्रों का घर पर आना-जाना पसंद नहीं था। इसलिए भगवती चरण अपना मकान छोड़कर किराए के मकान में रहने लगे, जहाँ वे अपने मित्रों के साथ क्रांतिकारी कार्यों की भूमिका बनाते रहते थे तथा बहुमूल्य साहित्य मँगाकर स्वयं भी पढ़ते थे तथा मित्रों को भी पढ़वाते थे।

दुर्गा अपनी जेठानी, जो उसकी सगी मौसी भी थी, के संरक्षण में अपने पुश्तैनी मकान में ही रहकर अपने अध्ययन काल में चल रही थी। धीरे-धीरे दुर्गा ने भी हिंदी-संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त करके अपने को समर्थ बना लिया। एक दिन दुर्गा अचानक भगवतीचरण से मिलने आई तो उसे वहाँ अन्य युवकों से घिरा पाया। उससे पहले दुर्गा का किसी से भी कोई परिचय नहीं था। वे सभी युवक उस महिला को अचानक वहाँ देखकर सकपका गए, तब भगवती चरण ने उस गुत्थी को स्वयं सुलझाया और अपने सहयोगी मित्रों को बताया कि यह मेरी दुर्गा (पत्नी) है और तुम सभी मुझसे छोटे तथा कुँवारे हो और मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ, इसलिए यह तुम्हारी 'भाभी' है तथा दुर्गा को भी समझाया, ये सभी तुम्हारे देवर हैं, इसलिए इनकी सेवा तथा सहायता करना तुम्हारा नैतिक दायित्व है। इस घटना के बाद सभी नौजवान क्रांतिकारी दुर्गा को 'भाभी' कहने लगे तथा यह 'दुर्गाभाभी' ही जीवनभर के लिए उसका उपनाम बन गया।

क्रांति के पथ पर

भगवती चरण की विज्ञान विषय में बहुत रुचि थी। इसलिए उनका रुझान क्रांति को सफल बनाने के लिए 'बम निर्माण' की ओर बढ़ता

सुपरिचित कवि। अब तक 'प्रवासी सुभाष', 'वीर सावरकर', 'शहीदों की चिताओं पर', 'क्रांतिकारी दुर्गाभाभी', 'भगवान परशुराम', 'चंबल से संसद तक', 'कमलाबाई का मुकदमा' (काव्य-संग्रह) प्रकाशित। संप्रति इतिहास पुरुष 'रासबिहारी बोस' काव्य ग्रंथ के लेखन में संलग्न।

गया तथा 'बम का दर्शन' आलेख लिखकर उसने क्रांतिकारियों को विस्मय में डाल दिया। भगवती चरण बाहर के वीरों से भी संपर्क बनाने लगा—कभी मेरठ, कभी कलकत्ता जाकर बम बनाने का प्रशिक्षण ग्रहण करने लगा। उधर भाभीजी भी भगवती चरण के मित्रों की सेवा तथा सहायता कार्यों में व्यस्त हो गईं। इसी दौरान उनको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम भगवती चरण की इच्छा से 'शचींद्र' रखा गया, जिसे संक्षिप्त रूप में सभी 'शची' कहने लगे। यह नाम महान् क्रांतिकारी 'शचींद्र नाथ सान्याल' से प्रभावित होकर भगवतीचरण ने बेटे के लिए चुना था। भगवतीचरण की एक मुँहबोली बहन 'सुशीला देवी', जो जालंधर की रहनेवाली थी, लेकिन उन दिनों वह कलकत्ते में ट्यूटर का कार्य कर रही थी। भगवतीचरण भी बम प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता में थे।

भगत सिंह को बचाने में भूमिका

भगवती चरण बम प्रशिक्षण हेतु, कलकत्ता में सुशीला दीदी के साथ थे कि उसी दौरान लाहौर में 'सांडर्स हत्याकांड' का षड्यंत्र रचने में वीरों ने सफलता पाई। इस कांड में भगत सिंह, राजगुरु व चंद्रशेखर आजाद की विशेष भूमिका थी। 'सांडर्स हत्याकांड' पंजाब केसरी लाला लाजपत राय की हत्या के प्रतिशोध में था। लाहौर पुलिस हत्यारों की तलाश में चप्पा-चप्पा छान रही थी। ऐसी स्थिति में इन वीरों को बचाकर लाहौर से बाहर भिजवाने का कार्य बहुत अहम था। तब एक अविश्वसनीय घटना को मूर्तरूप दिया गया, जो क्रांतिकारियों के इतिहास में अपना विशेष स्थान तथा महत्त्व रखती है। जब कोई भी विकल्प संभव नहीं हो पाया तब यही तय किया गया कि भगत सिंह को अपना रूप बदलकर अर्थात् अपने केशों को कटवाकर एक जेंटलमैन का रूप धारण करना होगा तथा दुर्गा भाभी उनकी पत्नी के रूप में अपने बेटे के साथ रेलगाड़ी द्वारा लाहौर से प्रस्थान करेंगी, लेकिन कुछ मित्रों को शक था कि भगत सिंह सिख होकर अपने केशों को कैसे कटवा सकता है, लेकिन भगतसिंह ने कहा था कि मैं देश के लिए केश ही नहीं, आवश्यक हुआ तो शीश भी कटा दूँगा। इस तरह दुर्गा भाभी अपने पति की अनुपस्थिति में भगत सिंह को बचाकर कलकत्ता ले गईं, जहाँ भगवती चरण ने दुर्गा भाभी से कहा था, 'दुर्गा, मैं तुझे आज जान पाया हूँ।'

विधवापन का दंश

नारी के लिए विधवापन से भयावह कोई अभिशाप नहीं होता। जबकि इसी दुर्गा भाभी को लगभग सत्तर वर्ष तक वैधव्य जीवन भोगना

पड़ा। लाहौर सांडर्स हत्याकांड तथा दिल्ली असेंबली बम कांड में आरोपित भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, बटुकेश्वर दत्त आदि देशभक्तों को लाहौर जेल से छुड़ाने के लिए जेल से बस द्वारा कोर्ट ले जाते समय बम विस्फोट करने की योजना बनाई जा रही थी, जिसके लिए भगवती चरण अपने कुछ मित्रों के साथ बम परीक्षण करने के लिए रावी नदी के किनारे वीरान जंगल में गए, लेकिन वह बम भगवती चरण के हाथ में ही फट गया और वे वहीं शहीद हो गए। विडंबना देखिए कि दुर्गा भाभी खुलकर रो भी नहीं पाईं, क्योंकि उनकी चीत्कार से अन्य वीरों के पकड़े जाने की आशंका थी। वे अपने दिल पर पत्थर रखकर, अपने वीरों के साथ क्रांति-पथ पर चल निकलीं। दुर्गा भाभी लाहौर जेल में जाकर क्रांतिकारियों से मिलकर आती थीं। इस समय सुशीला दीदी ने इनका पूरा ध्यान रखा। दुर्गा भाभी सभी क्रांतिकारियों की यथासंभव सहायता करती रहती थीं। इनके कई मकान तक बिक गए, लेकिन अपने पति के पथ से कभी मुँह नहीं मोड़ा। मात्र तेईस वर्ष की उम्र में भाभी को दुर्भाग्य ने विधवा बना दिया।

बंबई षड्यंत्र की सूत्रधार

उस समय अधिकांश क्रांतिकारी जेलों में बंद थे। चंद्रशेखर आजाद, जो दल के सेनापति थे, अन्य वीरों के साथ क्रांति के कार्य को आगे बढ़ा रहे थे। दुर्गा भाभी भी अपने छोटे से बेटे की चिंता किए बगैर दल के कार्यों में संलिप्त रहती थीं। अपने इकलौते बेटे को कभी किसी के पास, तो कभी सुशीला दीदी के पास छोड़कर अपने दल के कार्यों में सहयोग करती रहीं। एक बार सेनापति 'आजाद' की नई योजना के आधार पर बंबई के अंग्रेज पुलिस कमिश्नर लॉर्ड हेली की हत्या का दायित्व दुर्गा भाभी को सौंपा गया। दुर्गा भाभी 'शारदा' नाम से सुखदेव राज तथा पृथ्वी सिंह आजाद के साथ इस कार्य के लिए बंबई गईं तथा इस षड्यंत्र को सफल बनाने के लिए पिस्टल से उस अंग्रेज पर वार किया, पर दुर्भाग्य से हेली बच गया। दूसरा अंग्रेज मारा गया, लेकिन इस एक्शन ने अंग्रेजों को हिलाकर रख दिया।

महात्मा गांधी से भेंट

सुखदेव, भगतसिंह तथा राजगुरु को फाँसी का दंड सुना दिया गया था और २३ मार्च, १९३१ का दिन भी निश्चित हो गया था। इस समाचार से दल के लोगों में बड़ी बेचैनी थी। तभी वीरों को ज्ञात हुआ कि महात्मा गांधी और वायसराय लॉर्ड इरविन में एक समझौता होने जा रहा है, जिसमें विभिन्न जेलों में बंद देशभक्तों को मुक्त कराने पर विचार होना है। इतना सुनते ही दुर्गा सुशीला दीदी के साथ गांधीजी से मिलने दिल्ली गईं। जैसे ही दुर्गा भाभी का परिचय गांधीजी से कराया गया, गांधीजी एक साथ भड़क उठे और बोले, 'तुम चुपचाप मेरे सामने से चली जाओ, वरना मैं पुलिस को बुलाकर तुम्हें गिरफ्तार करवा दूँगा। तुम महिला होकर खूनी खेल करती घूम रही हो। मैं किसी भी हिंसा के समर्थक के विषय में कोई बात नहीं करूँगा।' इतना सुनते ही दुर्गा ने कहा, 'बापू, मैं अपने लिए नहीं, अन्य वीरों के लिए आई थी, लेकिन अब आपका निर्णय मिल चुका है, नमस्कार!' यह कहकर दुर्गा वहाँ से चली आईं। दुर्गा और सुशीला जब दिल्ली में ही थीं, तभी उन्हें समाचार मिला कि दल के सेनापति चंद्रशेखर आजाद अपने ही मित्र के विश्वासघात के कारण २७ फरवरी, १९३१ को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस मुठभेड़ में स्वयं को गोली मारकर शहीद हो गए तथा अपनी प्रतिज्ञा कि 'मुझे कोई बंदी नहीं बना सकता', को पूरा करके दिखा दिया। वे दौड़ी-दौड़ी इलाहाबाद आईं, लेकिन उस वीर भाई के दर्शन तक नहीं कर पाईं। चंद्रशेखर आजाद के बाद तथा भगत सिंह व अन्य मित्रों की फाँसी के बाद दल पूरी तरह बिखर गया।

जीवन के शेष रंग

अपना सबकुछ 'आजादी हित' दाँव पर लगाकर दुर्गा भाभी पूरी तरह टूट चुकी थीं। अब उन्हें शची के भविष्य की चिंता ने आ घेरा। उन पर विभिन्न आरोप सिद्ध नहीं हो पाए, वे पूरी तरह बरी हो गईं। उन्होंने लाहौर को छोड़ दिया और लखनऊ को अपनी कर्मस्थली बनाया। यहाँ पर उन्होंने एक मांटेसरी विद्यालय की नींव डाली तथा पूर्णरूपेण स्वयं को शिक्षा के लिए समर्पित कर दिया। लेकिन अपने स्वाभिमान को कभी डिगने नहीं दिया। आर्थिक विषम परिस्थितियों से भी जूझती रहीं, लेकिन विद्यालय या स्वयं के हित कभी हाथ नहीं फैलाया। शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्हें अनेक समस्याओं से जूझना पड़ा, लेकिन अपने पथ से विचलित नहीं हुईं। आजादी के बाद बहुत से नेताओं ने उन्हें विद्यालय हेतु अनुदान देना चाहा, लेकिन उन्होंने स्पष्ट इनकार कर दिया। उन्होंने अपने पति या स्वयं के बलिदानों के बदले कोई भी आर्थिक सहायता नहीं स्वीकारी और अपने परिश्रम के बल पर उस मांटेसरी स्कूल को एक प्रसिद्ध मांटेसरी इंटर कॉलेज का स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने अपनी आँखों से आजादी के बाद की खुली हिंसा देखी। देश का बँटवारा देखा, अपनी प्यारी ससुराल को पाकिस्तान में देखा, गांधीजी की हत्या देखी। १९६२ का युद्ध देखा। १९६५ के युद्ध के बाद ताशकंद से लाल बहादुर शास्त्री की आती हुई अरथी देखी। इंदिराजी, राजीवजी का बलिदान देखा। हाँ, अगर कुछ नहीं देखा पाई तो गांधीजी की अहिंसा।

अब दुर्गा भाभी की जीवन संध्या आ चुकी थी। वे उम्र के अनुरूप बीमार रहने लगीं। तभी वे लखनऊ को छोड़कर गाजियाबाद लौट आईं, जहाँ कभी युवावस्था में कुछ समय तक शिक्षण कार्य किया था। अब उसी गाजियाबाद में उनके बेटे शचींद्र अभियंता पद पर थे तथा अपनी माँ की सेवा एवं उपचार में कोई कमी नहीं छोड़ी, लेकिन मृत्यु का कोई उपचार नहीं होता। अपना अंतिम समय निकट देखकर उन्होंने अपने बेटे से मात्र यही चाहा था कि मेरी अरथी के साथ सुभाष बोस के गीत 'कदम कदम बढ़ाए जा' की धुन बजनी चाहिए। और एक दिन इसी धुन के साथ पूरी बीसवीं सदी को (१९०७-१९९९) देखकर १४ अक्तूबर, १९९९ को अपनी आँखें सदा-सदा के लिए मूँद लीं। जय हिंद!

२२५, कृष्णा गली नं. ६
मौजपुर-दिल्ली-११००५३
दूरभाष : ९८१००४२३१२

वांची अय्यर : टिनेवेली घटना के नायक

● ऊषा निगम

जिस समय महाराष्ट्र से लेकर पूरा उत्तरी भारत किसी-न-किसी रूप में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध अपने विरोध का प्रदर्शन कर रहा था, दक्षिणी भारत तुलनात्मक रूप से शांत रहा। लेकिन बीसवीं सदी के प्रथम दशक में कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं, जिन्होंने शांत-स्थिर जल में हलचल पैदा कर दी। राजद्रोहात्मक साहित्य की रचना, गुप्त समितियों की स्थापना, अंग्रेजी सरकार के विरोध में सभाएँ, खुला हिंसात्मक विरोध और इन सबकी चरम परिणति ऐशे की हत्या के रूप में सामने आई। आइए, देखते हैं कि यह सब कैसे हुआ।

क्रांतिदूत वांची अय्यर

रॉलट कमेटी की रिपोर्ट (१९१८) के अनुसार बंगाल में उग्र राष्ट्रीयता और स्वदेशी आंदोलन के नेता विपिन चंद्र पाल ने १९०७ में मद्रास प्रेसीडेंसी में अनेक सभाओं का आयोजन किया था। स्वराज, स्वदेशी और बहिष्कार उनके भाषणों के प्रमुख विषय हुआ करते थे। उन्होंने २३ अप्रैल, १९०७ को राजमुंद्री में भाषण दिया, जिसके बाद २४ अप्रैल को गवर्नमेंट कॉलेज के विद्यार्थियों ने हड़ताल की। १ मई को वे मद्रास आए। ९ तक वहाँ सभाएँ आयोजित की जाती रहीं। परिणामस्वरूप मद्रास में भी विरोध के स्वर उभरने लगे। १९०८ के आरंभ में पब्लिक वर्क्स इंजीनियरिंग वर्कशॉप्स के विद्यार्थियों के पास से राजद्रोहात्मक साहित्य बरामद हुआ, जिसमें रूस की गुप्त समितियों की चर्चा थी। २३ और २५ फरवरी तथा ५ मार्च, १९०८ के मध्य टूटी कोरियन नामक स्थान पर सुब्रह्मण्य शिव और चिदंबरम पिल्लई ने अनेक भाषण दिए। इन भाषणों में पूर्ण स्वराज की माँग की गई थी। अपने अंतिम भाषण में उन्होंने विपिन चंद्र पाल की प्रशंसा करते हुए उन्हें 'स्वराज का सिंह' कहा था। ९ मार्च को टिनेवेली में चिदंबरम पिल्लई ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया। सरकार विरोधी गतिविधियों के कारण दोनों को १२ मार्च, १९०८ को बंदी बना लिया गया। परिणामस्वरूप टिनेवेली में दंगा हो गया। अधिकांश सरकारी कार्यालयों की इमारतों को तोड़ दिया या जला दिया गया। कार्यालयों के फर्नीचर और रिकॉर्ड जला दिए गए। दंगे के बाद सरकारी तंत्र ने २७ व्यक्तियों को दंडित किया।

रॉलट कमेटी रिपोर्ट में ही १७ मार्च, १९०८ की एक और घटना का भी वर्णन है। उसके अनुसार करूर में कृष्णस्वामी ने एक सभा में टिनेवेली के दंगों को उद्धृत करते हुए कहा कि करूरवासियों को भी स्वदेशी और स्वराज के हित में इसी प्रकार की प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करना चाहिए। इन्हें भी दंडित किया गया। तेलुगु में प्रकाशित होनेवाले एक पत्र 'स्वराज' ने २६ मार्च को इन देशभक्तों के पक्ष में लिखते हुए कहा कि 'तुम (अंग्रेज) मान चुके हो कि भारत में राष्ट्रीयता की हवा उठते ही तुम्हारी सारी जड़ हिल जाती है।'

'भारत माता एसोसिएशन' नामक एक गुप्त समिति की भी स्थापना की गई, जिसकी शाखाएँ अनेक नगरों में थीं। इस समिति का लक्ष्य छुटपुट हिंसक घटनाएँ न करके १८५७ जैसे एक बड़े विद्रोह का आयोजन करना था। लेकिन इस दिशा में कुछ प्रयास हो सकें, उससे पूर्व ही एक महत्त्वपूर्ण घटना घटित हो गई। टिनेवेली के कलेक्टर रॉबर्ट विलियम ऐशे को रास्ते से हटाने का विचार किया जाने लगा। १९१० आते-आते अनेक ऐसे परिवर्तन हुए, जिन्होंने इस विचार को अंजाम तक पहुँचाने में मदद की।

यह सच है कि ऐशे ने टिनेवेली के दंगों को नियंत्रित किया था और दोषियों को दंडित किया था। राष्ट्रभक्तों की दृष्टि में यह उसका बहुत बड़ा अपराध था। इसके साथ ही एक और भी खबर थी। ब्रिटेन के सम्राट् जॉर्ज पंचम का राज्याभिषेक समारोह, जो २२ जून, १९१० को ब्रिटेन में हो चुका था, पुन: दिल्ली दरबार में १२ दिसंबर, १९११ को आयोजित होना था। इस आयोजन को सबसे अधिक खतरा क्रांतिकारियों से था। क्रांतिकारियों के लिए अपने ही देश में किसी विदेशी के राज्याभिषेक समारोह का आयोजन असहनीय था। दिसंबर १०१९ के अंत में पांडिचेरी में वी.वी.एस. अय्यर नामक एक क्रांतिकारी अपने विदेश प्रवास के उपरांत वापस आए थे। वे लंदन में वीर सावरकर के निकटतम साथियों में से एक थे। उन्होंने पांडिचेरी में नवयुवकों को शस्त्र चलाने का प्रशिक्षण देना आरंभ किया था। वाई.वी.एस. अय्यर को अपने सशस्त्र मार्ग पर पूर्ण विश्वास था।

१९०१-१० के वर्षों में नीलकंठ ब्रह्मचारी और शंकर अय्यर पूरे मद्रास प्रांत में स्वदेशी और स्वराज का प्रचार कर रहे थे। जून १९१० को शंकर ने नीलकंठ को अपने एक संबंधी वांची अय्यर से मिलवाया, जो

उस समय त्रावणकोर वन विभाग में लिपिक थे। वांची स्वयं उग्र विचारधारा के समर्थक थे। अब उन्होंने भारत माता एसोसिएशन की गुप्त सभाओं में भाग लेना आरंभ कर दिया। उन्होंने अपने कार्यालय से तीन महीनों का अवकाश लिया, पांडिचेरी गए और वी.वी.एस. अय्यर से रिवॉल्वर चलाना सीखा।

अब वांची ने अपने कुछ विश्वसनीय साथियों के साथ मिलकर रॉबर्ट विलियम ऐशे की हत्या की योजना बनाई। वांची का कहना था कि अंग्रेजों को मारने से ही स्वराज मिलेगा। ऐशे को मारना उनका प्रथम लक्ष्य था। वांची और उनके साथियों ने ऐशे को चेतावनी देते हुए निम्नलिखित पत्र लिखा—

'हम भारत माता एसोसिएशन के सदस्य तुम्हें यह चेतावनी देते हैं, किसी सार्वजनिक हित के कार्य में बाधा मत डालो। यदि तुम इस चेतावनी के बाद भी हठी रहोगे तो कुछ ही समय में तुम्हारा सिर चूर-चूर कर दिया जाएगा।'

तुम्हारा विश्वसनीय
बी.एस.ए.
(उर्फ भारत माता एसोसिएशन)

१२ दिसंबर, १९१० को यह पत्र डी.आई.जी. को प्रेषित कर दिया गया था। ऐशे की हत्या से कुछ पहले तमिल भाषा में 'वंदे मातरम्' हस्ताक्षर युक्त एक परचा प्रकाशित करके डाक द्वारा लोगों तक पहुँचाया गया था। इस परचे में 'अभिनव भारत समाज' का सदस्य बनने, उसके प्रति वफादार रहने और भारत को पराधीनता से मुक्त करने के लिए अंग्रेजों का वध करने की चर्चा की गई थी। प्रकाशक के स्थान पर 'फिरंगी नाशिनी प्रेस, मद्रास' लिखा हुआ था।

वांची का अगला कदम सीधे ओशे पर आक्रमण करना था। श्री एवं श्रीमती ऐशे को १७ जून, १९११ को टिनेवेली से मान्यांची जंक्शन होते हुए कोडाईकनाल जाना था। मान्यांची जंक्शन पर ट्रेन बदलनी थी। वांची टिनेवेली से चलनेवाली ट्रेन में बैठे और ऐशे के साथ ही अगले स्टेशन पर उतरे। ऐशे व उनकी पत्नी किसी दूसरी खाली ट्रेन में बैठकर अपनी ट्रेन की प्रतीक्षा करने लगे। जिस समय वांची ने उन पर पिस्तौल चलाई, ऐशे उस समय समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। गोली उनके सीने पर लगी। वे घायल होकर गिर गए। उन्हें उपचार के लिए तुरंत वापस टिनेवेली ले जाया गया, जहाँ उनकी मृत्यु हो गई। उधर वांची अपने साथी के साथ खड़े थे। पुलिस तथा भीड़ उनकी ओर दौड़ी। वांची के हाथ में पिस्तौल थी। वे पिस्तौल चलाने की धमकी देते हुए दूसरी ओर भागे और स्टेशन के विश्रामालय में पहुँचकर अपनी गरदन में गोली मार ली। उनकी तुरंत मृत्यु हो गई। वांची के पास से तमिल में लिखा एक परचा मिला, जिसमें लिखा था, ''इस देश पर राम, कृष्ण, शिवाजी और गोविंद सिंह ने शासन किया है। उन्होंने प्रत्येक धर्म की रक्षा की है। अब उसी देश में अंग्रेज म्लेच्छ जॉर्ज पंचम का, जो गो मांस भक्षी है, राज्याभिषेक

सुप्रसिद्ध लेखिका। स्वतंत्रता सेनानियों पर विशेष लेखन। पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि निरंतर प्रकाशित। 'कानपुर : एक सिंहावलोकन' स्मारिका भी। सन् १९७०-७२ में पी.पी.एन. कॉलेज में अध्यापन कार्य किया। संप्रति लेखन में रत।

करने का प्रबंध कर रहे हैं।'''मद्रास के ३००० लोगों ने यह प्रतिज्ञा की है कि जैसे ही जॉर्ज पंचम भारतभूमि पर कदम रखेगा, उसे मार दिया जाएगा। वांची ने, जो इन सबमें अयोग्य है, कलेक्टर ऐशे को गोली से मार दिया है।''

वांची के पास से मैडम कामा द्वारा पेरिस से प्रकाशित होनेवाले पत्र 'वंदे मातरम्' की एक प्रति भी मिली थी। यह अंक मई १९११ में प्रकाशित हुआ था। इस पत्र में लिखा था—''सभा में, बँगले में, रेल के स्टेशन पर, गाड़ी पर, जहाँ भी मौका मिले। अंग्रेजों का वध किया जाए।'''जो लोग ऐसे प्रयत्न करते हैं, उनकी प्रचेष्टाएँ जययुक्त हों तथा उनके अस्त्र विजयी हों।''

ऐशे पर गोली चलते ही पुलिस विभाग चौकन्ना हो गया। बड़ी शीघ्रता से दोषियों को गिरफ्तार किया गया। इनकी संख्या चौदह थी। ३० अगस्त, १९११ को उन्हें उच्च न्यायालय के स्पेशल ट्रिब्यूनल के सम्मुख पेश किया गया। जॉर्ज पंचम के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करना, हत्या, षड्यंत्र, प्रजा को भड़काना आदि आरोप लगाए गए। इनमें से दो अभियुक्तों—वेंकटेश्वर अय्यर तथा धर्मराज अय्यर—ने मुकदमे के दौरान आत्महत्या कर ली। अन्य अभियुक्तों को, जिनमें मुख्य अभियुक्त नीलकंठ ब्रह्मचारी तथा शंकर कृष्ण अय्यर थे, दो से सात वर्ष का कारावास का दंड दिया गया।

ऐशे की हत्या एक छोटी सी घटना प्रतीत होती है, लेकिन रॉलट कमेटी की रिपोर्ट में इसका पूरा विवरण मिलता है। यह घटना इस बात की प्रमाण है कि देश में पराधीनता से मुक्त होने की भावना धीरे-धीरे अपने पाँव जमा रही थी। अंग्रेजों के प्रति घृणा दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी थी। सशस्त्र मार्ग के प्रति रुझान बढ़ रहा था। यह भी सच है कि कोई एक सुसंगठित दल अपने नियमों एवं नीतियों के साथ नहीं था, लेकिन इस मार्ग पर चलनेवाले वीर एक स्वर से भारत की पूर्ण स्वाधीनता की माँग कर रहे थे। सुदूर दक्षिण में होनेवाली इस घटना ने भी, अन्य घटनाओं की ही भाँति यह प्रमाणित कर दिया था कि अंग्रेजी सरकार अब आश्वस्त नहीं रह सकती है। मृत्यु को हँसकर गले लगानेवाले ये वीर किसी भी सरकार के लिए चिंता का विषय हो सकते थे। वे अंग्रेजों को आतंकित कर रहे थे, लेकिन वे आतंकवादी नहीं थे। उनका लक्ष्य उदात्त था। भारतभूमि उनकी माँ थी और वे अपनी मातृभूमि को पराधीनता की शृंखलाओं से मुक्त करने के लिए अपने जीवन का बलिदान कर रहे थे।

भारत में घटित होनेवाली इन घटनाओं की प्रतिध्वनि प्रवासी भारतीय

क्रांतिकारियों को सुनाई देती थी। तभी तो पेरिस वासिनी मैडम कामा ने अपने पत्र में लिखा था—''जब हिंदुस्तान के कुछ गुलाम लंदन की सड़कों पर सीना फुलाकर घूम रहे हैं, और राजकीय सर्कस में जॉर्ज पंचम के सामने दुनिया को दिखाकर सिजदा कर रहे हैं, उस समय हमारे दो नौजवानों ने टिनेवेली और मैमन सिंह (बंगाल में मैमन सिंह में दरोगा राजकुमार राय की हत्या) में अपने साहसपूर्ण कार्यों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि भारत सो नहीं रहा है (रॉलट कमेटी रिपोर्ट से उद्धृत; अध्याय १२, परिच्छेद १५२)।

वांची अय्यर ने पकड़े जाने से बचने के लिए आत्महत्या कर ली। यह घटना १९०८ में किंग्सफोर्ड की हत्या के बाद प्रफुल्ल चाकी की आत्महत्या की याद दिलाती है। उन्होंने भी पुलिस विभाग से बचने की संभावना न देखकर अपने माथे और सीने पर गोली चला दी थी। कैसा था इन वीरों का त्याग! उन्हें ज्ञात था कि इन हत्याओं से देश को आजादी नहीं मिलेगी, फिर भी उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी, इस आशा से कि छोटी-छोटी आहुतियाँ मिलकर किसी दिन विशाल अग्नि का रूप धारण करेंगी और भारत अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो सकेगा।

७४ कैंट, कानपुर-२०८००४
दूरभाष : ०९७९२७३३७७७

कविता

आजादी की रानी मल्लम्मा

● डी.एन. श्रीनाथ

अठारह मील दूरी पर
कर्नाटक के धारवाड़ से
एक गाँव बेलवड़ी है वहाँ,
तीन सौ साल करीब पहले से
ईश प्रभु करता था राज्य वहाँ।

था वह शिवाजी का समकालीन
'मल्लम्मा' नाम की थी उसकी रानी,
थी वह अपने शील गुण में कुलीन
करती थी सदा पति का अनुसरण।

चाहा था शिवाजी ने ईश को अपनाना
भेजा था उसके निकट दूत को,
मगर ईश प्रभु ने धीरज से
ठुकराया था उसके संदेश को।

गए थे शिवाजी तंजावूर
किसी काम से एक बार,
लौटते वक्त बेलवड़ी के निकट
डाला था वहाँ पर अपना डेरा।

शिवाजी के कुछ नटखट सैनिक
मचाने लगे लूट-खसोट,
ईश प्रभु पाकर इसकी खबर
आया था अपनी सेना लेकर।

तभी छिड़ गया युद्ध दोनों का
पर हाय! बात थी दुर्भाग्य की,
विधाता ने ईश प्रभु के ललाट पर
लिखा था लेख मृत्यु का।

पति की मृत्यु का दु:ख एक ओर
मल्लम्मा सुन स्तब्ध खड़ी रही,
राज्य की दयनीय स्थिति दूसरी ओर
मगर उसने हिम्मत नहीं हारी।

साथ शीघ्र सेना लेकर
घोड़े पर सवार होकर,
मल्लम्मा हृदय में अतीव दु:ख सहकर
गई थी पति की मृत देह के समीप।

पति के शव-हाथ से लेकर तलवार
शत्रु पर टूट पड़ी वह सिंहिनी-सी
निडर हो आगे बढ़-बढ़कर
वार करने लगी रणचंडी-सी।

देख उसके रणचंडी के रूप,
सैनिकों में आई थी शक्ति अनूप।

लड़ रही थी मल्लम्मा जोश से
एक मराठा ने तब पीछे से,
हाथ में शीघ्र लेकर तलवार
घोड़े की टाँग काट दी छल से।

रानी जमीन पर खड़ी हो
करने लगी वार पर वार,
पर गिर पड़ी मूर्च्छित हो
लगने से एक बड़ा वार।

लाई गई मल्लम्मा शिवाजी के सम्मुख
शिवाजी ने किया उसका आदर-स्वागत,

सुप्रसिद्ध लेखक एवं अनुवादक। कन्नड़-हिंदी में परस्पर अनुवाद की साठ पुस्तकें प्रकाशित। साहित्य अकादेमी का अनुवाद पुरस्कार, कर्नाटक साहित्य अनुवाद अकादेमी पुरस्कार, कमला गोयनका अनुवाद पुरस्कार, गोरूर पुरस्कार, विश्वेश्वरैया साहित्य पुरस्कार आदि पुरस्कारों से पुरस्कृत।

देख उसे हुई हैरानी थी
उस अबला की अटूट हिम्मत।

देख उस अबला का साहस
खुश हुआ शिवाजी वीर,
लौटा दी पुन: रियासत
साथ में दीं अपनी दो जागीर।

यों दिखाई मल्लम्मा ने अपनी वीरता
देश के लिए किया अपूर्व त्याग,
यों हमें भी ले मन में धीरता
देश के लिए करना है
तन-मन-धन से त्याग।

नवनीत, द्वितीय क्रॉस, अन्नाजी राव लेआऊट
प्रथम स्टेज, विनोबा नगर
शिमोगा-५७७२०४ (कनार्टक)
दूरभाष : ०९६११८७३३१०

आजादी की ओर

● सुधा शर्मा 'पुष्प'

सुपरिचित नाटककार एवं लेखिका। 'कुरबानी रंग लाएगी' (बाल एकांकी-संग्रह) तथा अनेक बाल-पुस्तकों में सहलेखन। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। 'भारत भूषण सम्मान', 'महादेवी वर्मा स्मृति सम्मान' सहित दर्जनभर सम्मानों से अलंकृत। संप्रति वरिष्ठ शिक्षिका, हिंदी विभाग।

पात्र-परिचय

दो सूत्रधार : (कुरता, पाजामा)

आठ कैदी : (सफेद और काली धारीवाला कुरता और निक्कर, सिर पर सफेद कपड़े की गोल टोपी, वीर सावरकर और महावीर सिंह के हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी)

सिपाही : (खाकी वरदी)

जेलर : (अंग्रेज जेलर की पोशाक, हाथ में चाबुक)

सामग्री

हथकड़ी-बेड़ी २ सेट, चाबुक १, सिपाही के हाथ में १, डंडा (हंटर), जटा नारियल की रस्सी १, नारियल की रस्सी ४ मीटर, थाली १, कटोरी १, पतली पाइप १, छोटे मुँह वाली बोतल १ (इसी से पाइप जुड़ी हो), ऊपर लिखी बोतल में दूध आधा बोतल

स्क्रीन पर

१. अंडमान निकोबार द्वीप समूह २. समुद्र ३. गर्जन करता समुद्र ४. भयानक जंगल ५. सेल्युलर जेल ६. वीर सावरकर ७. सेल्युलर जेल के अंदर का दृश्य

आजादी की ओर

सूत्रधार (दोनों) : धन्य-धन्य हैं वे, जो भारत पर अपना तन-मन वार चुके भारत के लिए कुरबान हुए, भारत के लिए शहीद हुए।

सूत्रधार-१ : अंग्रेजी शासन का दमनचक्र जोरों पर था। अंग्रेज सबसे खतरनाक क्रांतिकारियों को सजा देते थे—काला पानी की। *(स्क्रीन/परदे) पर अंडमान निकोबार द्वीप समूह और समुद्र का चित्र)*

सूत्रधार-२ : भारत की मुख्य भूमि से हजारों मील दूर अंडमान द्वीप समूह—चारों तरफ भीषण गर्जन करता समुद्र *(स्क्रीन पर ऊँची तरंगों से युक्त समुद्र का दृश्य)* साँप-बिच्छू और जहरीले जानवरों से भरा जंगल *(स्क्रीन पर भयानक जंगल का दृश्य)*

सूत्रधार-१ : यहीं था भारत माँ के अमर सपूतों का पावन तीर्थ, बलिदानियों का स्मारक, क्रूरता का जीवित प्रमाण, कुख्यात सेल्युलर जेल।

(दृश्य-एक)

(सात बच्चे दोनों हाथों को फैलाए हुए एक-दूसरे के केवल दाहिने हाथ को पकड़कर गोलाकार में ही घूमते हुए मंच पर प्रवेश करते हैं। उनके बाएँ हाथ बाहर की ओर फैले हैं। उनके दाहिने हाथ धुरी की तरह एक स्थल पर मिले होते हैं। बच्चे मंच के बीच में आने पर धुरीवाले हाथ को एक साथ ऊपर करते हैं, घूमते रहते हैं। सेल्युलर जेल में कैदियों की कोठियाँ इस प्रकार बनी थीं कि ऊपर से देखने पर बीच में एक केंद्र तथा उससे निकली सात भुजाएँ दिखती थीं। इन सातों भुजाओं में कैदियों के लिए कोठरियाँ थीं।)

(स्क्रीन पर सेल्युलर का दृश्य, दोनों सूत्रधार मंच के अलग-अलग किनारों पर चले जाते हैं।)

सूत्रधार-२ : तीन मंजिलों और सात भुजाओंवाली इस जेल में थीं सात सौ छोटी-छोटी कोठरियाँ—इन्हीं में अनेक क्रांतिकारियों ने अपने जीवन के अनेक वर्ष कठोर अमानवीय यातनाएँ सहते हुए बिताए।

(स्क्रीन पर आगे वर्णित दृश्य)

सूत्रधार-१ : गरम लोहे से दागा गया, शरीर में सुइयाँ चुभोई गईं, बात-बात पर कोड़ों की बौछार पड़ी।

(जेल बनानेवाले बच्चे घूमते-घूमते मंच से हट जाते हैं। दोनों सूत्रधार मंच के अलग-अलग किनारों पर खड़े रहते हैं।)

(दृश्य-दो)

(वीर सावरकर का प्रवेश, स्क्रीन पर वीर सावरकर का चित्र, एक सिपाही हथकड़ी और बेड़ी में जकड़े वीर सावरकर को लेकर मंच पर आता है।)

सूत्रधार 2 : इस सेल्युलर जेल में एक से बढ़कर एक वीर क्रांतिकारी बंदी बनाए गए। उन्हीं में से एक थे—वीर विनायक सावरकर। इन्होंने बचपन में ही एक दिन माँ दुर्गा के सामने याचना की थी, 'माँ, क्या इसी प्रकार दासता की बेड़ियों में जकड़ी भारतमाँ सिसकती रहेगी। शक्ति दो माँ मुझे शक्ति दो।' और फिर अपना दृढ निश्चय सुना दिया, 'अपने इस प्यारे देश की स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र क्रांति का ध्वज लेकर आगे बढ़ूँगा।'

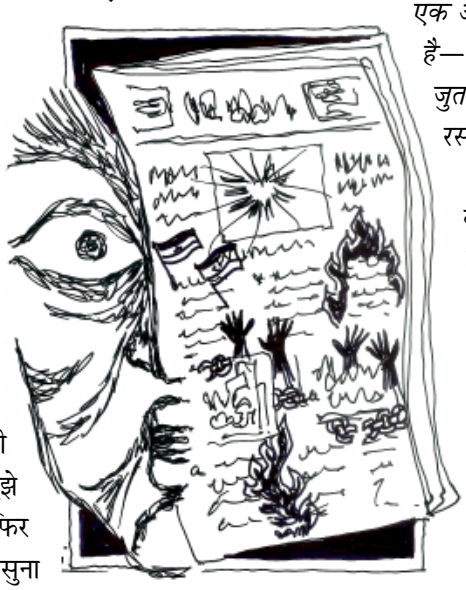

भारत माता की जय! भारत माता की जय!!

(सिपाही वीर सावरकर को खींचता हुआ मंच पर एक तरफ से दूसरी तरफ जाता है।)

विदेशों में जाकर भारत माँ की आजादी के लिए क्रांति का झंडा बुलंद करनेवाले वीर सावरकर को अंग्रेज सरकार के विरुद्ध विद्रोह के दंडस्वरूप काले पानी की सजा दी गई।

(अंग्रेज जेलर का प्रवेश। वह रोबदार चाल में चलता हुआ वीर सावरकर के पास आता है और जमीन पर चाबुक पटकता है।)

जेलर : *(हँसता है)* हा-हा-हा! टुमको टीस साल की सजा हुई है। अब टुम कभी आजाद नहीं हो पाओगे।

सावरकर : *(हँसते हुए)* हा-हा-हा! तुम समझते हो कि अंग्रेजों का शासन तीस साल तक चलता रहेगा, कभी नहीं।

जेलर : ओऽऽ··· *(सिपाही को चाबुक देते हुए)* इसे कोड़े मार-मारकर बटाओ कि अंग्रेजी शासन कभी खटम नहीं होगा।

सावरकर : इनकलाब जिंदाबाद···वंदे मातरम्···भारत माता की···जय!

(सिपाही कोड़े मारता है। कोड़े की मार से सावरकर बेहोश हो जाता है सिपाही खींचकर उसे ले जाता है।)

(दृश्य-तीन)

स्क्रीन (परदे) पर सेल्युलर जेल के अंदर का दृश्य—प्रांगण में एक आदमी के नग्न शरीर पर एक सिपाही कोड़े मार रहा है—एक कमरे में एक आदमी कोल्हू में बैल की तरह जुता हुआ है, दूसरी तरफ एक आदमी नारियल छीलकर रस्सी बना रहा है।)

(मंच पर एक ओर वीर सावरकर हथकड़ी और बेड़ी में जकड़ा खड़ा है। एक कैदी नारियल छील रहा है, उसके पास नारियल से बनी रस्सी रखी है। पास में ही दूसरा कैदी नारियल के छिलके से रस्सी बनाने का अभिनय कर रहा है। दूसरी ओर थर्माकोल से बने पत्थरों का ढेर रखा है। एक कैदी हथौड़े से पत्थर तोड़ रहा है। दूसरा कैदी उसे उठाकर टोकरी में रखता है और फिर उसे सिर पर रखकर मंच के दूसरी ओर जाकर रख आता है। यह प्रक्रिया वह दो-तीन बार करता है। मंच के बीच में एक बच्चा बैठकर अपने दोनों हाथों को एक-दूसरे में बाँधकर सिर पर रखता है और एक अँगूठे को ऊपर की ओर खड़ा रखता है। एक कैदी उस बच्चे के अँगूठे को अपने दाहिने हाथ से पकड़ता और बाएँ हाथ को पूरा फैलाकर तथा बाईं ओर झुकता हुआ कोच के बैल की तरह कोल्हू बने बच्चे के चारों ओर घूमता है। जेलर आता है अकड़कर चलता है। उसके हाथ में चाबुक है। काम कर रहे सभी कैदियों के पास जाता है और चाबुक फटकारता है।)

(नेपथ्य से सूत्रधार की आवाज)

जेल में हमारे क्रांतिकारियों को दंडस्वरूप नारियल छीलने पड़ते, नारियल के रेशों से रस्सियाँ बनानी पड़तीं, कोल्हू में बैल की जगह स्वयं जुतकर तेल निकालना पड़ता था, पहाड़ खोदना, पत्थर तोड़ना आदि अनेक कष्टदायक कार्य करने पड़ते।

जेलर : *(काम करते हुए कैदियों के पास जाकर)* ऐ काला आदमी! जल्दी करो···फास्ट···रुकता है—मारो···। *(जेलर के कहने पर सिपाही मारता है, मार खाने पर कैदी बोलते हैं)*

पहला कैदी : भारत माता की जय!

दूसरा कैदी : वंदे मातरम्।

और कैदी बोलते हैं : जय हिंद!

(महावीर सिंह का प्रवेश, उसके दोनों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ी बँधी है। कोल्हू वाले बच्चे धीरे-धीरे मंच से हट जाते हैं। उनकी जगह महावीर सिंह आकर बैठ जाता है। पहाड़ तोड़नेवाले कैदी भी मंच से हट जाते हैं। सिपाही महावीर सिंह की हथकड़ी खोलता है और फेंककर थाली में खाना देता है। महावीर सिंह खाने की थाली को जोर से धक्का

देकर खाना वापस कर देता है।)

जेलर : महावीर सिंह, छह डिनों से टुमने कुच नहीं खाया, मरना है क्या?

(सिपाही से) इसे खिलाओ। हम डेखेगा कि ये कैसे नहीं खाटा।

महावीर सिंह : छह दिनों क्या, यह खाना मैं छह जन्मों तक भी नहीं खाऊँगा। *(भोजन की ओर इशारा करते हुए)* इसमें कंकड़ ज्यादा है और चावल कम और इतनी बदबू। ये देखो इसमें कीड़े भी हैं, यह खाना तो जानवर भी न खाएँ। मगर टुमको खाना होगा—सिपाही, जबरडस्टी खिलाओ। *(सिपाही खिलाने की कोशिश करता है। महावीर सिंह नहीं खाता है। वह हाथों से जोर से सिपाही को धक्का दे देता है। सिपाही गिरते-गिरते बचता है।)*

जेलर : ओह, नहीं काटा (खाता) है। बूक (भूख) से कहीं मर ही न जाए। फिर हम पर इल्जाम आएगा कि इसे भूका मार दिया।···टीक है, काना नहीं काटा तो इसे दूध पिलाओ—पाइप से। मुँह से नहीं पीता तो नाक से पिलाओ। *(नारियल छीलते हुए और रस्सी बनाते हुए कैदियों की ओर इशारा करते हुए)* ए, टुम इसको पटको।

(महावीर सिंह छटपटाता है, कैदियों की सहायता से सिपाही पाइप से दूध पिलाने की कोशिश करता है।)

वीर सावरकर : *(आगे बढ़कर महावीर सिंह के साथ जबरदस्ती करनेवाले कैदियों और सिपाही से)* अरे नीच, भारतीय होकर भी अपने ही साथी पर अत्याचार कर रहा है। तुझे धिक्कार है!

जेलर : ओह, बहुट बोलटा है, इसे भी मारो कोड़े।

(सिपाही वीर सावरकर को कोड़े मारता है।)

वीर सावरकर : भारत माता की जय!

एक कैदी : अरे यह क्या हो गया, महावीर सिंह···*(उसके छाती को हाथ से हिलाते हुए)* महावीर सिंह··· *(घबराकर)* लगता है, दूध इसके फेफड़े में चला गया···*(जेलर से)* साहब, लगता है महावीर सिंह के फेफड़े में दूध चला गया है।

जेलर : अच्छा!

दूसरा कैदी : महावीर सिंह···महावीर सिंह, आँखें खोलो दोस्त।

तीसरा कैदी : *(जेलर से)* यह क्या साहब, इसने तो दम तोड़ दिया।

पहला कैदी : *(सिर पर हाथ रखता है)* ओह! मैंने गोरों के कहे में आकर कितना बड़ा पाप किया, *(ऊपर देखते हुए)* भगवान् मुझे कभी माफ नहीं करना।

दूसरा कैदी : महावीर आजादी की लड़ाई लड़ते-लड़ते बीच में ही हमारा साथ छोड़कर चले गए, महावीर सिंह।

तीसरा कैदी : महावीर सिंह, हमने ही तुम्हें मारा है, भगवान् हमें सजा दो भगवान्! हम पापी हैं, हमें सजा दो भगवान्! *(मंच पर सिर पटकता है।)*

(महावीर सिंह मरा पड़ा है, तीनों कैदी उसके पास बैठे अफसोस कर रहे हैं। सिपाही भी सिर झुकाए खड़ा है। जेलर हैड उतारता है।)

वीर सावरकर : *(आगे बढ़कर शेर की तरह कहता है)*

मौत इकबार जब आती है, तो डरना क्या है,
हम सदा खेल ही समझा किए मरना क्या है।
वतन हमेशा रहे शाद, काम और आजाद,
हमारा क्या है, अगर हम रहें न रहें।

सभी कैदी मंच पर खड़े होते हैं। वे सभी इस प्रकार पंक्ति बनाते हैं कि सबका चेहरा दर्शकों की ओर होता है। क्षण भर में ही सबके सब दाहिने मुड़ते हैं। सबसे पहलेवाले कैदी (वीर सावरकर) के दाहिने हाथ में भारत का झंडा है। वह झंडे को ऊँचा करता है। सभी कैदी इनकलाब की तरह दाहिने हाथ को ऊँचा और तिरछा रखते हैं और बाएँ हाथ को नीचे और पीछे की ओर तिरछा रखते हैं, स्वयं भी आगे की ओर थोड़ा सा झुकते हैं। सिपाही और जेलर इस पंक्ति के अंत में खड़े हो जाते हैं—

(नेपथ्य से दोनों सूत्रधार बोलते हैं—)

सूत्रधार-१ : हमारे वीर सपूतों ने कैसा अद्‌भुत शौर्य दिखाया!

सूत्रधार-२ : आगे आजादी पाने की धुन में परिणामों को नहीं विचारा!

सूत्रधार-१ : बढ़ता रहा जाँबाज काफिला आजादी की ओर!

दोनों : दोस्तो, आजादी की ओर।

(सूत्रधार भी उसी पंक्ति में जेलर के बाद खड़े हो जाते हैं। सभी दर्शकों की ओर मुँह करके सीधे खड़े होते हैं और दर्शकों को नमन करने के लिए आगे झुकते हैं।)

सुर-सदन, डब्ल्यू जैड-१९८७
रानी बाग, दिल्ली-११००३४
दूरभाष : ०११-२७०२२३२७

खुश रहो अहले वतन–वंदेमातरम्

● रवि शर्मा 'मधुप'

ऐ मेरे वतन के लोगो, जरा आँख में भर लो पानी,
जो शहीद हुए हैं उनकी, जरा याद करो कुरबानी।

जी हाँ, यह मौका है आँख में पानी भर आने का, शहीदों की कुरबानी याद करने का, उन्हें अपने श्रद्धा–सुमन अर्पित करने का। आज के दिन हम सबको अपने आप से पूछना चाहिए कि स्वतंत्रता दिवस हम क्यों मानते हैं? स्वतंत्रता का यह जीवन, आजादी की ये साँसें क्या हमें आसानी से मिल गईं? क्या अंग्रेज इस 'सोने की चिड़िया' कहलानेवाले देश को आसानी से, खुशी से छोड़कर चले गए? आखिर वे लोग कौन थे, जिन्होंने आजादी का सपना देखा, उस सपने को सच बनाने के लिए हँसते–हँसते बड़े–से–बड़ा त्याग–बलिदान किया। भारतमाता की गुलामी की जंजीरों को तोड़ने की कोशिश में, आजादी के उगते सूर्य को देखने की तमन्ना में, अत्याचार की काली रात में खुद को मिटा दिया। क्या उन्होंने अपने सुख के लिए यह लड़ाई लड़ी थी? ये कष्ट सहे थे? उनमें से कुछ वीरों के नाम हम जानते हैं, उन्हें अपनी श्रद्धांजलि भी अर्पित करते हैं, मगर सैकड़ों–हजारों ऐसे अनाम शहीद हैं, जिनका कोई नाम भी नहीं जानता? क्या उनका बलिदान व्यर्थ गया? नहीं, क्योंकि ये अनाम शहीद भारतीय स्वतंत्रता के इस जगमगाते भवन की नींव के वे पत्थर हैं, जिन पर हमारा यह भव्य भवन खड़ा है।

आज मौका है कि हम अपने आपसे पूछें कि क्या हम उन वीरों को जानने–समझने और उनके प्रति दो आँसू बहाने का अपना कर्तव्य ईमानदारी से पूरा कर रहे हैं? यहीं हमें यह भी सोचना है कि क्या साल में एक–दो बार इन शहीदों को याद करके हम बाकी समय उन वीरों द्वारा दिलाई इस बेशकीमती आजादी का मनमाना दुरुपयोग कर सकते हैं?

पहला सवाल है इन वीरों–शहीदों को जानने का। १६०० ईस्वी में जनमी ईस्ट इंडिया कंपनी ने अन्य व्यापारियों की ही तरह एक व्यापारी के रूप में भारत में प्रवेश किया था। धीरे–धीरे अपने संबंध बढ़ाए। इन संबंधों का फायदा उठाकर कंपनी ने कुछ छूट तथा अधिकार प्राप्त कर लिये। अंग्रेजों ने फूट डालो और शासन करो की नीति के अनुसार भारत को अपने कब्जे में करना शुरू कर दिया। सन् १७५७ की प्लासी की लड़ाई से शुरू हुआ अंग्रेजों का अभियान सन् १८५७ तक आते–आते भारत के एक बड़े भू–भाग पर अपनी सफलता का झंडा फहरा चुका था। लोगों को अंग्रेजों की चालें समझ आने लगी थीं। उनके भीतर गुस्से की आग सुलगने लगी थी। राजे–महाराजे, नवाब–निजाम, सिपाही–सैनिक सभी अंदर–ही–अंदर खामोश थे। यह खामोशी तूफान के आने से पहले की खामोशी थी। तूफान आया सन् १८५७ के मई माह में। अंग्रेजों ने भारत के इस प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को 'सिपाही–विद्रोह' कहकर महत्त्वहीन सिद्ध करना चाहा। यह ठीक है कि इसकी शुरुआत बैरकपुर, कलकत्ता की ३४वीं रेजीमेंट के वीर नवयुवक मगल पांडेय के विद्रोह से मानी जाती है। मगर झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब पेशवा, तात्या टोपे, वीर कुँवर सिंह, बहादुरशाह जफर, अली मुल्ला खाँ, बेगम हजरत महल, मौलवी अहमदशाह आदि अनेक वीर–वीरांगनाओं ने पहले से ही इसमें बढ़–चढ़कर हिस्सा लेना शुरू कर इसे क्रांति का रूप दे दिया था।

जाने-माने लेखक। विविध विषयों पर २०० से अधिक लेख, १० शोध निबंध तथा सोलह पुस्तकों के रचयिता। 'आचार्य शुल्क' (समीक्षा-ग्रंथ) चर्चित। देश-विदेश की अनेक संस्थाओं द्वारा लगभग दो दर्जन सम्मानों से अलंकृत। संप्रति श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली के हिंदी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष।

सन् १८५७ में रोटी और कमल विद्रोह के प्रतीक बनकर एक हाथ से दूसरे हाथ में जाने लगे थे। मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, कलकत्ता, पटना आदि में साधु–संन्यासी, मौलवी कीर्तन–भजन गाकर जनता को जगा रहे थे, स्थान–स्थान की फौजी छावनियों को बगावत के लिए उकसा रहे थे। एक ब्राह्मण संन्यासी घूम–घूमकर प्रचार कर रहे थे कि कारतूस में गाय और सूअर की चरबी का उपयोग कर अंग्रेज हम भारतवासियों का धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं। उन कारतूसों को मुँह से खोलना पड़ता था। सैनिकों ने कारतूसों को छूना महापाप समझा। मंगल पांडेय अंग्रेजों के विरुद्ध कुछ कर गुजरने के लिए तैयार हो गए। उन्होंने अकेले ही अपनी तलवार और बंदूक से कई अंग्रेज अफसरों को मौत के घाट उतार दिया। मगल पांडेय को कोर्ट मार्शल द्वारा फाँसी दी गई।

इस क्रांति में बाजीराव पेशवा के उत्तराधिकारी नाना साहब पेशवा, उनके साथी तात्या टोपे तथा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये तीनों बचपन में बाजीराव पेशवा के राजदरबार में अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा ग्रहण करते थे। भाला–तलवार चलाना, घुड़सवारी करना आदि युद्धकला में तीनों प्रवीण थे। घुड़सवारी प्रतियोगिता में प्रथम

आने पर तात्या को जो लोहे का टोप इनाम में मिला, वह उनके नाम का हिस्सा बन गया। नाना साहब अंग्रेजों से लगातार संघर्ष करते रहे। अनेक दु:ख और कष्ट सहे और अक्तूबर १८५९ में यह वीर सपूत देश पर बलिदान हो गया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अपने पति राव गंगाधर की मृत्यु के बाद अंग्रेजों द्वारा झाँसी हड़पने का विरोध किया। अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध का डंका बजा दिया। वह मर्द की पोशाक पहनकर, हाथ में तलवार लेकर, घोड़े पर सवार होकर अपनी फौज का नेतृत्व करने लगी। लक्ष्मीबाई की लपलपाती तलवार ने नागिन के समान अंग्रेजी फौज को डँसना आरंभ कर दिया। रास्ते में एक नाला आया। रानी का घोड़ा नया था। वह चारों तरफ से अंग्रेजी फौजों से घिर गई। फिर भी महारानी ने हार नहीं मानी, हथियार नहीं डाले और युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त हुई। तात्या टोपे ने भी अनेक बार अंग्रेजों को छठी का दूध याद दिलाया। एक विश्वासघाती देशद्रोही मानसिंह के धोखे के कारण टोपे गिरफ्तार हुए तथा ६ अप्रैल, १८५९ को ग्वालियर के निकट शिवपुरी में हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गए।

इसी क्रांति में बिहार की जगदीशपुर रियासत के ८० साल के बूढ़े शेर वीर कुँवर सिंह की बहादुरी के सामने जवानों की जवानी भी शरमा जाती थी। वीर कुँवर सिंह तथा उनके भाई अमरसिंह ने अंग्रेजी फौजों को नाकों चने चबवा दिए।

१० मई, १८५७ का दिन भारतीय इतिहास का सुनहरा दिन था। इसी दिन मेरठ छावनी में भारतमाता के बहादुर सिपाहियों ने विद्रोह का डंका बजा दिया और गौरी फौजों पर गोलियाँ बरसा दीं। छावनियों में रखे शस्त्र लूट लिये गए। अंग्रेज अफसरों के घरों, डाक बँगलों, दफ्तरों में आग लगा दी गई। इस विद्रोह की खबर पटना में पहुँचने पर पीर अली नाम के क्रांतिकारी ने सातवीं और बारहवीं फौजी रेजिमेंट को विद्रोह के लिए तैयार कर लिया। ३ जुलाई, १८५७ को २०० क्रांतिकारियों के साथ पीर अली ने पटना में जुलूस निकाला। पकड़े जाने पर वे खुशी-खुशी फाँसी के फंदे पर झूल गए। हरियाणा के हिसार जिले के वीर हुकुमचंद जैन तथा वल्लभगढ़ के क्रांतिकारी नाहरसिंह ने भी १८५७ की क्रांति में अंग्रेजों को मुँहतोड़ जवाब दिया तथा बदले में फाँसी का पुरस्कार पाया। कोटा के दो विप्लवियों लाला जयदयाल और मेहराब खाँ को भी अंग्रेजों ने विद्रोह भड़काने तथा अग्रेजों का कत्ल करने के जुर्म में सन् १८६० में फाँसी दे दी।

इस प्रकार अंग्रेजों ने इस क्रांति को क्रूरता से कुचल दिया। हजारों को फाँसी दी गई, हजारों को तोप के मुँह पर बाँधकर उड़ा दिया गया। इस पराजय का असर लंबे समय तक रहा। गुलामी की पीड़ा और अंग्रेजी दमनचक्र की बर्बरता लोग मुँह बंद करके सहते रहे। १८५७ की क्रांति के लगभग ५० साल बाद समय ने एक बार फिर करवट बदली। आजादी के लिए संघर्ष तेज होने लगा। बंगाल का विभाजन, कांग्रेस का विभाजन, अंग्रेजी अत्याचारों में वृद्धि, भारतीयों से अन्याय की पराकाष्ठा आदि ने भारतीय जनता में क्रांति की चेतना जगाने में आग में घी का काम किया। भारतमाता को आजाद कराने के लिए पूरे भारत ही नहीं, विदेशों में भी जोरदार प्रयास शुरू हो गए। इन प्रयासों के दो रूप स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे—अनुनय-विनय, प्रेम-अहिंसा द्वारा अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश करना एक तरीका था, तो 'ईंट का जवाब पत्थर से दो' की नीति के अनुसार अंग्रेजों को डरा-धमकाकर भारत से भगा देना, दूसरा तरीका था। रास्ते अलग थे, मगर मंजिल एक थी।

एक ओर 'लाल-बाल-पाल' की तिकड़ी के रूप में प्रसिद्ध पंजाब केसरी लाला लाजपत राय, महाराष्ट्र में क्रांति के अग्रदूत लोकमान्य बालगंगाधर तिलक तथा बंगाल के क्रांति वीर विपिन चंद्र पाल थे, तो दूसरी ओर थे—मोहनदास कर्मचंद गांधी, जिन्हें 'महात्मा' तथा 'बापू', भी कहा गया। गांधीजी के भारतीय राजनीति में सक्रिय होने से स्वतंत्रता संघर्ष को नई दिशा तथा नया जोश मिला। उन्होंने असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, डांडी मार्च आदि के द्वारा देश की जनता को सत्य और अहिंसा का पाठ पठाया। पूरा देश उनके पीछे चल पड़ा। इसी दौरान १३ अप्रैल, १९१९ की घटना ने पूरे देश में आक्रोश, क्रोध तथा दु:ख की भावना भर दी। यही वह दिन था, जब अंग्रेज जनरल ओ डायर ने अमृतसर के जलियाँवाला बाग में सार्वजनिक सभा में निहत्थे-निर्दोष लोगों पर बेरहमी से गोलियाँ चलवाईं। वह भारत की गुलामी के इतिहास का काला अध्याय है। हजारों लोग मौत के घाट उतार दिए गए। पूरा देश स्तब्ध रह गया। जनरल ओ डायर के इस कायरतापूर्ण नृशंस काम का बदला लिया, पटियाला के सुनाम कस्बे में १८९९ में जनमे बहादुर सरदार ऊधमसिंह ने। ३१ मार्च, १९४० के दिन लंदन के इंडिया हाउस में एक सभा में जनरल डायर शान के साथ, भारत में किए अपने घिनौने कार्यों की प्रशंसा कर रहा था। उसी समय सरदार ऊधम सिंह ने अपनी रिवॉल्वर निकाली और धाँय से डायर पर गोली दाग दी। वह वीर नौजवान वहाँ से भागा नहीं। उसने ब्रिटिश सरकार की अधीनता स्वीकार नहीं की। माफी नहीं माँगी, बल्कि अदालत में गरजते हुए कहा, 'जनरल ओ डायर की हत्या करके हमने अपने हजारों भाइयों के कत्ल, कारागार, कालापानी और फाँसी की सजा का बदला लिया है।' १३ जून, १९४० को भारतमाता का यह प्यारा लाल देश के लिए बलिदान हो गया।

इसी दौरान, क्रांतिकारियों ने अनेक संगठन बना लिए थे। बनारस से शचींद्रनाथ सान्याल ने 'हिंदुस्तानी रिपब्लिक एसोसिएशन' की स्थापना की। सुरेंद्रनाथ भट्टाचार्य के नेतृत्व में 'अनुशीलन समिति' बनी। चंद्रशेखर आजाद ने 'क्रांति संगठन' बनाया। सरदार भगतसिंह तथा उनके साथी भगवतीचरण, यशपाल और सुखदेव आदि ने मिलकर 'नौजवान भारत सभा' की स्थापना की। रासबिहारी बोस ने १९२१ में जापान में 'इंडियन इंडिपेंडस लीग' की स्थापना की, जो आगे चलकर 'आजाद हिंद फौज' के रूप में संगठित हुई। क्रांतिकारियों का जीवन काँटों की सेज था। अंग्रेज सरकार तथा उनके पिट्ठू तो उनके पीछे पड़े ही रहते थे, मगर कई बार अपने दोस्तों ने भी पीठ में छुरा घोंपा। पैसे की कमी इन्हें हमेशा रहती थी, जो भी क्रांतिकारियों को किसी भी प्रकार की सहायता देता, अंग्रेज सरकार उसे यातनाएँ देती। क्रांतिकारियों ने धन एकत्र करने के लिए बड़े-बड़े महाजनों के यहाँ डकैतियाँ डालनी शुरू कीं। क्रांतिकारी

९ अगस्त, १९२५ को लखनऊ और सहारनपुर के बीच चलनेवाली गाड़ी से काकोरी के निकट सरकारी खजाना लूट लिया गया। पंडित रामप्रसाद बिस्मिल की इस योजना में चंद्रशेखर आजाद, ठाकुर रोशन सिंह, अशफाक उल्ला खाँ, राजेंद्र लाहिड़ी आदि शामिल थे। यह डकैती 'काकोरी कांड' के नाम से प्रसिद्ध है। इससे ब्रिटिश सरकार हिल गई। चंद्रशेखर आजाद के अतिरिक्त सभी पकड़े गए। उन पर अभियोग चलाया गया तथा चारों को फाँसी दे दी गई। पंडित रामप्रसाद बिस्मिल का गीत 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है' क्रांतिकारियों का कंठहार बना हुआ था।

साहित्य का प्रचार-प्रसार करने, बम बनाने, कारतूस खरीदने तथा अन्य क्रांतिकारी कार्यों के लिए भारी मात्रा में धन की आवश्यकता थी। अपने भारतीय लोगों से धन लूटना ये लोग उचित नहीं समझते थे। अत: क्रांतिकारियों ने रेल डकैती द्वारा ब्रिटिश खजाना लूटने की योजना बनाई। ९ अगस्त, १९२५ को लखनऊ और सहारनपुर के बीच चलनेवाली गाड़ी से काकोरी के निकट सरकारी खजाना लूट लिया गया। पंडित रामप्रसाद बिस्मिल की इस योजना में चंद्रशेखर आजाद, ठाकुर रोशन सिंह, अशफाक उल्ला खाँ, राजेंद्र लाहिड़ी आदि शामिल थे। यह डकैती 'काकोरी कांड' के नाम से प्रसिद्ध है। इससे ब्रिटिश सरकार हिल गई। चंद्रशेखर आजाद के अतिरिक्त सभी पकड़े गए। उन पर अभियोग चलाया गया तथा चारों को फाँसी दे दी गई। पंडित रामप्रसाद बिस्मिल का गीत 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है' क्रांतिकारियों का कंठहार बना हुआ था। फाँसी के फंदे पर बिस्मिल ने देशप्रेम का यह तराना गाया—

मालिक तेरी रजा रहे, और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान, रगों में लहू रहे
तेरा ही जिक्र व तेरी ही जुस्तजू रहे।

कुछ इसी प्रकार के भाव उनके साथी अशफाक उल्ला खाँ की अंतिम शायरी में व्यक्त हुए हैं—

मौत इक बार जब आनी है तो डरना क्या है?
हम सदा खेल ही समझा किए, मरना क्या है?
वतन हमेशा रहे शाद, काम और आजाद
हमारा क्या है, अगर हम रहें न रहें।

आजादी के ये मतवाले न रहकर भी हमारे दिलों में सदा अमर रहेंगे।

इसी बीच सन् १९२९ में भारत में साइमन कमीशन आया। पूरे देश में इसके विरोध में प्रदर्शन तथा जुलूस निकाले गए। ३० अक्तूबर, १९२९ को लाहौर में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। नारे लग रहे थे—साइमन वापस जाओ, इनकलाब जिंदाबाद। जलूस के आगे लालाजी चल रहे थे, उनके पीछे सरदार भगतसिंह और उनके साथी। एक चौराहे पर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लालाजी सिंह गर्जना करने लगे। एकाएक उनपर लाठियों का प्रहार होने लगा। लहूलुहान लालाजी ने घायल अवस्था में भी सिंहनाद करते हुए ब्रिटिश शासन को चुनौती देते हुए कहा, 'मेरी छाती पर किया गया एक-एक प्रहार, ब्रिटिश सरकार के कफन की कील सिद्ध होगा।' उनकी मृत्यु का बदला लेने के लिए सरदार भगतसिंह ने कसम खाई, 'खून का बदला खून।' लालाजी के हत्यारे सांडर्स की हत्या के लिए चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में भगतसिंह, राजगुरु और जयगोपाल सिंह नियुक्त किए गए। १७ दिसंबर, १९२९ को सांडर्स की हत्या कर दी गई। भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव पर मुकदमा चला। भगतसिंह ने देश की जनता को झिंझोड़ने वाले बयान दिए। उनके देशभक्ति के तराने अदालत में भी गूँजते थे। वे देशभक्ति की इन पक्तियों में देश की आजादी का सपना देखते—

कभी वह दिन भी आएगा कि जब हम आजाद होंगे,
यह अपनी ही जमीं होगी, यह अपना आसमाँ होगा।

× × ×

शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरनेवालों का, यही बाकी निशाँ होगा।

आज देश आजाद है—अपनी जमीं है, अपना आसमाँ है, मगर जिन्होंने देश के लिए ये कुरबानियाँ दीं, वे कहाँ हैं। जी हाँ, वे हमारे दिलों में हैं और हमेशा रहेंगे। स्वाभिमानी चंद्रशेखर आजाद हमेशा यही गीत गाते थे—

दुश्मन की गोलियों का हम सामना करेंगे,
आजाद थे आजाद हैं, आजाद रहेंगे।

२७ फरवरी, १९३१ की मनहूस घड़ी आई। इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में अपने एक क्रांतिकारी साथी के साथ आजाद बैठे थे। दल के किसी भेदिए ने आजाद के बारे में पुलिस सुपरिंटेंडेंट नाट बावर को सूचना दे दी। वह तुरंत दल-बल के साथ आ पहुँचा तथा आजाद को घेर लिया। दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं। अंत में जब एक गोली बची तो आजाद ने वह स्वयं को मारकर प्राणाहुति दे दी। महान् क्रांतिकारी आजाद शहीद हो गए। उन्होंने अपनी यह प्रतिज्ञा आजीवन निभाई कि जीते-जी अंग्रेज सरकार उनके बदन को छू भी नहीं सकती।

भगतसिंह तथा उनके साथियों को 'मेरा रंग दे वसंती चोला' गीत बहुत प्रिय था। २४ मार्च, १९३१ को फाँसी के फंदे की तरफ बढ़ते हुए तीनों इनकलाबी गा रहे थे—

दिल से निकलेगी न मरकर भी वतन की उलफत
मेरी मिट्टी से खुशबू-ए-वतन आएगी।

क्या ऐसे शहीद कभी मर सकते हैं, कभी नहीं।

एक ओर चापेकर बंधु, सावरकर, वासुदेव बलवंत फड़के, बापट, मैडम कामा, डॉ. हेडगेवार, अप्पाजी भोंसले आदि महाराष्ट्र में, लाला लाजपतराय, सरदार करतार सिंह, अजीत सिंह, भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, भाई परमानंद, बंता सिंह, नंदगोपाल, पं. काशीराम, मदनलाल धींगड़ा, ऊधम सिंह आदि पंजाब में तो आजाद, बिस्मिल, अशफाक उल्ला, ठाकुर रोशन सिंह, गणेश शंकर विद्यार्थी, पंडित गेंदालाल दीक्षित, शालिग्राम शुक्ल आदि उत्तर प्रदेश में तो बंगाल में वारींद्र कुमार घोष, मणींद्रनाथ बनर्जी, खुदीराम बोस, प्रफुल्लचंद चाकी, बाघा यतीन, बसत विश्वास, अरविंद घोष, सुभाषचंद्र बोस, ज्योतिर्मयी गांगुली, कुमारी प्रीतिलता वादेदार आदि केवल कुछ चर्चित नाम हैं, जो क्रांति की चिनगारियाँ सुलगा रहे थे। ऐसे ही अनेक अनाम शहीद हुए, जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपने सुख-चैन तथा प्राण तक कुरबान कर दिए। वहीं दूसरी ओर गांधीजी के नेतृत्व में पूरा देश जाग्रत् हो रहा था। गांधीजी के साथ सरदार पटेल, पंडित नेहरू, तिलक, मौलाना आजाद, राजेंद्र प्रसाद आदि अनेक देशभक्त भारत माता के पैरों की बेड़ियाँ काटने में लगे थे, तो तीसरी ओर श्यामजी कृष्ण वर्मा, बाबा ज्वाला सिंह, लाला हरदयाल, भाई बलवंत सिंह, सुंदरसिंह, वीर दामोदर सावरकर, मैडम कामा, रासबिहारी सरीखे क्रांतिकारी विदेशों में भी स्वतंत्रता संग्राम की मशाल जलाए हुए थे।

८ अगस्त, १९४२ को जो अगस्त क्रांति शुरू हुई, उसका मूलमंत्र था—'करेंगे या मरेंगे'। पहली बार देश की जनता इतनी भारी संख्या में, बिना किसी नामी नेता के, अपने बलबूते पर आंदोलन करने के लिए आगे बढ़ी और पूरे देश में यह क्रांति की ज्वाला में बदल गई। सब ओर एक ही आवाज थी, 'अंग्रेजों भारत छोड़ो'। बंबई, दिल्ली, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम, मध्य प्रदेश, राजस्थान अर्थात् लगभग संपूर्ण भारत में क्रांति की लहर छा गई। अंग्रेज सरकार ने गांधीजी सहित सभी प्रमुख नेताओं को पहले ही बंदी बना लिया था। मगर यह कोई साधारण क्रांति न थी, जनक्रांति थी, जिसे सँभालना अंग्रेजों के लिए कठिन हो रहा था। कई बार लगा कि अब अंग्रेजों के पाँव उखड़े, मगर अंग्रेज अपनी पूरी ताकत लगाकर किसी प्रकार इस क्रांति को दबाने में तो सफल हो गए, मगर इस क्रांति ने अंग्रेजी साम्राज्य के किले की चूलें हिला दीं। अंग्रेज समझ गए कि अब वे अधिक दिन तक भारत पर शासन नहीं कर पाएँगे। शायद इसीलिए अगस्त क्रांति के केवल ५ वर्ष बाद ही, १५ अगस्त, १९४७ को अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा।

आजादी की इस पूरी लड़ाई में क्रांतिकारी साहित्य ने भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। क्रांतिकारी साहित्य की ऐसी पुस्तकों को अंग्रेज सरकार तुरंत जब्त कर लेती थी। आजादी की लड़ाई में बँगला, गुजराती, कन्नड़, मराठी, पंजाबी आदि की कुल मिलाकर लगभग १७२ पुस्तकें तथा अकेले हिंदी की २६२ पुस्तकें जब्त की गईं। इससे साहित्य का महत्त्व भी स्पष्ट होता है। आजादी का प्रमुख हथियार था—तिरंगा झंडा। हाथ में तिरंगा झंडा लिये आजादी के दीवाने मैदान में कूद पड़ते थे और उनके मुख से स्वर निकलता था, 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा'। अनेक वीरों ने अपने प्राण दे दिए, मगर तिरंगे को झुकने नहीं दिया।

इसी प्रकार भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक ओर मंत्र था—'वंदे मातरम्'। बंगाल के प्रमुख कवि तथा साहित्यकार बंकिमचंद्र द्वारा रचित यह गीत सामान्य गीत नहीं रह गया था, बल्कि स्वतंत्रता का जयघोष बन गया था। जहाँ कहीं भी 'वंदे मातरम् का स्वर गूँजता, अंग्रेजी हुकूमत काँप उठती। यह गीत क्रांति का स्वर था। वंदे मातरम् को आधार बनाकर अनेक ऐसे गीत लिखे गए, जिनका प्रमुख स्वर था—देश की आजादी, ब्रिटिश साम्राज्य का अंत। आजादी के दीवानों का दृढ़संकल्प था—

छीन सकती है नहीं सरकार वंदे मातरम्
हम गरीबों के गले का हार वंदे मातरम्।

वंदे मातरम् हिंदू-मुसलिम एकता का मुख्य स्वर था। जनता का संकल्प था, चाहे हाथ में हथकड़ी, पाँवों में बेड़ी हो, फिर भी हम वंदे मातरम् को कदापि नहीं छोड़ेंगे। जब तक भारत आजाद नहीं होगा, तीनों लोकों में वंदे मातरम् का स्वर सदैव गूँजता रहेगा। 'सारे जहाँ से अच्छा, हिंदोस्ता हमारा' उर्दू के प्रसिद्ध कवि और शायर इकबाल का लिखा, एक ऐसा ही गीत था, जिसने देशप्रेम की भावना जगाई। रवींद्रनाथ टैगार का 'जन गण मन' राष्ट्र गान बना। इसी प्रकार हिंदू-मुसलिम एकता, त्याग, बलिदान, चरखा, खादी आदि पर भी अनेक गीत लिखे गए तथा जब्त किए गए।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास एक व्यक्ति, प्रदेश, दल या जाति का इतिहास नहीं। आजादी की यह लड़ाई प्रत्येक भारतवासी की लड़ाई थी, चाहे वह किसी भी, धर्म, जाति, प्रदेश का हो। आजादी की लड़ाई का यह इतिहास अंग्रेजों के अत्याचार, शोषण, क्रूरता के उदाहरणों से भरा पड़ा है, तो वहीं भारतवासियों के अदम्य साहस, शौर्य, त्याग, बलिदान तथा आजादी के लिए मर-मिटने की भावना से भी ओतप्रोत है। हर क्रांतिकारी का एक ही नारा था—

सर कटा सकते हैं, लेकिन सर झुका सकते नहीं।

आजादी की लड़ाई के इन नामी तथा अनाम शहीदों को शत-शत नमन! जय हिंद, वंदे मातरम्!

सा अ

सुर सदन, डब्ल्यू जैड, १९८७
रानीबाग, दिल्ली-११००३४
दूरभाष : ०९८११०३६१४०

राम झरोखे बैठ के

आजादी के बाद इंतजार के आयाम

● गोपाल चतुर्वेदी

सूखते कुएँ में रस्सी डाले लोग खड़े हैं। पहले नीचे बँधी बाल्टी तत्काल भर जाती थी, अब रस्सी कम पड़ती है पानी तक पहुँचने के लिए। रस्सी की लंबाई दिनोदिन बढ़ रही है और पानी की उपलब्धता उसी अनुपात में घटने पर आमादा है। एक ही नहीं, ऐसे कई गाँव हैं इस क्षेत्र में। हर चुनाव में नहर और नल के वादे होते हैं। आजादी के बाद से इंतजार है इनके पूरे होने का। कुछ का दावा है कि यह जनप्रतिनिधि की जुबान फिसलने का परिणाम है, उस के इरादों का नहीं।

गाँव के एक बाबू शहर से पढ़-लिखकर लौटे हैं। उनके ऐसे शिक्षित बेरोजगार पूरे क्षेत्र में भरे पड़े हैं। उन का इकलौता काम केवल व्यवस्था को गाली देना है। उसने इन्हें 'मिड डे मील' का कटोरा पकड़ाकर साक्षर तो बनाया, पर न शिक्षा दी, न रोजगार की काबिलीयत। अब इनके पास सीमित विकल्प हैं। कुछ ने शहर जाकर सब के आगे कटोरा फैलाने का धंधा अपनाया है। कुछ साहसी चोरी-डकैती से पेट पालने में लगे हैं, कुछ कायर रिक्शा चलाने में। आदमी द्वारा आदमी को ढोना इस देश का एक विशिष्ट आकर्षण है पर्यटकों के लिए। कुछ इसका आनंद सिर्फ देखकर उठाते हैं, कुछ ढुलने के अनुभव-सुख से। आज अपराधी से लेकर रिक्शाचालक तक को नौकरी का इंतजार है। ऐसे यह भूलते हैं कि इसमें दोष सरकार का नहीं है। वह तो इन्हें पहले ही कटोरा पकड़ने का गहन प्रशिक्षण दे चुकी है। उन पर निर्भर है कि उम्मीद की रस्सी कुएँ में डालकर रोजगार की बूँद को तरसें या शहर जाकर घर-बार को। यही विस्थापित आज हर शहर की शोभा हैं।

ये खुद के लिए हों, न हों, पुलिस के लिए बड़े उपयोगी हैं। ज्यादातर गुनाह अकसर गुनहगार और पुलिस की मिलीभगत का नतीजा है। पुलिस अपनों को कैसे पकड़े? क्यों निजी कमाई को ठुकराए? वह इंतजार करती है बड़के अधिकारी या शासकीय दल के लीडर के दबाव का। तब तक तफशीश की द्रौपदी की साड़ी खिंचती ही रहती है। यदि अपराधी पकड़ने की विवशता हुई तो बिना किसी पहुँच का विस्थापित हाजिर है। पुलिस के पास ऐसा जादू है कि अगर सूरज भी उसके हत्थे चढ़े तो वह उससे भी लिखित में स्वीकार करवा ले कि वह धरती पर रोशनी नहीं, अँधेरा बाँटता है।

फिर विस्थापित की हस्ती ही क्या है? उससे चोरी, डकैती, अपहरण, हत्या जैसा कोई भी अपराध कुबूल करवाना वरदी के लिए बाएँ हाथ का खेल है। जेल जाकर उसका और उसके परिवार का जीवन इस इंतजार में कटता है कि कब खेत बिके, वकील जुटे और निरपराध को जमानत मिले। हमारे कोर्ट बड़े वकीलों के हाथ की कठपुतली हैं। ऐसे हर अपराधी को निरपराध सिद्ध करने में समर्थ हैं। कानून का दोषी अगर समृद्ध है तो जेल के बाहर है, गरीब बेकसूर अंदर। भारतीय न्यायिक प्रक्रिया में कोई फँसा तो कब उबरे या कभी न उबरे, यह ऊपरवाला भी नहीं जानता होगा। अजब विरोधाभास है। वरदी को वाहवाही मिलती है, बेबस निर्धन को जेल।

महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि कुछ खानदानी अपवादों के अलावा, इंतजार का हर इंद्र खुद इसी प्रतीक्षा की प्रक्रिया से गुजरा है। पर चुनिंदा याद्दाश्त इनसान का विलक्षण गुण है। वह कभी अपने मददगारों को भूलता है, कभी अपने परिवार को। जो उसे याद रहता है, वह अपना दिया उधार है या दूसरों पर किए गए अहसान। इसमें क्या आश्चर्य है कि उसके कर्ज या कृपा को दूसरे भूलते हैं। वह अकसर दूसरों को बताता है कि श्रम, परिश्रम और प्रतिभा से कैसे उसने सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ी हैं। कैसे उसने हर छोटे-बड़े काम के लिए दफ्तरों के चक्कर काटे हैं। अफसरों की घर-बाहर ड्यूटी बजाई है। घंटों धूप, बरसात और जाड़े में ठिठुरकर नेता-सेवा की है। उनकी नजर में आने को, नारे लगाने से लेकर पुलिस के डंडे तक खाए हैं।

उसने अपने भोगे हुए यथार्थ से जाना है कि जनसेवा दो प्रकार की है। एक सरकार की सेवा में रहकर अधिकारी की घरेलू चक्की है और दूसरी सियासत में आकर लीडर की। भारतीय प्रजातंत्र में कुछ पैदाइशी जनसेवक हैं। उनके बाप-दादा ने कभी स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया तो ऐसों को जन्मजात अधिकार है कि उस पूँजी के सूद-स्वरूप पुश्त-दर-पुश्त, हर पीढ़ी उसका ब्याज खाए। ब्याज भी ऐसा-वैसा नहीं, मुल्क या राज्य के सर्वोच्च पद पर आसीन होने का।

कुछ के लिए प्रजातंत्र परिवार और जाति का विस्तार है। सांसद से लेकर विधायक, मंत्री, मुख्यमंत्री तक एक ही कुनबे के हों या अपनी जात के। इन हालात में जनसेवा को निर्धारित करनेवाला इकलौता मानक जन्म की दुर्घटना है। कामयाब होते-होते हमारा प्रतीक्षार्थी नायक इंतजार के दर्शनशास्त्र के दार्शनिक का दर्जा पा चुका है। उसने अपने अनुभव

से जाना है कि वर्तमान जनसेवा का सीमित अर्थ अब पारिवारिक नेता की सेवा और खुद की अर्थसेवा है। यदि लीडर को सेवा भाई तो प्रतीक्षार्थी चुनावी टिकट से लेकर विधायक, सांसद, मंत्री कुछ भी बन जाता है वरना वर्कर का वर्कर रहना उसकी विवशता है। यों कोई ठिकाना नहीं कि कब किस की किस्मत चेते। कभी ड्राइवर, कभी योग-शिक्षक तो कभी सहपाठी, कभी परिवार के दोस्त जैसे भी अचानक जनसेवा के मैदान में कामयाबी से कूद पड़ते हैं। जनता का क्या? वह हैरान भी होती है तो कभी नेता के प्रति अपनी कृतज्ञता तो कभी जाति के बंधन की दृढता से उस के चहेतों का चयन कर लेने में उसे आपत्ति नहीं है। ऐसे बात आदत की भी है। उसने आजादी के बाद से लोकतंत्र का यह अनूठा भारतीय संस्करण ही देखा-जाना है। उसे अब भरोसा हो गया है कि प्रजातंत्र का वास्तविक अर्थ केवल परिवार-तंत्र है।

जिस नेता ने सिर्फ परिवार सेवा से प्रगति की है, वह इंतजार की अहमियत से परिचित है। वह जानता है कि इंतजार का फल मीठा होता है। उसके दर्शनार्थी भी आते हैं, दसियों की संख्या में। वह उन्हें जान-बूझकर इंतजार करवाता है। मीठे फल से अपने चाहनेवालों को क्यों वंचित किया जाए? उसके निजी सहायक इसका फायदा उठाते हैं। नेता उनके लिए मंदिर की मूरत है और वह उसके औपचारिक पुजारी। यह पुजारी का अधिकार है कि वह हर भक्त से चढ़ावा ले, वरना देवता/देवी की नाराजी का खतरा है। ऐसी हरकत नेता के निजी सहायक का भी पावन कर्तव्य है। वह वसूली कर कुछ को प्राथमिकता से दिव्य दर्शन की सुविधा कतार तोड़कर देता है। ऐसा नहीं है कि नेता को इसकी खबर नहीं है। पर उसे क्यों आपत्ति हो? कौन पैसा उसकी जेब से जा रहा है?

गए-गुजरे जमाने में प्रेमी-युगल अकसर इंतजार की पीड़ा कभी खीजकर, कभी रूठकर भोगते पाए जाते थे। आधुनिक प्रेमियों ने इसमें सुधार किया है। आज किस प्रेमी-प्रेमिका की शामत आई है कि वह दूसरे को इंतजार करवाए? उनके लिए प्यार-मोहब्बत नितांत अस्थायी अनुभूति है।

बाजार युग में माल की महत्ता उसके मूल्य से है। जो वस्तु जितनी महँगी है, उसका उतना ही महत्त्व है। नेता सोचता है कि उसका दर्शन महँगा होना उसके महत्त्व का परिचायक है। उसने बड़ों के पदचिह्नों पर चलकर जाना है कि लोकप्रियता का पैमाना जनता से दूरी है। इसीलिए गाँव-शहर में पहले चप्पल चटकाते घूमनेवाले, कोई भी सार्वजनिक पद पाते ही यकायक असुरक्षित हो उठता है। उनकी प्रिय पात्र जनता उनके नेक कर्मों के कारण उनकी 'ठुकाई' न कर दे। सरकार की सुरक्षा एजेंसियाँ उनके संभावित खतरों का अनुमान लगाती हैं। यदि वह शासक दल के हैं तो पाया जाता है कि आतंकी जमात या फिरकापरस्त उनकी जान लेने को तुले हैं। बस वह तत्काल सुरक्षा के घेरे के प्रतिष्ठासूचक चिह्न के सुपात्र घोषित हो जाते हैं। दीगर है कि ऐसे पद से हटकर या चुनाव हारकर, फिर यकायक वहीं बिना सुरक्षा संकट-मुक्त बनते हैं। सच्चाई यह है कि आगंतुक उनके पास निजी स्वार्थवश आते हैं वरना कोई उन पर थूकने तक न आए!

यह दावा विरले ही कर सकते हैं कि वह जीवन-पर्यंत रोगमुक्त रहे हैं। हारी-बीमारी किसी भी जीवन के उपन्यास का एक सामान्य और अनिवार्य अध्याय है। साधारण व्यक्ति इसके चलते सरकारी अस्पतालों की बदबूदार धूल फाँककर और बीमार पड़ता है तथा समृद्ध निजी अस्पतालों में पैसे फूँककर। दोनों जगह इंतजार एक आवश्यक प्रक्रिया है। पहले में कई मरीज अपनी बारी आते-आते भगवान् को प्यारे हो जाते हैं, दूसरे में ऐसी नौबत आने की संभावना थोड़ी कम है। हमारी मूल देसी जुगाड़ जीनियस ने सरकारी अस्पतालों की दुर्दशा से बचने के कई तरीके ईजाद किए हैं। हर सरकारी डॉक्टर अस्पताल में कम, निजी प्रैक्टिस में ज्यादा समय गुजारता है। यहाँ आनेवाले रोगी की जाँच ही नहीं, दवा भी ठीक-ठाक होती है। उसे फ्री की गोली इफरात से उपलब्ध है, भले ही अधिकतर सरकारी खरीद की तरह वह भी नकली ही क्यों न हो! इसके अलावा अस्पताल में, लाल बत्ती इलाके की तर्ज पर, दलाल घूमते नजर आते हैं। यह मरीजों के स्वयं नियुक्त कल्याण कर्मचारी हैं। बस थोड़ी फीस लेकर परची बनवाने से डॉक्टर से मिलवाने तक के प्रबंध-विशेषज्ञ हैं। कभी-कभी लगता है कि इस देश में हर काम की गति देनेवाला सिर्फ 'कमीशन' का इकलौता इंजन है।

ऐसा नहीं है कि ऊँची फीस लेनेवाला हर निजी डॉक्टर बीमार को कभी भी बताए गए समय पर देखने का अपराध करे। अकसर एकाध हजार रुपए झटककर वह तय वक्त से तीन-चार घंटे बाद ही मरीज की सुधि लेता है और तीन-चार मिनट से ज्यादा वक्त देना अपने ज्ञान, पेशे और विशेषज्ञता का अपमान समझता है। यदि कोई पहली बार चिकित्सक के सान्निध्य में पहुँचा है तो वह कम-से-कम पंद्रह-बीस खून की जाँचें अल्ट्रासाउंड और ई.सी.जी. ऐसे महँगे परीक्षण लिखकर कमीशन के राष्ट्रीय मिशन में अपनी भागीदारी का पुण्य कमाने से क्यों बाज आए? भ्रष्टाचार का गंदा नाला गाँव-शहर सब को जोड़ने का अकेला साधन है। हर समर्थ उसके आचमन से सरकार की साख में चार चाँद लगाने में जुटा है। डॉक्टरों को भौतिकता का ऐसा प्रदूषण लगा है कि 'हिप्पोक्रेटीज' की 'ओथ' का भावार्थ उनके लिए सिर्फ पैसा कमाना बचा है। कोई सोचे तो आज के युग में इंतजार का फल केवल भ्रष्टाचार है!

गए-गुजरे जमाने में प्रेमी-युगल अकसर इंतजार की पीड़ा कभी खीजकर, कभी रूठकर भोगते पाए जाते थे। आधुनिक प्रेमियों ने इसमें सुधार किया है। आज किस प्रेमी-प्रेमिका की शामत आई है कि वह दूसरे को इंतजार करवाए? उनके लिए प्यार-मोहब्बत नितांत अस्थायी अनुभूति है। अगर किसी ने प्रतीक्षा करवाने जैसी मूर्खता की तो दूसरा किसी अन्य से, बिना समय गँवाए, नैन-मटक्के में जुटता है, बस उसकी हैसियत अपने साथियों से जाँच-परखकर। कभी 'फेसबुक' पर भरोसा था, फेस और आय के आँकड़े का। अब भेद खुला है कि ऐसे कई फेस

जालिया-फ्राडिया हैं, दूसरी अन्य बातों के साथ। तब से फेसबुकियों का पारस्परिक विश्वास इस तथ्य पर आधारित है कि सब यहाँ दूर की हाँकते हैं। प्रेमियों ने तो हल निकाल लिया है प्रेमी बदलकर। पर बीमारों के साथ ऐसा संभव नहीं है। सारे डॉक्टर एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। सब इंतजार करवाने की कला के पी-एच.डी. हैं। हमें संदेह है कि वह शायद डॉक्टर ही इसी तुफैल में कहलाते हैं।

कुछ की मान्यता है कि जैसे बाबू इंतजार करवाकर अपनी महत्ता को कैश करते हैं, वैसे ही डॉक्टर भी। इंतजार सिर्फ अहम की संतुष्टि का ही नहीं, कमाई का भी तरीका है। प्रतीक्षा करवाना, अपनी व्यस्तता का ढोल पीटना है। दोनों उसकी महानता के मुगालते में उलझे हैं कि चालीस-पचास प्रतीक्षारत हैं, इतनी देर से। जरूर डॉक्टर के हाथ में शफा होगा। कई भुक्तभोगियों का शक है कि अपनी प्रैक्टिस जमाने को डॉक्टर कहीं भाड़े की भीड़ तो नहीं जुटाते हैं।

जब से इनसानी भेड़िये नैतिकता के डैंचर लगाकर कामयाब उपदेशक बने हैं, तब से लगने लगा है कि हमारे प्यारे मुल्क में हर तरह का छल, कपट और ढोंग मुश्किल नहीं, उल्टे आसानी से मुमकिन है। अब इंतजार ही हमारा ओढ़ना-बिछौना है, कभी पढ़ाई तो कभी कॉलेज में प्रवेश का, कभी पानी का, कभी नौकरी का, कभी बस, कभी ट्रेन का, कभी महँगाई के प्रतियोगी माहौल में पेट भरने का तो कभी बीमारी की चपेट में आकर डॉक्टर के चंगुल से जीवित निकलने का। इंतजार हमारी स्थायी नियति है, कभी भारत के भ्रष्टाचार मुक्त होने का तो कभी काला धन और अच्छे दिनों के आने का? अब तो हम सब को इंतजार है, इंतजार खत्म होने का। पर यह कैसे होगा, जब हम इंतजार की नाव में सवार होकर ही उम्मीद की नदी में उतरे हैं, आश्वासन और वादों के चप्पुओं के सहारे। पर सबके मन में एक ही प्रश्न घुमड़ रहा है। क्या हम नदी के चक्कर काटने की कसरत ही करेंगे कि कभी किनारे भी लगेंगे?

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१

कासिम इस्माइल मंसूर

● **श्रीकृष्ण 'सरल'**

सिंगापुर के बाहरी अंचल में सड़क पर खड़े हुए तीन भारतीय सैनिक आपस में चर्चा कर रहे थे कि शहर की तरफ जानेवाली एक कार उनके पास आकर रुकी और कार चलानेवाले ने उनसे पूछा—

''यदि आप लोग शहर जाना चाहते हों तो मैं आप लोगों को कार में ले चलने के लिए तैयार हूँ।''

सैनिकों में से एक ने कहा—

''वैसे तो हम लोग घूमते हुए ही जाने का इरादा कर रहे थे, पर आप लिफ्ट दे रहे हैं तो हम लोग सधन्यवाद आपकी उदारता का लाभ उठाएँगे।''

वे लोग कार में बैठ गए। बातचीत के सिलसिले में दोनों पक्षों को एक-दूसरे की जानकारी मिली। कार चलानेवाले कार के मालिक ही थे और उनका नाम था कासिम इस्माइल मंसूर। वे सूरत के 'रंडर' गाँव के रहनेवाले थे और व्यापार के सिलसिले में सिंगापुर पहुँचे थे। वहाँ उनकी कई गाड़ियाँ सड़कों पर चल रही थीं और अच्छी कमाई हो रही थी। सैनिकों से उनका परिचय हुआ, जो पंजाब के रहनेवाले थे। बातचीत की शुरुआत अंग्रेजी में हुई थी, पर बाद में वे लोग हिंदुस्तानी बोलने लगे थे।

इस पहली मुलाकात के बाद उन लोगों की और भी मुलाकातें हुईं और आपस में वे लोग एक-दूसरे से पूरी तरह खुल गए। यद्यपि कासिम इस्माइल मंसूर को राजनीति में कोई रुचि नहीं थी, पर दिल में भारत के पराधीन होने की कसक अवश्य थी। विद्रोह की भनक उनके कानों में पड़ चुकी थी और उन्होंने अपने सैनिक मित्रों को आश्वासन दे रखा था, मेरा पैसा आपका पैसा है और मेरी गाड़ियाँ भी आपकी गाड़ियाँ हैं। आप लोग जब चाहें, इनका उपयोग कर सकते हैं।

कासिम इस्माइल मंसूर बर्मा आते-जाते रहते थे। एक बार उनके सैनिक मित्रों ने एक गोपनीय पत्र उन्हें देकर उसे रंगून में जर्मन कौंसेल के पास पहुँचाने का आग्रह किया। यह कार्य उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। शायद उनके पीछे गुप्तचर लगे हुए थे। वैसे अकसर ही वे बर्मा आते-जाते रहते थे; पर कभी उनकी तलाशी नहीं ली जाती थी। उस दिन चेक पोस्ट पर उनकी तलाशी ली गई और वह गोपनीय पत्र पकड़ लिया गया। उन्हें पुलिस मेहमानखाने में पहुँचा दिया गया। भेजनेवालों के विषय में उनसे बहुत पूछताछ की गई और उन्हें कष्ट व प्रलोभन भी दिए गए; पर किसीको फँसाने के लिए उनकी जबान खुली ही नहीं।

३ मार्च, १९१५ को कासिम इस्माइल मंसूर को फील्ड कोर्ट मार्शल के सामने पेश किया गया। एक साथ कई धाराएँ उनपर आरोपित की गईं और एक ही बैठक में उनके खिलाफ निर्णय दे दिया गया। निर्णय था मृत्युदंड।

सिंगापुर की जेल में कासिम इस्माइल मंसूर को जून १९१५ के पहले सप्ताह में फाँसी दे दी गई।

भारत माता का एक और सपूत उसकी गोद से बहुत दूर उसके लिए कुरबान हो गया।

स्वाधीनता संग्राम में पत्रकारिता की भूमिका

● अरुण भगत

स्वाधीनता संग्राम में भाषायी पत्रकारिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। १८५७ की क्रांति से पूर्व की पत्र-पत्रिकाओं को देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पराधीन भारत के पत्रकारों ने देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष शुरू कर दिया था। यह लिखना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा कि प्रथम स्वाधीनता संग्राम के रूप में ख्यात 'सिपाही विद्रोह' की चिनगारी वस्तुत: पत्र-पत्रिकाओं द्वारा जगाई गई राष्ट्रीय चेतना के कारण ही फूटी थी। उस समय प्रकाशित अनेक भाषायी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से स्वाधीनता-संग्राम की लड़ाई लड़ी गई। स्वाधीनता-संग्राम की ज्वाला को न केवल प्रस्फुटित करना बल्कि उसे गति देने में भी भाषायी पत्रकारिता ने अपनी भूमिका का निर्वहण किया।

सन् सत्तावन की क्रांति से लेकर १९४७ के स्वाधीनता आंदोलन को देखें तो उसमें भाषायी पत्रकारिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका दृष्टिगोचर होती है। बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, माधवराव सप्रे जैसे स्वाधीनता संग्राम के अनेक सेनानियों ने पत्रकारिता को अस्त्र-शस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया। संघर्ष के उस दौर की पत्रकारिता का इतिहास गौरवपूर्ण है और स्वर्णक्षरों में अंकित है। उस समय के पत्रकार स्वाधीनता के मूल्य को समझते थे, इसलिए जेल की यातना भोगने में भी कभी हिचकिचाहट महसूस नहीं की। यहाँ तक कि स्वाधीनता संग्राम की ज्वाला प्रज्वलित करने के लिए अपने प्राणों की बलि देने से भी नहीं चूके। स्वाधीनता-संग्राम की पत्रकारिता को निम्नलिखित भागों में बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है—

१. प्रथम स्वाधीनता संग्राम (१८५७) के पूर्व की पत्रकारिता

भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 'सिपाही विद्रोह' के रूप में १० मई, १८५७ को मेरठ से प्रारंभ हुआ। शीघ्र ही इस क्रांति की ज्वाला में कानपुर, लखनऊ, बरेली, झाँसी, दिल्ली, इलाहाबाद, बनारस, अवध, बिहार आदि भी शामिल हो गए। अंग्रेजों के विरुद्ध यह विद्रोह अचानक नहीं भड़का था। वीर सावरकर के अनुसार, 'यह विद्रोह राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए सुनियोजित युद्ध था।' भारत के इस प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में जहाँ एक ओर अंग्रेजों की सेना के भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह कर प्रत्यक्ष रूप से उस लड़ाई में भाग लिया, वहीं कलम के सिपाही 'पत्रकार' भी अपनी सम्यक् भूमिका का निर्वहण करने में सफल रहे। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि तैयार करने का श्रेय पत्रकारों को ही जाता है।

सुपरिचित पत्रकार। आपातकाल पर दर्जन भर पुस्तकें तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। युवा साहित्यकार सम्मान, गणेशशंकर विद्यार्थी सम्मान, जूनियर फेलोशिप। संप्रति माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर।

१८५७ की क्रांति के समय लॉर्ड कैनिंग भारत के गवर्नर जनरल थे। उन्होंने स्वीकार किया कि प्रथम स्वतंत्रता का संग्राम भारतीयों द्वारा संचालित भाषाई समाचार-पत्र के माध्यम से प्रचारित विचारों का प्रतिफल है। 'भारतीय स्वतंत्रता और हिंदी पत्रकारिता' नामक शोध-प्रबंध में डॉ. वंशीधर लाल ने लिखा है कि 'बौद्धिक स्तर पर स्वतंत्रता आंदोलन के मुख्य नेता पत्रकार थे। उस आंदोलन की सफलता में पत्रकारों के सामयिक लेख, उनकी विचारोत्तेजक संपादकीय टिप्पणियाँ तथा नवीन प्रेरक नारों ने देश का मार्गदर्शन किया। स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास तब तक अधूरा रहेगा, जब तक इस दिशा में संगठन सक्रिय पत्रकारों का महत्त्वांकन नहीं किया जाता।

भारत के प्रथम संग्राम के पूर्व अनेक स्थानों से उग्र तेवर के साथ समाचार-पत्र प्रकाशित होने लगे। भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना का संचार धीरे-धीरे होने लगा। अंग्रेजों के विरुद्ध पत्रकारों की भूमिका मुखर हो गई थी। स्वतंत्रता संग्राम के लिए जन-मानस की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। वातावरण का निर्माण हो चुका था। मोहम्मद वाकर अप्रैल १८४८ में 'देहली उर्दू अखबार' के संपादक बने। इसमें 'हुजूरेवाला' स्तंभ के अंतर्गत बहादुरशाह जफर के आदेश और गतिविधियाँ छपती थीं। उसमें अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध समाचार छपता था। स्वाधीनता संग्राम में इस समाचार-पत्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। मोहम्मद वाकर को १८५७ में अंग्रेजों ने गोली मार दी और इस तरह वे स्वाधीनता संग्राम के पहले शहीद पत्रकार बन गए।

'समाचार-सुधावर्धन' के संपादक श्यामसुंदर सिंह ने भी अपनी पत्रकारिता के माध्यम से देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया। उन्होंने भी मुगल बादशाह के उस फरमान को अपने समाचार-पत्र में

सम्मान के साथ स्थान दिया, जिसमें देशवासियों से अपील की गई थी कि वे अंग्रेजों को भारत से निकाल फेंके। इसके कारण उनके ऊपर राजद्रोह का मुकदमा भी कलकत्ता के सुप्रीम कोर्ट में चला, किंतु वे उसमें बरी हो गए। वस्तुत: तब बहादुरशाह जफर भारत के वैधानिक मुगल बादशाह थे, जिसके नाम पर अंग्रेज राजस्व वसूलने थे। ऐसे में भला वैधानिक शासक का फरमान छापने को राजद्रोह कैसे साबित किया जा सकता था?

समाचार सुधावर्धन में ३० मई, १८५५ को एक समाचार में अंग्रेजों की आलोचना की। इसमें अंग्रेजों पर भारत को लूटने का आरोप भी लगाया गया है। बंबई नगर के समाचार-पत्र से मालूम हुआ कि अगले दिनों में पेंढारि (पिंडारी) नामक जात के अत्याचारी लोग धनी लोगों की संपत्ति को जैसा लूट लेते थे, उसी प्रकार से आजकल के हम लोग के गवर्नर जनरल बहादुर अपने समान बंधु-तुल्य स्वाधीन राजों की संपत्ति लूटने के लिए लंदन नगर में जन्म लेकर भारतवर्ष में आए हैं। गवर्नर जनरल बहादुर के नाम पर समाचार पत्रिका वालों के इस प्रकार की कड़वी बात लिखना उचित नहीं।

समाचार सुधावर्षण ने ५, ९ और १० जून, १८५७ के अंकों में स्वाधीनता संग्राम के लिए विप्लवी सेना तैयार करने का समाचार प्रकाशित किया। यह समाचार-पत्र अपने जन्म-काल से ही भारतीयों में राष्ट्रीय-चेतना जगा रहा था। इसके कारण लॉर्ड कैनिंग, इसके संपादक को श्यामसुंदर सेन को अदालत में भी घसीटा। आपातकाल की पत्रकारिता पर शोध-ग्रंथ लिखनेवाले डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने ठीक ही लिखा है—'१८५७ से पूर्व प्रकाशित समाचार सुधावर्षन की मुद्रा सर्वाधिक उग्र थी।' कुल मिलाकर यह समाचार-पत्र अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना जगाने में पूरी तरह सफल रहा। इस अखबार के उग्र तेवर से घबराकर ही गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग ने १३ जून, १८५७ को ऐसा प्रेस एक्ट लागू किया, जिसे 'गलाघोंटू कानून' की संज्ञा दी गई।

काली प्रसन्न सिंह द्वारा कलकत्ता से २० अप्रैल, १८५५ को प्रकाशित 'विद्योत्साहिनी' में भी देश की स्वतंत्रता के मुद्दे जोर-शोर से उठाए जाते थे। इस पत्रिका ने सामाजिक सरोकार के साथ-साथ अंग्रेजों के खिलाफ अभियान छेड़ रखा था। इसने लिखा था, 'जब तक देशवासी एकता सूत्र में नहीं बँधेंगे तक तक गुलामी की जंजीरें जकड़ी रहेंगी।' बाबू सदाशिव द्वारा १८५५ में प्रकाशित 'सद्धर्म दीपिका' ने भी अंग्रेजों के खिलाफ लिखना शुरू कर दिया था। इस पाक्षिक पत्रिका के प्रकाशित करने के उद्देश्य में अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष करने और ईसाई धर्म का पोल खोलना भी शामिल था। २५ जुलाई, १८५६ को लखनऊ से प्रकाशित 'तिलिस्म-ए-लखनऊ' का तेवर भी अंग्रेजों के खिलाफ उग्र था। स्वाधीनता संग्राम की ज्वाला को प्रस्फुटित करने तथा अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष करने में इस पत्रिका की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इस पत्रिका में प्रकाशित एक समाचार के निम्नलिखित अंश को देखकर इस बात की कल्पना की जा सकती है कि यह समाचार पत्र अंग्रेजों के खिलाफ किस तरह से लिख रहा था।

'लखनऊ में सनीचर आया है, चोरों ने हंगामा मचाया है। जो सानहा है (घटना है), वह अजायब (अद्‌भुत) है। आँख झपकी पगड़ी गायब है। मीर साहब जमाना नाजुक है— दोनों हाथों से थाम लो दस्तार (पगड़ी), जिस दिन से सल्तनत (शासन) न रही, शहर बिगड़ा चोरों की बन आई। किसी में हालत न रही, इसी अँधेर पर एक मसल (मुहावरा) याद आई के अंधे की जोरू का खुदा रखवाला। इस नाबीनाई (अंधत्व) पर हुकूमत अंधेर है, साफ अंधे के हाथ मे बटेर है। रोज बातें अजायब होती हैं।'

सन् १८५६ में कलकत्ता से लालबिहारी डे द्वारा प्रकाशित 'अरुणोदय' की भी स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। अंग्रेजी शासन के साथ-साथ अंग्रेजों भाषा थोपे जाने की भी इसने आलोचना की थी। 'अरुणोदय' अंग्रेजी शासन की दुर्बलताओं को भी मुखरता के साथ उजागर करता था। पंडित जगन्नाथ द्वारा प्रकाशित एवं शंकरदयाल फरहत द्वारा संपादित उर्दू साप्ताहिक पत्रिका 'सहर सामरी' में भी ईस्ट इंडिया कंपनी की आलोचना के समाचार मिलते हैं। १७ नवंबर, १८५६ को लखनऊ से प्रकाशित इस पत्रिका में वहाँ के लोगों की अंग्रेज विरोधी भावनाओं को देखा जा सकता है। यह समाचार-पत्र ईस्ट इंडिया कंपनी के शोषण और अत्याचारों के समाचारों को प्रमुखता से प्रकाशित करता था।

दिल्ली से फरवरी, १८५७ में प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी अजीन उल्लाह खाँ के संपादकत्व में 'पयाम-ए-आजादी' का प्रकाशन हुआ। अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर के पौत्र बेदार बख्त द्वारा प्रकाशित इस पत्रिका में मुखपृष्ठ को पढ़ने से ही इसकी राष्ट्रीय चेतना और इसके तेवर का अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें मुगल सम्राट् बहादुर शाह जफर के देश के नाम संदेश भी छपता था, जिसमें अंग्रेजों को देश से निकाल फेंकने का आह्वान किया था। फारसी के शब्द 'पयाम' का अर्थ होता है—संदेश। कुल मिलाकर देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने का संदेश देने के निमित्त इस समाचार-पत्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। पयाम-ए-आजादी के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित निम्नलिखित पंक्तियाँ यहाँ उल्लेखनीय है, जिसमें भारत की स्वतंत्रता के उद्‌घोष का स्वर भी है—

हम हैं इसके मालिक, हिंदुस्तान हमारा।
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।

मेरठ में १० मई, १८५७ का सिपाही-विद्रोह महज एक संयोग नहीं था। स्वाधीनता के इस प्रथम संग्राम की पृष्ठभूमि अनेक वर्षों से पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से तैयार हो रही थी। भारतीय जन-मन में अंग्रेजों के शोषण, अत्याचार और कुप्रबंधन के विरुद्ध आग सुलगने लगी थी। यह ठीक है कि स्वाधीनता के पहले संग्राम को अंग्रेजों ने बलपूर्वक दबा दिया। किंतु जो आग भारतीय जन-जीवन में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से सुलग चुकी थी, उसे बुझाया नहीं जा सकता था। 'पयाम-ए-आजादी' के संपादक बेदार बख्त को फाँसी पर लटका देने के बावजूद स्वाधीनता संग्राम में पत्रकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका निरंतर बनी रही। वह न तो समाप्त हुई, न ही कमजोर हो पाई।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम के बाद भी जिस तरह अंग्रेजों ने पत्रकारिता का गला घोंटने का प्रयास किया, वह पूरी तरह विफल हो गया। वस्तुत: स्वाधीनता संग्राम की ज्वाला भारतीयों के मन प्राणों में अंदर-ही-अंदर धधकने लगी थी। इस समाचार-पत्र ने भारतीयों का आह्वान किया था, 'खुदा ने इनसान को जितनी बरकतें दी हैं, उनमें आजादी सबसे बड़ी नियामत है।' स्वाधीनता संग्राम में पयाम-ए-आजादी की कैसी भूमिका थी, इसे अंतिम मुगल बादशाह के उस संदेश से भी समझा जा सकता है, जो तब उसमें प्रकाशित हुआ था—

'हिंद के बाशिंदो, अरसे से जिसका इंतजार था, आजादी की वह पाक घड़ी आज आ पहुँची है। हिंदुस्तानी अब तक धोखे में आते रहे और अपनी ही तलवार से अपनी गरदनें काटते रहे। अब हमें मुल्कफरोशी के इस गुनाह का कुफ्फरा (प्रायश्चित्त) करना चाहिए। अंग्रेज अब भी अपनी पुरानी दगाबाजी से काम लेंगे। वे हिंदुओं को मुसलमानों के खिलाफ और मुसलमानों को हिंदुओं के खिलाफ भड़काएँगे।'

सुलासत उल अखबार के १३ अप्रैल, १८५७ के अंक से भी इस बात की पृष्टि होती है कि किस तरह प्रथम स्वाधीनता संग्राम के पूर्व इस समाचार-पत्र ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए जन-मन को आंदोलित किया था।

जब मंगल पांडेय को फाँसी दी गई तो आंदोलन भड़का। इस पत्र ने अपने मुखर तेवर का निर्वहण करते हुए लिखा— बरेली और मुरादाबाद के सैनिक पलटनों के सेनापतियों का दिल्ली की सेना की ओर से हार्दिक आलिंगन। भाइयो, दिल्ली में फिरंगियों के साथ आजादी की जंग हो रही है, उससे वे इतना घबरा गए हैं, जितना कि पहले ऐसी दस शिकस्तों में नहीं घबराते। बेशुमार हिंदुस्तानी बहादुरी के साथ दिल्ली में आकर जमा हो रहे हैं। ऐसे मौके पर आपका आना लाजमी है। आप अगर वहाँ खाना खा रहे हैं तो हाथ यहाँ आकर धोएँ। हमारा बादशाह आपका इस्तकबाल करेगा। हमारे कान इस तरह आपकी ओर लगे हैं, जिस तरह रोजेदारों के कान मुअज्जिब के अजान की तरफ लगे रहते हैं। हम आपकी आवाज सुनने के लिए बेताब हैं। हमारी आँखें आपके दीदार की प्यासी हैं। बिना आपकी आगद के गुलाब के पौधे में फूल नहीं खिल सकते। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में समाचार-पत्रों और पत्रकारों की अहम भूमिका था। पत्रकारों की लेखनी से राष्ट्रीय चेतना के मुखर स्वर रेखांकित हो रहे थे।

स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम को अंग्रेजों द्वारा निर्ममतापूर्वक दबा दिए जाने के बाद भी भाषायी पत्रकारिता ने घुटने नहीं टेके अपितु उससे भी अधिक ऊर्जा और गति के साथ राष्ट्रीयता की अलख जगाते रहे तथा अंग्रेजी शासन के विरुद्ध लिखते रहे। इस संदर्भ में 'सोमप्रकाश' के १७ नवंबर, १८६२ को प्रकाशित यह पंक्ति उल्लेखनीय है—'लाठी का जवाब लाठी से, पत्थर का जवाब पत्थर से और घूँसे का जवाब घूँसे से ही दिया जाना चाहिए।' 'सोमप्रकाश' ने १८६५ ई. के एक अंक में लिखा था—'हमें कोई राजनीतिक अधिकार नहीं है, हमारी आकांक्षाओं के अनुरूप आगे बढ़ने के कोई अवसर नहीं हैं, क्या हमारी भारतीय सभ्यता उससे पहले के युग की नहीं, जब किंग जान ने मैग्ना कार्टा पर हस्ताक्षर किए थे या जब हेनरी तृतीय ने संसद् की स्थापना की थी। यदि यह सही है तो फिर यह कैसे सोचा जा रहा है कि जिन अधिकारों का इंग्लैंड की जनता उपयोग कर रही है, वे अधिकार भारतीयों के लिए १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भी बहुत अधिक समझे जा रहे हैं।'

२. भारतेंदु युगीन पत्रकारिता और स्वदेशी-स्वराज्य की चेतना (१८५७ से १९०० ई. तक)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना १८८५ में हुई थी, किंतु इसके पूर्व ही भारतीय पत्रकारिता के माध्यम से स्वदेशी और स्वराज्य की चेतना का स्वर भारतीय जन-मन में अनुगुंजित होने लगा था। 'भारतमित्र' (१८७८), 'सार सुधा निधि' (१८७९)' और 'उचित वक्ता' (१८८०) के द्वारा न केवल स्वराज्य की चेतना का विस्तार हुआ अपितु स्वदेशी के प्रति भी आग्रह बढ़ने लगा था। अंग्रेजों के व्यापार को कम करने अथवा समाप्त करने के लिए स्वदेशी का आग्रह करनेवाले पत्रकारों में भारतेंदु हरिश्चंद्र के साथ-साथ प्रताप नारायण मिश्र, दुर्गाप्रसाद मिश्र, दुर्गाप्रसाद मिश्र, छोटूलाल मिश्र, सदानंद मिश्र इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा प्रकाशित 'तदीय समाज' और बंगाल का 'हिंदू मेला' उस समय स्वदेशी चेतना जगाने का प्रमुख समाचार-पत्र था। भारतेंदु युगीन पत्रकारिता (१८६७-१९००ई. तक) के दौरान भारत में छोटी-बड़ी ३५० से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। इन पत्र-पत्रिकाओं में स्वदेशी और स्वराज्य की चेतना का स्वर मुखरित हुआ है। युग प्रवर्तक संपादक भारतेंदु हरिश्चंद्र (जन्म ९ सिंतबर, १८५०) की मृत्यु केवल ३४ वर्ष ४ महीने की अल्पायु में ही हो गई, किंतु इतने कम समय में भी जिस कुशलता से उन्होंने हिंदी पत्रकारिता को प्रतिष्ठित किया और राष्ट्रीय चेतना जगाई, उसकी कोई मिसाल नहीं।

भारतेंदु युग में श्री शिशिर कुमार घोष द्वारा सन् १८६८ में 'अमृत बाजार पत्रिका', बालकृष्ण भट्ट द्वारा सन् १८७७ में 'हिंदी प्रदीप', इसी वर्ष छोटूलाल मिश्र एवं रुद्रदत्ता शर्मा द्वारा 'भारत मित्र', पंडित दुर्गा प्रसाद मिश्र द्वारा १८७८ में 'उचित वक्ता', मेवाड़ के शासक महाराणा सज्जन सिंह द्वारा १८७९ में 'सज्जन कीर्ति सुधाकर', केशवराम भट्ट और मदनमोहन भट्ट द्वारा १८७२ में 'बिहार बंधु', पंडित वंशीधर द्वारा १८७८ में 'सारसुधा निधि', देवकीनंदन त्रिपाठी द्वारा १८८१ में 'आनंद कादंबनी', राजा रामपाल सिंह द्वारा १८८३ में 'हिंदोस्तान', प्रताप नारायण मिश्र द्वारा १८८३ में 'ब्राह्मण', अंबिका प्रसाद व्यास द्वारा १८८४ में 'पीयूष प्रभा', बाबू श्यामसुंदर दास द्वारा १८९६ में 'नागरी प्रचारिणी' और महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा १९०० में 'सरस्वती' का प्रकाशन किया गया। इन पत्र-पत्रिकाओं में समाज ने एक अलग पहचान बनाई और राष्ट्रीयता की अलख जगाई।

१९०५ ई. में बंग-भंग हुआ था। इसके विरोध में तो मानो स्वदेशी आंदोलन अपने शिखर को प्राप्त करने लगा था, किंतु भारतेंदु युगीन पत्रकारिता में ही स्वदेशी चेतना प्रकट हो चुकी थी। अंदर-ही-अंदर पूरे देश में स्वदेशी चेतना की लहर उत्पन्न हो गई थी। स्वावलंबन और पूर्ण

स्वराज्य की चर्चा सर्वत्र होने लगी थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र स्वदेशी आंदोलन के कितने हिमायती थे, इसका अंदाजा उनके निम्नलिखित कथन से लगाया जा सकता है। देशवासियों के नाम उनकी अपील का निम्नलिखित अंश उल्लेखनीय है—

'जिसमें तुम्हारी भलाई हो, वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो, परदेसी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।' २३ मार्च, १८७४ की 'कविवचन सुधा' में भारतेंदु ने एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित किया था, जो उनके स्वदेश-प्रेम का परिचायक है। उन्होंने लिखा था—'हम लोग सर्वांतर्यामी सब स्थान में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं कि और सीखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा नहीं पहनेंगे और जो कपड़ा कि पहले से मोल ले चुके हैं और आज तक हमारे पास है, उनको तो उनके जीर्ण होने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान ही का बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा करते हैं कि प्राय: सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देसी हितैषी इस उपाय से वृद्धि में अवश्य उद्योग करेंगे।'

पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने १५ मार्च, १८८३ को 'ब्राह्मण' का प्रकाशन आरंभ किया। उन्होंने स्वदेशी आंदोलन के विषय में 'देशी कपड़ा' शीर्षक नामक अपने लेख में लिखा था—'हम और हमारे सहयोगीगण लिखते-लिखते हार गए कि देशोन्नति करो, पर यहाँ वालों का सिद्धांत है कि अपना भला हो, देश चाहे चूल्हे में जाए। यद्यपि तब देश चूल्हे में जाएगा तो हम बचे न रहेंगे, पर समझाना तो मुश्किल काम है न। सो भाइयो, यह तो तुम्हारे ही मतलब की बात है, आखिर कपड़ा पहनोगे ही। एक बेर हमारे कहने से एक-दो जोड़ी कपड़े बनवा डालें, यदि कुछ सुभीता जान पड़े तो मानना, दाम कुछ छूने न लगेंगे। चलेगा तिगुने से अधिक समय। देशी लक्ष्मी और देशी उद्धार का फल सेत-मेत। यदि अभी भी न चेतो तो तुमसे ज्यादा भकुआ कौन?'

कलकत्ता से प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक 'बंगाली' स्वदेशी और स्वराज्य की चेतना जाग्रत् करनेवाला समाचार-पत्र था। इसे स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारियों का पोषक माना जाता है। इस समाचार-पत्र को अंग्रेज सरकार के कोपभाजन का शिकार बनना पड़ा। स्वाधीनता संग्राम के सेनानी सुरेंद्रनाथ बनर्जी १८७८ में इसके संपादक बने। उन्हें १८८३ में सरकार विरोधी एक लेख के कारण दो महीने के जेल की सजा भी भुगतनी पड़ी। इसमें स्वाधीनता-संग्राम के समाचार प्रमुखता के साथ प्रकाशित होते थे।

बंबई से प्रकाशित 'इंदु प्रकाश' भी राष्ट्रीय चेतना जगानेवाला प्रमुख-पत्र था, जो मराठी और अंग्रेजी में प्रकाशित होता था। इंदु प्रकाश ने ३ मार्च, १८८४ को प्रकाशित अपने एक लेख में अंग्रेज सरकार की आलोचना की, जिसका निम्नलिखित अंश उल्लेखनीय है—'अंग्रेज हमेशा कहते हैं कि उनके राज्य में छोटे-बड़े सभी को एक-सा न्यास मिलता है। परंतु देखा गया है कि अमीर लोग पैसा खर्च करके न्याय प्राप्त कर लेते हैं और गरीब को अन्याय सहन करके भी चुप बैठना पड़ता है।'

सर सैयद अहमद द्वारा प्रकाशित 'अखबार साइंटिफिक सोसाइटी' राष्ट्रीय चेतना जगानेवाला समाचार-पत्र था। इसने १० मार्च, १८७६ को लिखे अपने एक लेख में अंग्रेजों की आलोचना करते हुए लिखा था—'अंग्रेजी अखबार नवीस हिंदुस्तान में इस कदर फिरके से नाराज नहीं हैं, जिस कदर वे हिंदुस्तानी अखबार नवीसों की आजादी से। इस वजह से उन्होंने कभी हिंदुस्तानी अखबारों पर खुशामद का इल्जाम लगाया है, कभी बगावत का इल्जाम साबित किया है। कभी हिंदुस्तानी राजाओं की झूठी तरफदारी का ख्यालेखाम पकाया है। मगर हम खूब जानते हैं कि यह इल्जाम उनकी इस कल्बी हरारत से पैदा होती है, जो अब उनके दिलों में हिंदुस्तानी अखबारों की निहायत बरजस्ता और सच्ची रायों के देखने से पैदा होती है और हरचंद अपने खयालात को निहायत खूबसूरत सूरत में जाहिर करने का मकसद करते हैं। मगर इस कौमी हरारत के सबब एक नोश की सोख्तगी उस अच्छी सूरत पर भी हो ही जाती है।'

थाणे से प्रकाशित मराठी अखबार 'अरुणोदय' की भूमिका स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण थी। इसी कारण इस अखबार को अंग्रेजी शासन के कोपभाजन का शिकार बनना पड़ा और अंतत: इसे बंद कर देना पड़ा। इसमें प्रकाशित एक लेख के कारण इसके संपादक काशीनाथ विष्णु फड़के पर मुकदमा चला और सजा भी भुगतनी पड़ी। विदर्भ (अकेला) से प्रकाशित समाचार-पत्र 'वहार्ड समाचार' (१८६७) शुरू से ही राष्ट्रीय चेतना जाग्रत् कर रहा था। स्वाधीनता संग्राम में खंडेराव बालाजी फड़के द्वारा प्रकाशित इस समाचार-पत्र की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण थी। मलयालम में प्रकाशित पत्रिका 'संदिष्टवादी' (१८६७) ने स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण किया, जिसके कारण उस पर पाबंदी लगा दी गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेंदु युगीन पत्रकारिता में स्वदेशी और स्वराज्य की चेतना की आवाज बुलंद होने लगी थी। देशभक्ति की भावना के कारण स्वदेशी के प्रति उस समय के पत्रकारों का आग्रह बढ़ गया था। स्वदेशी आंदोलन की नींव रखी जा चुकी थी। उस समय के पत्रकार स्वराज्य की चेतना के भाव को रेखांकित करने में चूकते नहीं थे। लल्लो-चप्पो की भाषा की जगह उसका तेवर आक्रामक होने लगा था। स्वाधीनता आंदोलन के लिए लोगों को पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जाग्रत् किया जाने लगा था। राष्ट्रीयता की इसी चेतना के कारण अंतत: १५ अगस्त, १९४७ को स्वतंत्र हुआ।

३. तिलक युगीन पत्रकारिता और स्वाधीनता संग्राम (१९०० से १९२० ई. तक)

सन् १९०० से १९२० तक के कालखंड में दो महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हुए। एक थे प्रसिद्ध संपादक और साहित्यकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा दूसरे थे प्रसिद्ध राजनेता और संपादक बालगंगाधर तिलक। डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र और डॉ. रामचंद्र तिवारी ने इसे 'तिलक युग'

कहा है तो डॉ. रामरतन भटनागर ने पत्रिका का युग और श्री नवीनचंद्र पंत और डॉ. रामअवतार शर्मा ने इसे द्विवेदी युग माना है। हिंदी साहित्य और पत्रकारिता में एक विशिष्ट लक्षण लिए हुए इस कालखंड को 'निर्माण काल' भी कहा जाता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से युग को जिस दृढता के साथ रेखांकित जाता है, उससे तनिक भी कम बालगंगाधर तिलक के नाम से अभिहित नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने हिंदी पत्रकारिता को नया आयाम प्रदान किया। उन्होंने न केवन १९०७ में 'हिंदी केसरी' का प्रकाशन किया, अपितु स्वाधीनता संग्राम में हिंदी के महत्त्व को भी समझा।

भारतीय पत्रकारिता पर सर्वाधिक शोध कार्य करनेवाले पत्रकार श्री विजयदत्त श्रीधर ने स्वाधीनता संग्राम में 'हिंदी केसरी' के महत्त्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख करते हुए लिखा है—'हिंदी केसरी का स्वर और चरित्र ही ऐसा था कि लोग इसे पढ़ने से नहीं चूकते थे। देशाभिमान की खबरों पर इसका जोर रहता था। २४ अगस्त, १९०४ के अंक में कलकत्ता हाईकोर्ट के एक फैसले की खबर 'स्वराज्य माँगना बा-कायदा है' शीर्षक से 'हिंदी केसरी' में प्रकाशित हुई।

श्री मोरेश्वर गणेश तपस्वी अपनी पुस्तक 'आदर्श पत्रकार बालकृष्ण गंगाधर तिलक' में लिखते हैं—'तिलक की कलम ने हर समसामयिक घटना और हादसे की वास्तविकताओं पर बेबाक लिखा। उनकी कलम बहुत ही पैनी और एकदम निर्भीक थी।...'

श्री नवीनचंद्र पंत अपनी पुस्तक 'पत्रकारिता' के मूल सिद्धांत में लिखते हैं—'भारत का क्रांतिकारी आंदोलन बंदूक और बम के साथ नहीं, समाचार-पत्रों से प्रारंभ हुआ, जिसमें 'युगांतर, 'गदर' और 'वंदेमातरम्' के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् १९०८ में 'कविवचन सुधा' नामक साहित्यिक पत्रिका भारतेंदु हरिश्चंद द्वारा प्रारंभ की गई। 'कर्मयोगी' साप्ताहिक इलाहाबाद से पंडित सुरलाल ने प्रकाशित किया। यह उग्र विचारधारा का पत्र था।'

स्वाधीनता प्रेमी तथा जुझारू पत्रकारों में श्री गणेश शंकर विद्यार्थी इस युग की सबसे बड़ी उपलब्धि माने जाते हैं। सन् १९१३ में उन्होंने कानपुर से साप्ताहिक 'प्रताप' का प्रकाशन किया और हिंदू और मुसलिम एकता के प्रयास में शहीद हो गए। इस प्रकार हम देखते हैं कि तिलक युगीन पत्रकारिता के दौरान हिंदी भाषा को एक नया आयाम मिला। तत्कालीन पत्रकार यह समझने लगे थे कि हिंदी एक समृद्ध और शक्तिशाली भाषा है। पत्रकारों द्वारा जनमानस की भाषा 'हिंदी' को आत्मसात् करने से स्वाधीनता आंदोलन की लहर और तेज हो गई।

२. गांधी युगीन पत्रकारिता और स्वाधीनता संग्राम (१९२० से १९४७ तक)

महात्मा गांधी ने अपनी पत्रकारिता की शुरुआत एक संवाददाता के रूप में की। इन्होंने राजनेता के साथ-साथ एक समर्थ संपादक के रूप में अपनी पहचान बनाई। गांधीजी ने पत्रकारिता के जो प्रतिमान स्थापित किए, वे आज भी पत्रकारों के लिए अनुकरणीय है। १९२० के बाद की पत्रकारिता को निर्विवाद रूप से 'गांधी युग' कहा जाना समीचीन है। इस युग की पत्रकारिता पर महात्मा गांधी के आदर्श और सिद्धांतों की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उनके विचारों से प्रेरणा लेकर पत्रकारों की एक पीढ़ी तैयार हुई।

डॉ. कमल किशोर गोयनका अपनी पुस्तक—'गांधी पत्रकारिता के प्रतिमान' में लिखते हैं—'उन्होंने पत्रकारिता को व्यापार बनाना अस्वीकार किया और जनता को स्वामित्व सौंपा। इसी कारण गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' को ट्रस्ट को सौंप दिया। गांधी के इस प्रतिमान से कुछ अन्य प्रतिमान भी सामने आए, जैसे व्यापारिक विज्ञापनों का बहिष्कार, कर्मचारियों को निम्नतम वेतन और ग्राहकों की संख्या घटने पर समाचार-पत्र का आकार-प्रकार घटना, संपादक-प्रबंधक को सेंसरशिप में कठोरतम दंड के लिए सहर्ष तैयार होना और माफी माँगकर समाचार-पत्र न निकालना, स्वयं आचार-संहिता बनाना और पालन करना और सर्वोपरि रूप में देशभिमान और राष्ट्र-प्रेम को प्रेरणा एवं कर्म शक्ति मानकर चलाना। गांधी की पत्रकारिता का ऐसा मॉडल था, जिस पर वे स्वयं चले और भारत आकर 'यंग इंडिया', नवजीवन', 'हरिजन' आदि में भी इन्हीं प्रतिमानों एवं सिद्धांतों का प्रयोग किया और तीन दशकों तक सफल पत्रकारिता की।'

गांधीजी विचारों का प्रभाव उस समय के समाचार-पत्रों पर स्पष्ट दिखाई देता है। गांधीजी स्वयं कई पत्रों का संपादन कार्य करते रहे और उन पत्रों में गांधीजी के लेख नियमित रूप से प्रकाशित होते थे। गांधीजी ने उस समय के समाचार-पत्रों के संबंध में कलम को दिशा प्रदान की। इस युग की पत्रकारिता न सिर्फ राजनीतिक स्तर पर मुखर हो रही थी बल्कि भाषिक स्तर पर भी समृद्ध हो रही थी। स्थानीय मुहावरे और शब्द हिंदी में शामिल हो रहे थे। अनेक छोटी-बड़ी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी की पत्रकारिता फलित हो रही थी। महात्मा गांधी ने जिस सत्य और अहिंसा का प्रयोग अपने राजनीतिक जीवन में किया, वह पत्रकारिता में भी दृष्टिगोचर हो रहा था। इस युग में 'मतवाला', हंस', 'विशाल भारत', 'युवक', वीर अर्जुन', 'विश्व भारती', 'कर्मवीर', 'प्रताप', 'हिंदी' नवजीवन', 'बालक' और 'नवयुवक' इत्यादि पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी भाषा समृद्ध हुई। गांधी युग में भारतीय पत्रकारिता स्वाधीनता-संग्राम के अपने मिशन को लेकर संघर्षरत थी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वाधीनता-संग्राम में भाषाई पत्रकारिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। पत्र-पत्रिकाओं में जन-मन में राष्ट्रीय चेतना जगाकर अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण किया। स्वाधीनता संग्राम के प्राय: सभी बड़े नेता किसी-न-किसी समाचार-पत्र से जुड़े थे। उन लोगों ने स्वाधीनता संग्राम में पत्रकारिता की भूमिका को समझा था तथा इसे स्वदेशी और स्वराज्य के लिए हथियार के रूप में इस्तेमाल किया।

साअ
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं सचार
विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
दूरभाष : ०९८१८३८७१११

आलेख

स्वतंत्रता संग्राम व हिंदी फिल्में

● नरेंद्र भाटिया

भारत में हिंदी फिल्मों का इतिहास बहुत पुराना है। सन् १९३१ में पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' बनी थी, और भारत को आजादी मिली १९४७ में, यानी लगभग १६ साल बाद। भरत में आजादी की मशाल सन् १८५७ में जल चुकी थी। यह बहुत बड़ी विडंबना है कि हिंदी फिल्म जगत् में किसी भी फिल्म निर्माता ने कभी किसी क्रांतिकारी पर या भारत की आजादी को लेकर फिल्म बनाई हो। क्रांतिकारियों की अगर एक सूचि बनाई जाए तो एक ग्रंथ बन जाएगा।

आजादी से पहले बनी सिर्फ एक ही फिल्म याद में आती है और वह है १९४१ में बनी ज्ञान मुखर्जी की फिल्म 'किस्मत', जिसके हीरो अशोक कुमारजी थे। कवि प्रदीप उन दिनों किसी कमला बाई के नाम से गाने लिखा करते थे। फिल्म 'किस्मत' का गाना 'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है, दूर हटो ऐ दुनियावालो हिंदोस्तान हमारा है।' इतना लोकप्रिय हुआ कि अंग्रेजी सरकार की नींव हिल गई और उसने इस गाने पर पाबंदी लगा दी तथा गाना लिखनेवाले की तलाश शुरू कर दी।

सन् १९४८ में आजादी के बाद ही रमेश सहगल की फिल्म आई 'शहीद', दिलीप कुमार, कामनी कौशल, चंद्र मोहन और लीला चिटनिस। यह फिल्म बाप और बेटे के टकराव की कहानी थी। बाप एक जाती हुई अंग्रेजी सरकार का अफसर है और बेटा आजादी की राह पर चलनेवाला। मौहमद रफी और खान मस्तान के गाए गाने 'वतन की राह पे वतन के नवजवान शहीद हो' ने उस वक्त जवानों के दिलों पर देश-भक्ति की आस्था को और मजबूत किया। बाद में कामनी कौशल ने अनेक ऐसी फिल्मों में अभिनय किया जो देशभक्ति पर आधारित थीं।

सन् १९५० में रमेश सहगल ने एक और फिल्म बनाई 'समाधी', इसमें भी मुख्य भूमिका में अशोक कुमार ही थे और साथ में थी नलनी जयवंत और कुलदीप कौर। यह फिल्म भी देशभक्ति से ओत-प्रोत थी। १९५३ में हिंदी फिल्म जगत् के महान फिल्मकार सोहराब मोदीजी ने मेहताब को लेकर एक फिल्म बनाई 'झाँसी की रानी', अभिनय के लिहाज से यह एक बेहतरीन फिल्म थी ज्यादा व्यापार तो नहीं कर पाई, लेकिन देशभक्ति की फिल्मों की कतार में सबसे आगे आकर खड़ी हो गई। शहीद-ए-आजम सरदार भगत सिंह युवा पीढ़ी के सबसे लोकप्रिय क्रांतीकारी और देशभक्त थे। हिंदी फिल्मों के निर्माता भी लगता है कि भगत सिंह के जीवन से काफी प्रभावित रहे, तभी तो उनकी जीवनी को लेकर लगभग ८ फिल्में बनीं। पहली फिल्म १९५३ में सुकुमार नायर ने बनाई 'शहीद-ए-आजम', कलाकार थे शम्मी कपूर और शकीला, अगले ही साल १९५४ में जगदीश गौतम ने प्रेम अदीब और जयराज को लेकर बनाई 'शहीदे-आजम भगत सिंह', पर दोनों ही फिल्म आई-गई हो गईं। १९५७ में सत्येन बोस ने बनाई फिल्म 'जागृति'। ये फिल्म किसी युद्ध पर तो आधारित नहीं थी, पर देशभक्ति से भरी हुई संगीत-प्रधान फिल्म थी। अभि भट्टाचार्य और रतन कुमार अभिनीत ये फिल्म बच्चों और युवाओं में बहुत लोकप्रिय हुई। खास तौर पर इसके गाने 'आओ बच्चे तुम्हें दिखाएँ झाँकी हिंदुस्तान की, इस मिट्टी से तिलक करो यह धरती है बलिदान की' इसकी लोकप्रियता का यह आलम था कि इस फिल्म को स्कूलों में बच्चों को फ्री में दिखाया गया। इसके गानों से मिट्टी की सोंधी-सोंधी खुशबू आती है।

सन् १९५७ में बनी फिल्म 'मदर इंडिया', यह फिल्म किसी भी युद्ध पर नहीं बनी पर इस फिल्म की नायिका अपने बच्चों को पालने और अपनी धरती माँ और अपने आदर्श के लिए अपनी जिंदगी में ऐसा युद्ध करती है जो किसी भी देश के आक्रमण से कम नहीं है। महबूब खान की इस फिल्म ने कामयाबी के ऐसे झंडे गाड़े कि आज तक कोई भी फिल्म इसके नजदीक तक भी नहीं पहुँच सकी। भारतीय नारी का ऐसा सशक्त चित्रण किसी भी फिल्म में देखने को नहीं मिला। १९६१ में देव आनंद ने अमर जीत के साथ एक फिल्म बनाई 'हम दानों', देव आनंद, साधना, नंदा, लीला चिटनिस इस फिल्म में एक ही शक्ल के दो ऑफिसर होते हैं एक के शहीद होने के बाद दूसरा अफसर उसके घर उसके शहीद होने की खबर देने जाता है, दूसरा अफसर कैसे बताए कि उनका बेटा शहीद हो गया है, इस फिल्म में देव साहब का अभिनय कमाल का था, साहिर साहब का गीत 'मैं जिंदगी का साथ निभाता चला गया' बहुत लोकप्रिय हुआ।

सन् १९६४ में चीन आक्रमण के बाद चेतन आनंद ने एक फिल्म बनाई 'हकीकत', बलराज साहनी, जयंत, इफ्तखार, विजय आनंद, प्रिया

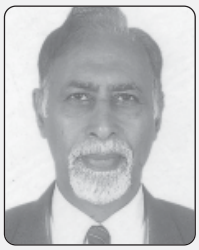

सुपरिचित लेखक। २२ साल विदेश में व्यतीत किए। १९६५ से पुराने गानों की खोज करना शुरू। लगभग एक लाख गानों का संग्रह, १००० से भी ज्यादा पुरानी ब्लैक एंड वाइट फिल्मों का संग्रह, ३५० से भी ज्यादा संगीतकारों के गानों का संग्रह। १०० से भी अधिक लेख फिल्मों के बारे में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

राज वश, जो अपने जमाने की एक ब्लाक बस्टर साबित हुई, कहते हैं कि युद्ध के समय फिल्माए गए सीन इतने असली लगते थे कि उस समय लोगों को यकीन नहीं हुआ कि वो एक फिल्म देख रहे हैं और उसके मार्मिक गाने बहुत लोकप्रिय हुए, बहुत समय तक यह फिल्म लोगों के दिलो-दिमाग पर छाई रही। युद्ध स्तर पर बननेवाली फिल्मों में इससे अच्छी फिल्म आज तक नहीं बनी। शहीद होते सैनिक देश की जनता को संदेश देते हैं 'कर चले हम फिदा जानो तन साथियो अब तुम्हारे हवाले वतन साथियो।'

सरदार भगत सिंह पर ४५ फिल्में बनीं, जो चली नहीं, उसके बाद १९६५ में मनोज कुमार एक बार फिर भगत सिंह पर फिल्म बनाई 'शहीद', जिसमें खुद मनोज कुमार के साथ में थे प्रेम चोपड़ा, कामनी कौशल, सुरेश। इस फिल्म ने क्रांतिकारियों पर बनी फिल्मों में एक नया इतिहास लिखा और भगत सिंह पर बनी पिछली ४५ फिल्मों का हिसाब भी पूरा कर लिया। इस फिल्म के बाद तो सरदार भगत सिंह की रूह भी खुश हो गई होगी और युवाओं में देशभक्ति की नई लहर दौड़ी होगी।

यहाँ पर मैं एक गैर-फिल्मी गाने का जिक्र करना चाहूँगा, जिसे कवि प्रदीप ने लिखा सी राम चंद्र ने संगीत से सजाया और भारत की कोयल लता मंगेशकरजी न गाया था 'ऐ मेरे वतन के लोगो जरा आँख में भर लो पानी, जो शहीद हुए हैं उनकी, जरा याद करो कुर्बानी,' यह गाना एक कार्यक्रम में लताजी ने पं. नेहरू के सामने गाया था, कहते हैं कि पं. नेहरू भी इस गाने को सुनकर रो पड़े थे। देशभक्ति से भरा यह गीत उस समय बच्चे-बच्चे की जबान पर था। प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्रीजी ने देश को एक नारा दिया था 'जय जवान जय किसान' और मनोज कुमार की देशभक्ति से प्रभावित होकर उनसे आग्रह किया था कि वो इस विषय पर एक चलचित्र बनाएँ। फिर क्या था, १९६७ में मनोज कुमार ने एक फिल्म बनाई 'उपकार', इस फिल्म की किस चीज की मैं तारीफ करूँ, निर्देशन, पटकथा, संवाद, कलाकारों का अभिनय, संगीत या फिर गाना की, 'मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे मोती', मनोज कुमार देशभक्ति के लिए मशहूर तो थे ही, नाम भी भारत कुमार पड़ गया। १९६९ में दक्षिण के निर्माता एस.एस. वासन की फिल्म आई 'शतरंज', यह फिल्म भी चीन के आक्रमण पर आधारित थी, उन दिनों राजेंद्र कुमार भी छाए हुए थे, पर फिल्म एकदम खाली-खाली और खाली।

१९९७ में जे.पी. दत्ता ने फिल्म बनाई 'बॉर्डर', यह फिल्म राजस्थान के बॉर्डर लोंगेवाला की कहानी पर बनी थी कि कैसे २० बहादुर सिपाही सारी रात दुश्मनों से लड़कर उन्हें अपनी सीमा में घुसने से रोकते हैं, जब तक उनके पास पीछे से बटालियन उनकी रक्षा और मदद के लिए नहीं पहुँच जाती। २००१ में फिल्म आई थी 'वीर सावरकर', वेद राहीजी के निर्देशन में बनी यह फिल्म वीर विनायक दामोदर सावरकरजी के जीवन पर आधारित थी। फिल्म इतनी मार्मिक थी कि कुछ सीन देखकर लोग सिनेमा हॉल में ही चीत्कार कर रो उठे थे।

सन् १९७० में मनोज कुमार ने एक और फिल्म बनाई 'पूरब और पश्चिम', कलाकार अशोक कुमार, मनोज कुमार, सायरा बानो, प्रेम चोपड़ा, मदन पुरी, कामनी कौशल। इस फिल्म में दरशाया गया है कि कैसे एक स्वतंत्रता सेनानी का लड़का विदेश पढ़ने जाता है और वहाँ देखता है कि भारत के लोग अपनी सभ्यता और संस्कृति को भूलकर विदेशी रंग में रँगते जा रहे हैं और वह उनको वहाँ भारत की उपलब्धियाँ बताता है तथा सबको भारत लाकर सीधे रास्ते पर लाता है। कलाकारों का अभिनय, चित्रण तथा गाने बहुत मार्मिक थे, 'जब जीरो दिया मेरे भारत ने दुनिया को तब गिनती आई'।

प्रेम प्रसंग पर फिल्में बनानेवाले महान फिल्म निर्माता रामानंद सागर ने भी १९७२ में देशभक्ति पर फिल्म बनाई 'ललकार', कलाकर थे राजेंद्र कुमार, धर्मेंद्र, माला सिन्हा, महमूद, जॉनी वाकर, रुपेश कुमार आदि। यह फिल्म दूसरे बर्ल्ड वार पर आधारित थी, कैसे एक भाई के शहीद होने के पश्चात् उसका भाई उसे विदेश से लाने जाता है, सैनिकों की जिंदगी भी हमेशा मौत के साये में नाचती रहती है, तभी तो सैनिक एक रात जश्न मनाते हैं और गाते हैं कि 'आज गा लो मुसकरा लो महफिलें सजा लो, कौन जाने कल कोई साथी छूट जाए, जीवन की डोर बड़ी कमजोर', पर यह फिल्म दर्शकों का ध्यान ज्यादा आर्कषित नहीं कर पाई। सच में सैनिकों की जिंदगी की डोर बहुत नाजुक होती है।

यह कोई आवश्यक नहीं कि पाकिस्तान या चीन की फौजें ही भारत पर हमला करें, तभी कोई फिल्म निर्माता युद्ध पर फिल्म बनाएगा। विदेशी दुश्मनों से भी बड़ा दुश्मन खुद हमारे घर में मौजूद है, विदेशी हमलावरों से भी ज्यादा खतरनाक है हमारे अपने लोग, जो अपने ही देश में जमाखोरी, कालाबजारी, बेईमानी, धोखा और चोरबाजारी बलात्कार जैसी घिनौनी हरकत करके अपने ही देश की नींव को खोखला करते हैं। इस विषय को लेकर भारत कुमार ने एक बार फिर भारतीय होने का परिचय दिया १९७४ में 'रोटी कपड़ा और मकान' जैसी फिल्म बनाकर। मनोज कुमार, अमिताभ बच्चन, शशि कपूर, जनित अमान, मौसमी चटर्जी, प्रेमनाथ व मदन पुरी, एक-से-एक बड़े कलाकार, महान निर्माता, बेहतरीन संगीतकार, फिल्म कैसे न महान् बनती।

सन् १९८१ में मनोज कुमार ने एक बार फिर अंग्रेजों के जुल्म को फिल्म में दरशाया कि कैसे राजा लक्ष्मण सिंह को मारकर अंग्रेज उसका इलजाम उसके ही वफादार सांगा के ऊपर लगा देते हैं, जो जेल से भागकर क्रांतिकारियों को इकट्ठा करके अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ता है। इसमें दिलीप कुमार का अभिनय बहुत ही सराहनीय रहा। १९९३ में केतन मेहता ने एक फिल्म बनाई 'सरदार', जो युद्ध पर तो आधारित नहीं थी, पर हमारे भारत के लौहपुरुष की जिंदगी पर आधारित थी। कैसे सरदार बल्लभ भाई पटेल ने अपनी सारी जिंदगी भारत को आजादी दिलाने के संघर्ष में गुजार दी, लोग तो चाहते थे कि आजादी के बाद सरदार ही भारत के प्रधानमंत्री बनें, पर कहते हैं कि जवाहर लाल

नेहरू इसके सख्त खिलाफ थे। १९९७ में जे.पी. दत्ता ने फिल्म बनाई 'बॉर्डर', यह फिल्म राजस्थान के बॉर्डर लोंगेवाला की कहानी पर बनी थी कि कैसे २० बहादुर सिपाही सारी रात दुश्मनों से लड़कर उन्हें अपनी सीमा में घुसने से रोकते हैं, जब तक उनके पास पीछे से बटालियन उनकी रक्षा और मदद के लिए नहीं पहुँच जाती। २००१ में फिल्म आई थी 'वीर सावरकर', वेद राहीजी के निर्देशन में बनी यह फिल्म वीर विनायक दामोदर सावरकरजी के जीवन पर आधारित थी। फिल्म इतनी मार्मिक थी कि कुछ सीन देखकर लोग सिनेमा हॉल में ही चीत्कार कर रो उठे थे। २७ साल १० महीने आजीवन, ६ फुट बाई ८ फुट के सीलन व बदबूदार कोठरी में गुजारना, रात को गरमी, कीड़े, मच्छरों के बीच गुजारकर दिन में कोल्हू में जुतकर ढाई पौंड तेल निकालना, और तेल पूरा न निकालने पर नंगी पीठ पर कोड़े खाना, सोचकर ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। शैलेंद्र गौड़, नवनी पनिहार व टॉम आल्टर द्वारा अभिनीत फिल्म बहुत सारे विडंबनाओं से भरी हुई थी। फिल्म में टॉम आल्टर ने दरशाया कि अभिनय क्या होता है।

नई सदी के आते ही एक बार फिर सरदार भगत सिंह की याद को फिल्म निर्मातों ने इस कदर उभारा कि एक साथ पाँच-पाँच फिल्में उभरने लगीं। २००२ में ही भगत सिंह पर फिल्म बनी 'शहीद-ए-आजम', और २००२ में अगली फिल्म थी २३ मार्च १९३१, गुड्डू घनवा द्वारा बनाई गई इस फिल्म के कलाकार थे बॉबी दयोल के साथ उनके भई सन्नी दयोल और अमृता सिंह; २००२ में ही फिल्म आई 'द लीजेंड ऑफ भगत सिंह', यह बनी थी अजय देवगन को लेकर, सब फिल्में आईं और गईं। पाकिस्तान ने एक बार फिर कारगिल पर हमला किया और २००३ में जे.पी. दत्ता ने कारगिल की लड़ाई पर फिल्म बना डाली। यह फिल्म शहीद कैप्टन विक्रम बत्रा, सूबेदार योगेंदर सिंह यादव व मेजर दीपक रामपाल के शहीद होने पर बनी कि कैसे इन वीर जवानों ने कारगिल में पाकिस्तान के हमले को नाकाम किया और भारत को जीत दिलाई। इस बार भी लगभग सारे वही कलाकार थे जो इससे पहले दत्ताजी के साथ बॉर्डर फिल्म में काम कर चुके थे।

२००५ में आमिर खान की फिल्म आई 'मंगल पांडे', जो केवल देसाई ने बनाई थी, आमिर के साथ थी रानी मुखर्जी, अमीषा पटेल, किरन खैर व ओम पुरी। मंगल पांडे का इतिहास सबको मालूम है, कैसे वह ब्रिटिश फौज से निकलकर भारत की आजादी की लड़ाई में शामिल हुआ, अपना दल बनाया और अंग्रेजों के छक्के छुड़ाए। श्याम बेनेगल ने २००५ में नेताजी सुभाष चंद्र बोस पर एक फिल्म बनाई 'द फारगाटन हीरो नेताजी सुभाष चंद्र बोस', भारत को आजादी दिलाने के लिए नेताजी ने क्या-क्या किया, किसी से भी छुपा नहीं है, उनकी भी सारी जिंदगी भटकते रहने और देश को आजाद कराने के लिए क्या किया जाए, इसी में कट गई, यहाँ तक कि उनकी मृत्यु आज तक एक रहस्य बनी हुई है। २००६ में राकेश ओम प्रकाश मेहरा ने भगत सिंह की जिंदगी से प्रेरणा लेकर फिल्म बनाई 'रंग दे बसंती', आमिर खान को छोड़कर बाकी सब उभरते कलाकार थे, सोहा अली खान, एम. माधवन, शरमन जोशी, अनुपम खैर, किरन खैर आदि, कैसे कॉलेज में पढ़नेवाले छात्र एक ड्रामे के रूप में विद्यार्थियों के अंदर देशभक्ति की भावना जगाते हैं और खयालों व विचारों में काकोरी में रेल में जाता हुआ अंग्रेजों का खजाना व हथियारों को लूटते हैं।

कई फिल्मी निर्माताओं ने देशभक्ति पर फिल्में तो नहीं बनाईं, पर अपनी फिल्मों में दशभक्ति के गाने खूब फिल्माए। एक झलक देखिए, १९६० 'सन ऑफ इंडिया' नन्हा मुन्ना राही हूँ, देश का सिपाही हूँ बोलो मेरे संग जयहिंद', १९६७ 'गंगा जमना' में 'इनसाफ की डगर पे बच्चो दिखाओ चल के, ये देश है तुम्हारा नेता तुम्हीं हो कल के', 'छोड़ो कल की बातें कल की बात पुरानी, नए दौर में लिखेंगे मिलकर नई कहानी, हम हिंदोस्तानी', फिल्म 'हम हिंदोस्तानी' में 'जहाँ डाल-डाल पे सोने की चिड़िया करती हैं बसेरा, वो भारत देश है मेरा', फिल्म 'सिकंदर-ए-आजम', सन् १९६४ में 'लीडर' में 'अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं, सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका सकते नहीं'। १९६३ में 'मुझे जीने दो' में 'अब कोई गुलशन न उजड़े अब वतन आजाद है।'

यों तो जयराज ने ३०० से भी अधिक फिल्मों में अभिनय किया। पर उनकी पहचान बनी ऐतिहासिक फिल्मों के एक इतिहास पुरुष के रूप में। आजादी के बाद कुछ फिल्में ऐसी भी बनीं, जो युद्ध पर तो नहीं, पर उन योद्धाओं के जीवन पर थीं, जिन्होंने भारत की एकता और अखंडता को कभी भी आच न आने दी। १९५७ में जसवंत जावेरी ने एक फिल्म बनाई 'अमर सिंह राठौर,' जिसमें उस समय के मुगल बादशाह शाहजहाँ के साथ युद्ध की कहानी। यह बात सन् १६४३ की है। १९५९ में जगदीश गौतम ने फिल्म बनाई 'टीपू सुलतान', १९६१ में फिर जसवंत जावेरी ने 'जय चित्तौड़' फिल्म बनाई। १९६३ फिर जगदीश गौतम ने फिल्म पेश की 'चंद्र शेखर आजाद', जो उन्हीं के जीवन पर आधारित थी। १९७० में राधा कांत ने फिर 'अमर सिंह' पर फिल्म बनाई।

ये फिल्में अपने नाम से ही जाहिर करती हैं कि उनका विषय क्या था। युद्ध के अलावा कई ऐसी चरित्र-फिल्मों का निर्माण भी हुआ है, जिसमें सरकारी अफसर या पुलिसवालों ने देश के लिए अच्छा काम किया हो। १९८३ में गोविंद निहलानी की फिल्म 'अर्ध सत्य', जिसमें एक ईमानदार पुलिसवाले का किरदार। १९८६ में सुभाष घई की फिल्म 'कर्मा', कि कैसे एक आतंकवादी अपनी बात मनवाने के लिए एक ईमानदार जेलर की फैमिली को दु:ख देता है। इस फिल्म में दिलीप कुमार का शानदार अभिनय था। १९८८ में 'तेजाब', जिसका हीरो कैसे एक सच्चा देशभक्त ऑफिसर बनना चाहता है और देश के दुश्मन उसे अपराध की दुनिया में धकेल देते हैं। आज कल वो फिल्में कहाँ, जो पहले बना करती थीं। आज की फिल्मों का स्तर भी बहुत नीचे की तरफ खिसक गया है। हो सकता है कि ऐसी ही कई फिल्मों का जिक्र करना छूट गया हो, उसके लिए माफ करें। जयहिंद।

८६५ सेक्टर-४६
गुरुग्राम-१२२००२
दूरभाष : ०९८१०४४०१८९

लोकगीतों में स्वाधीनता की चेतना

● विद्या विंदु सिंह

भारत की संस्कृति मे पूरे विश्व के हित की चिंता है। इसलिए यहाँ की लोकसंस्कृति में रचे-बसे लोकगीतों में स्वाभिमान, शौर्य और बलिदान की दिव्य सुंगध है, उत्साह है और मर मिटने की उमंग है। इसलिए सभी जनपदीय अंचलों के गीतों में अठारह सौ सत्तावन की क्रांति से लेकर आज तक स्वाधीनता की चेतना का स्वर मुखरित हुआ है। क्रांतिवीरों के आह्वान पर मुरदे भी उठकर दौड़ पड़ें ऐसे भाव हैं—

मुर्दा उठि-उठि दौरै लागैं, जब रजपूती ललकार सुनैं,
बरीस अठारह छत्री जीयैं, आगे जीयब धिक्कार सुनैं।
जौनी ओरियाँ चलैं बहादुर, खन-खन-खन तरवारि सुनैं,
माई के कनियाँ मा खेलत लरिका, तेगा औ तरवारि सुनैं।

भारतेंदु के जमाने से ही ऐसी कजली, लावनी, होली मिलने लगती है, जिसमें स्वदेश की गहरी चिंता हैं। विदेशियों द्वारा स्वदेश की संपत्ति हरण किए जाने पर असंतोष व्यक्त हुआ—

अइसन रछसवा दुअरिया पर ठाढ़ बाटै,
तुरतै होइ जा तइयार रे किसनवाँ
अइसन बेला जो आपन सरकार होति,
परित न विपतिया क मारि रे किसनवाँ।

विदेशी शासन के प्रति जन-मानस तीव्र आक्रोश व्यक्त करता है—

होई गइली कंगाल हो विदेशी तोरे रजवाँ।
सोने की थारी म जेंवत रहलीं कठवा के डोकिया भै मोहाल।
देसवा के लोग आज दाना बिनु तरसैं, कपड़ा तन पै फटे हाल।

सन् सत्तावन के युद्ध की कहानी बुंदेले हरबोलों ने, अवध के भाटों ने गाई, जोगियों ने अपनी सारंगी की धुन में क्रांति के स्वर पिरोए और सभी भारतीय भाषाओं में क्रांतिकारियों की यश:गाथा लोककंठ से बराबर फूटती रही। हाँ लोग गाते रहे एक श्रुति परंपरा की थाती के रूप में। भले ही उन्हें यह ज्ञात न हो कि इन गीतों में कहानी किसकी है। वे गाते रहे कि ये गीत हमारे पुरखों-पुरखिनों ने गाए हैं, हमें भी गाना है और हमारी आगे की पीढ़ियाँ भी गाएँगी।

सुपरिचित लेखिका। कहानी, उपन्यास लोक-साहित्य, नाटक, निबंध, बाल-साहित्य आदि विषयों पर ९८ कृतियाँ तथा बीस संपादित कृतियाँ प्रकाशित। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के विभिन्न केंद्रों से निरंतर प्रसारण। ८१ संस्थाओं द्वारा सम्मान एवं पुरस्कार।

स्वतंत्रता के लिए प्राणों की बाजी लगाने में राजस्थान के वीरों के योगदान की, हल्दी घाटी युद्ध में राणा प्रताप की वीरता की गाथाएँ और उनका सहयोग देनेवाले आदिवासियों का योगदान लोक निरंतर गा रहा है। साँभर में नमक बनाने पर रोक लगी तो राजस्थानी लोकगीत कह उठे कि हमारा राजा भोला है। साँभर तो अँगरेजों को दे दिया। बिना नमक के रोटी कैसे खाई जाए—

म्हारो राजा भोळो सांभर तो दे दी अँगरेज ने
म्हारा टाबर भूखा, रोटी तो माँगे तीखे लूण रीं।

भारतीय इतिहास को अपनी लोक संस्कृति की सहज आँख से देखना आज आवश्यक है। अधिकतर इतिहास उन्होंने ही लिखा जो आक्रमणकारी रहे या जिन्होंने छल-बल से सत्ता हासिल की थी या कुछ ऐसे भारतीयों ने लिखा, जिनमें अंग्रेजों के जाने के बाद भी उनके प्रति स्वामिभक्ति का भाव बचा था। उन्हें भारत के वीर क्रांतिकारी हत्यारे-लुटेरे ही तो लगेंगे? पर आजादी के संघर्ष के दौरान लोकनायकों की बलिदान गाथा लोककंठ से सहज स्वाभाविक रूप से फूट पड़ी।

बहुत से गीत काल-कवलित, विस्मृत हो गए। काश हमारे इतिहासकारों की दृष्टि इस महत्त्वपूर्ण आधारभूत सामग्री की ओर भी गई होती तो आज एक प्रारंभिक दस्तावेज जो सत्य और संवेदनात्मक भावभूमि पर आधारित था, उससे पुरखों की सही छवि खींची गई होती तो इतिहास कुछ और ही होता। इतने विशाल जन-समुदाय वाले देश में १८५७ के गदर को लोकमानस ने न केवल एक साक्षी के रूप में देखा, बल्कि उसकी सहभागिता भी रही। देश की कायापलट करने में जनसामान्य मन-वचन-कर्म से अपने बलिदानियों के साथ रहा। कुछ

स्वार्थी लोगों ने जब धोखा देकर देश और देशभक्तों के साथ गद्दारी की तो उनके प्रति घृणा का भाव भी इन गीतों में बराबर व्यक्त होता रहा।

१८५७ का विद्रोह एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करता है, जो इतिहास को एक मोड़ देती है। आजादी के लिए मन में एक ऐसी चिनगारी सुलगा देता है, जो निरंतर सुलगते-सुलगते ज्वाला बनकर फूट पड़ी। इतिहास साक्षी है कि राजाओं, जमींदारों ने किस प्रकार अपने प्राण देकर फिरंगियों का सामना किया। गीतों में चहलारी नरेश राजा बलभद्र सिंह, फतेहपुर के जमींदार जस्सा सिंह आदि की वीरता का वर्णन है—

जस्सा सिंह गोली फिरंगियन पै तानी,
नाव म भागत रहैं फिरंगी,नाहीं छोड़िन वनकै नाव निसानी।

फतेहपुर जिला के जस्सा सिंह ने फिरंगियों पर गोली तान दी। अंग्रेज अपनी जान बचाने के लिए नाव में बैठकर भागे। जस्सा सिंह ने उनका नामो-निशान नहीं छोड़ा।

अंग्रेजों के दमनकारी अत्याचारों से जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी—

फूँकि दिहिस छनिया औ छप्पर,
महल अटरिया रछसवा फिरंगी आइकै।
ना देखैं बूढ़ा, ना देखैं बच्चा, पाटि दिहिस फँसिया से पेड़वा।

राक्षस फिरंगियों ने फूस के छप्पर, महल-अटारी फूँक दिए। वे आततायी न बूढ़ा देखते थे, न बच्चा, सबको फाँसी लगाकर पेड़ पर टाँग देते थे। फाँसी के फंदों पर लटकते लोगों से पेड़ पट गए थे। एक ओर खाई थी एक ओर कुआँ, वीर सिपाही सिर पर कफन बाँधकर चल पड़े। देश की बहन-बेटियों की प्रतिष्ठा बचाने के लिए राजपूत सीना तानकर चल पड़े।

जिन राष्ट्रनायकों ने अपने प्राणों की आहुति देकर देश की संस्कृति, धर्म, साहित्य, कला और समस्त वैभव को नष्ट होने से बचाया है, उनके प्रति कृतज्ञ राष्ट्र अपने श्रद्धा के दो शब्द अर्पित कर सके। यह हर भारतीय का कर्तव्य है। झाँसी की रानी, नाना साहब, तात्या टोपे, फीरोजशाह, कुँवर सिंह, अमर सिंह, मौलवी अबदुल्ला शाह, राना बेनी माधव, राजा देवीबख्श सिंह, मंगल पांडे आदि का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। इन सबका नाम उनकी वीरता साहस, त्याग, स्वाभिमान और बलिदान के लिए सदैव स्मरणीय रहेगा। उनका राष्ट्र स्वातंत्र्य प्रेम स्तुत्य है।

झाँसी की रानी का नाम भारतीयों के मन में उच्च स्थान पर है किंतु अंग्रेजों ने इतिहास में मिथ्या भ्रम फैलाया कि रानी व्यक्तिगत कारणों से युद्ध में उतरी। उन्होंने पारिवारिक हानियों के कारण ईसाइयों के प्रति घृणा के कारण, स्त्रियोचित कोमल भावुकता के कारण अपनी आयु को ध्यान में नहीं रखा। रानी दत्तक पुत्र लेने में नियमों का उल्लंघन कर रही थीं जिस पर अंग्रेजों ने आपत्ति की थी, जिसके कारण वे क्षुब्ध थीं। रानी निर्दय, हत्याकारी थीं। ऐसा भी भ्रामक प्रचार अंग्रेजों द्वारा किया गया था। पर ये सारे लांछन स्वार्थी अंग्रेजों द्वारा उनके प्रति जनमानस में सम्मान कम करने के लिए लगाए गए थे।

झाँसी की रानी का नाम भारतीयों के मन में उच्च स्थान पर है किंतु अंग्रेजों ने इतिहास में मिथ्या भ्रम फैलाया कि रानी व्यक्तिगत कारणों से युद्ध में उतरी। उन्होंने पारिवारिक हानियों के कारण ईसाइयों के प्रति घृणा के कारण, स्त्रियोचित कोमल भावुकता के कारण अपनी आयु को ध्यान में नहीं रखा। रानी दत्तक पुत्र लेने में नियमों का उल्लंघन कर रही थीं जिस पर अंग्रेजों ने आपत्ति की थी, जिसके कारण वे क्षुब्ध थीं। रानी निर्दय, हत्याकारी थीं। ऐसा भी भ्रामक प्रचार अंग्रेजों द्वारा किया गया था। पर ये सारे लांछन स्वार्थी अंग्रेजों द्वारा उनके प्रति जनमानस में सम्मान कम करने के लिए लगाए गए थे।

रानी की वीरता और जीवन के बारे में गीत मिलते हैं—

नास होय, कोढ़ियाँय फिरंगी, रानी के लूटी जिनगानी हो राम।
झाँसी न देबय प्रान दै देबय, रानी परन इहय ठानी हो राम।
गोदी कै पूत काँ पिठिया बान्हीं, देखा तरवारी कै पानी हो राम।
छक्का छूटि गै अंग्रेजन कै, जुग-जुग अमर कहानी हो राम।

एक अन्य गीत है—

झाँसी कय रानी जनाना, भेस मर्दाना रहा।
जब अंग्रेजवे छेड़यँ लरइया, रानी दगावैं तोपखाना।

महारानी लक्ष्मीबाई का वेश पुरुषों का था। जब अंग्रेजों से लड़ाई छिड़ी थी तो रानी लक्ष्मीबाई तोप चला रही थीं। जब अंग्रेज हारमोनियम बजाते थे तो रानी लक्ष्मीबाई नगारा बजवाती थीं। रानी लक्ष्मीबाई का वेश मर्दाना था, उनकी सभी सहेलियों का वेश मर्दाना था। तब झाँसी का जमाना था।

इसी प्रकार झाँसी की रानी, कुँवरसिंह और भाटों के गीतों में बहुत-सी ऐतिहासिक घटनाएँ बीजरूप से सुरक्षित हैं। कविता कौमुदी में एक गीत संकलित है, उसमें फिंरगियों के आने और दानापुर में ठहरने की बात कही गई है—

पूरब पछिमवाँ से अइले रे फिरँगिया,
दानापुर में बारिक उठावल रे की।
बारिक उठवलक खिरकी करवलक,
चारों ओर पलटन बसवलक रे की।
उही कोरे मिरजा रे झिंझरी खोलत हैं,
जाही कोरे भगवति नहाइल रे की।
रोइ-रोइ मिरिजा रे जलिया लगवले,
बझि गइल घोंघवा सेवरवा हू रे जी।
हँसि-हँसि होरिलसिंघ जलिया लगवले,
बझि गइले भगवति बहिनिया हू रे जी।

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी' में लिखा है—''यह गीत अंग्रेजों को इतना पसंद आया कि 'लाइट ऑफ एशिया' के रचयिता अंग्रेजों के प्रसिद्ध कवि सर एडविन आर्नाल्ड ने इसका अंग्रेजी पद्य में अनुवाद कर डाला। जिसे नवंबर १७१८ में हिंदी-भाषा के प्रेमी जार्ज ए.

ग्रियर्सन ने इंग्लैंड के स्कूल ऑफ ओरियंटल स्टडीज में एक व्याख्यान में सुनाया था।''

एक लोकगीत में युद्ध के लिए तैयार भाई को बहन प्रेरणा देती है—

हाली-हाली जेंवउ बिरन मोरा, बिरना मुगल लड़इया क ठाढ़।
मुगल की ओरियाँ सौ साठि जने,मोरा भइया अकेलवइ ठाढ़।
बिरना मुगल जुझैं सौ साठि जने
मोरा भइया समर जीति ठाठ। बलैया लेउँ बीरन॥

भाई, जल्दी भोजन करो। तुर्क युद्ध के लिए खड़ा है। उसकी ओर सौ साठ सिपाही हैं, मेरा भाई अकेला खड़ा है। उसके सभी आदमी मारे गए, मेरा भाई युद्ध जीतकर खड़ा है। ऐसी माँ की कोख को, ऐसी बहन के भाग्य को, ऐसी भाभी की माँग को सराहती हूँ, जिसका पुत्र, भाई, पति युद्ध जीतकर खड़ा है।

मध्यकालीन राजनीतिक जीवन से संबद्ध कुछ गीत अभी भी गाए जाते हैं। मुगल शासकों के अत्याचार, उनकी विषय-लोलुप प्रवृत्ति, हिंदुओं की विवशता, मुगलों से सतीत्व की रक्षा हेतु भारतीय नारियों का आत्म-बलिदान आदि की गीतों में मार्मिक अभिव्यक्ति है। ब्रिटिश शासन के प्रति लोक की घृणा अभिव्यक्त हुई है—

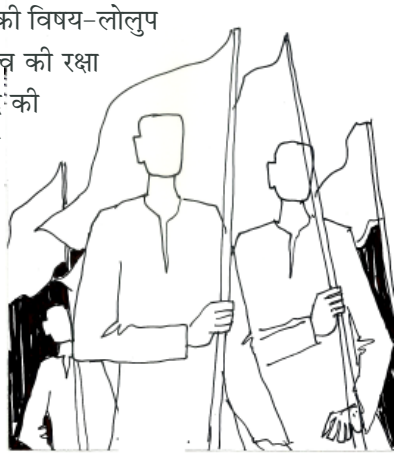

फिरंगिया से देसवा बचाया भगवान,
बोलिया तिड़बिड़ बोलै फिरंगिया,
हमरे देसवा कै बोलिया बचाया भगवान।

आधुनिक युग में राजनैतिक चेतना का सूत्रपात गांधीजी के स्वतंत्रता आंदोलन से होता है। लोक-मानस में गांधीजी का अत्यधिक प्रभाव तत्कालीन लोकगीतों में दिखाई पड़ता है। लोकगायकों ने अपनी जोशीली बोली में गांधी का संदेश घर-घर पहुँचाया। गांधी का प्रभाव युवकों पर इतना पड़ा कि 'दूल्हा' भी तिरंगा हाथ में लिये चल रहा है—

बन्ना हमारो गांधी के बस माँ, तिरंगा झंडा उठा रहा है।

कुलवधू का स्वप्न है कि मेरा प्रिय गांधी के स्वराज्य-स्वप्न को पूरा करेगा। भोजन, वस्त्र का उपभोग मिल-बाँटकर करेगा—

गांधी तेरो सुराज सपनवाँ हरि मोर पूरा करिहै ना।

स्वराज्य और चरखा आंदोलन का प्रभाव भी लोकगीतों पर पड़ा—

अपने हाथे चरखा चलउबै, हमार कोउ का करिहै,
गांधी बाबा से लगन लगउबै, हमार कोउ का करिहै।
दै द्या गान्ही बाबा! हम्मैं भारत कै सुरजवा।
गारी गीतों में भी स्वराज्य की कामना की गई है—
सब कातउ चरखा, सुखकर मूल यही रे यही,
छोड़ो कपड़ा विदेषी खद्दर लेव गही रे गही।
छोड़ा फूहरि गारी, मानहु बात सही रे सही,
प्यारा भारत देसवा भोजन बिनु तड़पै सभी रे सभी।
सुन्नरि चरखा चलावउ, कब घरबार बनी रे बनी।
पहिरौ खद्दर मोटा, सुनौ नर नारी सभी रे सभी,
प्यारे हिंदू मुसलमान, आपस में मेल चही रे चही।

मातृभूमि पर प्राण न्योछावर करनेवाले सपूतों को लोकमानस कभी भी भूल नहीं सकता। भारतभूमि वीरप्रसूता है, अत: परतंत्र भारत के कायरों को धिक्कारता हुआ लोककवि कह उठता है—

जहवाँ रहिन जनमा वीर परताप सिंह,
औरौ चौहान से सपूत रे फिरंगिया।
देसवा की खातिर जे मरि मिटि गए,
तबहूँ न मथवा झुकाये रे फिरंगिया।
वही देसवा म आज ऐसन अधम भये,
चाटथे बिदेसिया कै लात रे फिरंगिया।

'स्वतंत्रता संग्राम' में शहीद वीरों की गाथा भी लोकगीतों में अमर है—

देश के करनवा केतने गए जेहलखनवाँ,
केतने बीर फाँसी चढ़िगै ना।
करिके तन मन धन अरपनवा, केतने फाँसी चढ़िगै ना।
पहिले चढ़िन सरदार भगत सिंह, हँसि कै फंदा माँ सिर डारि;
केतने घर भै बिनु ललनवाँ ना।
जलियाँवाले बाग माँ गोली खाइकै मरिगै,
भारत माँ वीर जवनवाँ, केतने घर भै बिनु सजनवाँ ना।

स्वराज्य के जन्म पर सोहर गाया गया है—

जनमा सुराज सपूत त आज सुभ घरिया माँ।
सखिया! जगह मगर भै बिहान, त दुनिया अनंद भै।
आजु सुफल भई कोखिया, त भारतमाता मगन भई,
घर-घर बाजी बधइया उठन लागे सोहर।
लहर लहर लहराइ, त फहरै तिरंगवा,
गांधीजी पूरिन चौक त मुँह से असीसैं।
आजु जवाहिर लाल, कलस धई थापिन,
सुभ घरी मिला बा सुराज इ जुग जुग जीयै।
बाढ़ै बँसवा कि नाईं त दूबि असि फइलई,
सखिया! देसवा बनै खुसहाल त सब सुख पावइँ।

स्वतंत्रता के बाद स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस आदि नए उत्सव देश में मनाए जाने लगे। भारतमाता को देवी के रूप में पूजा जाने लगा—

भारत मंदिरवा माँ अरती उतारौ,
भारत माता काँ सीस नवावौं।

झंडा तिरंगा की प्रशंसा में भी लोकमानस गा उठा—

'लहर-लहर लहराए रे, मोरा झंडा तिरंगा।

४५, गोखले विहार मार्ग
लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४५१३२९४०२

आलेख

देशाभिमानियों का तीर्थ अंदमान

● रशीदा इकबाल

बरसों बीत गए, जब अंडमान निकोबार द्वीपों में अंग्रेजों ने बंदी उपनिवेश की स्थापना की थी; लेकिन न जाने ऐसी क्या बात है कि आज भी ये द्वीप समूह काले-पानी के नाम से ज्यादा और किसी और नाम से कम ही जाने जाते हैं? आज भी बंगाल की खाड़ी में किसी चित्रकार के ख्वाबों को हकीकत में बदलते ये द्वीप, काले-पानी से अलग अपनी एक नई पहचान बनाने को आतुर नजर आते हैं।

मेरी राय में 'काला-पानी' का यह 'भयावह शब्द' मात्र आतंक का पर्याय न होकर इन द्वीपों के गौरवशाली इतिहास का परिचायक है। आज ये द्वीप धीरे-धीरे ही सही, लेकिन विश्व के पर्यटन मानचित्र में २१वीं शताब्दी का पर्यटन स्थल बनकर उभर रहे हैं। इस नई पहचान में भी द्वीपों के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का एक विशेष स्थान है।

अंडमान निकोबार का जिक्र आते ही हर किसी को बरबस सेल्यूलर जेल की याद आ जाती है। दरअसल सेल्यूलर जेल एक इमारत मात्र न होकर एक राष्ट्रीय स्मारक है और प्रेरणास्रोत भी। इसका महत्त्व इस बात से लगाया जा सकता है कि पोर्ट ब्लेयर में किसी भी पर्यटक के पहुँचने के साथ ही उसकी मंजिल होती है—राष्ट्रीय स्मारक सेल्यूलर जेल। इस जेल की दीवारें यों तो मौन हैं, परंतु इसमें रची-बसी वतनपरस्ती की खुशबू से पूरा प्रांगण महकता है। इसकी काल-कोठरियों में आजादी की कहानी लिखी गई। इसकी चारदीवारी में कदम रखते ही हर पर्यटक न जाने क्यों मौन हो जाता है? नतमस्तक हो जाता है उन देशभक्तों की कुर्बानियों के आगे, जिन्होंने अपने लिए न जीकर, अपनी मिट्टी का कर्ज चुकाया। हमें आजादी की खुली हवा और सुंदर भविष्य देने की राह में अपना सबकुछ कुरबान कर दिया।

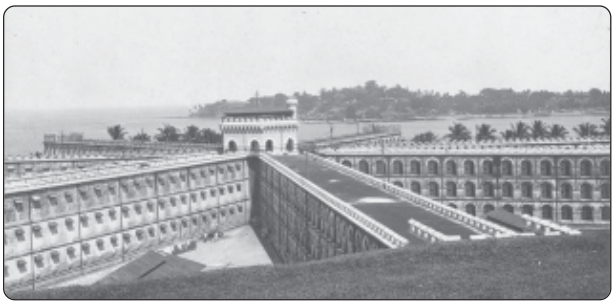

कुख्यात सेल्यूलर जेल (कालापानी)

मैंने खुद महसूस किया है पर्यटकों की भावनाओं को। शहीद स्मारक पर पुष्प चढ़ाते, नतमस्तक होते, अपनी आँखों में श्रद्धा के आँसुओं का समंदर लिये कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हुए हजारों पर्यटक देखे जा सकते हैं। किसी की आँखों में यह सवाल नजर आता है कि इन काल-कोठरियों में, अपनों से दूर, बरसों गुजारने के लिए देशभक्तों ने फौलाद जैसा जिगर कहाँ से पाया? वे कौन थे, जिन्होंने उनकी रहनुमाई की थी? सेल्यूलर जेल की 'आगंतुक पुस्तिका' भरी पड़ी है ऐसी भावनाओं से।

जानी-मानी लेखिका एवं अधिकारी। संप्रति राष्ट्रीय स्मारक सेलुलर जेल की प्रभारी और कला एवं संस्कृति विभाग अंडमान तथा निकोबार प्रशासन में सहायक निदेशक। इन्होंने अंग्रेजों और जापानी शासन के दौरान कालापानी के बंदी उपनिवेश और बाद में सेलुलर जेल भेजे गए क्रांतिकारियों की लघु जीवनी को संकलित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

सेल्यूलर जेल प्रांगण में प्रतिदिन आयोजित होनेवाला ध्वनि एवं प्रकाश कार्यक्रम केवल एक कार्यक्रम न होकर द्वीपों के गौरवमयी इतिहास की शौर्य गाथा है। इस कार्यक्रम को सुनने और महसूस करने के बाद कई पर्यटक बहुत भावुक हो जाते हैं। कई पर्यटक मिलने आते हैं और कहते हैं कि हम 'राष्ट्रीय स्मारक के रखरखाव के लिए कुछ योगदान करना चाहते हैं।' चूँकि ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए मैं उन्हें सिर्फ इतना ही कहती हूँ कि 'अगर हम उनकी (शहीदों) कुरबानियों को याद रखते हुए देश की सेवा करें तो यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी।'

ऐसा भी नहीं है कि द्वीपों में सेल्यूलर जेल के अतिरिक्त और कोई ऐतिहासिक पर्यटन स्थल नहीं है। रॉस आइलैंड, वाइपर द्वीप, माउंट हैरिट आदि ऐसे ऐतिहासिक स्थल हैं, जो द्वीपों के इतिहास से बेहद नजदीक से जुड़े हुए हैं। यह अलग बात है कि सेल्यूलर जेल की अपनी एक विशेष गरिमा है।

जब देशभक्तों को लंबी अवधि की सजा सुनाकर काले-पानी भेजा गया, तब शुरुआती दिनों में अंडमान में कोई जेल नहीं थी। उन्हें खुले में रखा जाता था। लेकिन वक्त के साथ-साथ जब जेल की जरूरत महसूस हुई तब वाइपर द्वीप पर १८५८ में कब्जा कर वहाँ एक जेल और फाँसी घर का निर्माण कार्य शुरू किया गया। यहाँ देशभक्तों के दिलों में धधक रही आजादी की ज्वाला को कुचलने के इरादे से उनपर अमानवीय अत्याचार ढाए गए। यहाँ के फाँसीघर की दीवारों में कैद है 'शेर अली' की कहानी, जिसने भारत के वाइसराय लार्ड मेयो की ८ अक्तूबर, १८७२ को हत्या कर 'देश और कौम के काम आने' का दावा किया था। आज

एक तरफ 'वॉइपर द्वीप' सुनामी की बरबादी से उभरने के लिए संघर्ष कर रहा है तो दूसरी तरफ उसे अंतरराष्ट्रीय पर्यटकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए यॉट मरीना का केंद्र बनाने की तैयारी चल रही है।

'रॉस द्वीप' अपने अंदर एक अलग इतिहास छिपाए हुए है। इस द्वीप की चंद बची इमारतें साक्षी हैं अंग्रेज अफसरों के शान-शौकत की। अबरडीन जेट्टी से 'रॉस' पहुँचने के बाद वहाँ से सेल्यूलर जेल देखते हुए हर पर्यटक यह सोचने पर विवश हो जाता है कि 'अपने लिए' शानदार सुविधाओं का जाल बुनकर अंग्रेजों ने वतनपरस्तों के लिए क्यों बनाई अँधेरी, ईंटों और लोहे की काल-कोठरियाँ? खैर आज 'रॉस द्वीप' अंडमान निकोबार के संयुक्त कमान के अधीन है और यह एक मुख्य पर्यटक स्थल के रूप में उभर रहा है।

इन ऐतिहासिक स्थलों के अतिरिक्त द्वीपों में ऐसे कई स्मारक हैं, जो हमें अपने इतिहास से जोड़ते हैं और पर्यटकों का ध्यान भी खींचते हैं। इनमें अबरडीन जल-क्रीड़ा परिसर में स्थित 'अबरडीन स्मारक', जो अंडमान के आदिवासियों और अंग्रेजों के बीच १७ मई, १८५९ को हुए युद्ध सहित अंडमानी आदिवासियों के शौर्य का प्रतीक स्मारक है। 'चाथम द्वीप' में स्थित है वह स्मारक, जो १० मार्च, १८५८ को अंडमान पँहुचे २०० देशभक्तों के पहले जत्थे को समर्पित है। दूसरे महायुद्ध के दौरान जापानियों के अधीन क्रूरता और अमानवीय अत्याचारों की बलि चढ़नेवाले अंडमानवासियों का 'हंफ्रीगंज शहीद स्मारक' पर्यटकों के लिए श्रद्धांजलि अर्पित करने का स्थल है। यह अलग बात है कि अभी इस दिशा में कुछ अधूरे काम करने बाकी हैं। जापानी शासन के दौरान नेताजी सुभाष चंद्र बोस का आगमन और ३० दिसंबर, १९४३ को आजादी के प्रतीकात्मक ध्वाजारोहण की याद दिलानेवाला स्मारक भी इन दिनों पर्यटकों के आकर्षण का मुख्य केंद्र बन रहा है।

आजादी के इन छह दशकों में हमने हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है, परंतु इन द्वीपों की आर्थिक, सामाजिक और भोगौलिक स्थिति की तुलना हम मुख्य भूमि से नहीं कर सकते। चारों तरफ से समुद्र से घिरे, आदिम जनजातियों का बसेरा और दक्षिण-पूर्व देशों से करीब होने के कारण ये द्वीप सुरक्षा के लिहाज से अत्यंत संवेदनशील है और पूर्व के प्रहरी भी समझे जाते हैं। ऐसे में इन द्वीपों से पर्यटन के क्षेत्र में क्रांतिकारी विकास की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

इन स्थितियों में भविष्य में ऐतिहासिक पर्यटन बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा, क्योंकि यही एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें बिना निवेश के ही देसी-विदेशी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता है। जरूरत है अपने शहीदों और देशभक्तों की विरासत को सँजोकर पर्यटन में प्रगति की ऐसी ऊँचाइयाँ पाने की, जिसमें अपने पर्यावरण को बिना कोई नुकसान पँहुचाए, हम सबका भला कर सकें।

राष्ट्रीय स्मारक
सेल्यूलर जेल, पोर्ट ब्लेयर
अंदमान-निकोबार

मेजर रामसिंह, लेफ्टिनेंट सिकंद खान

● श्रीकृष्ण 'सारल'

हाका-फालम मोरचा

आजाद हिंद फौज की नं. २ और नं. ३ बटालियनों को हाका-फालम मोरचे पर नियुक्त करने की योजना जापानी फौजी कमान के विचाराधीन थी। ये दोनों बटालियन क्रमश: ४ और ५ फरवरी, १९४४ को रेल मार्ग द्वारा रंगून से रवाना हुईं। उन्हें अपनी यात्रा कभी रेल से, कभी मोटर से और कभी पैदल चलकर पूरी करनी पड़ी। ये दल रंगून से मांडले पहुँचे और मांडले से कालेवा की ओर चल दिए। इन फौजी दलों का नेतृत्व मेजर जनरल शहनवाज खाँ कर रहे थे। मेजर महबूब और मेजर रामस्वरूप उनके सहायक थे।

मेजर जनरल शहनवाज खाँ को जापानी जनरल मूतागूची ने बताया कि हाका-फालम क्षेत्र में अंग्रेजी सेना के दो डिवीजन तैनात हैं और इसीलिए जापानी सेना और आजाद हिंद फौज को शत्रु की गतिविधियों को रोकना आवश्यक था। जापानी जनरल का विचार था कि अंग्रेजों ने इंफाल में बहुत अधिक सेना एकत्र कर रखी है और तगड़ा आक्रमण करके बर्मा पर दुबारा अधिकार कर लेना चाहते हैं। वे आक्रमण करें, इसके पूर्व ही आक्रमण करके उनकी योजनाओं को विफल करना अत्यंत आवश्यक प्रतीत हो रहा था। अंग्रेजी सेना बर्मा पहुँचने के लिए सड़कों का निर्माण भी कर रही थी। जापानी जनरल की योजना इन सड़कों को काटने की भी थी।

नं. २ बटालियन के कमांडर मेजर रामसिंह पाँच सौ सैनिकों के साथ नाचाँग शिविर में पहुँच गए और वहाँ से उन्होंने ले. सिकंदर खान के नेतृत्व में अव्वल कंपनी के सौ सैनिकों का एक दल फालम की रक्षार्थ भेज दिया। हाका-फालम क्षेत्र पहाड़ी प्रदेश है। फालम समुद्र तल से छह हजार फीट तथा हाका सात हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित है। इन दोनों स्थानों पर खाद्य सामग्री तथा भारी सामान पहुँचाने के लिए जापानियों ने परिवहन की कोई व्यवस्था नहीं की और इतने ऊँचे पहाड़ी स्थानों पर आजाद हिंद फौज के जवानों को सारा सामान अपने सिरों पर लादकर ले जाना पड़ा। प्रत्येक सैनिक और अफसर को सिर पर लगभग नब्बे पौंड वजन उठाकर पर्वत पर चढ़ना पड़ता था।

स्वतंत्रता संग्राम में उत्तर-पूर्वांचल का योगदान

● भूपेंद्रराय चौधरी

हिमालय के पादप्रांत में स्थित प्राकृतिक सुषमा से सुशोभित एवं विशाल ब्रह्मपुत्र की प्राणरेखा से संजीवित भारतवर्ष का उत्तर-पूर्वांचल कभी 'प्रागज्योतिष', कभी 'कामरूप' के नाम से जाना जाता था। सदियों के बाद वही भूखंड 'असम' हुआ और राजनीतिक कारणों से खंडित होकर कई राज्यों में बँट गया। असम का नागा पहाड़ जिला १९६३ में 'नागालैंड' बना; लुसाई पहाड़ 'मिजोरम' बना; उत्तर-पूर्व सीमांत अंचल 'अरुणाचल' बना तथा खासी-जैंतिया पहाड़ 'मेघालय' के रूप में सामने आया। इनके अतिरिक्त उत्तर-पूर्वांचल को समृद्ध किया 'मणिपुर' और 'त्रिपुरा' ने; प्रशासनिक सुविधा के लिए इसके साथ 'सिक्किम' भी जुड़ा। इस प्रकार भारत का उत्तर-पूर्वांचल आठ फूलों से महक उठा।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम का तात्पर्य है—ब्रिटिश शासन से देश को मुक्त करने के लिए देशवासियों द्वारा किया जानेवाला आंदोलन। इसके पूर्व भी देश के विभिन्न भागों में स्वतंत्रता की अनेक लड़ाई लड़ी गई थीं। मुगल साम्राज्य के खिलाफ भी राष्ट्रवीर शिवाजी महाराज ने 'हिंदवी स्वराज्य' हेतु युद्ध लड़े थे। १८५७ में बहादुरशाह जफर के नेतृत्व में अंग्रेजों के खिलाफ प्रथम स्वतंत्रता संग्राम तो प्रारंभ हुआ था, परंतु इसी वर्ष २१ सितंबर को मेजर हडसन के सामने मुगल सम्राट् के आत्मसमर्पण के साथ ही उसका अंत हो गया। १८८५ में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा संचालित और महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में १९२०-२१ के 'असहयोग आंदोलन' से लेकर १९४२ के 'भारत-त्याग' तक स्वतंत्रता आंदोलन ने गति पकड़ी और इसने पूरे देशवासियों को एकत्र किया, जिसके परिणामस्वरूप १५ अगस्त, १९४७ को द्विखंडित रूप में भारत स्वतंत्र हुआ।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय उत्तर-पूर्वांचल में स्थित नागालैंड, अरुणाचल, मेघालय, मिजोरम असम के ही जिले थे। उस समय इन पहाड़ी और दुर्गम स्थानों में यातायात की विशेष सुविधा न थी, शिक्षा का प्रचार-प्रसार न के बराबर था, संचार-माध्यम की भी दीन-हीन दशा थी। फिर भी राष्ट्रव्यापी स्वतंत्रता आंदोलन की चिनगारी वहाँ भी फैली थी।

असम

असम में आहोम स्वर्गदेव (राजा) गौरीनाथ सिंह (१७८०-१७९५) ने 'मोवामरीया' अर्थात् वैष्णव-संतों के विद्रोह को शांत करने के लिए ८ नवंबर, १७८९ को ग्वालपारा में ईस्ट इंडिया कंपनी के राजनैतिक सलाहकार हिउ वैली से सैनिक सहायता माँगी थी। कंपनी ने कैप्टन थॉमस वेल्स के नेतृत्व में ५५० सैनिकों की एक टुकड़ी भेजी। १७९२ के नवंबर महीने में विद्रोह को शांत करने के बावजूद १७९४ के मई महीने तक अंग्रेज असम में डटे रहे। अपना आभार प्रकट करने के लिए स्वर्गदेव गौरीनाथ सिंह ने ईस्ट इंडिया कंपनी से २८ फरवरी, १७९३ को एक वाणिज्यिक संधि की, जिससे उन्हें असम में व्यवसाय करने की अनुमति प्राप्त हुई।

स्वर्गदेव गौरीनाथ सिंह के बाद अन्य दो राजा हुए—कमलेश्वर सिंह (१७९५-१८१०) और चंद्रकांत सिंह (१८१०-१८१८)। चंद्रकांत सिंह के समय उनके प्रधानमंत्री पूर्णानंद बुढ़ागोहाँइ के साथ गुवाहाटी के आहोम राजप्रतिनिधि एवं समधी बदनचंद्र बरफुकन का वैमनस्य हुआ, जिसके कारण बर्मी सेना की सहायता से बरफुकन ने १८१७ की अप्रैल में अपना अधिकार प्राप्त कर लिया, परंतु अगस्त महीने में राजनैतिक साजिश का शिकार हुए। बर्मी सेना ने १८१७ के बाद पुन: १७१८ और १७२१ में असम पर आक्रमण किया। इसके परिणामस्वरूप बर्मी सेना का आहोम शासन पर अधिकार हो गया। बर्मियों को असम से भगाने के लिए पुन: आहोम शासन को ईस्ट इंडिया कंपनी से सहायता माँगनी पड़ी। कंपनी ने सैनिक सहायता से बर्मी सेना को असम से खदेड़ा, परंतु आहोम शासन और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच २६ फरवरी, १८२६ को होनेवाली 'मांडाबु संधि' के कारण असम अंग्रेजों के अधिकार में चला गया। आहोम के अंतिम राजा स्वर्गदेव कंदर्पेश्वर सिंह को अनुग्रह राशि मिलने लगी।

असम में अंग्रेजों का अधिकार होने पर पदच्युत राजा चंद्रकांत सिंह ने १८२८ में चिंफौ, रवामति, गारो, खासी आदि जनगोष्ठियों से मिलकर स्वतंत्रता की लड़ाई छेड़ दी। राजा का साथ देनेवालों में विशिष्ट

जाने-माने लेखक। 'असमिया लोकसाहित्य की भूमिका; 'शंकरदेव और तुलसीदास की वैचारिक भावभूमि; 'श्रीमंत शंकरदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व, 'उत्तर-पूर्वांचल के लोकोत्सव', 'नरपेटा सत्रर इतिवृत्त', 'ब्रजबुलि साहित्य मुकुर', 'विश्वरत्न भूपेन हजारिका' समेत असमिया और हिंदी में सत्तर पुस्तकें प्रकाशित। राष्ट्रीय स्तरों पर कई पुरस्कारों से पुरस्कृत। गौहाटी विश्वविद्यालय में हिंदी प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष।

जन थे—जीउराम दुलीया बरुवा, धनंजय बरगोहाँइ, उनका पुत्र हरनाथ बरगोहाँइ, पियलि फुकन, गमधर कोंवर आदि। कैप्टन रिसर्डस के नेतृत्व में अंग्रेज फौजों ने विद्रोहियों को तितर-बितर किया। परंतु कुछ सिपाही पकड़े गए। अत: नवंबर में पंचायत हुई। कैप्टन नौविल के समक्ष हरनाथ बरगोहाँइ, जीउराम दुलीया बरुवा, रूपचंद्र कुँवर, देउराम दिहिंगीया फुकन, बम चिंफौ, पियलि फुकन आदि को उपस्थित कराया गया। प्रशासन के खिलाफ विद्रोह करने के कारण शिवसागर के जयपुरवुरी के तट पर दोषी पाए जानेवाले पियलि फुकन और जीउराम दुलीयाबरुवा को फाँसी दी गई। अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करके १८२८ में ही असम के दो वीर शहीद हुए।

आहोम शासन के अन्यतम मंत्री मणिराम देवान (२१ अप्रैल, १८०६—२६ फरवरी, १८५८) को ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार के कैप्टन निउफदाइन ने १८२८ में तहसीलदार की पदवी दी। अपनी सूझबूझ से मणिराम ने काफी कर-वसूली करके सरकारी खजाने को भरा। इससे संतुष्ट होकर सरकार ने उन्हें तहसीलों के अधिकारी का दायित्व देकर 'बरभंडारी बरुवा' बनाया। परंतु अंग्रेजों के अपमानजनक बरताव से असंतुष्ट होकर मणिराम ने पद से इस्तीफा दे दिया। अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए मणिराम ने मौके की प्रतीक्षा की। १८५७ में कलकत्ता जाने पर उन्हें प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन की जानकारी मिली और इससे प्रभावित होकर १८५७ की दुर्गा-पूजा के समय अंग्रेजों की बलि चढ़ाकर पुन: कंदर्पेश्वर सिंह को राजा बनाने की योजना को आगे बढ़ाते हुए विद्रोह प्रारंभ किया। डिब्रूगड़, गोवालपारा और पहाड़ों से सटे चाय बगीचों के विद्रोहियों ने उग्र रूप धारण किया। अंग्रेजों ने विद्रोह पर काबू पाने के लिए धड़-पकड़ शुरू की, स्वर्गदेव कंदर्पेश्वर सिंह को बंदी बनाया गया।

१९३० के 'कानून तोड़ो' और १९४२ के 'भारत छोड़ो' आंदोलन ने असम के जनजीवन में स्वतंत्रता की आग भड़का दी। प्रदेश के नेताओं की धड़-पकड़ शुरू हुई। इसके बावजूद तिरंगा झंडा फहराने जाते समय ब्रिटिश सरकार के सिपाहियों ने अनेक सत्याग्रहियों के प्राण लिये। हेमराज बरदलै, गुणाभि पाटर, कलाइ कोछ, हेमराज बरा, तिलक डेका, भोगेश्वरी फुकननी, लक्ष्मी हाजरिका, बलो सूत, ठगी सूत, राउतराम कछारि, मदन बर्मन, कनकलता, मुकुंद काकति, मनवर नाथ, तिलेश्वरी बरुवा, मदन राओता, निधानु राजवंशी, कमला मिरि आदि अनेक स्त्री-पुरुष शहीद हुए। रेल उड़ाने के दोष में कुशल कुँवर को फाँसी दी गई।

मणिराम देवान, पियलि बरुवा, दुतिराम बरुवा, बहादुर खनिकर आदि अनेक विद्रोही नेता पकड़े गए। अंग्रेजों ने दिखावे के लिए पंचायत की। इन विद्रोहियों पर मुकदमा चलाया और अंतत: दोषी करार देकर २६ फरवरी, १८५८ को जोरहाट की टोकलाई नदी के तट पर मणिराम देवान और पियलि बरुवा को फाँसी दी। स्वर्गदेव कंदर्पेश्वर सिंह को कलकत्ते के अलीपुर जेल में स्थानांतरित किया गया। इस प्रकार असम में प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन की चिनगारी को अंग्रेजों ने बुझा दिया।

१९०५ के बंग-भंग आंदोलन का प्रभाव यहाँ भी पड़ा था, परंतु यह आंदोलन गुवाहाटी-कछार में ही सीमित रहा। ब्रिटिश सरकार की देश-विरोधी गतिविधि को बाधा देने के लिए १९०३ में 'असम एसोसिएशन' की स्थापना हुई थी। इसके अध्यक्ष बने गौरीपुर के उदारवादी राजा प्रभातचंद्र बरुवा, महामंत्री हुए गुवाहाटी के माणिकचंद्र बरुवा और सह-मंत्री बने जोरहाट के जगन्नाथ बरुवा। २२-२४ अप्रैल, १९०५ में डिब्रूगढ़ में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ और अंतत: १९१८ से लगातार भारतीय कांग्रेस से इसका संबंध स्थापित हुआ। १९१८ में दिल्ली, १९१९ में अमृतसर और १९२० में कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में एसोसिएशन की तरफ से नवीनचंद्र बरदलै ने प्रतिनिधित्व किया था। अंतत: इस एसोसिएशन का कांग्रेस में विलय हुआ। नवीनचंद्र बरदलै, कुलधर चलिहा, चंद्रनाथ शर्मा आदि नेताओं ने ५ जून, १९२१ को 'असम प्रदेश कांग्रेस समिति' का गठन किया। बरदलै के आवास में ही कांग्रेस-कार्यालय खोला गया। असम के स्वतंत्रता संग्राम में गुवाहाटी के त्रिमूर्ति—कर्मवीर नवीनचंद्र बरदलै (३ नवंबर, १८७५-१२ फरवरी, १९३६), देशभक्त तरुणराम फुकन (२२ फरवरी, १८७७-२८ जुलाई, १९३९) और लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै (६ जून, १८९०-५ अगस्त, १९५०) के अपार योगदान को स्मरण किया जा सकता है, जिनके नेतृत्व में असमवासियों ने उसे सफल बनाया।

असम प्रदेश कांग्रेस समिति के आमंत्रण पर गांधीजी यमुनालाल गांधी, कृष्ण दास, मौलाना मुहम्मद अली आदि के साथ १८ अगस्त, १९२१ को असम पहुँचे। गुवाहाटी में तरुणराम फुकन के घर में अतिथि हुए और उसी दिन विशाल सभा में विदेशी वस्त्रों का दाहन-यज्ञ कर असम में 'असहयोग' का बिगुल बजाया। इस दौड़ में गांधीजी ने असम के तेजपुर, नगाँव, जोरहाट, डिब्रूगढ़, सिलचर की विभिन्न सभाओं में भाग लेकर जनता से असहयोग आंदोलन में भरपूर सहयोग देने का आह्वान किया था।

१९२१ में गांधीजी के असम भ्रमण से प्रभावित होकर असम प्रादेशिक कांग्रेस ने राष्ट्रीय कांग्रेस का ४१वाँ अधिवेशन गुवाहाटी में रखा। स्वागत समिति के अध्यक्ष तरुणराम फुकन और महामंत्री नवीनचंद्र बरदलै के अपार परिश्रम के फलस्वरूप २६-२८ दिसंबर, १९२६ तक गुवाहाटी के पांडु में राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन संपन्न हुआ। अधिवेशन की अध्यक्षता की थी श्रीनिवास आयंगर ने। पांडु कांग्रेस अधिवेशन को गांधीजी, मोतीलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, राजेंद्र प्रसाद, पं. मदन मोहन मालवीय, मुहम्मद अली, शौकत अली, सरोजिनी नायडू, अब्दुल कलाम आजाद, रंगा स्वामी आयंगर समेत अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने सुशोभित किया। केवल सोलह हजार निवासियों के गुवाहाटी में कांग्रेस अधिवेशन को सफलतापूर्वक संपन्न कराने में गांधीजी ने आश्चर्य प्रकट किया था। पर स्वामी श्रद्धानंद की हत्या की घटना से अधिवेशन में शोक छाया रहा।

१९३० के 'कानून तोड़ो' और १९४२ के 'भारत छोड़ो' आंदोलन ने असम के जनजीवन में स्वतंत्रता की आग भड़का दी। प्रदेश के नेताओं की धड़-पकड़ शुरू हुई। इसके बावजूद तिरंगा झंडा फहराने जाते समय ब्रिटिश सरकार के सिपाहियों ने अनेक सत्याग्रहियों के प्राण लिये। हेमराज बरदलै, गुणाभि पाटर, कलाइ कोछ, हेमराज बरा, तिलक डेका, भोगेश्वरी फुकननी, लक्ष्मी हाजरिका, बलो सूत, ठगी सूत, राउतराम कछारि, मदन बर्मन, कनकलता, मुकुंद काकति, मनवर नाथ, तिलेश्वरी बरुवा, मदन राओता, निधानु राजवंशी, कमला मिरि आदि अनेक स्त्री-पुरुष शहीद हुए। रेल उड़ाने के दोष में कुशल कुँवर को फाँसी दी गई। 'भारत त्याग' अर्थात् बयालीस के गण-विप्लव के समय असम में छिटपुट आतंकवादी गतिविधियाँ भी चलीं, जिनमें सैनिक कैंप में बम रखना, सैनिक रेल-पटरियों को नुकसान पहुँचाना इत्यादि शामिल है। गांधीजी १९३४ और १९४६ में भी असम दौरे पर आए थे और उनके भाषणों से सत्याग्रहियों को लड़ने का साहस मिला था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व असम को 'ग' श्रेणी मुक्त कर पाकिस्तान का हिस्सा बनाने का कूट-कौशल भी गांधीजी के आशीर्वाद और लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै की दृढता से निरस्त हुआ।

अरुणाचल

सन् १८२६ को आहोम शासन के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी की 'मांडाबु संधि' होने के उपरांत समग्र ब्रह्मपुत्र घाटी उपनिवेश शासन के अंतर्गत आ गया। इसके तुरंत बाद असम और आदिवासी गाँवों में पुलिस चौकियाँ बैठाई गईं। इससे आदिवासियों को खतरा महसूस हुआ और उनकी स्वतंत्रता छिनती दिखने लगी। फलत: अंग्रेजों के खिलाफ आदिवासियों का क्रोध भड़क उठा। धीरे-धीरे आदि (आबर) भूमि पर अंग्रेजों का दखल बढ़ने लगा और विरोध करने पर प्रजा को तरह-तरह से सताया जाने लगा। जब तत्कालीन शदिया (असम) का सहकारी राजनैतिक अधिकारी मि. नोयेल विलियम्सन सिपाहियों के साथ पासीघाट के समीपस्थ यंगरू गाँव आया, तब उस गाँव के मुखिया मातमुर जमोह का खून खौल उठा। मातमुर जमोह ने अपने साथी लतियांग तालोह के साथ यंगरू गाँव से कमसिंग गाँव तक चलकर योजना बनाई। उन्होंने केबां गाँव में जाकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए एक टुकड़ी तैयार की, जिसमें लमलो दरंग, बापक लेरांग, लानरुंग तामुक, नामु नोनाङ, बिसंग ताबियों आदि शामिल हुए। मि. नोमेल विलियम्सन के नेतृत्व में सिपाही की एक टुकड़ी ने कमसिंग गाँव में और डॉ. ग्रेगरसन की टुकड़ी ने सियांग नदी पार कर पनजी गाँव में डेरा डाला। ३१ मार्च, १९११ को मातमुर जमोह और उसके साथियों ने दोनों अंग्रेज अधिकारियों समेत ४२ सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया। इसी वर्ष अक्तूबर में मेजर जनरल हेमिल्टन बाओर ने घेरा डालकर विद्रोहियों को पकड़ा और उन्हें अंडमान जेल की सजा दिलवाई।

अरुणाचल प्रदेश के लोहित जिले में इथुन घाटी के एलोपेन नामक गाँव के कृषक परिवार के ताजी मीदेरिन ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर १९०५ में विक्रांत नदी के तट पर तीन अंग्रेज अधिकारियों की हत्या कर दी। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए ताजी-मीदेरिन ने मिशमी संगठन खड़ा किया और गोरे शासकों पर आक्रमण जारी रखे। उन्हें पकड़ने के लिए अंग्रेजों ने अनेक प्रयास किए और आखिर १९१७ में धोखे से शदिया में पकड़ा लिए गए। अंग्रेजों ने उनके ऊपर हत्या का मुकदमा चलाया और तेजपुर जेल में ११ जनवरी, १९१८ को फाँसी पर चढ़ा दिया।

अरुणाचल प्रदेश के पश्चिमी सियांग क्षेत्र के बासार मंडल के दारिंग गाँव के मीजे रीबा संत स्वभाव के थे, इसलिए लोग उन्हें 'आबो निजी' अर्थात् 'बापू' कहकर संबोधित करते थे। गांधीजी के आह्वान को सुनकर और असम के गोपीनाथ बरदलै से दिशा-निर्देश लेकर उन्होंने दारिंग के लोगों की एक सभा बुलाई और स्वतंत्रता संग्राम के लिए आह्वान किया। बरदलैजी की सहायता से वे राष्ट्रीय कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता बने। इन्होंने अरुणाचल में भारतीय कांग्रेस की इकाई की स्थापना की, जिसके वह संस्थापक अध्यक्ष बने। इनके नेतृत्व में अरुणाचल प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम को नई गति मिली। स्वतंत्रता की रजत जयंती के अवसर पर श्रीमती इंदिरा गांधी ने १५ अगस्त, १९७२ को इन्हें ताम्रपत्र देकर सम्मानित किया था। १९८२ में अपने पैतृक गाँव में उनका देहावसान हुआ।

नागालैंड

मुंडों के शिकार करनेवाले नागा जनगोष्ठी के लोग स्वभावत: स्वतंत्रता प्रिय हैं। वे प्राय: असम घाटी, कछार और मणिपुर में छापामारी भी करते थे। वे भी नागाभूमि में ब्रिटिश शासन की संभावना से डरते थे और इसीलिए इसका डटकर विरोध करते थे। १८३२ में जेनकिन एवं पंपरटन शताधिक सिपाहियों के साथ अनजामी और कुच्चा (जेलियांगरंग) नागाओं की बस्तियों से होकर असम से मणिपुर जाने का सीधा रास्ता बनवाने का सर्वेक्षण करने गए थे, परंतु हर नागा गाँव में उन्हें बाधा पहुँचाई गई। इसीलिए अगले वर्ष लेफ्टिनेंट जॉर्ज गर्डन ने मणिपुर के राजा गंभीर सिंह के साथ नागा गाँवों में घूमकर उन्हें बाधा पहुँचानेवालों को गंभीर परिणाम भोगने की चेतावनी दी। ब्रिटिश सरकार को नागा भूमि में चाय उत्पादन कर काफी राजस्व पाने की आशा थी। नागा छापामारों पर काबू पाने के लिए १८४६ में अंग्रेजों ने सामगुटिंग (सुमुकेदिमा) में एक पुलिस चौकी स्थापित की। परंतु इसका नतीजा कुछ न निकला, क्योंकि छापामारी से नागाओं को रोका नहीं जा सका।

सन् १८४९ में भोगचंद ने सिपाहियों के साथ अंजामी इलाका मेजोमा को दौरा किया, परंतु लौटने पर पिफीमा नामक स्थान में उनके अधिकांश लोगों का नागाओं ने वध कर दिया, कुछ भाग खड़े हुए। इस हत्याकांड से क्रोधित होकर पाँच सौ सिपाहियों के साथ लेफ्टिनेंट कर्नल फोकुडट ने १० दिसंबर, १८५० को मेजोमा से चलकर खोनोमा गाँव पर आक्रमण किया। खोनोमा गाँव के वीर योद्धा उनके साथ सोलह घंटे तक साहस से लड़े, परंतु शस्त्रों की कमी के कारण गाँववासियों को आक्रमण रोकना पड़ा। इसी का फायदा उठाकर अंग्रेजों ने गाँव को खाली कराया और घरों को आग लगा दी। इसका बदला लेने के लिए किक्रुमा गाँव के लगभग सौ वीरों ने अंग्रेजों से लड़कर वीरगति प्राप्त की। नागाओं के

उपद्रव के कारण अंतत: अंग्रेज सरकार को सामगुटिंग की पुलिस चौकी को हटाना पड़ा। खोनोमा और मेजोमा के वीर अंजामियों ने लगभग घाटी की चालीस पुलिस चौकियों पर आक्रमण किया, जिसके परिणामस्वरूप तीन सौ से अधिक पुलिस और आम लोगों को जान गँवानी पड़ी।

सामान्यत: नागा लोग ब्रिटिश को 'कंपनी के लोग' के रूप में जानते थे और उन्हें आक्रमण करने के लिए हर नागा गाँव के लोग तैयार रहते थे। कैप्टन बाटलर को विस्तार कार्य हेतु पांगटि में सर्वेक्षण करते समय १८७६ में प्राण गँवाना पड़े। इसीलिए अंजामी क्षेत्रों में ब्रिटिश सैनिकों को निर्विरोध रखने का सुलह प्रस्ताव लेकर १३ अक्तूबर, १८९७ को कैप्टन दमंट ने फंटियर पुलिस और ४३ बंगाल रेजीमेंट को साथ लेकर जोटसोमा से खोनोमा जाते समय भी नागाओं के आक्रमण का सामना करना पड़ा और ३३ सैनिकों के साथ दमंट को भी प्राण गँवाने पड़े थे। इसी वर्ष विभिन्न गाँवों से जुटे ६००० नागा वीरों ने कोहिमा के अंग्रेज सुरक्षा क्षेत्र को घेर लिया था, जिसे 'खोनोमा-विप्लव' कहा जाता है। इसी तरह वीर नागाओं ने अंग्रेजों को नाकों चने चबवाए। ब्रिटिश उपनिवेश और ईसाई मिशनरियों के खिलाफ खोनोमा की लड़ाई तब तक जारी रही, जब तक द्वितीय विश्वयुद्ध के समय फिजो ने आजाद हिंद फौज को खोनोमा की तरफ बढ़ने में सहायता की थी।

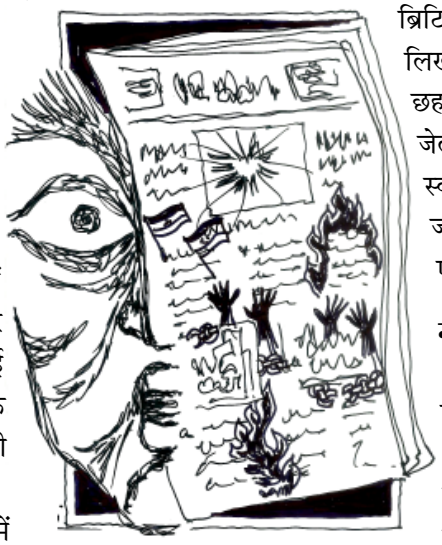

नागा भूमि में स्वतंत्रता-वीर के रूप में जादोनांग का स्मरण किया जाता है। १९०५ में कांबीरान गाँव (अब मणिपुर में) में जनमे जादोनांग बचपन से ही देशभक्त थे। १९२६ में गुवाहाटी के पांडु कांग्रेस के समय उन्होंने गांधीजी के बारे में सुना था। एक सौ लड़के और एक सौ लड़कियों का एक दल लेकर गांधीजी से मिलने सिलचर पहुँचे, परंतु १९२१ की तरह गांधीजी इस बार सिलचर नहीं आए। जादोनांग ने जेमी, लियांगमई तथा रांग्मई जनजातियों को विभिन्न रीति-रस्म के अनुयायी होने के बावजूद एकत्र किया और उनमें स्वतंत्रता संग्राम का बीज बोया। युवकों को शस्त्रों की शिक्षा दी गई। रानी गाइंडिल्यू ने भी युवतियों को एकत्र करके एक टुकड़ी बनाई थी। लुंगकाओं, ताखेनांग जैसे गाँवों में इन फौजी युवकों का आवास था। कांबीरान में चुंगचांग तथा मुदनांग सेनापति थे। इन्हें लुरींगुपु अर्थात् 'मुक्तिदाता' कहा जाने लगा। अपने इस ब्रिटिश विरोधी कार्य के कारण ६ दिसंबर, १९२८ को जादोनांग को गिरफ्तार करके जेल भेजा गया। जेल से निकलकर वह पुन: सक्रिय हो गए। इसी बीच १९३० के मार्च महीने में मणिपुर के चार व्यापारियों की हत्या हो गई। निरपराध होने के बावजूद सरकार का जादोनांग पर संदेह हुआ। उसके ऊपर अंग्रेज ऐसे भी खफा थे कि नागा गाँवों से सरकार को कोई कर नहीं मिलता था। धोखे से सरकार ने १९ फरवरी, १९३१ को उन्हें पकड़ा और इंफाल कारागार में डाल दिया। उन्हें घोर कष्ट दिए गए और मुकदमे का नाटक रचकर इंफाल जेल में ही २९ अगस्त, १९३१ को फाँसी दे दी गई।

जादोनांग के असंपूर्ण कार्य को रानी माँ गाइंडिल्यू ने आगे बढ़ाया। उनके पास एक बंदूक थी। नागा समाज को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए रानी माँ ने प्रोत्साहित किया था, जिससे वे सरकार की आँखों की किरकिरी बन गईं। उन्हें पकड़ने का वारंट जारी हुआ, परंतु वे छिपती रहीं। अंतत: १६ अक्तूबर, १९३२ को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। १९३७ में पं. जवाहरलाल नेहरू के असम प्रवास में उन्हें गाइंडिल्यू के नेतृत्व में स्वतंत्रता की जानकारी मिली। गाइंडिल्यू को मात्र सत्रह वर्ष की आयु में आजीवन कारावास की सजा दिए जाने के विरोध में नेहरू ने सरकार की आलोचना की थी और उनकी रिहाई के लिए ब्रिटिश संसद् की महिला सदस्या लेडी एस्टर को पत्र लिखकर विनती की थी। रानी माँ एक वर्ष गुवाहाटी, छह वर्ष शिलांग, तीन वर्ष आईजोल और चार वर्ष तुरा जेलों में रहीं। चौदह वर्षों के बाद ३१ वर्ष की आयु में स्वतंत्र भारत में स्वतंत्रता की साँस ली। इन्होंने वीर जादोनांग की स्मृति में १९७४ में जेलियांगरोंग हरक्का एसोसिएशन की स्थापना की थी।

मणिपुर

मणिपुर में स्वतंत्रता-वीरों में वीर टिकेंद्रजीत सिंह का नाम सर्वोपरि है। वे एक वीर योद्धा ही नहीं थे बल्कि स्वतंत्रता प्रेमी थे। घोर ब्रिटिश विरोधी होने के कारण वे मणिपुरी वीर सैनिकों के साथ अंग्रेजों के खिलाफ लड़े थे। १८१९ से १८२६ तक मणिपुर राज्य में उथल-पुथल रही। बर्मियों ने मणिपुर पर आक्रमण करके अनेक अत्याचार किए थे। मणिपुर के राजा गंभीरसिंह ने ब्रिटिश सेना की सहायता से बर्मी सेना को मणिपुर से बाहर निकाला था। २४ फरवरी, १८२६ को बर्मा के साथ 'माडांबो संधि हुई, जिसमें गंभीर सिंह को ब्रिटिश एवं बर्मा की सहमति से राजा बनाया गया। १८३४ में गंभीर सिंह की मृत्यु होने पर उनका बालक पुत्र चंद्रकीर्ति राजा तो बना, परंतु सेनापति नरसिंह के संरक्षण में शासन करने लगा। कुछ समय बाद चंद्रकीर्ति की माता कुमुदिनी देवी से नरसिंह का वैमनस्य होने पर वह पुत्र सहित कछार चली गई। १८४४ को नरसिंह को ब्रिटिश सरकार ने मणिपुर का राजा बनवाया। १८५० में नरसिंह की मृत्यु होने पर देवेंद्रसिंह राजा बने। १८५१ में उसे पराजित कर चंद्रकीर्ति पुन: राजा बन गए। १८६६ में चंद्रकीर्ति की मृत्यु होने पर भाइयों में अंतर्कलह हुआ। राजपद त्यागकर सुरचंद्र सिंह सिलचर पहुँचा और ब्रिटिश अधिकारियों से उसे पुन: राजा बनवाने और युवराज टिकेंद्रजीत को बंदी बनाने का आग्रह किया। १८९१ में असम के कमिश्नर ने टिकेंद्रजीत को बंदी बनाने के लिए मणिपुर पर आक्रमण किया। स्वतंत्रता प्रेमी मणिपुरी जनता और राजा कुलचंद्र ने अंग्रेजों के इस आक्रमण का ईंट का जवाब पत्थर से दिया। ब्रजवासी पाओना ने मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए मुट्ठी भर सैनिकों के साथ अंतिम साँस तक

युद्ध किया। वीर टिकेंद्रजीत और सेनापति चडांल अंग्रेज सेना पर भारी पड़ गए, परंतु मणिपुर को तीनों ओर से अंग्रेज सेना ने घेर लिया, जिसके परिणामस्वरूप मणिपुरी सेना की हार हुई। १३ अगस्त, १८९१ में वीर टिकेंद्रजीत और सेनापति थाडल को फाँसी दी गई। अन्य वीरों को बंदी बनाया गया। प्रथम विश्वयुद्ध के समय महाराजा चूराचाँद सिंह के शासनकाल में ब्रिटिश ने लेबर कोर में जब कुकी जनजाति को जबरदस्ती भरती करना प्रारंभ किया तो उन्होंने विद्रोह किया, परंतु उसे १९१९ में कुचल दिया गया।

ब्रिटिशों को काबू करने के लिए १० मई, १९४२ को जापानी बम वर्षकों ने इंफाल पर बम गिराए, जिससे घाटी की कानून व्यवस्था ध्वस्त हो गई। बर्मा से आजाद हिंद फौज ने जापान के साथ ८ मार्च, १९४४ को मणिपुर पर आक्रमण किया। १४ अप्रैल, १९४४ को आजाद हिंद फौज ने मोइराङ कस्बे पर अपना अधिकार जमाया और तिरंगा फहराकर स्वतंत्रता की खुशी मनाई। मोइराङ के डाक बँगले में आजाद हिंद फौज का मुख्यालय स्थापित हुआ। लगभग १५०० वर्ग मील क्षेत्र जून तक आजाद हिंद फौज के नियंत्रण में रहा। मानसून के सक्रिय होने तथा ब्रिटिश विजय के कारण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक विजय अध्याय यहीं समाप्त हुआ।

मिजोरम

जब अंग्रेजों ने मिजोरम में अपना शासन लागू करने का प्रयास किया तो मिजो वीरों ने उसका प्रतिरोध किया था। इस दृष्टि से राजा ललसुथलहा (१८१३-१८४४), राजा कलखमा (सन् १८४७-१८९१) और रानी दौपुईलियानी (सन् १८२५-१८९५) के नाम आदर से लिये जा सकते हैं, जिनके नेतृत्व में मीजो वीरों ने अंग्रेजों से लोहा लिया।

वर्तमान त्रिपुरा के कुछ क्षेत्रों में देशवासियों का अधिकार बनाए रखने के लिए मिजो राजा ललसुथलहा ने १६ अप्रैल, १८४४ को कचुवारी नामक स्थान में अंग्रेजों से लड़कर उनके ५० सैनिकों को मार डाला। इससे आगबबूला होकर अंग्रेज सरकार ने कैप्टन हैकवुड के नेतृत्व में एक टुकड़ी भेजी, परंतु राजा ललसुथलहा ने कैप्टन हैकवुड को मौत के घाट उतार दिया। राजा ललसुथलहा अंग्रेजों के लिए सिर दर्द बन गया। आखिर संधि करने का प्रस्ताव भेजकर धोखे से ४ दिसंबर, १८४४ को गिरफ्तार कर लिया और आजीवन कारावास सुनाकर, संभवत: जेल में ही यातना देकर उन्हें मार डाला गया। मिजो राजाओं में शहीद होनेवाले ललसुथलहा प्रथम राजा थे।

सेनलाङ नामक राज्य का राजा कलखमा अंग्रेज विद्वेषी था। मिजो युवकों को कुली बनवाने की अंग्रेजों की साजिश का उन्होंने विरोध किया था। अत: अंग्रेजों को मिजोरम से भगाने के लिए उन्होंने अपने बड़े भाई राजा लियानफुङा तथा अन्य मिजो राजाओं से मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध छेड़ा, जिसमें अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर मि. बॉन मारा गया। इसका बदला लेने के लिए अंग्रेजों ने मि. मककैव स्कॉटिश सेनापति के नेतृत्व में फौज भेजी। निहत्थे लोगों को इस फौज ने गाजर-मूली की तरह काटा। मिजो राजा अपनी सीमित शक्ति से अंग्रेजों के खिलाफ लड़े। १७ नवंबर, १८९० को राजा पर दबाव डालने के लिए कलखमा के नगर सेनलाङ में आग लगा दी गई। आखिर धोखे से राजा को गिरफ्तार करके १३ जनवरी, १८९१ को हजारीबाग (वर्तमान झारखंड में) की जेल में पहुँचा दिया और यातना देकर इसी वर्ष के ११ दिसंबर को मार डाला।

रानी झाँसी लक्ष्मीबाई की तरह मिजोरम की रानी रौपुईलियानी (१८२५-१८९५) अंग्रेजों की कट्टर दुश्मन थीं। वे आइजोल के राजा लालसाबुडा की पुत्री थीं और दक्षिण मिजोरम के राजा रौलुरहुआ के पुत्र वानदुला की पत्नी थीं। विवाह के बाद १८५९ में वे पति-पत्नी क्रमश: कोमजोल और देडलुङ गाँव में बसे। १८९३ में अंग्रेज साम्राज्य के प्रति इन्होंने विद्रोह किया। युद्ध में पति वानदुला, पुत्र दौतोना और पुत्री ललरेडपुई की मृत्यु हुई। ब्रिटिश अधिकारी जनरल ट्रीगर के हाथों दौतोना ने वीरगति प्राप्त की। पति की मृत्यु के बाद रानी रौपुईलियानी ने अंग्रेजों से संघर्ष करते हुए जनता के साथ स्वतंत्रता संग्राम जारी रखा। रानी चाहती थीं कि अंग्रेज मिजोरम से बाहर हो जाएँ। वे नहीं चाहती थीं कि अंग्रेज जबरन प्रजा से गुलामों की तरह काम करवाएँ, पेड़-जंगल काटकर रास्ता बनवाएँ, जबरन कर वसूलें। इसके निमित्त वे प्रजा में जागरूकता उत्पन्न कर कहती थीं कि इन फिरंगियों का कोई अधिकार नहीं है, जो हमें अपनी चालों में फँसाकर हमारे ऊपर राज करें। अंग्रेजों ने रानी से सुलह करनी चाही, परंतु रानी ने उनके विस्तारवादी रवैये पर कुठाराघात किया। रानी ने अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध करने की तैयारी की और अपने अधीनस्थ राजा-प्रजाओं को एकत्र कर संगठित किया, परंतु गुप्तचरों से अंग्रेज कप्तान मुरै को इस विद्रोह की तैयारी की भनक लग गई। इसलिए उसने १० अगस्त, १८९३ को रानी के गाँव पर धावा बोल दिया और रानी के छोटे पुत्र लालहुआमा सहित रानी को गिरफ्तार कर लिया। कैद होने पर पैदल जाने से इनकार करने पर रानी को लुङलेई तक पालकी में बिठाकर ले जाना पड़ा। १२ अगस्त, १८९३ में रानी को लुङलेई को कैदखाने में रखा गया। कैदखाने से ही रानी अपने प्रमुख सैनिकों को विद्रोह जारी रखने के लिए प्रेरित करती थीं तथा अंग्रेजों पर विश्वास न करने की हिदायत देती थीं। कुछ दिनों के पश्चात् रानी के दो विश्वस्त साथी कैदखाने से भागने में सफल हुए। इसलिए अंग्रेज अधिकारी सतर्क हुए और रानी को वहाँ से १८ अप्रैल, १८९४ को चिटगाँव (बांग्लादेश) कैदखाने में स्थानांतरित किया गया। इसी कैदखाने में अतिसार की बीमारी के कारण ३ जनवरी, १८९५ को रानी रौपुई लियानी ने वीरगति प्राप्त की।

मेघालय

मेघालय यानी पूर्व खासी-जैंतिया और गारो पहाड़ों में स्वतंत्रता संग्राम के मुख्य वीरों में चियेम (राजा) उ. तिरोत सिंह, उ. कियांग नाङगबाह और पा तगान सन संगमा के नाम आदर के साथ लिये जाते हैं। तिरोत सिंह राजा थे, परंतु नाङगबाह और तगान संगमा साधारण परिवार से थे। तीनों असामान्य वीर थे और अंग्रेजों को नाकों चने चबवाए थे। चियेम उ. तिरोत सिंह नाङगखली इलाके के थे। उन्होंने अपने जाँबाज सिपहसालार उ. मनभुट, लार्सन जारैन, खेन कंगौर और कफान नंगलैत

के साथ अंग्रेजों से लोहा लिया था।

सन् १८२६ में मांडाब्यु संधि होने पर संपूर्ण ब्रह्मपुत्र घाटी पर अंग्रेज का अधिकार हो गया था। १७६५ में अंग्रेजों ने बंगाल का 'दीवान' होने के बाद सुरमा घाटी पर कब्जा जमाया था। अब अंग्रेज चाहता था कि दोनों घाटियों पर अधिकार बनाए रखने के लिए यातायात की सुविधा हेतु एक रास्ता चाहिए, जिसे खासी-जैंतिया पहाड़ से होकर ही निकाला जा सकता था। साथ ही एक सैनिक छावनी स्थापित करने का विचार था। इसलिए अंग्रेज के पॉलिटिकल एजेंट डेविड स्कॉट ने खादसफ्रा के चियेम उ. तिरोत सिंह के पास उनके राज्य से होकर रास्ता बनवाने का प्रस्ताव रखा। तिरोत सिंह ने दरबार बुलाकर दो दिन-दो रात विचार करने के पश्चात् बेमन से अनुमति दे दी। अंग्रेजों ने तुरंत एक सैनिक टुकड़ी और मजदूरों के साथ नडखलो में अड्डा जमाया। बाद में तिरोत सिंह को पता चला कि गुवाहाटी और सिलचर में सैनिक एकत्र किए गए हैं। उन्हें लगा कि खासी-जैंतिया पहाड़ पर कब्जा जमाने के लिए अंग्रेजों ने इस प्रकार की चाल चली है। इसलिए उन्होंने तुरंत रास्ता बनाने का काम रोककर अंग्रेजों का नडखलो छोड़ने की हिदायत दी। इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने खासी पहाड़ पर हमला बोल दिया। वीर तिरोत सिंह साहस के साथ लड़ा और डेविड स्कॉट को युद्ध में मार डाला। स्कॉट का उत्तराधिकारी टी.सी. रॉबर्टसन चाहता था कि युद्ध का अंत हो, इसीलिए तिरोत सिंह के पास सुलह का प्रस्ताव भेजा। दोनों गुटों में काफी विचार-विमर्श हुआ, परंतु खासी-जैंतिया में रास्ता न बनवाने का प्रस्ताव कंपनी को स्वीकार नहीं हुआ। इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने खासी पहाड़ी पर आर्थिक अवरोध खड़ा किया। खासी पहाड़ी पर बाजार बंद हो गया, सभी प्रकार के सामानों की आवाजाही रुक गई, खाद्य सामग्री मिलना मुश्किल हो गया। इससे प्रभावित होकर कुछ खासी सरदार अंग्रेजों के सामने आत्मसमर्पण करने लगे। खासी-जैंतिया के इस संकट काल में असम के मणिराम देवान, पियालि बरुवा ने खासी वीर योद्धाओं के पास कामरूप सीमांत से अनाज भेजा था।

तिरोत सिंह की यह छापामारी लड़ाई तीन वर्षों तक चली। उनके सारे विश्वस्त वीर सैनिक मारे गए थे। युद्ध के समय उनके एक वीर सैनिक बरमाणिक को गोली लग गई। खासी साथियों ने घायल बरमाणिक को उनियाम नदी के पास की गुफा में लाए, जहाँ तिरोत सिंह भी उन्हें देखने आए थे। मरने के पूर्व बरमाणिक ने तिरोत सिंह और साथियों को समझाया कि अंग्रेजों के आधुनिक हथियारों और सैन्यबलों के सामने अब अधिक दिन खासियों का टिकना संभव नहीं है। अत: सम्मानपूर्वक अंग्रेजों से सुलह कर ले। आखिर तिरोत सिंह को अंग्रेजों ने पकड़कर ढाका जेल भेज दिया, जहाँ १७ जुलाई, १८३५ को उन्होंने वीरगति प्राप्त की।

जैंतिया पहाड़ में १८३५ में जनमे उ. कियांग नाङगबाह सामान्य सिंकन गोष्ठी के परिवार से थे। बचपन से ही अपनी मातृभूमि में अंग्रेज घुसपैठियों को देखते आए थे और अपनी माता से जानकारी मिलती थी कि ये लोग विदेशी हैं। जब अंग्रेजों ने १८६० में आवास-कर लगाया और इसे न देने पर कर-वसूलदार प्रजाओं से जिस निर्ममता से पेश आते थे, उसे देखकर जवान नाङगबाह का खून खौल उठता था। १८६१ में एक दूसरी घटना हुई। जोवाइ के निकट लालंग गाँव के लोग अपने धार्मिक उत्सव 'पस्तिएह' में परंपरानुसार ढाल-तलवार लेकर नृत्य करते समय अंग्रेज शासन ने बाधा पहुँचाई, जिससे स्थिति बिगड़ गई। यह उनके धार्मिक विषय में हस्तक्षेप था।

जैंतिया पहाड़ में १८३५ में जनमे उ. कियांग नाङगबाह सामान्य सिंकन गोष्ठी के परिवार से थे। बचपन से ही अपनी मातृभूमि में अंग्रेज घुसपैठियों को देखते आए थे और अपनी माता से जानकारी मिलती थी कि ये लोग विदेशी हैं। जब अंग्रेजों ने १८६० में आवास-कर लगाया और इसे न देने पर कर-वसूलदार प्रजाओं से जिस निर्ममता से पेश आते थे, उसे देखकर जवान नाङगबाह का खून खौल उठता था। १८६१ में एक दूसरी घटना हुई। जोवाइ के निकट लालंग गाँव के लोग अपने धार्मिक उत्सव 'पस्तिएह' में परंपरानुसार ढाल-तलवार लेकर नृत्य करते समय अंग्रेज शासन ने बाधा पहुँचाई, जिससे स्थिति बिगड़ गई। यह उनके धार्मिक विषय में हस्तक्षेप था। तब से नाङगबाह गाँव-गाँव घूमकर लोगों को अंग्रेजों के खिलाफ एकत्र करने लगे और उनसे लोहा लेने के विषय में बताने लगे। उन्होंने जोवाइ के निकट सिंटु क्षियर मैदान में एक दरबार बुलाया, जिसमें पुरुष-स्त्री, युवक-युवती, बूढ़े-बुजुर्ग अनेक लोगों ने भाग लिया और सर्वसम्मति से अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र संग्राम करने का निश्चय किया। दरबार में नाङगबाह को नेता चुना गया। जोवाइ के अंग्रेजों पर आक्रमण शुरू किया गया, थाने को जलाया गया। जैंतिया पहाड़ के मिनसो, सांगपुंग, रेलियाँ, नाहरियांग, बोरेटो, मुकाइओ, सुरंगा आदि स्थानों में युद्ध की चिनगारी भड़क उठी। अंग्रेजों की गोली का जवाब ये लोग छापामारी से, परंपरागत धनुष-बाण, शूल, ढाल-तलवार आदि अस्त्र-शस्त्रों से दे रहे थे। यह युद्ध १८६० से १८६२ तक चला। नाङगबाह को पकड़ने के लिए अंग्रेजों ने १००० रुपए का इनाम घोषित किया। एक घर-शत्रु विभीषण खासी उ. दलोइ टिंगकर ने अंग्रेजों की बात में आकर पैसे के लोभ से मिनसो गाँव में छिपे हुए नाङगबाह को पकड़ा दिया। वह काला दिन था २७ दिसंबर, १८६२। नाङगबाह को पकड़कर जोवाइ लाया गया और झूठा मुकदमा चलाकर जोवाइ के लमुसियांग में ३० दिसंबर, १८६२ को सामूहिक रूप में फाँसी दी गई।

मेघालय के गारो पहाड़ के विलियम नगर के समीपस्थ रोङबिल बांगरि गाँव में पा तगान एन संगमा का जन्म हुआ था। बचपन से ही वे वीर प्रकृति के और साहसी थे। ईस्ट इंडिया कंपनी ने गारो पहाड़ के तुरा में १८६९ में अपना कार्यालय खोला। जिलाधिपति डब्ल्यू.जे. विलियम्सन ने १८७१ में पश्चिमी गारो पहाड़ के १०० गाँवों को जबरदस्ती दखल किया था। पूर्वी गारो पहाड़ के ६० गाँवों पर अधिकार करने के लिए अंग्रेजों ने कैप्टन डेली, कैप्टन डेविस और कैप्टन विलियम्सन के नेतृत्व में तीन टुकड़ियाँ बनाकर इन गाँवों को घेरने की योजना बनाई। अंग्रेजों के संभावित आक्रमणों से गाँववासी सावधान हुए, क्योंकि वे लोग स्वतंत्रता

खोना नहीं चाहते थे। तगान संगमा ने गारो पहाड़ के ५० गाँवों को संगठित किया, उन्हें युद्ध के लिए प्रशिक्षण दिया और अस्त्र-शस्त्रों को एकत्र किया। गारो पहाड़ के प्राकृतिक भूगोल को देखकर अंग्रेजों ने दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से गाँवों पर आक्रमण किया। घरों को जलाया गया, आम लोगों पर अत्याचार किया। रंगग्रेंगगिरि नामक स्थान में युद्ध प्रारंभ हुआ। एक ओर आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित शक्तिशाली साम्राज्यवादी शक्ति और दूसरी तरफ धनुष-बाण, शूल, ढाल-तलवार, दाओ आदि परंपरागत हथियार लेकर तगान संगमा की अगुवाई में वीर गारोवासी। स्वाभाविक रूप में अंग्रेज गारो-योद्धाओं पर भारी पड़े और १२ सितंबर, १८७२ को गोली लगकर युद्धस्थल पर ही तगान संगमा शहीद हुए।

त्रिपुरा

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में पूरे देश के साथ त्रिपुरा ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। शचींद्र पाल सिंह, वीरेन दत्त, वंशी, ठाकुर, प्रभात राय, देव प्रसाद सेन गुप्त, उमेश पाल सिंह, सुखमय सेनगुप्त, हरिगंगा बसाक, अली अहमद, अब्दुल गफूर छायबाली, माधव घोष, यतींद्र नाथ, जितेन पाल आदि स्वदेशी-प्रेमी सत्याग्रहियों ने त्रिपुरा में 'असहयोग', 'कानून तोड़ो', 'भारत छोड़ो' आंदोलनों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया था। अग्रणी नेता जितेन पाल का १९३२, १९३५, १९३७ को कारावास हुआ था। १९३५-३६ में वे गृहबंदी हुए। कानून तोड़ने के अपराध में उन्हें आठ बार गिरफ्तार किया गया था। त्रिपुरा में स्वतंत्रता-संग्रामियों में जितेन पाल का स्थान ऊँचा रहा है।

सिक्किम

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गोरखाओं ने भाग लिया था, परंतु उनके बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती। बताया जाता है कि स्वतंत्रता आंदोलन में ८४ गोरखा शहीद हुए थे। स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी वीरांगना हेलेन लेप्सा (१९०२-१९८०) को गांधीजी का सान्निध्य और आशीर्वाद मिला था। गांधीजी के बुलाने पर जब वे साबरमती आश्रम गईं, तब गांधीजी ने उनका हेलेन लेप्सा नाम बदलकर 'सावित्री देवी' रखा था। हेलेन लेप्सा का जन्म दक्षिण सिक्किम के सांगमुंग गाँव में हुआ था। वे अचुंग लेप्सा की तीसरी संतान थीं। लेप्सा परिवार ने बाद में स्थानांतरित होकर दार्जिलिंग के निकटस्थ कर्चेंग में अपना निवास बनाया।

गांधीजी ने स्वतंत्रता संग्राम प्रारंभ करने के साथ स्वदेशी खादी-वस्त्र और चरखा का प्रचार किया था। दार्जिलिंग में एक बंगाली सज्जन से यह सुनकर हेलेन लेप्सा ने दिलचस्पी ली और कलकत्ता जाकर चरखा चलाने का प्रशिक्षण लिया। १९२० में जब बिहार में बाढ़ आई थी, उस समय वे मुजफ्फरपुर में थीं। वे बाढ़-पीड़ितों की सेवा में जी-जान से जुट गई थीं। बाढ़ग्रस्तों को देखने जब गांधीजी बिहार आए थे, तब उनकी भेंट हेलेन लेप्सा से हुई और खुले तौर पर उन्होंने प्रशंसा की थी। गांधीजी ने हेलेन को गुजरात के साबरमती आश्रम बुलाया था। बिहार और उत्तर प्रदेश को हेलेन ने अपना कार्यस्थल बनाया। गण-आंदोलन के समय झरिया, कोयला मजदूरों को उन्होंने संगठित किया और कांग्रेस के आंदोलन में उतारा।

हेलेन लेप्सा काफी दिनों तक इलाहाबाद के आनंद भवन में रही थीं। उस समय इंदिराजी काफी छोटी थीं और हेलेन को 'आंटी' कहकर पुकारती थीं। ब्रिटिश सरकार की पैनी नजर हेलेन पर थी, परंतु वे जल्दी-जल्दी स्थान बदलकर अपने को छुपाती रहती थीं। वे १९२१ के अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में डॉ. सरोजिनी नायडू के साथ भाग लेने गई थीं। कांग्रेस संगठन का अधिकतर काम वे बिहार और उत्तर प्रदेश में करती थीं। गोरखा सत्याग्रहियों के साथ वे सिलिगुड़ी में 'स्वदेशी आंदोलन' में भाग लेने गई थीं और कानून तोड़ने के कारण बारह गोरखा सत्याग्रहियों के साथ वे भी गिरफ्तार हुईं। हेलेन को छह मास जेल की सजा हुई। उसके बाद तीन वर्षों तक गृह-बंदी बनकर रहना पड़ा।

सन् १९३९-४० में जब सुभाष चंद्र बोस गृहबंदी थे, तब हेलेन उन्हें डबलरोटी के भीतर गुप्त सूचनाएँ भेजती थीं। गृहबंदी से सुभाष को भगाने में हेलेन की सराहनीय भूमिका रही है, क्योंकि सुभाष के लिए पठान-पहनावा उन्होंने ही तैयार किया था। स्वतंत्रता के बाद वे कर्चेंग म्यूनिसिपैलिटी की अध्यक्षा चुनी गईं। बंगाल सरकार ने १९५८ में उन्हें 'पहाड़ की जनजाति मुखिया' का सम्मान दिया था। दार्जिलिंग आने पर इंदिराजी अपनी इस प्रिय आंटी से जरूर मिलती थीं। १९७२ में उन्हें 'ताम्रपत्र' का सम्मान और स्वतंत्र-सेनानी की पेंशन दी गई।

इस प्रकार देखा जाता है कि समूचा उत्तर-पूर्वांचल अंग्रेजों के खिलाफ लड़ा था, चाहे वे ईस्ट इंडिया कंपनी में रहे हों या ब्रिटिश शासक के रूप में हों। राष्ट्रपिता गांधीजी के नेतृत्व में विदेशी बहिष्कार, मादक-द्रव्य बहिष्कार, खादी और स्वदेशी का प्रचार, असहयोग, कानून तोड़ो, भारत-त्याग आदि आंदोलनों में संपूर्ण देश के साथ उत्तर-पूर्वांचल ने भी एकजुटता दिखाई थी। यह भी देखा जाता है कि अशिक्षित, अनपढ़ और सभ्यता से दूर दुर्गम पहाड़ों-वनांचलों में रहनेवाले स्वतंत्रता-प्रेमियों ने भी अपनी स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए जीवन की आहुति दी थी और सीमित शक्ति से ब्रिटिशों के उपनिवेश विस्तार को रोकने का प्रयास किया था। इसलिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़नेवाले हर प्रकार के विरोध को स्वतंत्रता आंदोलन के दायरे में लाने का श्रेय मिलना चाहिए।

१६, सतीर्थ पथ, मथुरा नगर
डाक : असम सचिवालय
गुवाहाटी-७८१००६ (असम)
दूरभाष : ०९८६४२-७०१२२

ओड़िशा में स्वतंत्रता संग्राम

● शंकरलाल पुरोहित

श्री जगन्नाथ का क्षेत्र राष्ट्र की धारा से कभी अलग नहीं पड़ा। जब देश में वेदों का सृजन हो रहा था तो यहाँ भी कुछ शाखाएँ रची गईं। उनमें सबसे बाद में एक शाखा मयूरभंज जिले से संग्रह कर पूना भेजी, तब संकलन पूरा हुआ, अर्थात् यह क्षेत्र भारतीय जीवन का अभिन्न अंग सदा से रहा है। यहाँ तक कि चार धाम में से एक धाम इसका महत्त्व और उजागर करता है। इसी प्रकार यहाँ पर पराधीनता के दौर युगों में आते रहे हैं। फिर कालक्रम में भारत स्वाधीन हुआ। श्री जगन्नाथ को विधर्मी आक्रमण से बचाने के लिए बार-बार उन्हें स्थानांतर किया। कभी पकड़े जाकर हाथी के पीछे बाँधकर घसीटे गए। कभी गंगातट पर विग्रहों को जलाया गया। परंतु ओड़िया जाति ने हार नहीं मानी। अंग्रेज राज आया तो सबसे पहले बंगाल और फिर सबसे अंत में ओड़िशा दखल किया गया। वह भी इस कारण कि मराठा शासकों के कारण वे दु:खी थे। अंतत: अंग्रेजों का स्वागत कर पंडों ने पुरी में उनको जगह दी। तब राजगुरु प्रधानमंत्री थे। खुर्धा के राजा मुकुंद देव भी स्वागत करनेवालों में थे। फिर वहाँ से कटक में बराबटी दुर्ग पहुँचे। लालबाग तब मराठों के अधीन था। मराठे डरकर राँची भाग गए। वहाँ भी अंग्रेजों ने पीछा किया। इस प्रकार मराठे हारकर गद्दी से हट गए। उत्तर में कलकत्ता से कैप्टन मार्टन ने हमला कर बालेश्वर पर डेरा डाला। वहाँ मराठा दुर्ग को ध्वस्त किया। सोरो पहुँच विजयी हुए। इधर कुजंग, कनिका, हरशपुर को कब्जे में किया। १९०४ के आरंभ में संबलपुर पर अधिकार किया। यानी छह महीने में ओड़िशा गोरों के अधीन हो गया।

कुछ ही दिनों में गोरों का असली रूप सामने आ गया। पुरी में जिन्होंने स्वागत किया, वे ही दुश्मन हो गए। श्रीमंदिर का संचालन अपने हाथ में ले लिया। खुर्धा राजा को कुछ वार्षिक कर देने को कहा। फलत: विद्रोह बढ़ने लगा। जयी राजगुरु ने इसका नेतृत्व लिया। श्री जगन्नाथ के विरुद्ध वे कुछ नहीं सुन सकते। सिर झुकानेवाले न थे। प्रधानमंत्री जयी राजगुरु अंग्रेजों के विरुद्ध भयंकर लड़ाई में खुर्धा पाइक सेवा ने जोर दिखाया। मगर उन्हें पीछे हटकर अन्यत्र गोपन करना पड़ा। अंग्रेजों ने कौशल से पकड़ सबके सामने जंगल में पेड़ पर फाँसी दे दी। ओड़िशा के पहले संग्राम में खुर्धा को अधिकार में कर अंग्रेजों ने खास महल पर भी अधिकार कर लिया। उधर मुकुंददेव को ३०० रुपए मासिक देकर नजरबंद रखा।

दूसरी रणहुंकार सुनाई दी १८१७ ई. में बक्सी जगबंधु विद्याधर महापात्र भ्रमरवर राय विदेशी शासक से अत्याचारित हुए। वरुणेई पहाड़

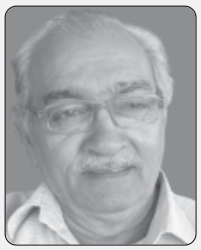

सुप्रसिद्ध लेखक एवं अनुवादक। मौलिक लेखन की कई पुस्तकें चर्चित। ओड़िया से हिंदी में और हिंदी से ओड़िया में अनुवाद कार्य। अब सौ के करीब प्रमुख कृतियाँ अनूदित। छोटे-बड़े दर्जनों पुरस्कार-सम्मानों से विभूषित। संप्रति संपादक विश्वमुक्ति (हिंदी), भगवत प्रसाद एवं गौ भारती (हिंदी)।

की तलहटी में सम्मुख युद्ध घोषणा कर दी। पाइकों को हार का सामना करना पड़ा। परंतु १८१७ में मार्च में यह पाइक विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अंग्रेजों को हराने के लिए इसमें गोप, पिपली, निमापड़ा, मरिचिपुर, हरीशपुर, कुजंग, कनिका की पाइक सेना ने जान की बाजी लगा दी। अनेक थाने एवं सरकारी कार्यालय जला दिए गए। खुर्धा में सरकारी खजाना लूटा गया। पर युद्ध कुशल अंग्रेजों के सामने ये भावप्रवण सैनिक टिक नहीं सके। सन् १८२५ में बक्सी जगबंधु ने आत्मसमर्पण किया। उन्हें नजरबंद करके रखा गया। सन् १९२९ में बक्सी जगबंधु की मृत्यु हुई। इस प्रकार पाइक विद्रोह का पूर्णत: दमन कर दिया गया; परंतु तपन बनी रही।

इधर पर्वतीय क्षेत्र दक्षिण में पारलाखेमंडी, धुमुसुर, महुरी, बढ़खेमड़ी आदि के जमींदार अंग्रेज शासन के विरुद्ध उठ खड़े हुए। दोहरा विशोयी ने विद्रोह जारी रखा। दोहरा ने धनंजय के बाद बलभद्र की मृत्यु पर एक लड़की को लड़का बना गद्दी पर बिठाना चाहा तो अंग्रेजों ने विरोध किया। दोहरा जंगलों में भाग गए। वहाँ से गोरिल्ला युद्ध चलाया। उसके भाई शाम बिशोई का लड़का चका बिशोई भी विद्रोही बना। उसने सारे राज्य में घूम-घूमकर आंदोलन से आग तेज की। अंग्रेजों ने पीछा किया तो जंगलों में छुप गए और उसे कभी पकड़ न सके।

गंजाम महुरी स्टेट के पाइकों ने अंग्रेजों के विरोध में आंदोलन किया। रानी ने लगान भेजा, जो एक शराफ के हाथों भेजा, पर समय पर नहीं जमा हुआ। फलत: १९१० में जमींदारी को नीलाम किया गया। सराफ चेलभाया ने ही ले लिया। फलत: पाइक भड़क उठे। अंग्रेजों को हरा दिया। खलिकोट में भी मुकाबला हुआ। परंतु असंगठित आंदोलन सफल नहीं होते। अंग्रेजों ने बाद में शांत किया।

इधर बाणपुर के निकट अरांगगढ़ के दल बेहरा श्यामसुंदर पाटशाणी जागीरदार थे, उन्हें अंग्रेजों ने कब्जे में किया तो उनके पुत्र कृतिवास पाटशाणी विद्रोही हो गए, अधीनता स्वीकार नहीं की। बैठक कर विद्रोह किया। उसमें कृतिवास सेनापति बने। बाणपुर के कंधों ने सहयोग किया।

जनजागरण से विद्रोह तेज हो गया। अंग्रेज बाणपुर छोड़कर चले गए। कुछ दिन बाणपुर स्वाधीन रहा। परंतु अपने ही लोगों के विश्वासघात के कारण कृतिवास पकड़े गए। अंग्रेजों ने उन्हें अंडमान भेज दिया। वहीं उनका देहांत हुआ।

चंकला के दारुठेंग के पिंडिक बहुबलेंद्र को भी षड्यंत्र कर भाँग पिला गिरफ्तार कराया। द्वीपांतर की सजा मिली, पर सागर तैरकर चले आए। दुबारा फिर जीवन भर की सजा मिली। ताशा के दलबेहरा माधवचंद्र राउतराय ने १८२७ में अंग्रेजों के विरुद्ध हुंकार दी। अंग्रेजों के अत्याचार पर पाइकों ने मिलकर अंग्रेज हटाने की शपथ ली। परंतु आत्मघाती के षड्यंत्र से गोला-बारूद अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया। प्रयास विफल हो गया। माधव की गिरफ्तारी पर हजार रुपए का ईनाम रखा। पर कोई पकड़ न सका। एक गरीब कैवर्त की मदद करने माधव ने खुर्धा आकर मजिस्ट्रेट के आगे आत्मसर्पण किया। ऐसे परोपकारी दयालु माधव को बाइज्जत रिहा कर दिया गया।

इन छुटपुट विद्रोहों से अंग्रेज हिले, पर हटे नहीं। जन आंदोलन बढ़ता ही गया। संबलपुर के राजवंशी सुरेंद्रसाय ने १८२७ में विद्रोह शुरू किया। परंतु पकड़े जाकर हजारीबाग जेल में बंदी हुए। १८ साल की सजा हुई। परंतु सिपाही विद्रोह के समय हजारीबाग जेल तोड़ गई। सारे कैदी मुक्त हुए। सुरेंद्र भी छूटकर संबलपुर आ गए। फिर उज्वल साय, उत्वल साय और पुत्र मित्रभानु साय के साथ युद्ध छेड़ा। पाँच वर्ष तक लड़ाई जारी रखी। १८६२ में आत्मसमर्पण करना पड़ा। छत्तीसगढ़ के असूरगढ़ में बंदी बनाकर रखा, जहाँ अंत तक रहे।

इसी संग्राम में प्रधान स्वाधीनता संग्राम की रानी झाँसी के पास पुरी के चाषी खुंटिया गए थे। वे भी जगन्नाथ के सेवक थे। पुरी के पंडा होने के कारण अवाध गति थी। चुपके-चुपके विद्रोह की वार्त्ता फैलाते रहे। रानी के बाद भी सदा घूमते-फिरते रहे। नेपाल भी निकल गए। खबर हो गई कि युद्ध में मारे गए। परंतु चुपचाप श्रीमंदिर में बैठ गए। पहचाने गए। अंग्रेजों ने नजरबंदी कर घर में रखा।

दक्षिण में शशिभूषण रथ ने 'आशा' अखबार इसी उद्देश्य से निकाला। मधु बाबू १९१९ में बिहार-ओड़िशा के मंत्री बने। जिला बोर्ड संचालन में स्वतंत्रता की बात मानी गई। इधर महताबजी ने कांग्रेस का संदेश प्रचार हेतु गांधी जन्मदिन पर १९२३ में प्रजातंत्र प्रकाशित किया। १९२५ में मधुबाबू के अनुरोध पर गांधी दोबारा उत्कल पधारे। मधुबाबू का टैनरी खादी केंद्र आदि देखा।

१८६७ में ओडिशा में घोर अकाल पड़ा 'न अंक दुर्भिक्ष' कहा गया। लाखों लोग भूख-प्यास से मरे, तब अंग्रेजों ने मदद की। फिर भी लाखों को बचा लिया। १८८२ में 'उत्कल सभा' बनी। इसके सदस्य राष्ट्रीय कांग्रेस में जाते रहे हैं। इसके नेता तब ओड़िशा कांग्रेस के नेता होते थे। कटक म्यूनिसिपैलिटी मैदान में १८८८ में लवण-कर विरोध सभा हुई। इसका नेतृत्व मधुसूदन दास ने लिया। लवण सत्याग्रह के ४२ वर्ष पहले ओड़िशा में आंदोलन हो चुका था। परंतु अंग्रेजों ने ओड़िशा के कुछ अंश मद्रास में, कुछ नागपुर में, कुछ बंगाल व बिहार में मिलाकर खंड-खंड कर डाले।

मधु बाबू के नेतृत्व अंग्रेजों ने ओड़िशा बंगाल के अधीन अलग राज्य बना दिया तो स्वाभिमानी ओड़िया जाति उत्तेजित हो उठी। कटक में नया संगठन 'उत्कल सम्मिलनी' के नाम से १९०३ में मधु बाबू ने बनाया, बामडा के राजा सुढलदेव पहले अध्यक्ष बने। पर अचानक देहांत होने से मयूरभंज के श्रीरामचंद्र भंज सभापति बने। ओड़िया भाषा-साहित्य के लिए काम करने का संकल्प लिया। सदस्यों में राधानाथ राय, फकीर मोहन सेनापति, गंगाधर मेहेर, नंद किशोर बल, मधुसूधन राव, गोपाल प्रहराज, विश्वनाथ कर थे। इन्होंने विछिन्नांचल को ओड़िशा में लाने का आंदोलन छेड़ा।

ओड़िशा के प्रति कांग्रेस की उदासीनता पर मधु बाबू कांग्रेस से दूर होते गए। उत्कल सम्मिलनी के आंदोलन में देसी रियासतों के जमींदार व राजा भी शामिल हुए। १९१२ में बिहार-ओड़िशा राज्य बनाया गया। पर इससे ओड़िशा की आकांक्षा अधूरी रही। इस बीच पुरी में पंडित गोपबंधु दास ने ५० सदस्यों को लेकर १९०९ में शपथ ली। आगे बढ़कर जाति को उन्नत करेंगे, स्वाधीनता संग्राम की दीक्षा ली। वहीं बकुल वन में (साक्षीगोपाल) 'वन विद्यालय' की स्थापना कर डाली। यहाँ देश और राष्ट्र भाव की शिक्षा दी जाती। गोपबंधु का प्रयास दोहरा था। संस्कार एवं शिक्षा दोनों। विछिन्नांचल के लिए उत्कल सम्मिलनी थी। ऊत्कल के लिए गोपबंधु। परंतु गंजाम को शामिल नहीं किया जा सका। पारलाखेमंडी अधिवेशन में उत्साह बढ़ गया। गोपबंधु ने 'समाज' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया।

कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में पहली बार उत्कल प्रादेशिक कांग्रेस कमिटी का गठन हुआ। यहीं पर भाषा आधारित राज्य गठन की ओड़िशा की माँग स्वीकृत हुई। गोपबंधु सत्यवादी वन विद्यालय को बंद कर पूरी तरह स्वाधीनता संग्राम एवं उत्कल गठन में जुट गए। कटक में काठजोड़ी नदी के किनारे 'स्वराज आश्रम' की स्थापना हुई। जगतसिंहपुर में गोपबंधु चौधरी और भागीरथी महापात्र ने 'अलकाश्रम' स्थापित किया। इससे विदेशी वर्जन को समर्थन मिला। संबलपुर में भी छात्रों ने लक्ष्मीनारायण मिश्र के नेतृत्व में स्कूल वर्जन का आंदोलन छेड़ा।

मार्च १९२१ में गांधीजी ने पहली बार उत्कल भ्रमण किया। पुरी, भद्रक एवं ब्रह्मपुर में सभाएँ कीं, इससे चरखा व गांधी के अहिंसा आंदोलन ने जोर पकड़ा। इसी वर्ष केंदूझर में असहयोग आंदोलन चला। जुलूस निकले, सभाएँ हुईं। कनिका रियासत में प्रजा ने आंदोलन किया। कांग्रेस का संदेश प्रचारित हुआ। कनिका में प्रजा पर अत्याचार हुए। गिरफ्तारियाँ भी हुईं। पर हाईकोर्ट ने उन्हें राजद्रोह नहीं माना। इधर अटल बिहारी आचार्य आदि नेता असहयोग में गिरफ्तार हुए। बलेश्वर में हरेकृष्ण महताब

जेल गए। निरंजन पटनायक ने लखनऊ जाकर मालवीयजी को उत्कल आकर दमन देखने का आग्रह किया।

दक्षिण में शशिभूषण रथ ने 'आशा' अखबार इसी उद्देश्य से निकाला। मधु बाबू १९१९ में बिहार-ओड़िशा के मंत्री बने। जिला बोर्ड संचालन में स्वतंत्रता की बात मानी गई। इधर महताबजी ने कांग्रेस का संदेश प्रचार हेतु गांधी जन्मदिन पर १९२३ में प्रजातंत्र प्रकाशित किया। १९२५ में मधुबाबू के अनुरोध पर गांधी दोबारा उत्कल पधारे। मधुबाबू का टैनरी खादी केंद्र आदि देखा। साथ में कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के अनुरोध पर पुरी ब्रह्मपुर भी गए। १९२७ में तीसरी बार पधारे। यह आंध्र की तरफ से हुआ खादी प्रसार मुख्य था। इस बीच १७ जून, १९२८ में अचानक गोपबंधु का देहांत हुआ।

गांधीजी ने १९३० में लवण सत्याग्रह का आह्वान किया। उत्कल प्रदेश कांग्रेस की यही में, श्रीजंग मौजा के इंचुडी ने इसकी शुरुआत की। हरेकृष्ण महताब ने नेतृत्व किया। गोपबंधु चौधरी का दल कटक से सत्याग्रह करने चला था। इसमें रमादेवी, मालती चौधरी, कोकिला देवी, चंद्रमणि देवी आदि थीं। आचार्य हरिहर सत्याग्रही दल के अग्रभाग में थे। इससे नारी समाज में नवजागरण शुरू हुआ, इसमें स्वदेशी नमक बनाते आंदोलन पर अंग्रेजों ने लाठियाँ बरसाईं। इसमें कुछ देशभक्त शहीद हुए।

फिर अस्तरंग और कुजंग में लवण सत्याग्रह चला। इसमें मालती चौधरी अग्रणी थीं। बाद में सोरण (चिलिका तट) और गंजाम में आंदोलन फैला। इसी प्रकार कटक में शराब, अफीम, गाँजा के विरुद्ध आंदोलन करने हेतु 'वानर सेना' का गठन हुआ। इसका नेतृत्व अद्वैत बल्लभ राय आदि ने लिया, जो जेल भी गए। बाद में 'समाज' के प्रसिद्ध पत्रकार बने। १९३० में कांग्रेस गैर कानूनी घोषित हो गई। राष्ट्रीयता के गीत लिखे, गिरफ्तार हुए।

पुरी में कांग्रेस अधिवेशन तय हुआ था। पर गांधी गिरफ्तार होने पर वह स्थगित हो गया। उस समय हिंदी सिखाने अनसूया प्रसाद पाठक कटक आए थे सो वहीं रह गए। प्रचार कार्य किया। उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के नाम पर संगठन खड़ा किया। कुछ समय तक उन्हें कटक से बाहर रहने का आदेश दिया। तब वे गंजाम में रहकर प्रचार-प्रसार में लगे रहे। इधर हरिहर दास और नीलकंठ दास भी गिरफ्तार हो गए। स्वराज आश्रम बंद कर दिया। कुछ दिन बाद पुन: कब्जे में आ गया। १९३२ में परलाखेमंडी महापात्र के नेतृत्व में वाइसराय लॉर्ड विलिंग्डन से मिले। समझाया तो उन्होंने ओड़िशा प्रदेश का आश्वासन दिया। १९३३ में हबाल कमिटी ने फाइनल रिपोर्ट दी। इस प्रकार पूरी प्रक्रिया के बाद १ अप्रैल, १९३७ को ओड़िशा अलग प्रदेश अस्तित्व में आ गया। तब तक मधु बाबू न थे। वे १९३४ में ही परलोक गमन कर चुके थे।

१९३६ में ओड़िशा में प्राणनाथ पटनायक भगवती पाणिग्राही एवं गुरुचरण पटनायक ने पहली बार कम्युनिस्ट पार्टी का गठन किया। कांग्रेस में वामपंथी विचारवाले लोग इधर आने लगे। कम्युनिस्ट दल मजबूत होने लगा। अलग राज्य के बाद चुनावी राजनीति चली। इसमें कुछ भाग लेने और कुछ न लेने पर अड़े थे। कांग्रेस ने भाग लिया, विजय पाई, गुजरात में हरिपुरा में कांग्रेस अधिवेशन हुआ। कटक में जनमे सुभाचंद्र बोस यहाँ पर कांग्रेस के सभापति चुन लिये गए। गांधीजी ने इस्तीफा दे दिया।

स्वाधीनता आंदोलन में देसी रियासतों का भी महत्त्व कम न था। प्रजा आंदोलन चला। प्रजा सम्मेलन का नेतृत्व सारंगधर दास ने किया। नीलगिरि कालहोर, ढैकानाल, नयागढ़, रणपुर आदि में प्रजामंडल बने। इनका सम्मेलन २ जून, १९३७ को कटक में हुआ। इसमें जनजागरण का काम हाथ में रहता।

१९३८ में कांग्रेस ने जेनापुर में कृषक सम्मेलन बुलाया। ढेंकानाल के कई लोग इसमें थे। राज्य के लोग अत्याचार-अन्याय से त्रस्त थे। आंदोलन दबाने भुवन के पास नदी पार करने पुलिस पहुँची। चारों ओर वार्त्ता फैली। आंदोलन हिंसक हुआ। ढेंकानाल राजदबार की गोली से १८ लोगों की मृत्यु हुई। अंग्रेज सेना बुलाई गई। आंदोलन दबाने के लिए भुवन के पास नदी पार करने पुलिस पहुँची। घाट (प्रचंडपुर) पर प्रजामंडल ने चौकसी बिठा दी। भोर में पुलिस ने पार करना चाहा। वहाँ ११ वर्ष का बालक बाजी राउत नाव पर था। उत्तेजित जनता और पुलिस के बीच संघर्ष हुआ। पाँच की जान गई। उसी में बाजी राउत भी शहीद हो गया। पॉलिटिकल एजेंट बेजलगेट ने कड़ा हुकम जारी किया। उसी में प्रसिद्ध कवि अनंत पटनायक भी कविता लिख शत्रु के कोपभाजन बने। तालचेर में प्रजा आंदोलन में पवित्र प्रतान ने नेतृत्व लेकर क्रांति शुरू कर दी। नीलगिरि में कैलाश महांति के नेतृत्व में चला।

नयागढ़, दसपल्ला और खंडपड़ा के देसी आंदोलन में गंगाधर पाइकराय, प्राणनाथ पटनायक आदि नेता थे। तारावणनंद नयागढ़ के नेता थे। गांगपुर में आंदोलन निर्मल मुंडा ने सँभाला; परंतु रणपुर में उत्पीड़न चरम पर था। दिवाकर पीरड़ा आदि ने माँग रखी तो राजा उग्र हो उठे। वनमाली राम जेल गए। छूटकर भी आए तो माँग फिर रखी। अब प्रजामंडल को राजा ने स्वीकृति नहीं दी। प्रजा उत्तेजित हो उठी। विराट रैली निकाली गई। महताब भी खबर पाकर आए, पर बीच में गाड़ी खराब होने से लौट गए। रात में राजा ने ओड़िशा के तत्कालीन प्रधानमंत्री विश्वनाथ दास से चर्चा की। शीघ्र पुलिस भेजने को कहा। उधर अचानक बेजलगेट वहाँ पहुँचे। सँकरे रास्ते पर आ रहे थे, लोग आहत हुए। जनता ने उत्तेजित हो पथराव किया। गुस्से में राइफल निकाल गोली चला दी। दो लोग मरे। अब गुस्सा काबू से बाहर। प्रधानमंत्री ने पुलिस भेजने का आदेश दिया, पर देर हो गई। लोग भागने लगे। गुस्से में लाठी से मार डाला। पुलिस अन्यों के साथ दिवाकर पीरडा को ले गई, उन्हें फाँसी का हुकम हुआ। रघु और दिवाकर को ४ अप्रैल, १९४१ राँची जेल में फाँसी हुई।

११ को आजीवन कारावास की सजा हुई। अंग्रेजों ने प्रजामंडल आंदोलन को बेरहमी से दबाया। पर राजा के हाथ से शक्ति ले ली गई।

अत्याचारी अमला से मुक्ति मिली। तब रणपुरवासी मुक्त हो सके। १९३९ में कांग्रेस अंतर्कलह की शिकार हो गई। विश्वनाथ दास, महताब, नीलकंठ दास सबमें मतांतर हो गया। यह खबर केंद्र में पहुँची। इन पर लगाम लगाई, तब झगड़े कुछ शांत पड़े। स्वराज आश्रम (कटक) को मुश्किल से पुन: राष्ट्रीय कार्य में लगाया।

देश के अन्य भागों की तरह उत्कल में भी कृषक, श्रमिक, युवक, छात्रों ने अगस्त क्रांति में भाग लिया था। रेवेंशा कॉलेज से शुरू कर सारे राज्य में फैला। कटक और जगतसिंहपुर के स्कूल-कॉलेजों में तीव्र था। १७ अगस्त को काइपड़ा पोस्ट ऑफिस को आग लगा दी। २६ तारीख को अन्नपूर्णा महारणा से शांति स्थापना की गई, लेकिन पुलिस ने दमन लीला शुरू कर दी। पुलिस को बाधा पहुँचाने के आरोप में ११ को गिरफ्तार किया। पुलिस ने बरी एवं आसपास के गाँवों से सैकड़ों को पकड़ लिया गया। कलामारिया में लोगों को तितर-बितर करने के लिए गोली चला दी। १९ लोग आहत हुए। अन्यत्र भी आंदोलन ने जोर पकड़ा। उसी तरह लुणिया ग्राम में भी गोली चली। नीलगिरि में गोली से दो की मृत्यु हुई। परंतु हर का गोलीकांड अत्यंत जघन्य था। वहाँ मेलन मैदान में जमा थे, सभा हुई। १९ सितंबर, १९४२ को २६ गाँव के लोग जमा थे। एक संचालन कमिटी बनी। वर्षा का मौसम। दुर्गम हो जाता है रास्ता। स्कूल-कॉलेज में हड़ताल थी। राम जमींदार की कचहरी व घर जलाया, डी.एस.पी. ने अग्रणी नेताओं को पकड़ने का आदेश दिया। पुलिस और मैदान में आमना-सामना हुआ। सामने आ रही पुलिस। भागें कहाँ? सामना हुआ। गोली चली। २६ लोग शहीद हो गए। ५६ घायल हुए। चीख-पुकार से बुरी हालत हो गई। पुलिस अत्याचार से लोग जंगल में भाग गए। यह भारत में दूसरा जलियाँवाला बाग बन गया। लोगों को घेरकर गोली चलाई। यह हीनमान्यता वाला काम था।

संबलपुर में भी अगस्त विप्लव का प्रत्यक्ष प्रभाव मिला। छात्रों ने खूब आंदोलन किया। अंत में १५ अगस्त, १९४७ को स्वाधीनता की घोषणा होने पर सारे राज्य में खुशी की लहर दौड़ गई। गाँव-गाँव, शहर-शहर सब जगह ओड़िशा में उत्साह भर गया। १५ तारीख को कैलाश नाथ काटजू को पहले गवर्नर के रूप में नियुक्त किया गया। उत्सव मुखर हो उठा। कुछ दिन बाद देशभर में हिंदू-मुसलिम दंगे भड़के। परंतु ओड़िशा में इसका ज्यादा असर नहीं हुआ। वैसे बंगाल से शरणार्थी काफी संख्या में यहाँ पहुँचे। उधर पंजाब से भी शरणार्थियों के जत्थे कटक शहर में आश्रय लेते रहे। ओड़िशा में देसी रजवाड़ों के एकत्रीकरण की बड़ी समस्या थी। सरदार पटेल ने महताबजी को इस काम में लगाया। सबने राज्य में शामिल होने के दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए। इसमें बलांगीर, पटना के देशप्राण राजा राजेंद्रनारायण सिंहदेव अग्रणी थे। अंत में मयूरभंज पारलाखेमंडी के राजा तो स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणी रहे ही। जो हो, देसी रजवाड़ों के विलय से एकीकृत मजबूत ओड़िशा निर्माण का रास्ता साफ हो गया।

परंतु ओड़िया जनता के हृदय में सीमावर्ती कुछ इलाके, जो प्रमुखत: ओड़िया भाषी थे, उनके अलग रह जाने का दु:ख-कष्ट देता रहा। ओड़िशा-बंगाल, बिहार एवं आंध्र की सीमा इसी कारण ओड़िया भाषियों के लिए अनिर्धारित बनी हुई है। उसी प्रकार राज्य के रजवाड़ों के प्रति आम जनता का प्रभाव काफी महत्त्व रखता है। श्रीजगन्नाथजी को भी बार-बार चिलिका स्थानांतरण से मुक्ति मिली। अब श्रीमंदिर में नियम बनाकर उन्हें गजपति के नियंत्रण में रखा गया। हालाँकि नीति नियामक सभा के अध्यक्ष जगद्गुरु श्रीमद् शंकराचार्य रहे। अत: यह राज्य के लिए गर्व-गौरव का विषय बना रहा। ओड़िशा इसी कारण स्नेह, मानवीयता एवं सर्व भ्रातृत्व का केंद्र बन राष्ट्र को प्रेरित करता रहा है।

एफ १०५, श्रीधर अपार्टमेंट
बालाजी कॉम्प्लेक्स, झारपड़ा
भुवनेश्वर-७५१००६ (ओड़िशा)
दूरभाष : ०९४३७६३५१९८

केदारनाथ

● **श्रीकृष्ण 'सरल'**

देश को आजाद कराने के प्रयत्नों में भारत के क्रांतिकारी विदेशों की भी खाक छानते फिर रहे थे। देश की आजादी के लिए आशा की किरण जहाँ भी उन्हें दिखाई देती, वे लाख मुसीबतें उठाकर भी वहाँ पहुँचते थे और कोई भी प्रयत्न बाकी नहीं रखते थे।

इसी प्रकार का एक क्रांतिकारी युवक केदारनाथ जर्मनी होता हुआ फारस पहुँच गया। वहाँ वह इस उम्मीद से गया था कि वह भारत में काम कर रहे अपने क्रांतिकारी साथियों से संपर्क स्थापित कर सकेगा और यदि संभव हो सका तो भारत में ब्रिटिश राज्य पर आक्रमण करने के लिए एक गुरिल्ला दल का निर्माण भी करेगा। केदारनाथ की उम्र केवल बाईस वर्ष की थी, लेकिन हौसले बहुत बुलंद थे।

केदारनाथ ने फारस में भारतीय फौज में कुछ लोगों से परिचय बढ़ाया और उनसे सामयिक सहायता का आश्वासन भी प्राप्त किया। बाद में उसने अनुभव किया कि वह गलत लोगों के चंगुल में फँस गया है। वह रेगिस्तान पार करके किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए चल दिया; लेकिन वह गिरफ्तार कर लिया गया। उसे केरमान पहुँचाया गया और ब्रिटिश फौजियों ने उसे गोलियों से भून डाला। सन् १९१७ में भारत का एक सपूत उससे बहुत दूर आजादी के प्रयत्नों में अपने जीवन का बलिदान दे गया।

गोवा का स्वतंत्रता संग्राम

● मेनिनो परस

भारत की धरती पर सबसे पहले पुर्तगालियों ने ही अपना उपनिवेश बनाया था और भारत के तटों से विदा लेनेवाले आखिरी यूरोपीय भी वही थे। स्वतंत्रता के लिए गोवा का संग्राम अब तक का सबसे व्यापक शोध अध्ययन है। यह बताता है कि कैसे गोवावासियों, देशवासियों और भारत सरकार ने शांतिपूर्ण तरीके से सभी मोर्चों पर लोहा लिया, लेकिन सुरक्षा को खतरे में पड़ता देख बल प्रयोग का रास्ता भी छोड़ा। गोवा, दमन, दीव, दादरा और नगर हवेली को आजादी दिलाने का यह एक अनोखा संग्राम था, जिसका अंतिम लक्ष्य भारत की धरती से उपनिवेशवाद को मिटा देना था।

इनकी आजादी के साथ ही भारत के स्वतंत्रता संग्राम का अध्याय समाप्त हो गया। इस प्रकार भारत में पुर्तगाली शासन के खिलाफ भारत का संघर्ष भारत की विदेश नीति के सबसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं में से एक पर पर्याप्त रोशनी डालता है और वह है उपनिवेशवाद का विरोध। यह भारत की विदेश नीति की एक परीक्षा थी, जिसमें उसने बल का प्रयोग सिर्फ तभी किया, जब उसकी संप्रभुता और सुरक्षा खतरे में पड़ी।

पहली औपनिवेशिक बस्ती

यह स्वतंत्रता संग्राम उन पुर्तगालियों के विरुद्ध था, जो भारतीय उपमहाद्वीप पर अपनी बस्तियाँ बसानेवाले पहले यूरोपीय थे। साहसी पुर्तगाली खोजकर्ता वास्कोडिगामा ने जब १४९८ में अपने पैर कालीकट बंदरगाह पर रखे, तब गोवा पर बीजापुर के आदिलशाही वंश का शासन था। गोवा पूरी दुनिया में उस समय एक बेहतरीन व्यापारिक केंद्र के रूप में मशहूर था। खूबसूरत नजारों के बीच बसा पहाड़ी इलाकेवाला गोवा १४.५३ और १५.४८ उत्तर तथा ७३.४५ और ७४.२४ पूर्व के बीच स्थित है, जिसका कुल क्षेत्रफल १३९४ वर्गमील है। इसके उत्तर में महाराष्ट्र का सावंतवाडी तालुका है, जिसे तेरेखोल नदी गोवा से अलग करती है। पूर्व दिशा में सहयाद्रि पर्वत श्रृंखला है, जो इसे बेलगाम और उत्तरी कनारा जिलों से अलग करती है तथा इसके पश्चिम में अरब सागर है।

२५ नवंबर, १५१० में अलफोंसो डी. अलबुकर्क के नेतृत्ववाला एक पुर्तगाली अभियान गोवा या इल्हास पर, जिसे अब तिसवाड़ी कहा जाता है, कब्जा जमाने में कामयाब हो गया। अगस्त १५८४ में बीजापुर राज्य के साथ होनेवाली संधि के तहत उन्हें सालसेट और बरदेज (महाल) जिलों का कब्जा मिल गया। मोरमुगाओ के साथ मिलाकर इन सभी तीन जिलों को 'ओल्ड कॉनक्वेस्ट' (वेल्हास कोंक्विस्टास) नाम

गोवा की पत्रकारिता में सुपरिचित नाम। अनेक प्रतिष्ठित पत्रों में सक्रिय रहने के बाद गोवा सरकार के पत्र सूचना कार्यालय में विभिन्न पदों पर रहे २०१२ में निदेशक, सूचना एवं जनसंपर्क के पद से सेवानिवृत्त हुए। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित कई पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति एसेंट इंडिया मीडिया नेटवर्क एंड सर्विसेज के माध्यम से मीडिया विषयक परामर्शदाता।

दिया गया। 'न्यू कॉनक्वेस्ट्स' (नोवास कोंक्विस्टास), जो उनके कब्जे में आया, उसमें बिचोलिम या भाटाग्राम (१७८१), सतारी (१७८१), पोंडा या अनत्रुज (१७६३), सानगुएम (१७६३), केपेम (१७६३), कानाकोना (१७६४) शामिल थे। परनेम जिला १७८८ में हासिल किया गया।

पुर्तगाली जब भारत आए तब उन्होंने दावा किया था कि वे ईसाइयों और मसालों की तलाश में आए हैं। फिर धीरे-धीरे उन्होंने राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया। डच और अंग्रेज, जो शुरुआत में वाणिज्यिक लाभ का उद्देश्य रखते थे, उनके उलट पुर्तगालियों ने साम्राज्य खड़ा करने, धर्म-परिवर्तन और स्थानीय महिलाओं के साथ अंतर-विवाह को बढ़ावा देकर गोवा के औपनिवेशीकरण में गहरी दिलचस्पी दिखाई। पूर्वी भारत में उन्हें अपना वर्चस्व स्थापित करने में कोई सफलता नहीं मिली, क्योंकि वहाँ उन्होंने दास बनाने और शोषण करने के साथ ही धार्मिक यातना देने की नीति अपनाई। साथ ही व्यापार में अपने यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों के साथ उन्हें अकसर लड़ाइयाँ भी लड़नी पड़ीं।

स्वतंत्र भारत की सरकार ने दुनिया भर से उपनिवेशवाद को उखाड़ फेंकने का लक्ष्य बनाया और उसी ने एशिया से पुर्तगालियों को खेदड़ने में भी एक प्रमुख भूमिका निभाई। यह एक अनोखी और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। यह भारत की विदेश नीति की सच्ची परीक्षा थी, जिसने अपनी सुरक्षा पर आँच आने तक बल प्रयोग का सहारा नहीं लिया। भारत-पुर्तगाल के कूटनीतिक संबंधों से पता चलता है कि भारत ने पुर्तगाल को उसके उपनिवेशों को छोड़कर चले जाने के लिए बार-बार समझाया।

फ्रांसीसी गरिमा के साथ पांडिचेरी को छोड़कर जा चुके थे, जबकि पुर्तगाल के खिलाफ भारत का संग्राम उसकी विदेश नीति के एक

महत्त्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डालता है और वह है, उपनिवेशवाद का विरोध। यह हर मोर्चे पर छिड़ा एक संग्राम था, जिसमें शांतिपूर्ण हथियारों के साथ ही बल प्रयोग भी किया गया।

स्थानीय लोगों का विरोध

वास्तव में गोवा में छिड़े स्वतंत्रता संग्राम से पहले स्थानीय लोगों की ओर से लगातार और स्वाभाविक विरोध किया जा रहा था। पुर्तगाली शासकों की ओर से गोवावासियों को पूरी तरह अपने नियंत्रण में लाने के लिए उठाए जानेवाले कदमों का हमेशा कड़ा विरोध किया जाता था। कोई भी कदम, जिसमें १५२६ के अधिनियम का उपयोग और परंपराओं का चार्टर शामिल था, उन्हें शांत नहीं कर सका। विरोध का यह ज्वालामुखी जब-तब यहाँ-वहाँ फूट पड़ता था, जिससे अति उत्साही पुर्तगाली गवर्नरों के शासन पर खतरा पैदा हो जाता था, जो साम्राज्य खड़ा करने और गोवा के औपनिवेशीकरण में कुछ ज्यादा ही व्यस्त थे। बरसों पहले १५५५ में ही गोवावासियों ने हद से ज्यादा भू-राजस्व लगाए जाने और वसूले जाने का विरोध किया था।

गोवा विजय यात्रा का विहंगम दृश्य

१७८७ में पिंटो लोगों की साजिश में गोवा के अनेक कैथोलिक पादरियों ने विद्रोह कर दिया, जो यूरोपीय पादरियों के लिए गिरिजाघरों के शीर्ष पदों को आरक्षित कर दिए जाने से उन पदों को नहीं पा सके और असंतोष की आग में जल रहे थे। विद्रोह के बाद उन पर यह आरोप लगाया गया कि वे एक गणतंत्र स्थापित करने की साजिश रच रहे हैं, जिसमें लोगों के एक सदन से मिली सारी शक्तियों के प्रयोग से स्थानीय लोग अपना शासन खुद चलानेवाले थे। इस उल्लेखनीय साजिश के नेता थे, पणजी के फादर केटानो फ्रांसिस कोउटो और दीवर के जोस एंटोनियो गोंजालविस।

हालाँकि सतारी के राणे लोगों का विद्रोह कहीं अधिक गौर करने लायक है। उन्होंने पुर्तगाली गढ़ों में भय का माहौल पैदा कर दिया। १७५५ से लेकर १८२२ के बीच की अवधि के दौरान पुर्तगाली शासकों से अपने अधिकारों को हासिल करने के लिए उन्होंने १४ बार विद्रोह किया। अपनी कमजोरियों का एहसास करते हुए पुर्तगालियों ने उदारता दिखाई और उनके साथ समझौता करने का प्रयास किया। लेकिन इससे राणे लोगों के अंदर जल रही आग ठंडी नहीं हुई। उन्होंने जुलाई १८२३ में एक बार फिर विद्रोह कर दिया, जब सरकार ने उन्हें कठोरता से कुचलना चाहा और सितंबर १८२४ में उससे भी बड़ा विद्रोह किया, जिसके कारण सरकार ने और भी कठोर नियंत्रण लागू कर दिया।

जनवरी १८३५ में बरनाडो पेरेस डि सिल्वा ने सर्वोच्च कार्यकारी अधिकारी का पद ग्रहण किया। इस पद को ग्रहण करनेवाले वे पहले गोवावासी थे। उन्हें प्रीफेक्ट ऑफ गोवा, दमन एंड दीव की पदवी दी गई। हालाँकि यूरोपीय निवासियों ने उन्हें १८ दिन के भीतर ही अपदस्थ कर दिया, जो उन्हें नामित किए जाने से चिढ़े हुए थे। इस बीच १८४५ से १८५१ के बीच लागू किए गए कठोर प्रतिबंधों के कारण दीपाजी राणे ने २६ जनवरी, १८५२ को एक जबरदस्त विद्रोह की योजना बनाई, जिसका मकसद नई पाबंदियों और कृषियोग्य भूमि पर लगाए जानेवाले शुल्कों का विरोध करना था। उसने नानुज के किले पर कब्जा जमा लिया और गाँव के बाहर सेना के नाके को भी अपने काबू में कर लिया। इसका अंतिम नतीजा यह निकला कि राणे लोगों को एक समझौते के तहत सारी रियायतें और अधिकार दे दिए गए। १८६९ में कुस्तोबा राणे ने खुद को एक रेप केस में फँसाए जाने से हुई नाइनसाफी के खिलाफ बगावत का झंडा बुलंद कर दिया। यह विद्रोह ३ वर्षों तक जारी रहा, जिसका समापन उनकी हत्या के साथ हुआ। १८७० में स्थानीय पुलिस के अंदर सुलग रही असंतोष की आग भड़की और उसने वोलवोई के सैन्य विद्रोह का रूप ले लिया। अगले ही साल मारसेला में स्थानीय सैन्य सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। १८९५ में दादा राणे ने ९०० सहयोगियों के साथ, जिन्हें गुरिल्ला युद्ध में महारत हासिल थी, पुर्तगालियों के खिलाफ एक बड़ा विद्रोह कर दिया। हालाँकि इसे कठोर कदमों से कुचल दिया गया और अपने समर्थकों के साथ उन्हें प्रशांत महासागर के तिमोर भेज दिया गया।

गोवा के बुद्धिजीवियों का समर्थन

इस बीच गोवा के बुद्धिजीवी फ्रांसिस्को लुइस गोम्स के भाषणों और लेखनों से प्रभावित हुए। वह १९वीं सदी के गोवा के एक सांसद थे और ब्रिटिश प्रभुत्व से भारत की आजादी की माँग करनेवाले पहले भारतीयों में से एक थे। इसके साथ ही गोवावासी धीरे-धीरे उस राजनीतिक चेतना के साथ तालमेल बिठाते चले जा रहे थे, जिसने पूरे देश को जगाने का काम किया। यह काम १८८५ में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने शुरू किया और उसे आगे भी जारी रखा। गोवा के लोग चुपचाप भारत में हो रही घटनाओं को देख रहे थे और व्यापक जनजागरण पर इस उम्मीद से नजरें गड़ाए थे कि आज नहीं तो कल, उनका भी भाग्य भारतीयों के स्वतंत्रता संग्राम के साथ जुड़ जाएगा। गोवा की आजादी का मौन संघर्ष, अब धीरे-धीरे गति पकड़ने लगा था। इसके पीछे वास्तव में दो पूरी तरह से विरोधी कारण थे। एक तरफ भारत के साथ सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक निकटता ने गोवावासियों में राष्ट्रीयता की भावना पैदा की थी। दूसरी तरफ पुर्तगाली शासन ने गोवा के लोगों में पैदा होनेवाली राष्ट्रीयता की भावना को दबाने के लिए कठोर कदम उठाना शुरू कर दिया था।

२०वीं सदी के पहले दो दशकों में लोकमान्य तिलक के 'केसरी' और 'मराठा' ने गोवा के लोगों को प्रेरित किया और जनमत को तैयार किया। उसके बाद दत्तात्रेय वेंकटेश पई के 'द हिंदू' और गोविंद पुंडालिक

हेगड़े देस्साई के 'भारत' ने जबरदस्त प्रचार छेड़ा, जिससे गोवा के जन-जन का जागरण हुआ। प्रकाशा में लुइस मेनेंजेस ब्रैगेंजा के स्तंभों ने लगातार आजादी और आत्म-निर्णय के मुद्दे को उठाया, जिसने गोवा के पढ़े-लिखे लोगों के हृदय में तूफान ला दिया और उन्होंने अपने आप को उस मानसिक दासता से मुक्त करने का प्रण किया, जिसने उन्हें बरसों से गुलाम बना रखा था। इन इलाकों पर जब औपनिवेशिक अधिनियम लागू किया गया, तब उन्होंने एक प्रस्ताव पेश किया, जिसमें लिखा था कि पुर्तगाली भारत उस अधिकार को तब तक छोड़ने के लिए तैयार नहीं, जिससे सारे लोगों को अपनी व्यक्तिगत क्षमता को पूरी तरह प्राप्त करने में मदद मिलती है, जब तक कि वे अपने भाग्य का फैसला खुद करनेवाली इकाइयों का गठन नहीं कर लेते, क्योंकि यह उनके अस्तित्व का सार और जन्मसिद्ध अधिकार है। इससे डॉ. टी.बी. कुन्हा जैसे बुद्धिजीवी युवाओं का हौसला बढ़ा और उन्हें एहसास हुआ कि गोवा के लोगों की आकांक्षाएँ उनके भारतीय बंधुओं की आकांक्षाओं जैसी ही हैं। इसके बाद १९२८ में गोवा कांग्रेस कमेटी का गठन हुआ, जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ उसके कलकत्ता सत्र में संबद्ध कर दिया गया।

डॉ. लोहिया के असाधारण प्रयास से वर्धा में कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने पुर्तगाली सरकार की मनमानी की निंदा करने और गोवा के लोगों की ओर से अपनी नागरिक स्वतंत्रता की बहाली के लिए जारी संघर्ष को समर्थन देने वाला प्रस्ताव पारित किया गया। लेकिन पुर्तगाली शासकों ने समय के संकेतों को समझने से इनकार कर दिया और सविनय अवज्ञा आंदोलन को सड़कछाप आंदोलन करार दिया।

१८ जून की क्रांति

सतारी के राणे लोगों के असफल विद्रोहों के अलावा पुर्तगालियों को वास्तव में तब तक कोई बड़ी चुनौती का सामना नहीं करना पड़ा, जब तक कि डॉ. राम मनोहर लोहिया ने १८ जून, १९४६ में स्वतंत्रता संग्राम के आखिरी चरण की मशाल नहीं जला दी। गोवा के इतिहास के पन्नों में वह दिन यादगार है, जब उन्होंने सरकारी आदेशों का खुला विरोध करते हुए मरगाँव में सार्वजनिक सभा की, जिसमें उस जिले के प्रशासक और कैप्टन फॉरचुनाटो मिरांडा को खूब भला-बुरा कहा। जिसके कुछ ही देर बाद उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। डॉ. लोहिया ने कहा कि दशकों से एक साजिश चल रही है, जिससे गोवा को साम्राज्यवादी सुरक्षा के एक द्वीप के रूप में बदलने की कोशिश हो रही है,

जहाँ कानून बौना साबित हो रहा है। गोवा में सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत करते हुए डॉ. लोहिया ने खुलकर अपनी भावनाओं को जाहिर किया। गोवा के लोगों को लिखे एक खुले पत्र में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि इस आंदोलन का मकसद नागरिक स्वतंत्रता हासिल करना है, लेकिन जिन उपायों को अपनाया गया, उनमें जन-जागरण और ऐसी काररवाई शामिल थी, जो हिंसक विद्रोह से एक कदम पीछे थी। उन्होंने यह सुझाव दिया अपने समाधान के लिए—दिल्ली की ओर मत देखो, यू.एन.ओ. की तरफ मत देखो, तुम्हारी स्वतंत्रता तुम्हारे ही हाथों में है। वह पहले भारतीय नेता थे, जिन्होंने गोवा की धरती पर यह कहा कि गोवा भारत का हिस्सा है और उसका एकीकरण उसी के साथ होना चाहिए। वही थे, जिन्होंने भारतवासियों का आह्वान किया कि वे गोवा के भाइयों की स्वतंत्रता की लड़ाई में मदद करें। लोहिया के साहसी कार्य और शब्दों ने प्रत्येक भारतीय के मन पर एक गहरी छाप छोड़ी। महात्मा गांधी ने ३० जून, १९४६ को अपने 'हरिजन' में लिखा, 'डॉ. लोहिया ने नागरिक स्वतंत्रता के क्रम में सेवा दी है, विशेष रूप से गोवा के लोगों के मामले में। छोटी सी पुर्तगाली बस्ती, जो महज ब्रिटिश सरकार की सहनशीलता के भरोसे है। वह उसके बुरे बरताव की नकल करने की हिम्मत नहीं कर सकती।' डॉ. लोहिया के असाधारण प्रयास से वर्धा में कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने पुर्तगाली सरकार की मनमानी की निंदा करने और गोवा के लोगों की ओर से अपनी नागरिक स्वतंत्रता की बहाली के लिए जारी संघर्ष को समर्थन देने वाला प्रस्ताव पारित किया गया। लेकिन पुर्तगाली शासकों ने समय के संकेतों को समझने से इनकार कर दिया और सविनय अवज्ञा आंदोलन को सड़कछाप आंदोलन करार दिया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन ने गोवावालों में निर्भय होने की भावना पैदा की और उनकी नैतिकता को मजबूत किया, जिससे गोवा के अनेक देशभक्त जो गोवा में थे, वे वहीं स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े और जो आत्म-निर्वासन में बाहर थे, वे भी शामिल हो गए। इससे सारे राजनीतिक समूहों और राष्ट्रवादियों में एक बिजली दौड़ गई और वे राष्ट्रीय कांग्रेस (गोवा) के बैनर तले इकट्ठा हो गए, जिसका गठन १७-१८ अगस्त, १९४६ में लोंडा की ऐतिहासिक सभा में किया गया था। राष्ट्रीय कांग्रेस (गोवा) प्रमुख राजनीतिक दल था, जो एक बरगद के पेड़ के समान था, जिसके नीचे सारी विचारधाराओं और रंगोंवाले राजनीतिक कार्यकर्ता एकजुट हुए और कभी-कभी अलग भी हुए, लेकिन ऐसा योगदान दिया, जो किसी मायने में कम नहीं था। लंबे समय तक चले संघर्ष में अनेक देशभक्तों ने स्वतंत्रता की वेदी पर हँसते-हँसते अपने बेशकीमती प्राण न्योछावर कर दिए। उनमें से कुछ को पुर्तगाल, अंगोला और काबो वेर्दे भेज दिया गया, जहाँ वे बरसों तक कैद रहे। उनमें से सैकड़ों को जेल में डाला गया और अमानवीय यातनाएँ दी गईं।

संगठनों का समर्थन

१९४६-४७ में सविनय अवज्ञा आंदोलन के नेताओं की गिरफ्तारी के बाद गोवा में एक सन्नाटा फैल गया और काररवाई के केंद्र गोवा के बाहर चले गए। हालाँकि जुलाई-अगस्त १९५४ में दादर और नगर हवेली की आजादी के साथ ही इस आंदोलन को एक नई ताकत मिली। राष्ट्रीय कांग्रेस (गोवा) ने १९५४ में और गोवा विमोजन सहायक समिति ने १९५५ में एक विशाल सत्याग्रह आंदोलन छेड़ा। पुर्तगालियों ने इस आंदोलन को बर्बरता से कुचल दिया। आजाद गोमांतक दल, द फ्रांटे पैट्रियॉटिका, द यूनाइटेड फ्रंट ऑफ गोअंस, द गोअन पीपुल्स पार्टी, द गोवा लिबरेशन आर्मी और क्विट गोवा ऑर्गनाइजेशन ने साहस, जोखिम

और निडरता से अपनी लड़ाई लड़ी और पुर्तगाली शासकों की नींद हराम कर दी।

१९५६ के आखिर तक जब गोवा में गतिरोध बना रहा, तब ध्यान संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर गया, जहाँ भारत ने पुरजोर तरीके से यह कहा कि गोवा एक स्पष्ट औपनिवेशिक समस्या है और सोवियत संघ तथा अन्य साम्यवादी देशों के पूर्ण समर्थन के साथ ही अफ्रीका तथा पश्चिमी एशिया के स्वतंत्रता प्रेमी देशों का समर्थन जुटाया। हेग की अदालत में पुर्तगालियों के खिलाफ दादर और नगर हवेली के मामले में मार्ग का अधिकार हासिल करने को लेकर मिली सफलता से उत्साहित होकर, साथ ही देश के लोगों के जबरदस्त दबाव के चलते, आजाद भारत के पहले प्रधानमंत्री, पंडित जवाहरलाल नेहरू को गोवा, दमन और दीव को आजाद कराने के लिए ऑपरेशन 'विजय' का सहारा लेना पड़ा। इस प्रकार वे ४५१ साल के पुर्तगाली अधीनता से आजाद हुए, जिससे भारतीय धरती से उपनिवेशवाद की आखिरी बेड़ियाँ भी टूट गईं।

विजयी स्वतंत्रता सेनानियों के स्वागत में उमड़ा जन-समूह

ऑपरेशन विजय

भारत सरकार ने पुर्तगाली बस्तियों को आजाद कराने के लिए 'ऑपरेशन विजय' की योजना बनाई। भारतीय सशस्त्र बलों के तीनों अंगों ने इन अभियानों में हिस्सा लिया। १९ दिसंबर, १९६१ को ऑपरेशन विजय में शामिल भारतीय सुरक्षा बल के जवान सफलतापूर्वक एक दिन पहले ही सुबह ७:३० बजे पंजिम पहुँच गए थे। ऐसे सैनिक, जिन्होंने राजधानी तक बनस्तारिम के रास्ते जाने का प्रयास किया, उन्होंने नदी को तैरकर पार किया और सुबह ८:३० बजे पंजिम पहुँच गए। मेजर जनरल के.बी. कैंडेथ ने सुबह १० बजे वहाँ भारतीय राष्ट्र ध्वज फहरा दिया।

गोवा में सारे अभियान १९ दिसंबर, १९६१ की शाम ६ बजे थम गए। पुर्तगाली गवर्नर सालो डी सिल्वा के औपचारिक सरेंडर से जुड़े सारे इंतजाम किए गए। शाम ७:३० बजे वास्कोडिगामा सड़क पर पुर्तगाली गवर्नर जनरल की कार की हेडलाइट की रोशनी में सरेंडर के दस्तावेज पर दस्तखत किए गए और उन्हें ब्रिगेडियर के.एस. ढिल्लों को सौंप दिया गया। मेजर जनरल के.पी. कैंडेथ को गोवा का सैन्य गवर्नर नियुक्त किया गया। इस प्रकार ऑपरेशन शुरू होने के ४० घंटे के भीतर भारतीय सेना ने सफलतापूर्वक ऑपरेशन विजय को परिणिति तक पहुँचाया। इसके साथ ही गोवा पर विदेशी प्रभुत्व का भी अंत हो गया।

१८३०/८ श्रीस्थल, ब्रिटेनिया हाउस के पीछे, हालिवाडा रोड,
ऐल्टो पोरवोरिम, बरडेज, गोवा-४०३५२१
दूरभाष : ९८२३१५६४००

वजीरचंद

● **श्रीकृष्ण 'सरल'**

पंजाब की नौजवान भारत सभा विद्रोही युवकों का ही एक संगठन था, जो सरदार भगतसिंह और उनके साथियों द्वारा इसलिए खड़ा किया गया था, जिससे क्रांतिकारियों को आवश्यकता के समय विश्वसनीय सदस्य मिलते रहें। वह एक खुला संगठन था, जो गोपनीय रूप से क्रांतिकारियों की सभी प्रकार से सहायता करता रहता था।

जब लाहौर षड्यंत्र केस के अंतर्गत भगतसिंह और उनके साथी क्रांतिकारियों को जेल में बंद कर दिया गया और उनको भयंकर यातनाएँ दी जाने लगीं तो नौजवान भारत सभा के सदस्यों पर भी इसकी प्रतिक्रिया हुई। उसका एक सदस्य वजीरचंद पुलिस से इन अत्याचारों का बदला लेने की योजना बनाने लगा।

वजीरचंद को यह धुन सवार हुई कि वह बम बनाए और पुलिसवालों से बदला ले। बगैर किसीसे सीखे गए, अपने मामूली ज्ञान के आधार पर ही वह बम बनाने के काम में जुट गया।

एक दिन २६ मई, १९३० को लोगों ने उसके मकान में बड़े जोरों का धमाका सुना और यह देखने के लिए वे दौड़ पड़े कि क्या हुआ? लोगों ने देखा कि वजीरचंद के दोनों हाथ उड़ गए हैं और वह खून से लथपथ बेहोश पड़ा है।

घटना की सूचना पाकर पुलिस भी वहाँ पहुँच गई। घायल वजीरचंद को अस्पताल में भरती किया गया और उसकी इतनी गंभीर घायल अवस्था में भी, इस भय से कि वह कहीं भाग न जाए, पाँच सशस्त्र सिपाही उसके पलंग के पास खड़े किए गए।

वजीरचंद भी किसीसे कम नहीं था। इतने कड़े पहरे की अवहेलना करके वह २७ मई, १९३० की सुबह इस प्रकार चला गया कि पुलिस के हाथ उसका निर्जीव शव ही लगा।

जब कश्मीर ने जिन्ना को खाली हाथ लौटाया

● जवाहरलाल कौल

७ नवंबर, १९४७ जब भारत को आजाद हुए दो महीने भी नहीं हुए थे, देश के अन्य भागों में लोग उल्लास के साथ तिरंगा फहरा रहे थे, कश्मीर के बारामूला कस्बे में लोग आतंक और शर्म के साथ एक नौजवान को सूली पर चढ़ते देख रहे थे। इसी कस्बे के युवा मकबूल शेरवानी को कबाइलियों ने सूली पर चढ़ाने का दंड दिया था। कबाइलियों के सरगना ने, जिसे वे अमीर कहते थे, मकबूल से कहा कि तुम एक होशियार युवक हो। हम तुम्हें माफ कर सकते हैं, अगर तुम हमारा साथ दो। तुम्हारा नसीब बदल जाएगा। तुम्हें बस इतना करना है कि आज के बाद हमारा असली मार्ग-दर्शक बनना है और हमें बताना है कि रियासत की सेना तथा भारतीय सेना कहाँ-कहाँ पर तैनात है और उनकी संख्या कितनी है। लेकिन मकबूल ने कहा कि यह मेरे सिद्धांतों के विपरीत है। मैं अपने देश पर हमला करनेवाले लोगों का साथ कदापि नहीं दे सकता और अपने देश से दगा करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। अमीर ने गुस्से में एक परची पर लिख दिया कि इस सिरफिरे युवक को सूली पर लटकाओ। उसे लकड़ी के सलीब पर चढ़ाया गया। अमीर ने आज्ञा दी थी कि मकबूल के कानों को पीछे की ओर बाँध दो और सिर को कीलों से सीधा कर लो, ताकि वह सिर न झुका सके और लोग उसके चहरे पर खौफ देख सकें। फिर आज्ञा हुई 'फायर!' मकबूल के शरीर में चौदह गोलियाँ दागी गईं और उसकी लाश उसी तरह सूली पर तीन दिन तक लटकी रही, जब तक कि सेना ने कस्बे पर अधिकार न कर लिया।

देश के दुश्मनों के सामने मकबूल के गुनाहों की सूची बहुत लंबी थी। उसके गुनाहों का सिलसिला तो बरसों पहले तब आरंभ हुआ था, जब उसकी मूँछें भी नहीं आई थीं। वह लगभग सोलह साल का था। यह होनहार लड़का उसी दौरान नेशनल कॉन्फ्रेंस में शामिल हो गया था जब मोहम्मद अली जिन्ना देश को बाँटने के लिए देश के विभिन्न नगरों में प्रचार कर रहे थे। शेख अब्दुल्ला ने दो राष्ट्रों के सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया था। मोहम्मद अली जिन्ना श्रीनगर से निराश जब बारामूला पहुँचे तो वहाँ युवकों की एक टोली मकबूल शेरवानी के नेतृत्व में तैयार खड़ी थी। उन्होंने जिन्ना को वापस जाने को कहा और उसे बोलने नहीं दिया। जिन्ना क्रोध में बुदबुदाते हुए वहाँ से चल दिए। मकबूल और उनके साथी देश के बँटवारे के विरुद्ध तो थे ही, वे किसी भी हालत में जम्मू-कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाए जाने के प्रयासों का साथ नहीं दे सकते थे। इसलिए जब कश्मीर में समर्थन न मिलने से जिन्ना कुपित होकर चले गए तो कश्मीर को बलात् हथियाने की योजना बनाई गई।

सुपरिचित लेखक-अध्यापक। हिंदुस्थान समाचार के श्री बालेश्वर अग्रवाल ने अपनी समाचार समिति में उन्हें एक प्रशिक्षु पत्रकार रख लिया। अगले वर्ष अज्ञेयजी ने अपने नए प्रयोग 'दिनमान' के लिए उन्हें चुना। दो दशक तक 'दिनमान' के साथ काम करने के पश्चात् 'जनसत्ता' दैनिक में श्री प्रभाष जोशी के सहयोगी बने। २०१६ में 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया।

१९४४ से ही इस योजना पर काम चल रहा था। जब शेख अब्दुल्ला, महाराजा हरिसिंह और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू अपने अहंकार के चक्रव्यूह में बुरी तरह उलझ गए थे, उसी समय सीमाप्रांत के कबाइलियों को लामबद्ध किया जा रहा था और इस्लामाबाद की सैनिक छावनी को कश्मीर पर हमला करने के लिए तैयार किया जा रहा था। जब हमला हुआ तो सभी बेखबर थे। आनन-फानन में कबाइली सीमा पार करके बारामूला के पास आ पहुँचे। शेरवानी को लगा कि अगर कबाइली भारतीय सेना के आने से पहले श्रीनगर पर कब्जा करने में सफल रहे तो फिर कश्मीर को बचाना संभव नहीं होगा। उसने बहुत ही जोखिम भरा कदम उठाया। वह कबाइलियों का मार्गदर्शक बन गया। कई दिन तक वह उन्हें गाँव-गाँव में घुमाता रहा, ताकि भारतीय सेनाओं को मोर्चा सँभालने का मौका मिले। ये दो दिन जम्मू-कश्मीर और भारत के लिए ऐतिहासिक दिन थे। सेना श्रीनगर पहुँच गई और श्रीनगर से चंद मील दूर शालटेंग पर कबाइलियों को घेर लिया। मकबूल शेरवानी नहीं जानता था कि उसकी कुर्बानी के बावजूद कुछ ही मील आगे जाकर भारत हमलावरों के साथ युद्धविराम करेगा और जिस समस्या को कुछ दिनों में हल किया जा सकता था, वह दशकों तक अनसुलझी ही रहेगी। कितने ही युवा मकबूल की ही तरह भारत में ही जिए और उसी के लिए मरे। आजाद भारत की राजनीति में उनके अप्रासंगिक बनने का खतरा तो बना ही रहेगा।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में जम्मू और कश्मीर की भूमिका के दो पहलू हैं। महाराजा हरिसिंह यह समझ रहे थे कि देर-सवेर भारत अंग्रेजों के शासन से मुक्त होगा। उस समय यह प्रश्न उनके सामने खड़ा होगा ही कि जम्मू-कश्मीर राज्य कहा जाएगा। उनके सामने कई विकल्प खुले थे। सबसे आसान विकल्प यह था कि वे अंग्रेजों को कश्मीर को स्वतंत्र देश बनाने का सुझाव देते। अंग्रेजों को अपनी भावी समरनीति के लिए कश्मीर की आवश्यकता महसूस हो रही थी। आजादी के साथ ही जो समझौता उन्होंने महाराजा के साथ किया था, वह गिलगित समझौता

अपने आप समाप्त हो जानेवाला था। इसके बाद कश्मीर के सामरिक महत्त्व के ये इलाके या तो प्रस्ताविक भारत के पास रहते या पाकिस्तान के पास जाते। उस समय यह रियासत अफगानिस्तान तक फैली थी। यानी सोवियत संघ के लिए अफगानिस्तान के मार्ग से एशिया पर अपना अधिकार जमाने का रास्ता कश्मीर से ही होकर जाता था। कश्मीर को अपने कब्जे में करने से ही उस मार्ग को अवरुद्ध किया जा सकता था। इसके लिए सबसे उपयुक्त नीति तो यही थी कि कश्मीर को भारत और पाकिस्तान दोनों के अधिकार से बाहर रखा जाए। यह तभी हो सकता था, जब महाराजा और अंग्रेजों के बीच कोई गुप्त समझौता हो जाए, जिसके अनुसार कश्मीर रियासत स्वतंत्र रहे और उसका ब्रिटिश साम्राज्य के साथ सैनिक समझौता हो। दूसरे शब्दों में, पूरे जम्मू-कश्मीर पर वैसा ही समझौता हो जैसा गिलगित एजेंसी पर हुआ था। असैनिक मामलों में राजा शासन चलाए और सैनिक मामलों में ब्रिटेन।

लेकिन महाराजा को यह स्वीकार नहीं था। कुछ समय पहले ब्रिटिश सरकार ने देसी राजाओं की बैठक बुलाई थी। उसमें महाराजा हरि सिंह ने एक ऐसा बयान दिया था, जिस से अंग्रेज चौंक गए। तब तक किसी देसी राजा को अंग्रेज बहादुर का विरोध करने का साहस नहीं हुआ था। लेकिन हरि सिंह ने सबके सामने अंगेजी शासकों को बताया कि हम देसी रियासतों को भी अंग्रेजों के जाने के बाद विशाल भारत की सांस्कृतिक सीमाओं के बीच ही कोई-न-कोई व्यवस्था करनी होगी और उसी के आधार पर हम भी कॉमनवेल्थ के बराबर के सदस्य होंगे। मतलब यह था कि देसी रियासतें विशाल भारत के भाग हैं और उसी के हितों के अनुरूप आगे की काररवाई हो सकती है, उससे अलग नहीं। अंग्रेज जिस योजना पर विचार कर रहे थे, उसको सिरे से नकारने का यह सार्वजनिक प्रयास था। इसलिए महाराजा ब्रिटिश शासकों के लिए संदिग्ध बन गए। राजा हरि सिंह को अंदाजा था कि ब्रिटिश सुरक्षा के नाम पर रियासत को अपने ही अधिकार में रखने की चाल चल रहे हैं। गिलगित समझौता करके वे भुगत भी रहे थे। इसलिए अंग्रेजों ने कश्मीर को भारत से अलग रखने की कूटनीति का दुराचरण चालू कर दिया। अगर कश्मीर पर सीधे सैनिक दखल संभव नहीं तो उसे पाकिस्तान को सौंपने की व्यवस्था की जाए। उन्हें इस बात का विश्वास था कि भारत की दुश्मनी के जुनून में पाकिस्तान अंग्रेजों की कोई भी बात मानने को तैयार हो जाएगा। उन्होंने महाराजा के विरुद्ध बगावत को शह देना आरंभ कर दिया। इसके लिए उनकी नजर शेख मोहम्मद अब्दुल्ला पर पड़ी, जो ताजा-ताजा अलीगढ़ से शिक्षा पाकर कश्मीर आए थे। तुर्की में खिलाफत आंदोलन का समर्थन करनेवाले मुसलिम नौजवानों में वे भी थे, लेकिन गांधीजी के समर्थन के बावजूद जब खिलाफत आंदोलन असफल हो गया तो निराश मुसलमान नेतृत्व बँट गया। अधिकतर मुसलमान कांग्रेस से अलग हो गए और अलग मुसलिम देश बनाने की वकालत करने लगे। मोहम्मद अली जिन्ना इस वर्ग के सबसे बड़े नेता थे।

कोई नहीं जानता कि जिन्ना कितनी बार कश्मीर आए। उनकी कश्मीर में रुचि केवल उसकी सुंदरता के कारण नहीं थी, अपितु उसकी सामरिक शक्ति भी कारण थी। भावी पाकिस्तान के लिए कश्मीर मध्य एशिया और पश्चिम एशिया के मुसलिम देशों के साथ एक व्यापक मुसलिम गठबंधन बनाने में महत्त्वपूर्ण भमिका निभा सकता था। कथित आजाद कश्मीर सरकार में पहले मुख्य न्यायाधीश जस्टिस सराफ के अनुसार जिन्ना पहली बार कश्मीर १९२८ में आए। सराफ उस समय कश्मीर में ही शेख अब्दुल्ला के प्रमुख कार्यकर्ताओं में माने जाते थे।

कोई नहीं जानता कि जिन्ना कितनी बार कश्मीर आए। उनकी कश्मीर में रुचि केवल उसकी सुंदरता के कारण नहीं थी, अपितु उसकी सामरिक शक्ति भी कारण थी। भावी पाकिस्तान के लिए कश्मीर मध्य एशिया और पश्चिम एशिया के मुसलिम देशों के साथ एक व्यापक मुसलिम गठबंधन बनाने में महत्त्वपूर्ण भमिका निभा सकता था। कथित आजाद कश्मीर सरकार में पहले मुख्य न्यायाधीश जस्टिस सराफ के अनुसार जिन्ना पहली बार कश्मीर १९२८ में आए। सराफ उस समय कश्मीर में ही शेख अब्दुल्ला के प्रमुख कार्यकर्ताओं में माने जाते थे। वे सीमापार भाग जाने से पहले नेशनल कॉन्फ्रेंस के महामंत्री भी बन गए थे। उनके अनुसार जिन्ना कथित रूप से सैर-सपाटे के लिए ही आए थे और कुछ समय निशात के पास एक बँगले में ठहरे थे तो कुछ समय एक हाउसबोट में। लेकिन शेख अब्दुल्ला और चौधरी अब्बास, दोनों उनसे मिलने गए। लेकिन अपनी इस निजी यात्रा में भी जिन्ना ने साफ कर दिया कि वे अलग मुसलिम देश की वकालत करते हैं। उन्होंने सार्वजनिक तौर पर बोलने का निमंत्रण केवल मुसलिम कॉन्फ्रेंस के कारण स्वीकार किया है। वे शेख अब्दुल्ला के बदले चौधरी अब्बास को ही मुसलमानों का प्रतिनिधि नेता मानते थे, क्योंकि वे बिना किसी आनाकानी के जिन्ना के विचारों के हिमायती थे। यह बात उनके अगले दौरे से साफ हो गई थी, फिर भी शेख अब्दुल्ला जिन्ना से कोई टकराव नहीं चाहते थे। उनके सामने भारत की आजादी के अतिरिक्त कश्मीर में राज्यशाही को समाप्त करने का भी एजेंडा था। उनको लगता था कि जिन्ना से झगड़ा मोल लेने से वे राजा के साथ कोई समझौता करके उनके रियासती आंदोलन को ही कमजोर करवा देंगे। जिन्ना कश्मीरी मुसलमानों को बाँटने की क्षमता रखते थे। इसलिए जब शेख अब्दुल्ला की कांग्रेस के राष्ट्रीय नेताओं से बातचीत हुई, तब तक यह स्पष्ट हो चुका था कि देश बँट जाएगा और पाकिस्तान नाम का मुसलिम देश बनेगा। जिन्ना की भूमिका भी साफ हो चुकी थी।

सन् १९३९ में शेख अब्दुल्ला ने अपना रास्ता भी तय कर लिया। उन्होंने मुसलिम कॉन्फ्रेंस को बदलकर 'नेशनल कॉन्फ्रेंस' बना दिया। साफ है कि इसमें अब्बास और मीरवाइज यूसुफ शाह जैसे लोगों के लिए जगह नहीं थी, जो पहले मुसलिम कॉन्फ्रेंस में महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन थे। इसका मुख्य कारण यह था कि यद्यपि अलग मुसलिम देश की भावना का असर पड़ रहा था, जिनमें अब्दुल्ला भी एक था, लेकिन

धीरे-धीरे बहुत से मुसलिम युवकों को भी यह लगने लगा था कि इसके पीछे अंग्रेजों की ही चाल है और वे इस अतिवाद से हटने लगे। चौधरी अब्बास के नेतृत्व में जम्मू-कश्मीर में मुसलिम कॉन्फ्रेंस स्थापित हो गई थी। लेकिन इसके पीछे पंजाब में सक्रिय मुसलिम लीग और अहरार पार्टी थी, जो सुन्नी मुसलमानों की उग्रवादियों की पार्टी थी। एक 'कश्मीर समिति' का गठन लाहौर में हुआ था। कश्मीर समिति दरअसल जिन्ना के दोस्त सर मोहम्मद इकबाल और अहमदिया संप्रदाय के अध्यक्ष के नेतृत्व में बनी थी, जिसे ब्रिटिश सरकार का समर्थन प्राप्त था। शेख मोहम्मद अब्दुल्ला आरंभ में इनके झाँसे में आ गए और कश्मीर में भी मुसलिम कॉन्फ्रेंस नामक राजनीतिक पार्टी बना डाली। स्पष्ट था कि इसके गठन में चौधरी अब्बास की ही योजना थी और वही पार्टी के अध्यक्ष बन जाते। इस बीच देश के बँटवारे की योजना तैयार हो चुकी थी। मोहम्मद अली जिन्ना मुसलमानों के सबसे बड़े नेता के रूप में सामने आ गए थे। वे अपने अलग देश के प्रस्ताव के बारे में हर रियासत में जा-जाकर निश्चित कर रहे थे कि पाकिस्तान के पक्ष में अधिक-से-अधिक लोग जुट जाएँ। कश्मीर पहले से ही उनके नक्शे में शामिल था। इसलिए वे कश्मीर भी आए। जम्मू में उनका भव्य स्वागत हुआ। चौधरी अब्बास ने पूरा जोर लगाया था कि भारी भीड़ जुटे। इसके लिए लाहौर और सियालकोट से भी हजारों समर्थक बुलाए गए थे। हालाँकि इसमें कश्मीर से अफजल बेग और बक्शी गुलाम मोहम्मद भी शामिल हुए, लेकिन दोनों नेताओं को महसूस हुआ कि अब्बास अपने आप को जम्मू-कश्मीर के सभी मुसलमानों का एक मात्र नेता घोषित कर रहा है। इसलिए जब जिन्ना श्रीनगर पहुँचे तो शेख ने भी अपनी ताकत दिखाई। यह साबित कर दिया कि रियासत का मुसलिम नेता अब्बास नहीं, शेख अब्दुल्ला ही है। स्वागत के बावजूद शेख अब्दुल्ला को महसूस होने लगा कि जिन्ना की बातें न तो व्यावहारिक हैं और न भारत के मुसलमानों के हित में। उनके मन में विचार-मंथन होने लगा। वे जिन्ना का विकल्प खोजने लगे थे, जो उन्हें पहले ही मिल गया था। मुसलिम कॉन्फ्रेंस से नेशनल कॉन्फ्रेंस का जन्म दरअसल इसी एहसास के कारण हुआ कि कश्मीर की आजादी बिना भारत की आजादी के संभव नहीं और वह केवल गैर-सांप्रदायिक आधार पर ही हो सकती है।

सन् १९४४ में जब जिन्ना फिर कश्मीर आए तो इस बार उनके पास एक मिशन था—कश्मीर को पाकिस्तान के पक्ष में मोड़ना। यह या तो शेख अब्दुल्ला को सहमत कराने से हो सकता था या राजा हरि सिंह को। शेख के बारे में वे जान गए थे कि जम्मू-कश्मीर में न तो चौधरी अब्बास मुसलमानों के नेता हैं और न ही मीरवाइज यूसुफ शाह। और राजा की सहमति का प्रावधान तो दोनों देशों के बीच विभाजन के समझौते में ही था। रियासतों को यह अधिकार दिया गया था कि वे या तो भारत के साथ जाएँ या पाकिस्तान के साथ। यह तय करने का अधिकार रियासत के राजा को ही दिया गया था। इसलिए अगर राजा हरि सिंह चाहते तो जिन्ना की बात मानकर जम्मू-कश्मीर को पाकिस्तान में मिला लेते। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, उन्हें करना होता तो पहले ही अंग्रेजों के साथ पंगा नहीं लेते। शेख अब्दुल्ला तो उसी समय जिन्ना की चाल समझ गए थे, जबकि श्रीनगर के प्रताप पार्क में नेशनल कॉन्फ्रेंस द्वारा स्वागत करने के बाद उन्होंने जामा मसजिद के आयोजन में कह दिया कि ९९ प्रतिशत मुसलमान मुसलिम कॉन्फ्रेंस को ही पसंद करते हैं। हालाँकि शेख अब्दुल्ला ने मुसलिम कॉन्फ्रेंस को भंग करके नेशनल कॉन्फ्रेंस बना ली थी, फिर भी चौधरी अब्बास और यूसुफ शाह ने मुसलिम कॉन्फ्रेंस को पुनर्जीवित कर दिया था। शेख के लिए समय आ गया था कि वे जिन्ना के रास्ते को अलविदा कहें। पूरी रियासत में जिन्ना के बयानों की निंदा होने लगी। वापसी पर बारामूला में स्थानीय मुसलिम लीगियों ने उनके स्वागत की व्यवस्था की थी। लेकिन कुछ युवकों ने वह होने नहीं दिया। उन्होंने जिन्ना को बिना बोले वापस जाने पर मजबूर कर दिया। कुछ लोगों का तो यह भी कहना है कि उन्होंने जिन्ना के लिए जूतों की माला भी बना ली थी। इन नौजवानों के नेता थे मकबूल शेरवानी।

इस अंक के चित्रकार

संदीप राशिनकर

जाने-माने लेखक एवं चित्रकार। कई अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में चित्रों का चयन व प्रदर्शन। राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में हजारों चित्रों/रेखांकनों का प्रकाशन, अनेक प्रतिष्ठित प्रकाशनों की पुस्तकों के आवरण।

भित्ति चित्रों (म्यूरल्स) के क्षेत्र में अनेक स्थानों/प्रतिष्ठानों पर भव्य म्यूरल्स का सृजन एवं अभिनव प्रयोगों से इस शैली में प्रतिष्ठित कार्य।

कविताओं के अलावा कला एवं साहित्य-संस्कृति पर समीक्षात्मक लेखन/प्रकाशन।

संपर्क : ११-बी, राजेंद्र नगर, इंदौर-४५२०१२
दूरभाष : ९४२५३१४४२२

३०१, रामा अपार्टमेंट, सेक्टर-११, द्वारका, नई दिल्ली-११००७५
दूरभाष : ९७११३६१९३७

आलेख

१८५७ से १९४७ : गुजरात में स्वतंत्रता संग्राम

● किशोर मकवाणा

भारत एक हजार साल तक विदेशी हमलावरों का शिकार बना, गुलामी की जंजीरों मे जकड़ा रहा। राष्ट्र को इस विदेशी दासता से मुक्त करने के लिए राजा दाहिर-पृथ्वीराज चौहान से लेकर महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी महाराज जैसे अनेक देशभक्त योद्धाओं ने प्रयास किया, मगर संगठित सशक्त प्रयत्न १८५७ से प्रारंभ हुए, जिससे समूचा राष्ट्र उद्वेलित हुआ। इस भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में 'सशस्त्र क्रांति' की धारा चल रह थी, उसी समय १९२० से भारत के सार्वजनिक जीवन में महात्मा गांधी ने 'अहिंसक सत्याग्रह' के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन को गति देना प्रारंभ किया। देश में एक तरफ 'अहिंसक सत्याग्रह' तो दूसरी तरफ 'सशस्त्र क्रांति' के महानायकों ने अपनी योजना और पद्धति से शस्त्र एवं शास्त्र के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन जारी रखा था। ऐसी स्थिति में गुजरात इस स्वतंत्रता संग्राम से अलग कैसे रह सकता था। गुजरात भी 'अहिंसक सत्याग्रह' और 'सशस्त्र क्रांति' दोनों से प्रभावित था। महात्मा गांधी और सरदार वल्लभभाई पटेल के जन्म से पूर्व १८५७ के स्वतंत्रता संघर्ष में अनेक गुजराती वीर सपूतों ने अपना बलिदान दिया था। इतना ही नहीं अंग्रेजों की भूमि पर उनकी ही छाती पर इंग्लैंड में स्वाधीनता आंदोलन का शंखनाद करनेवाले श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम कामा, सरदारसिंह राणा गुजराती थे। लंदन के इंडिया हाउस में रहकर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने स्वतंत्रता संघर्ष चलाया था। लंदन में पढ़ रहे छात्र और वीर सावरकर तथा मदनलाल धींगरा श्यामजी कृष्ण वर्मा को अपना क्रांति गुरु मानते थे।

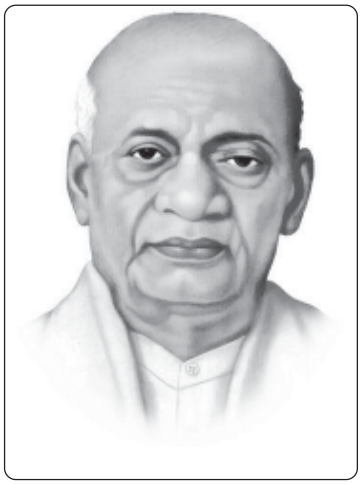

चंपारन आंदोलन के सरदार

संपूर्ण स्वतंत्रता संघर्ष में गुजरात ने 'अहिंसक सत्याग्रह' और 'सशस्त्र क्रांति' दोनों में अपनी निर्णायक भूमिका अदा की थी। मगर हम यहाँ खास तौर पर १८५७ के प्रथम विद्रोह और उसके बाद हुई स्वतंत्रता संग्राम की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर ही इस आलेख को केंद्रित करेंगे, ताकि देश की जनता गुजरात में स्वतंत्रता संग्राम के एक और पहलू को जाने, जो गांधी-सरदार के प्रभाव में दिखाई नहीं दिया। गुजरात में १८५७ से शुरू 'सशस्त्र क्रांति' की धारा सुभाषबाबू की आजाद हिंद फौज तक चलती रही। १८५७ से १९४७ तक इस पूरे स्वतंत्रता संग्राम मे गुजरात के लगभग ५००० से ज्यादा लोगों ने अपना प्राणत्याग किया होंगा। माँ भारती की मुक्ति के लिए बलिदानी परंपरा की अखंड धारा बहती रही १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से प्रारंभ होती है भारतमाता को विदेशी दासता से मुक्त करने की गाथा। कौन होंगे ये सत्ताईस कैदी, जिनकी जानकारी १८६५ में अहमदाबाद के एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट जे.ई. एलिफंट के पत्रों से मिलती है।

वे लिखते हैं, 'इन सबने १८५७ की क्रांति को गुजरात में फैलाने के लिए तन तोड़ मेहतन की थी। हमने जाँच का पूरा एक जाल बिछाया, ताकि ये विद्रोही कौन हैं, इसकी पूरी-पूरी जानकारी मिल सके।' यह बात १८५७ के बाद के दस्तावेजों के लिए काफी महत्त्व की बन जाती है, क्योंकि इस राष्ट्रव्यापी विप्लव में कई नेताओं ने अंग्रेज अफसरों को चकमा देकर देश के दूरदराज इलाकों में क्रांति की चिनगारी को पहुँचाया था।

गुजरात में भी ऐसे कई नेता सक्रिय थे, जिनसे ब्रिटिश शासन खासा चिंतित था, नाना साहब पेशवा, तात्या टोपे, रंगो बापूजी, राव साहब किसी-न-किसी प्रकार से गुजरात के लोगों के दिलों की आग पर जमी राख को उड़ाने के काम में शामिल हो गए थे और इसीलिए तो अहमदाबाद के मजिस्ट्रेट ने पकड़े गए कितने ही विद्रोहियों के बारे में लिखा है। १८६५ में ही एक गोपाल अंताजी उर्फ गुरु कृष्णजी को पकड़ा गया। उन्होंने अपना एक नाम नाना बताया। जाँच हुई तो पता चला कि १८६२ में हैदराबाद में जो विद्रोह हुआ था, वे उसमें शामिल थे। गोपाल अंताजी अपने साथियों के साथ द्वारका, कड़ी, पाटण, वडोदरा, डीसा, राजकोट, खेड़ा एवं अहमदाबाद में घूमते थे। उनकी असल पहचान अभी तक नहीं हुई, शायद वे नाना साहब पेशवा के करीबी रिश्तेदार होंगे, उनके लिए बाबा भट्ट का पुत्र होने का भी अनुमान किया जाता है। उनके साथ घूमनेवाले एक मोती त्रिकमजी जानी गायकवाड़ पुलिस हवेली पुलिस दल में काम करता था। ये प्रमाण बताते हैं कि विद्रोहियों के संबंध ओखा के लड़ाके वाघेरो के साथ था तथा वाघेरों को उकसाने में द्वारका के जो महंत शामिल थे, वे वडोदरा की जेल में बंद हैं। नाना साहब के भाई राव साहब पेशवा भी वाघेरो के साथ मिले हुए थे।

१४ जनवरी, १८६५ के इस पत्र में इन विद्रोही कैदियों की एक सूची दी गई थी जिसमें उनके नाम व सजा का उल्लेख है—गोपाल गुरुकृष्ण काला पानी, प्राण शंकर हरगोवन १४ वर्ष, खेमा काला गुगली १० वर्ष, दाजी भगवान १४ वर्ष, नारायण लक्ष्मीराम १४ वर्ष, प्रभूराम हरिभाई १४ वर्ष, हरिदास मथुरादास १ वर्ष, बापूराव काशीनाथ १० वर्ष, कृष्ण भट्ट जगन्नाथ ७ वर्ष, दाजी मोरोबा १ वर्ष, मनोरदास गंगा दास रिहा, लल्लू रणछोड़ ७ वर्ष, मोती विक्रम जानी आजीवन, उमरखान ७ वर्ष, सरदार खान १ वर्ष, हैदर खान १ वर्ष, मुरलीधर बापूजी आजीवन, नारायण रामचंद्र १० वर्ष, शंभुबिन दौलत आजीवन, टोकरा स्वामी द्वारका पुजारी १४ वर्ष, अनुपराम जगजीवनराम ७ वर्ष, अंबाशंकर पहा सुखराम ७ वर्ष, रामभट्ट रोटी राम ५ वर्ष, गणपत राव सफरी ३ वर्ष।

कौन थे ये टोकरा स्वामी, जो द्वारका में पूजा पाठ करते-करते बगावत का झंडा हाथ में उठा लिया। और ये प्रभूराम, कृष्ण भटट, लल्लू, रणछोड़, मोती जानी, अनुपराम, मुरलीधर के अंबाशंकर, चावल दाल खानेवाले बनिया व कर्मकांडी ब्राह्मण १८५७ की क्रांति में किस प्रकार शामिल हुए।

विचित्र व कल्पना भरी होने के बावजूद यह वास्तविक कहानी है। एक ओर तो बुद्धिमानों सहित अपने अखबार अंग्रेजों की बहादुरी और नाना साहब के अत्याचारों की बातें छापते, वहीं दूसरी ओर कुछेक मरजीवड़े लोग आजादी की लड़ाई के लिए घरबार छोड़ बाहर निकल गए। इस दास्तान को आगे तथ्य व तारीखों के साथ देखते हैं तो खयाल आता है कि ओखा के वाघेरों का विद्रोह अकेली गायकवाड़ी के विरोध में नहीं था, बल्कि बुझते १८५७ के विद्रोह की आग को फिर से जलाने का प्रयास था। ओखा से अहमदाबाद और दक्षिण गुजरात के जंगलों में बिखरे व संयुक्त प्रयास तो शुरू हो गए थे। १८५७ के आसपास अहमदाबाद, डीसा, पालनपुर, ईडर, खेड़ा, कड़ी, दाहोद, गोधरा, रेवाकांठा, भरूच, सूरत मुख्य केंद्र थे, आसपास के गाँव में भी फैला था।

वडोदरा ने इसमें महत्त्वपूर्ण रोल निभाया, इसमें ब्रिटिश शासन को वडोदरा की वफादारी पर भरोसा नहीं था, सैयद पीरजादा और अन्य असंतोष फैलाते थे, उनको पकड़ लिया गया। पर बात यहीं पूरी नहीं हो जाती। सूरत के पुलिस मुखिया होडज्स ने वडोदरा के ब्रिगेडियर मेजर क्राफर्ड को लिखा कि गायकवाड, ग्वालियर इंदौर की तरह अपने खिलाफ जाएँगे, इसकी मुझे पक्की खबर मिली है, ठेठ रत्नागिरी तक यह बात पहुँच गई। क्रांति के दौरान यहाँ सतही तौर पर शांति थी, कोल्हापुर के राजा वडोदरा के गाकयवाड़ परिवार के जँवाई थे, उन्होंने विद्रोह का बिगुल फूँक दिया था। गायकवाड़ी में बड़ी संख्या में सरदारों ने नाना साहब का पक्ष लिया। वडोदरा से गया एक दूत कोल्हापुर में पकड़ा गया, जो वडोदरा कोल्हापुर में तैयारी करने में सहयोग के लिए गया था। तब राज पुत्री तो कोल्हापुर में ही पति के साथ थी।

विद्रोह के सूत्रधार के रूप में गायकवाड़ घराने ने भाग नहीं लिया, लेकिन गोविंद राव बापू गायकवाड़ आगे आए, जिनके साथ पाटण के मगनलाल बनिया और वडोदरा के निहालचंद झवेरी थे। नसीराबाद,

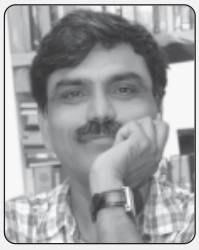

सुपरिचित पत्रकार। 'स्वामी विवेकानंद', 'राष्ट्रीय घटनाचक्र', 'आर.एस.एस. का लक्ष्य', 'डॉ. बाबासाहब आंबेडकर', सफलता का मंत्र', आदि अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों के लेखक। 'सामाजिक समरसता' एवं 'आपणा नरेंद्रभाई' जैसी सैकड़ों पुस्तकों सहित श्री नरेंद्र मोदी के आलेखों और प्रवचनों का भी संपादन। 'पाञ्चजन्य मिश्र युवा साहित्य पुरस्कार' से सम्मानित।

नीमच, इंदौर और महु में सार्वजनिक अशांति से यह तय हो गया कि समय आ गया, चलो अहमदाबाद को जीत लें। एक अफवाह यह भी थी कि होल्कर और सिंधिया के १६ हजार सैनिक अंग्रेजों को गुजरात से बाहर निकालने के लिए कूच कर आ रहे हैं। अहमदाबाद में सातवीं रेजिमेंट खुला विद्रोह करे और शहर पर अपना कब्जा जमाने के बाद बापूराव गायकवाड़ खुद को गुजरात का सर सेनापति घोषित कर दें, ऐसी योजना बनाई गई। जनरल रॉबर्टस तक यह बात जैसे-तैसे पहुँच गई, इसलिए ताबड़तोड़ कदम उठाए गए।

सातवीं रेजीमेंट के हिंदू सूबेदार के शस्त्र छीन लिये गए, ग्रेनेडियर रेजिमेंट और सातवीं नेटिव मराठा के बीच आंतरिक संघर्ष था, जिसका लाभ लिया गया, औध के सैनिक झगड़े, अंग्रेज अफसर सेना के विद्रोह से काफी डरते थे, उनका डर सच साबित हुआ।

९ जुलाई, १८५७

अनियतकाल अश्वारोही दल के सात सैनिकों ने विरोध किया, दूसरे उनके साथ नहीं आए, 'मूर्खो, अंग्रेज अपने को हड़प रहे हैं, 'ऐसी आवाज लगाई, परंतु सत्ता का भय सता रहा था। सातों छावणी छोड़कर भागे, सरखेज की ओर घोड़े दौड़ाए, उनके पीछे फौज की धुआँधार टोली। कैप्टन टेलर ने सातों को जेल कराने का अभियान उठाया। अहमदाबाद धोलका के बीच ताजपुर गाँव के पास उनको घेर लिया, लेकिन अश्वारोही दल ने उनसे लड़ने से इनकार कर दिया। कैप्टन टेलर ने अपने वफादार अंग्रेज सेनिकों के बल पर सातों को शस्त्रहीन करने के प्रयास में जान गँवाई, लेकिन दो सैनिक ये भी मारे गए तथा बाकी पाँच को समर्पण करना पड़ा और फिर उन सभी को फाँसी पर लटका दिया गया।

१४ सितंबर, १८५७

साथ ही ग्रेनेडियर भी विद्रोही हुए, रेजिमेंट के मराठाओं के साथ उनका मनमुटाव था, इसलिए उन्होंने साथ नहीं दिया, गनर्स अलग रहे, जिससे सूबेदार को भागना पड़ा। गनर्स सभी बंदूकें छोड़कर चले गए, कैप्टन ग्रीम्स ने मैदान में से शस्त्र सामग्री कब्जे में ली तथा पकड़े गए विद्रोहियों को कोर्ट मार्शल कर फाँसी की सजा दी गई। फाँसी की सजा का अमल अहमदाबाद में नहीं, घोघा में करना था, लेकिन वहाँ मूसलधार वर्षा हो रही थी, जल्लाद इंतजार करता रहा और अहमदाबाद में ही इन

विद्रोहियों को तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया गया, तीन को गोलीमारी गई व बाकी को फाँसी मिली।

बापू गायकवाड़ पर वडोदरा में घुसने पर मनाही थी, वे अहमदाबाद शाहीबाग में गायकवाड़ी महल में चतुराईपूर्वक योजना बना रहे थे। सितंबर १८५७ की योजना के अनुसार उमेठा व भादरवा के अग्रणी लोगों, खेड़ा महीकांठा के पटेल आदि को एकत्र करने को निहालचंद निकले। बापू गायकवाड़ अहमदाबाद की सैनिक छावनी में सैनिकों को उकसाने प्रयत्न करते व दूसरों से कराते। मगन लाल बनिया कड़ी तहसील में जा पहुँचे, सभी गाँव के लोग शस्त्र लेकर प्रतापपुरा में एकत्र होकर वहाँ से चोक तालाब को कूच करेंगे, यह तय हुआ।

चौकतालाब से वडोदरा ५ मील दूर था, इसका अर्थ यह हुआ कि विद्रोही वडोदरा पर कब्जा करके उसे क्रांति का केंद्र बनाने की तैयारी में थे, इसके लिए धनतेरस का त्योहार १६ अक्तूबर, १८५७ पसंद किया गया। योजना बनी तब पूरे देश में विद्रोह के समाचार थे, जफर, नाना साहब, तात्या टोपे, कुँवरसिंह, लक्ष्मीबाई अदि अंग्रेजों के छक्के छुड़ा रहे थे, ऐसा लगा रहा था कि अंग्रेज धराशाही हो जाएँगे और मुल्क में फिर से खल्क खुदा का मुल्क बादशाह का और हुकम रानी झाँसी का जमाना आ जाएगा।

परंतु विद्रोह विफल होने लगा, शस्त्रों का व्यापक अभाव, संयोजन व संकलन की भारी कमी, पंजाब का ठंडा प्रतिसाद, इन सभी कारणों से अंग्रेज अपने सैनिक दल को तैनात कर विद्रोह को निर्दयतापूर्वक कुचलते हुए आगे बढ़ते रहे, इसके बावजूद दिल्ली ने बराबर की टक्कर दी। इसमें जफर पकड़े गए, दिल्ली फिर अंग्रेजों के हाथ लग गई, जिसकी खुशी में वडोदरा के गायकवाड़ ने शानदार भोज करके अंग्रेजों के प्रति वफादारी दिखाने का प्रयत्न किया। इन्हीं दिनों में महीकांठा में विद्रोह फैल गया, अंग्रेज सैनिक दल दौड़कर वहाँ पहुँचा, काफी लोग पकड़े गए, जिनमें से दस को तोप के मुँह पर बाँधकर उड़ा दिया गया। नौ को कालापानी भेज दिया, प्रतापपुर व अंगेर दो गाँवों को पूरी तरह जलाकर नष्ट करके उनका नक्शे पर से ही नामो-निशान मिटा दिया।

बापू गायकवाड पकड़े गए

खंडेराव गायकवाड़ ने अपनी पहुँच का उपयोग करके उनको सजा से मुक्ति दिलाई, लेकिन अंग्रेज पक्के थे, उन्होंने बापू को वडोदरा की जेल मे ही रखा। जेल के बाहर उनके एक साथी मगनलाल अभी थके नहीं थे, उन्होंने गाँवों से लोगों को साथ लेकर लोदरा में स्वतंत्र झंडा फहराया। मेजर ऐगर की अगुवाई में उनको पकड़ने की योजना बनी, मगनलाल चारों ओर से घिर गया, लेकिन बाज पक्षी की तरह वहाँ से बच निकले, उनके दो साथियों ने मौत को गले लगा लिया। आखिर मगनलाल समु के थानेदार के साथ गुफ्तगू करते हुए पकड़े गए। उनके साथ पकड़े गए तीन को तोप से उड़ा दिया, तीन को फाँसी तथा बाकी को कालापानी की सजा दी गई।

एक रिपोर्ट के अनुसार अकेले अहमदाबाद की जेलों में अक्तूबर १८५७ के महीने में ३५ विद्रोही सजा की राह देख रहे थे। १६ अक्तूबर को सुबह ८९वीं रेजीमेंट की हाजिरी में ३ विद्रोहियों को तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया और ऐसे ही अपराध में बंद चालीस बंदी जेल की कालकोठरियों में कैद थे तथा मौत की सजा का इंतजार कर रहे थे। १९ अक्तूबर को फिर कइयों को तोप से बाँधकर उड़ा दिया व कुछ को फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

कौन थे ये विद्रोही

उनके नाम, पते कहीं मिलते नहीं, शोधकर्ताओं के लिए दस्तावेजों को खँगालकर खुलासा करनेवाले नाम तो यही हैं, जिन्होंने भारत के पहले स्वतंत्रता संग्राम में अपनी आहुति दे दी थी। ऐसी कई दर्दनाक कहानियाँ हैं, जो इतिहास के गर्भ में दबी हैं। दाहोद के कानूनगो कौन होंगे, स्थानीय जमींदार, दाहोद को स्वतंत्र कराने के लिए लड़े, पंचमहाल पूरा जल उठा, कैप्टन बकले अंधाधुंध तरीके से घूमकर जहाँ देखता, वहीं गोलियों से भुनवा देता। तब दाहोद गोधरा में पहला मोर्चा खुला, देवगढ़ बारिया में भीलों ने सेना को रोका, घमासान युद्ध हुआ। लगातार २२ दिन के घमासान में अंग्रेजों ने विद्रोहियों पर तोप के गोले, बंदूकों से गोलियाँ बरसाकर काबू में कर लिया, बचे हुए विद्रोहियों को भी अंग्रेजों ने जेल अथवा कालापानी की सजा की बजाए फाँसी पर चढ़ा दिया। (पी.डी. वॉल्यूम ४८, १८५७, पृष्ठ २३५)

चतुर अंग्रेजों को पता था कि पड़ोसी राज्यों से विद्रोही गुजरात में आकर विद्रोह की आग भड़का सकते हैं, इसलिए दाहोद की किलेबंदी की गई। इसके बाद भी गोधरा में भोपाल महू के विद्रोही पहुँचे, कैप्टन बकले, मेजर थॉमस व लेफ्टीनेंट शिपी की मदद से गोधरा पर भी कब्जा जमा लिया, सभी विद्रोही अचानक गायब हो गए।

द्वारका की तरह तीर्थधाम डाकोर में भी संघर्ष चला, सूरजमल ने लूणावाडा राज्य पर दावा बोल दिया, जुलाई १८५७ को पाल के चारण जमींदार कानदास की मदद से लूणावाडा पर धावा बोला, वहाँ के राजा ने ब्रिटिश मदद माँगी और मेजर ऐंड्रयूज व ऐश्बर्नर सैनिक टुकड़ियाँ लेकर आ धमके। सबसे पहले ब्रिटिश सेना ने पाल गाँव का सर्वनाश किया, गाँव को पूरा जला दिया, ताकि विद्रोही यहाँ शरण नहीं ले सकें। कानदास पकड़ा गया, पर सूरजमल हाथ नहीं लगा। पाल जैसा ही दुर्भाग्य महीकिनारे बसे खानपुर का रहा, कौली समुदाय के लोगों ने विद्रोह कर गाँव को अंग्रेजों के आधिपत्य से मुक्त घोषित कर लिया। चींटी पर

हाथी चढ़ाने की तरह ही बर्कले ने अश्वारोही दल, सातवीं रेजीमेंट और गायकवाड़ के सैनिकों को लेकर खानपुर का सर्वनाश कर नक्शे पर से ही मिटा दिया। जो विद्रोही पकड़े गए, सबको कालापानी भेज दिया।

पंचमहाल संखेडा के नायकदास भाऊसाहब पवार के साथ मिले, रूपा नायक और केवल नायक की सरदारी में जांबुघोड़ा में कैंप करके पहले कैप्टन बेटस की छावनी पर धावा बोला। जांबूघोड़ा के आसपास के गाँवों ने विद्रोहियों को शरण दी। तब विलायती शब्द वहाँ अफ्रीका के हब्शियों के लिए बोला जाता था, इन विलायती लोगों ने १८५७ की क्रांति में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोहियों का साथ दिया। उनकी मदद से चांपानेर से नरुकोट के बीच का प्रदेश आजाद घोषित हुआ। कर्नल वालेको ने १८५८ के पूरे साल विद्रोहियों से खूब टक्कर ली, जनता ने भी उसका डटकर मुकाबला किया और आजाद हवा में साँस लेते रहे।

नायकदास ने गुरिल्ला युद्ध का सहारा लिया, रात को अंग्रेजों की छावनी पर धावा बोलते और बाद में पर्वतामालाओं में जाकर छिप जाते। विलायती हुसैन खाँ सिद्दी ने भी अंग्रेजों को खूब छकाया, उसने शिवराजपुर के जंगलों में छावनी बना ली थी। आखिर कैप्टन रिचर्ड ने गोधरा में सैनिक अड्डा बनाया और समग्र पंचमहाल में सैनिकों को दौड़ाया, भीलों को खुश रखने का प्रयास भी किया, भील लंबे समय तक युद्ध कर थक चुके थे, इसलिए दो साल बाद समर्पण कर दिया।

एक दूसरा खानपुर आनंद से बारह मील दूर था, जीवाभाई ठाकोर का यह गाँव विद्रोह में शामिल था, आणंद के मुखिया गरबड़दास के साथ कोली, भील, नायक आदि दो हजार लोगों की टुकडी ने कई गाँवों पर कब्जा जमा लिया था। अंग्रेज सेनाने खानपुर को घेरकर कब्जे में ले लिया। जीवाभाई को फाँसी पर चढ़ा दिया गया। आणंद के लोठिया में अंग्रेजों ने कैंप स्थापित किया। मुखिया गरबड़दास ने समर्पण नहीं किया व साथी मल्लाजी जोशी, बापूजी पटेल, कृष्णराव आदि ने खुला विद्रोह कर दिया, लोठिया में अंग्रेजों की छावणी पर धावा बोलकर शस्त्र लूट लिये, जिससे अंग्रेजों की फजीहत हुई। अंग्रेजों की घोड़ों की पूँछ काट ली गई, लेकिन साथियों की दगाबाजी के कारण गरबड़दास खानपुर में पकड़ में आ गए। उस वक्त वे अलोज गाँव में अपनी शादी के लिए जा रहे थे। साथियों की दगाबाजी के चलते दुल्हन के रूप में उन्हें कालापानी की सजा मिली, वहीं उन्होंने अंतिम साँस ली।

इतिहास की तारीखों में ये कहानियाँ न जाने कहाँ गुम हो गईं, अंडमान की सूची में गुजरातियों का नामोनिशान तक नहीं, जबकि यहाँ अंग्रेजों के दस्तावेजों में कइयों को कालापानी भेजा गया था। क्या इन दस्तावेजों को बाद में नष्ट कर दिया गया।

अकेला महीकांठा कर्नल शेक्सपीयर के शब्दों में भारी युद्धखोर था और अंग्रेजों को लगातार हँफा रहा था। १४० छावनियों को आग लगा दी गई थी, चांडुप से ईडर १६ मील पर है। नायाजी व यामाजी की अगुवाई में कौलियों ने जंग का ऐलान कर दिया था। चांडुप में अंग्रेजों के अश्वदल के सामने लोगों ने जंग लड़ी व अंग्रेजों को हँफाया, अंग्रेज सेना भाग खड़ी हुई, छावनियों पर क्रांतिकारियों का कब्जा हो गया। ईडर वडोदरा से सेना आई, लेकिन कौली लड़ाकों को हराना मुश्किल था, आखिर मेजर ऐंड्रयूज, मेजर कोर्माक बड़ी सेना लेकर पहुँचे, तब कोलियों को लगा कि लड़ना संभव नहीं है तो पूरा गाँव उजाड़ कर दिया, अनाज तक को जलाकर राख कर दिया। अंग्रेज सेना ने तीन दिशाओं से चांडूप पर चढ़ाई की, लेकिन कुछ हाथ नहीं लगा, विद्रोही भी गायब थे। अंग्रेजों की यह विजय किसी हास्य से कम नहीं थी, आसपास के पर्वतीय इलाकों से नाथाजी व कोली पटेलों ने जीवन की आखिरी साँस तक लडाई लड़ी। खेरालू, वड़नगर, वीजापुर, मोहनपुर में भी इस बहादुर कौम ने अंग्रेजों को हँफाया, लोदरा पर कब्जा जमाया, महीकांठा का हर एक गाँव इस क्रांति में शामिल था।

इसके साथ मांड़ेती में सूरजमल की लड़ाई, भरुच में विद्रोह, नांदोद में सैयद मुराद अली की बगावत, राजपीपला में सैनिक असंतोष, अरब काबूली मकराणी और सिंधियों ने इस जंग में भाग लिया, इनके एक नेता मुस्तफा खान को अंग्रेजों ने गोलियों से छलनी कर दिया। वडोदरा में ६६वीं रेजीमेंट में बगावत की योजना से स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात में भी १८५७ की क्रांति का असर था। इंदूलाल याज्ञिक ने लिखा है कि वल्लभ भाई पटेल के पिता झवेर भाई भी इसमें सक्रिय थे। नडियाद के अजीभाई के पुत्र बिहारी लाल देसाई ने हींग बेचने आनेवाली काबुली व्यापारियों के जरिए रशिया के राजा जार को गुप्त पत्र भेजे थे। आप गुजरात के कई गाँवों के लुप्त व नष्ट कर दिए जाने की दुर्भाग्यशाली घटनाएँ इतिहास की तारीखों में खोज सकते हो, गुजरातियों के विद्रोह से नाराज ब्रिटिश सरकार ने सेना की मदद से जिन्हें जलाकर राख कर दिया था। दाहोद से द्वारका तक की यह क्रांति १८५७ के विद्रोह में सहयोग की गवाह है।

१८५७ के विद्रोह की जंग के दो यादगार पात्र नाना साहब पेशवा तथा तात्या टोपे ने ही इस जंग को आखिर तक चलाने की रणनीति बनाई थी। एक बात रोचक है कि इस क्रांति के नेताओं में से किसी को भी अंग्रेज जीवित नहीं पकड़ सके थे। बेगम हजरत महल और उनका किशोर पुत्र अजीमुल्लाह खान, फिरोज शाह, नाना साहब घूमते-फिरते रहे, लेकिन कभी अंग्रेजों के हाथ नहीं लगे। नाना साहब पेशवा अंतिम समय में गुजरात में रहे, यह सबसे अधिक चर्चा का विषय है।

नाना साहब पेशवा कानपुर पराजय के बाद अपने परिवार के साथ नेपाल भाग गए थे तथा वही पर लड़ाई में मारे गए। लेकिन बाद में और कई जानकारियाँ सामने आईं। नाना के निधन के सरकारी समाचार के बाद उनकी पत्नी काशीबाई के पिता १८६४ में काठमांडू में उनसे मिलने पहुँचे तो उनको आश्चर्य हुआ, पुत्री के शरीर पर विधवा होने का उन्हें कोई चिह्न नजर नहीं आया। उनका मंगलसूत्र व सुहाग की चूड़ियाँ भी यथावत् थीं। नेपाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री राणा जंगबहादुर ने डॉ. ऑल्डफील्ड को नवंबर १८६० में कहा था कि मुझे नाना के निधन पर कोई शंका नहीं है, लेकिन मैं ऐसा नहीं कह सकता हूँ। और इसी तरह की गुजरात में भी कई घटनाएँ घटीं। १८६१ नवंबर माह में अखबारों में खबर छपी कि नाना साहब को कराची में पकड़ लिया गया है। कराची

में पकड़े गए दो लोगों के नाम थे हरजीभाई छेदानंद व व्रजदास भगत। दोनों को कराची बंदरगाह पर ही पकड़ लिया गया था। गुप्तचरों ने उनकी पहचान कर बताया कि हरजीभाई ही नाना साहब हैं तथा व्रजदास उनका सेवक। जाँच में पता चला कि दोनों बेट-द्वारका से गए थे। लक्ष्मीप्रसाद की नाव में द्वारका से कराची पहुँचे थे, हरजीभाई ने कहा मैं तो फतेहचंद हूँ, द्वारका मंदिर में रहकर आयुर्वेदिक दवा देता हूँ, दर्शनार्थियों को देखने वे कराची भी आते हैं। अफसरों को भरोसा नहीं हुआ तो मुँबई व कानुपर के खुफिया अधिकारियों ने भी उनके फोटो आदि से जाँच की व मजिस्ट्रेट ने दोनों को भारत भेजने का वारंट जारी कर दिया। आखिर नाना साहब को कलकत्ता जेल में भेजा गया, जहाँ उनके वकील होरमसजी बहरामजी मोदी ने बताया कि ये नाना साहब नहीं हैं। द्वारका बेट में नाना साहब का रहना भी जाँच का विषय है।

द्वारका ओखा में १८५७ के बाद सात वर्ष तक वाघेरों का विद्रोह चला। इसमें नानाजी पेशवा ही साधूवेश में इसे प्रेरणा देने में कामयाब रहे। कच्छ में जैसे बाबा भभूतगर नामक साधु थे, ऐसे ही सौराष्ट्र के जूनागढ, वंथली, माणावदर आदि विस्तार में भी बाबा भभूतगर नामक एक लोकप्रिय पात्र थे। उन्होंने बाँटवा के पास कोडवाव गाँव की नदी किनारे बने कोटेश्वर मंदिर में वर्षों तक पुजारी के रूप में काम किया। बाबा घोड़ा रखते थे तथा वे घोड़े से आसपास के इलाकों में घूमा करते थे, यह उनकी दिनचर्या का हिस्सा था। जाने-माने उपन्यासकार गुणवंतराय आचार्य ने भी अपने एक उपन्यास में भभूतगर को अपना पात्र माना है।

द्वारका गोपालजी मंदिर के एक नेत्रहीन पुजारी गोपालजी भाई ने भी दावा किया था कि वे हरजीभाई से मिले थे। वे करीब ३ वर्ष द्वारका में रहे, उन्होंने कहा कि उन्हें अप्पाराम के रूप में ही पहचाना जाए। जबकि उनका सही नाम नाना भट्ट था। यहाँ से वे कच्छ भुज गए, जहाँ राजा की कन्या के विवाह के अवसर पर राजा ने काफी दान दिया था। वे यहाँ राजा के पास करीब दो माह रहे, फिर सिंध चले गए। सिंध में ३ माह रहने के बाद सक्कर, शिकारपुर, बहावलपुर गए, जहाँ से रावलपिंडी पहुँचकर हुकुमचंद खत्री की सराय में आठ दिन ठहरे। यहाँ से निकलकर वे लाहौर, अमृतसर, कश्मीर गए। वापस आकर उन्होंने बताया कि कश्मीर के राजा ने मदद करने का वचन दिया है। द्वारका में नानाजी के गुप्तनिवास के दो अनुमान और भी हैं, एक तो आज भी द्वारका में एक मकान नानाजी के घर के रूप में पहचाना जाता है तथा दूसरा गोपालजी के बयान में नानाजी की कच्छ यात्रा व कच्छ के महाराज से मुलाकात है। कच्छ में नाना साहब के निवास के बारे में श्री मानसिंह बारड संपादक 'पथिक' ने लेखक को लिखा कि १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के दो नेता कच्छ में साधुवेश में आए तथा मृत्युपर्यंत यहाँ रहे। दोनों कच्छ की रापर तहसील में रुके। एक भुटकिया भीमासर गाँव में तो दूसरे खिराई अथवा विथेराई के पहाड़ की गुफा में रहे। खिरोई गुफा में रहनेवाले ये नेता भभूतगरजी के नाम से जाने जाते थे। कच्छ के स्वर्गीय महाराव खेंगारजी ने उनसे गुप्त मुलाकात की थी। मोरबी के मालिया ठाकोर भी उनसे मिलने आते। उनकी मौत की खबर दिल्ली के अंग्रेजी अखबारों में छपी, लेकिन नानाजी के यहाँ रहने का कोई लिखित दस्तावेज नहीं मिल सका। शायद राजपरिवार के दस्तावेजों से मिल जाए। तत्कालीन न्यायाधीश तापीशंकर भाई ने १९७७ में कहीं पर ऐसा कहा था कि उन्होंने कच्छ के महाराव को बताया था कि इनके राजनीतिक एजेंट के रूप में यहाँ रहने का पता चलने पर उनकी स्थिति विकट बन सकती है। इसलिए नाना साहब को बुरा नहीं लगे और उन्हें कच्छ के बाहर सुरक्षित पहुँचाया जाए।

द्वारका ओखा में १८५७ के बाद सात वर्ष तक वाघेरों का विद्रोह चला। इसमें नानाजी पेशवा ही साधूवेश में इसे प्रेरणा देने में कामयाब रहे। कच्छ में जैसे बाबा भभूतगर नामक साधु थे, ऐसे ही सौराष्ट्र के जूनागढ, वंथली, माणावदर आदि विस्तार में भी बाबा भभूतगर नामक एक लोकप्रिय पात्र थे। उन्होंने बाँटवा के पास कोडवाव गाँव की नदी किनारे बने कोटेश्वर मंदिर में वर्षों तक पुजारी के रूप में काम किया। बाबा घोड़ा रखते थे तथा वे घोड़े से आसपास के इलाकों में घूमा करते थे, यह उनकी दिनचर्या का हिस्सा था। जाने-माने उपन्यासकार गुणवंतराय आचार्य ने भी अपने एक उपन्यास में भभूतगर को अपना पात्र माना है।

आज संदर्भ में ओखा के वाघेरों ने जो अंग्रेज व गायकवाड़ सेना से टक्कर ली थी, उसके तथ्यों को भी देखना होगा। वाघेरों ने पहला विद्रोह १८२० में किया था, जिसे गायकवाड़ी सेना ने अंग्रेजों की मदद से दबा दिया था। १८५७ की भूमिका रचने को जब राजपरिवार, सैनिक व साधु संत इस इलाके में पहुँचे तो वाघेरों ने इस मौके का भी भरपूर लाभ उठाया। १ जनवरी, १८५८ को अलग-अलग गाँवों के वाघेर एकत्र हुए। इनमें उमरापुर के जोधा माणेक, बापू माणेक, भोजवाड़ा के भोजा माणेक, रेवा माणेक, वसई के रणमल माणेक, दीपा माणेक, सोमेश्वर से देवा चुबाणी, घंडू मायाणी, राजपुर के सफा माणेक और रायदे आदि उपस्थित थे। सभी ने लड़कर मुल्क को जीत लेन का फैसला किया, जोधा माणेक ने पहले ऐसा करने से मना किया, फिर सहमत हो गए। मार्च १८५८ में इनका पहला हमला बेट पर हुआ। प्रिंस आर्थर चौथी बटालियन की एक कंपनी लेकर विद्रोह को कुचलने आया, पर विफल रहा। अप्रैल में उसने दूसरा हमला किया, लेकिन वाघेर नेता भाग गए। अंग्रेज सैनिक भी थक जाने से बेट छोड़कर जाने लगे, जिससे वाघेरों को लगा कि १८५७ के बाद अब अंग्रेज देश छोड़कर जा रहे हैं। इसलिए बेट द्वारका में गायकवाड़ सेना पर वाघेरों ने फिर हमला बोला। अप्रैल १८५९ में गायकवाड़ ने समाधान के लिए नारायण राव रघुनाथ तथा सुखराम पुरुषोत्तम को भेजा, उनका प्रयास निष्फल रहा। इस युद्ध से वाघेर मजबूत हुए तथा मुलू माणेक ने ३० जुलाई, १८५९ को द्वारका पर चढ़ाई कर जीत लिया, सात दिन के संघर्ष के बाद बेट द्वारका भी कब्जे में आ गया। अगस्त तक समूचा ओखा उनके कब्जे में था, जोधा माणेक को उसका प्रमुख बनाया गया। उन्होंने पोरबंदर व जामनगर के राजपरिवार

को पत्र लिखकर अंग्रेजों व गायकवाड सेना से युद्ध करने में मदद माँगी। इससे घबराकर गायकवाड़ ने भी अंग्रेजों से मदद माँगी, ब्रिटिश अधिकारी की देखरेख में अंग्रेज सेना ने ओखा मंडल की ओर कूच किया, लेकिन इस बार राह आसान नहीं थी।

ओखा मंडल और बाराड़ी के बीच नंदाणा गाँव में अंग्रेज सेना का पड़ाव था, अहमदाबाद से एक पूरी कंपनी भी मदद को पहुँची, साथ ही बंबई से नौका सैन्य भी रवाना हो चुका था, जिसके कैप्टन कर्नल डोनावन थे, उनके जहाजों को एनोबीआ व विक्टोरिया के साथ बाँध दिया गया था। फिरोज नामक क्रिगेट भी मदद को आई। ब्रिटीश सेना की व्यूह रचना ऐसी थी कि पैदल व नौका दल एक साथ हमला बोलकर माणेकों को घेर लें। ४ अक्तूबर को डोनावन नौका दल को लेकर बेट की खाड़ी में पहुँच गया था, लेकिन सामने २५ फीट की मोटाई व ६० फीट ऊँची दीवारवाला मजबूत किला था, यह माणेकों के गौरव का प्रतीक भी था। डोनावन ने तोपची को गोले बरसाने का आदेश दिया, रात-दिन चौबीस घंटे तक तोपें गोले बरसाती रही, अगले दिन सुबह संधि की अफवाह फैलाई गई। अंग्रेज अधिकारी समर्पण के अलावा और कोई बात करने को तैयार नहीं थे। माणेकों का गुस्सा सातवें आसमान पर था, मूलू माणेक ने संधिदूत बनकर आए जेराम शेठ को खरी-खोटी सुनाई, इसके बाद युद्ध छिड़ गया। छठी व १२वीं रेजीमेंट ने मोर्चा सँभाल लिया, उधर बहादुर वाघेरों ने अंग्रेज सेना को खूब छकाया। कैप्टन मेकॉर्मेक, विलियम और दूसरे दस यूरोपियन सिपाही मारे गए। कैप्टन ग्लासपुल, लेफ़्ट ग्रांट व अन्य ३७ सैनिक घायल हुए। दो और अफसर मारे गए, बेट द्वारका के वैष्णव बगीचा में कब्र इसकी साक्षी है। इस लड़ाई में वाघेरों का सरदार मारा गया, लेकिन गढ़ बचा लिया। दूसरे दिन अंग्रेजों ने पलटवार किया, लेकिन तब तक सभी वाघेर वहाँ बेट से निकलकर ओखा मंडल में बिखर गए थे, विजयादशमी को सुरंग खोदकर बेट के किले को जमींदोज कर दिया गया। किले में रहने वालों को मार डाला गया, संपत्ति लूटी गई तथा गायों की भी हत्या की गई।

बेट के बाद द्वारका की लडाई निश्चित थी, अंग्रेजों के दिमाग में १८५७ की पराजय घर कर गई थी इसलिए चारों ओर लूट व हत्या का नजारा था। अंग्रेजों ने रावला तालाब से द्वारका में तोप के गोले बरसाए, जिससे मंदिर का स्तंभ टूट गया। १८५७ से १८५६ तक बरड़ा के पर्वतों से ही वाघेर लड़ते रहे, उनके सामने गायकवाड़ या अंग्रेजों की सेना नहीं थी बल्कि देश के ही अलग-अलग राजाओं की सेना थी। वाघेरों की इस बहादुरी को नेक और टेक बताते हुए कवियों ने भी खूब प्रशंसा की। जोधा माणेक गीर के जंगलों में ही मारा गया, तब द्वारका ने अपने इस योद्धा की याद में शोक रखा, बाजार बंद रहे, ब्राह्मणों ने एक माह तक मिठाई नहीं खाई, महिलाओं ने भी पीतल के बरतन के बजाय माटी के बरतनों से पानी भरा। रूपेण बंदरगाह पर जोधा माणेक की मेड़ी पर काला झंडा फहराया गया। महाजनों ने एक वर्ष तक विवाह मांगलिक कार्य बंद रखे, द्वारका के चौक में एक साल तक जोधा की मौत के मरशिया गाए गए। मुलू के भाई देवा माणेक ने भी समग्र काठियावाड़ में अपने पराक्रम का झंडा लहराया। कई मोर्चों पर अंग्रेजों को छकाते हुए जामनगर कालावाड के माचरडा के डुंगरधार पर अंग्रेज सेना के अफसर हेबर्ट एवं लाटुच को मौत के घाट उतार दिया। २३ दिसंबर, १८६७ की जंग का साक्षी एक ५० फीट का स्तंभ है, जिस पर लिखा है—बदमाश वाघेरों के सामने बहादुर हेबर्ट की जंग। देवो माणेक इस जंग में शहीद हुआ तथा मुलू के नसीब में ये आखिरी संग्राम आया। भूखा-प्यासा व इधर-उधर भटकता मुलू का शरीर थकने लगा था, कई बार सात-सात दिन तक वह भूखा रहता, आखिर में वह पोरबंदर के वनचरडा गाँव की सरहद में मारा गया। ७ मई, १८६७ को इस प्रकार वाघेरों के इस आखिरी राजा ने आखिरी साँस लीं।

यह बलिदान की परंपरा यही नहीं रुकी, आगे भी चलती रही। गुजरात का साबरकांठा जिला आदिवासी बहुल क्षेत्र है। इसक्षेत्र में श्यामलाजी नगर में भगवान् कृष्ण का प्राचीन भव्य मंदिर है। इसी साबरकांठा जिले के पालचितरिया दड़वाव में जलीयाँवाला नरसंहार से भी बर्बर और भीषण अत्याचार अंग्रेज सेना ने वनवासियों पर किए थे। आज भी इस क्षेत्र में इस बर्बर अत्याचार के निशान मौजूद हैं। गुजरात के सांबरकांठा, बनासकांठा जिला एवं राजस्थान के डूंगरपुर, चित्तौड़, सिरोही, बाँसवाड़ा, उदयपुर क्षेत्र में मोतीलाल तेजावत ने स्वतंत्रता आंदोलन की आग फैलाई थी। इस क्षेत्र का पूरा वनवासी समाज इस आंदोलन से जुड़ा था। उनके नेतृत्व में हजारों वनवासियों ने अंग्रेज सल्तनत के विरुद्ध एकजुट हुए थे। सांबरकांठा जिले के पालचितरिया-दड़वाव गाँव में हेर नदी के तट पर ७ मार्च, १९२२ के दिन 'लगान' के विरोध में विराट् सभा का आयोजन हुआ था। मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में हजारों वनवासी इस आयोजन में शामिल हुए थे।

मेवाड़ भील कोर्पस (ए.बी.सी.) मोतीलाल तेजावत को खोज रही थी। पालचितरिया की खबर मिलते ही ब्रिटिश सेना वहाँ पर पहुँची। लगभग तीन हजार वनवासी हाथ में तीर-कमान लेकर सभा में आए थे। मोतीलाल तेजावत सभा को संबोधित कर रहे थे। उसी समय वहाँ पर ए.बी.सी. के अफसर एच.जी. सटन के नेतृत्व में सेना पहुँची। पूरे सभास्थल को घेर लिया था। अफसर सटन ने हजारों आदिवासियों की भीड़ पर सीधा गोलीबारी का आदेश दिया। इस बर्बर अत्याचार में लगभग एक हजार से ज्यादा वनवासी शहीद हुए थे। यह वन विस्तार और शहर से काफी दूर होने से अंग्रेज इस भयानक हत्याकांड की खबर को आसानी से दबाने में सफल हुए। उदयपुर में निवास करते मोतीलाल तेजावत के ८५ वर्ष के पौत्र को १५ वर्ष पूर्व जब मैं मिला था, तब उन्होंने यह पूरी बर्बर घटना सुनाई थी। आज भी इन वीर वनवासियों की स्मृति में पालचितरिया में बना भव्य स्मारक हमें ७ मार्च, १९२२ की बलिदानी गाथा की याद दिला रहा है। भीलों में मोतीलाल तेजावत 'मोती बाबा' के नाम से भी जाना जाता है।

ऐसा ही एक और भीषण-बर्बर पाशवी हत्याकांड अंग्रेज सेना ने किया था—गुजरात-राजस्थान सीमा पर मानगाढ़ गाँव के नजदीक पहाड़ी पर गुजरात के पंचमहाल के दाहोद-गोधरा के नजदीक यह मानगढ़

पर्वत शृंखला है। यहाँ पर १५०७ शहीद आदिवासियों की याद में भव्य स्मारक बना है। १७ नवंबर, १९१३ के दिन यह बर्बर हत्याकांड हुआ था तब भील व आदिवासी सभा कर रहे थे, यहाँ के आदिवासियों में आज भी 'भगत' के नाम से विख्यात गोविंद गुरु आर्य समाज से प्रभावित थे। उन्होंने वनवासियों में देशभक्ति की ज्योत जलाई, इस कारण यहाँ के पूरे विस्तार में अंग्रेज के विरुद्ध गुस्सा था। स्थानीय रियासत भी अंग्रेजों के दबाव में वनवासियों पर अत्याचार करते थे। गोविंद गुरु ने अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आदिवासियों को संगठित किया। १७ नवंबर, १९१३ के दिन मानगढ़ में गुरु गोविंद के नेतृत्व में विशाल जनसभा हुई थी। उस दिन इस सभा में हजारों वनवासी उपस्थित थे। गुरु गोविंद ने वनबंधुओं को स्वदेश के लिए अपने प्राणों की आहुति देने का आह्वान किया। सभा चल रही थी, उसी समय पॉलिटीकल एजेंट सी.डब्ल्यू. हडसन अंग्रेज सेना और रियासत के सैनिक लेकर मानगढ़ पहुँचा। चारों ओर से सभा स्थल को घेर लिया गया और गोविंद गुरु तथा उपस्थित भीड़ कुछ समझे, इससे पहले हडसन ने गोलीबारी का आदेश दिया। उस दिन इस बर्बर अत्याचार में १५०७ आदिवासी शहीद हुए थे। प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर मानगढ़ की पहाड़ी पर बने शहीद स्मारक पर हर वर्ष मेला लगता है और शहीदों की स्मृति में गीत गाए जाते हैं।

गुजरात के अनेक वीरपुत्रों ने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए अपने प्राणो की आहुति दी थी, उसमें एक नाम भगवतीचरण वोहरा का भी है, जिनके पूर्वज वड़नगर (भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी की जन्म भूमि) के थे। उनके दादा वड़नगर से लाहौर आए थे। भगवतीचरण शहीद वीर भगतसिंह के साथी थे, जेल में बंद भगतसिंह की मुक्ति के लिए बम बनाते समय भगवतीचरण वोहरा शहीद हो गए थे। इस क्रांति-कार्य में भगवतीचरण अकेले शामिल नहीं थे, उनकी धर्मपत्नी दुर्गाभाभी भी शामिल थीं। भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, सुखदेव, राजगुरु सभी क्रांतिकारी दुर्गा बहन को भाभी कहकर पुकारते थे, इसलिए सभी उनको 'दुर्गा भाभी' कहकर बुलाते थे। बंबई में गवर्नर हेली पर दुर्गा भाभी ने गोली चलाई थी। मगर वे पकड़ी नहीं गई थीं। स्वतंत्रता के बाद उन्होंने लखनऊ को अपनी कर्मभूमि बनाया। उनका देहांत १३ अक्तूबर, १९९९ के दिन हुआ। वैसे ही १३ नवंबर, १९०९ को जब लॉर्ड मिंटो बंबई से अहमदाबाद आया था तो उसके स्वागत में निकले जुलूस पर अहमदाबाद के युवाओं ने बम फेंककर अपनी शक्ति का परिचय दिया था। उस समय बंगाल, पंजाब के अनेक क्रांतिकारियों ने अहमदाबाद आकर बम बनाना सीखा था। चाहे सशस्त्र क्रांति हो या अहिंसक स्वतंत्रता आंदोलन, गुजरात ने भारत माता को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने के लिए अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य के साथ अनुकरणीय योगदान दिया है।

साअ

आई-९, वरदान टावर, नीयर विमल हाउस,
लकहुदी ४ रास्ता, स्टेडियम रोड
नवरंगपुरा, अहमदाबाद-३८००१४
दूरभाष : ०९८२५४४७३४

सुधी पाठकों से निवेदन

- **जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।**
- **सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।**
- **सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।**
- **चैक अथवा बैंक-ड्राफ्ट साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।**
- **ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. १११०७३४३९३ अथवा CBIN ०२८०२९७ में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।**
- **पत्रिका न मिलने पर १५ से २० तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।**
- **आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।**
- **सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया कार्यालय दिवस में २ से ५ बजे तक फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamrit@gmail.com पर इ-मेल करें।**

स्वातंत्र्य समर में छत्तीसगढ़ का अवदान

● रमेश नैयर

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए जो हुंकार भरी थी, उसकी अनुगूँज देश के कोने-कोने तक सुनाई दी थी। संचार के माध्यमों से कटे हुए दूरस्थ वनवासी अंचलों में भी सुनी गई थी। वस्तुत: १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से एक वर्ष पूर्व १८५६ में ही कोमाखान के जनप्रिय जमींदार वीर नारायण सिंह के नेतृत्व में आदिवासियों तथा ग्रामीणों ने ब्रिटेनपरस्त जमाखोरों के अनाज-गोदाम लूटकर ब्रिटिश साम्राज्य को ललकारा था। कारण यह था कि लगातार दो बार के सूखे के कारण जब लोग अन्न के दाने-दाने के लिए तरस रहे थे तो वीर नारायण सिंह उनकी दुर्दशा से द्रवित हो उठे थे। उन्हें पता चला कि एक बड़े खाद्यान्न व्यापारी का गोदाम धान-चावल से भरा हुआ है, परंतु जमाखोर उन्हें बहुत ऊँचे मूल्य पर बेचना चाहता है। वीर नारायण सिंह स्वयं उस व्यक्ति के पास यह प्रस्ताव लेकर गए कि अपने खाद्यान्न का एक भाग उन्हें उधार दे दे। उन्होंने उसे वचन दिया कि अगली फसल आने पर वे स्वयं सारा खाद्यान्न उसे ब्याज सहित लौटा देंगे। चूँकि उस जमाखोर को अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त था और जरूरत पड़ने पर शासन-प्रशासन तत्काल उसकी भरपूर मदद करेगा, इसलिए उसने धान-चावल का एक दाना भी देने से इनकार कर दिया। भूख से तड़फते हुए तिल-तिल कर मरते लोगों की व्यथा ने नारायण सिंह को उद्विग्न कर दिया। अन्य कोई मार्ग जब उन्हें सूझ नहीं पाया तो उन्होंने भूखे जन-समूह से धान-चावल का गोदाम लूट लेने का आह्वान किया। अपने विश्वस्त सशस्त्र सैनिकों की टोली को साथ लेकर उन्होंने अनाज गोदाम के ताले तुड़वा दिए और भूखे जन-समूह को क्षुधा-पूर्ति के लिए अपनी आवश्यकतानुसार खाद्यान्न अपने साथ उठा ले जाने को कहा।

जमाखोर बड़े कृषक और व्यापारी की शिकायत पर ब्रिटिश सरकार ने तत्काल एक सैन्य कमांडर के नेतृत्व में सेना की एक टुकड़ी वीर नारायण सिंह और उसके सैनिकों पर काबू पाने के लिए भेज दी। दोनों पक्षों में कुछ सप्ताह तक सशस्त्र संघर्ष चला। ब्रिटिश सैनिक वीर नारायण सिंह को बंदी बनाने में जब विफल रहे तो ऊपर से आए निर्देशानुसार उन्होंने सामान्य नागरिकों पर जुल्म ढाना शुरू कर दिया। उससे आहत होकर वीर नारायण सिंह ने अपने सशस्त्र साथियों सहित ब्रिटिश सेना के समक्ष समर्पण कर दिया। ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह का अपराध करने के आरोप में उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। उस कठपुतली अदालत के फैसले से वीर नारायण सिंह बिंझवार और उनके सत्रह सहयोगियों को १८५७ में सामूहिक रूप से मृत्युदंड दे दिया गया। लगभग उसी समय वर्तमान पश्चिमी ओड़िसा के वीर सुरेंद्र साय ने भी ब्रिटिश राजसत्ता के विरुद्ध विद्रोह का परचम फहरा दिया था। तब वह क्षेत्र भी रायपुर कमिश्नरी के अंतर्गत आता था।

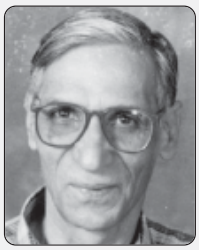

सुप्रसिद्ध लेखक-पत्रकार-संपादक। 'दैनिक भास्कर' एवं 'द हितवाद' (अंग्रेजी) दैनिक के संपादक, 'ऑब्जर्वर' के कार्यकारी संपादक रहे। लगभग एक दर्जन पुस्तकों का लेखन तथा सैकड़ों लेख प्रकाशित। अनेक पुस्तकों का संपादन व अनुवाद। अनेक सम्मान-पुरस्कारों से पुरस्कृत तथा विभिन्न देशों का भ्रमण।

वनवासी बस्तर में १८५७ से ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसके संरक्षण में अत्याचार करनेवाले अधिकारियों के खिलाफ आक्रोश पनपने लगा। संचार और यातायात के साधनों से पूरी तरह कटे रहे बस्तर की जानकारी शेष भारत को प्राय: नहीं मिल पाती थी। स्वयं रायपुर कमिश्नरी, जिसका तब सबसे बड़ा जिला बस्तर था, के मुख्यालय तक भी वहाँ की कोई जानकारी जन-सामान्य को नहीं मिल पाती थी। वहाँ १९१० में हुए जनविद्रोह के विषय में अवश्य विस्तृत जानकारी मिली। बस्तर के जंगलों की बड़े पैमाने पर ब्रिटिश सरकार के संरक्षण में होती रही कटाई से वनवासियों में क्षोभ पनपता रहा। वनवासियों का सारा जीवन-चक्र ही वन पर आधारित रहा है। उनके रहन-सहन और जीवन-यापन का एकमात्र स्रोत जंगल हुआ करता था। खाना-पीना, जिसमें मौज-मस्ती का सामूहिक मद्यपान भी सम्मिलित था, वृक्षों से ही प्राप्त होता था।

उनके प्रिय पेय सल्फी और महुआ भी वृक्षों से प्राप्त होते रहे हैं। सल्फी बस्तर में ताड़ी प्रजाति के वृक्षों से मिलती है और धूप निकलने से पूर्व उसका सेवन पौष्टिक होता है। जैसे-जैसे धूप बढ़ने लगती है, किसी पात्र में रखी सल्फी में मादकता आने लगती है। इसी

प्रकार महुआ वृक्ष के फूलों के वाष्पीकरण से जो मदिरा बनती है, वह वनवासियों के दैनंदिन उपयोग का पेय है। भोजन के लिए घने वनों में आखेट तथा वृक्षों के कंद, मूल एवं फल पर उनकी निर्भरता रहती है। चिरौंजी, इमली और गोंद उनकी आजीविका के माध्यम रहे हैं। वनवासी खेती केवल अपनी सीमित आवश्यकता के अनुसार किया करते थे। झूम कृषि उन दिनों प्रचलन में थी। सारे वनवासियों का वनोपज पर सामूहिक स्वामित्व हुआ करता था। संग्रह की प्रवृत्ति भी उनमें नहीं थी। इसलिए जब उनकी उदरपूर्ति के माध्यम पर भी ब्रिटिश राज के जी-हुजूरों द्वारा कब्जा किया जाने लगा तो उनमें उफनते आक्रोश ने १९१० में विस्फोट कर दिया। उसे 'बस्तर का भूमकाल' कहा गया। यह जलियाँवाला बाग गोलीकांड से लगभग एक दशक पूर्व उससे कई गुणा अधिक संहारक नरसंहार था। प्रो. निर्मल श्रीवास्तव के एक शोध-प्रबंध के अनुसार— आधी रात के अँधियारे में निहत्थे आदिवासियों की आवाज हमेशा के लिए खामोश कर देने के ध्येय से बड़ी संख्या में आदिवासियों पर गोलियाँ बरसाई गईं। जब ब्रिटिश फौज की गोलियाँ खत्म हो गईं तो विप्लवी आदिवासियों के गले में रस्सी के फंदे डालकर उन्हें जगदलपुर के मुख्य बाजार में वृक्षों पर लटका दिया गया। इतने विकराल जनसंहार को केवल कर्नल गेयर के मौखिक आदेश पर ही अंजाम दे दिया गया। छत्तीसगढ़ के महाविद्यालय के इतिहास के प्राध्यापकों के शोध-प्रबंधों में बस्तर के भूमकाल के विस्तृत अध्ययन अवश्य मिलते हैं, परंतु न तो उनमें एकरूपता है और न ही प्रामाणिकता। अनेक किंवदंतियों को उन शोध-प्रबंधों में सम्मिलित कर दिया गया। १९१० के भूमकाल अर्थात् बस्तर के उस भूकंप में गुंडाधूर नामक एक चरित्र का बहुत शौर्यपूर्ण वृत्तांत मिलता है, परंतु उस चरित्र की ऐतिहासिक पात्रता संदिग्ध रही है। इतिहास के कुछ गंभीर विद्वान् उसे मात्र एक मिथकीय व्यक्तित्व मानते हैं। परंतु कई बार मिथक भी ऐतिहासिक तथ्य में ढल जाते हैं। १८५७ से १९१० तक बस्तर से लगी काँकेर रियासत में गेंदसिंह नाम के एक क्रांतिवीर को फाँसी दिए जाने का प्रमाण अवश्य मिलता है। वीर नारायण सिंह की भाँति उन्हें भी इतिहास सम्मत एक वनवासी स्वातंत्र्य वीर प्रामाणिकता के साथ माना गया है।

छत्तीसगढ़ के नगरीय क्षेत्रों की भाँति ग्रामीण एवं वनांचल में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का बड़ा प्रभाव रहा। सन् १९२० में पं. माधवराव सप्रे के संपादन में दूरस्थ पेंड्रा रोड में संपादित और रायपुर से मुद्रित-प्रकाशित 'छत्तीसगढ़ मित्र' के माध्यम से भी स्वातंत्र्य चेतना का विकास हुआ। प्रायः प्रत्येक नगर तथा कस्बे में गणेशोत्सव के आयोजन होने लगे।

छत्तीसगढ़ के नगरीय क्षेत्रों की भाँति ग्रामीण एवं वनांचल में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का बड़ा प्रभाव रहा। सन् १९२० में पं. माधवराव सप्रे के संपादन में दूरस्थ पेंड्रा रोड में संपादित और रायपुर से मुद्रित-प्रकाशित 'छत्तीसगढ़ मित्र' के माध्यम से भी स्वातंत्र्य चेतना का विकास हुआ। प्राय: प्रत्येक नगर तथा कस्बे में गणेशोत्सव के आयोजन होने लगे। वे आयोजन धार्मिक आस्था से अधिक स्वातंत्र्य चेतना को महत्त्व देते थे। स्वाधीनता के महत्त्व और राष्ट्रभक्ति पर आधारित व्याख्यान एवं वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का देहाती क्षेत्रों में भी आयोजन होता था। उनमें सभी धर्मों के अनुयायियों की सहभागिता हुआ करती थी। छत्तीसगढ़ अंचल में लोकमान्य के अनुयायियों की संख्या अधिक थी। महात्मा गांधी के प्रभाव का विस्तार तो लोकमान्य तिलक के देहावसान के बाद होना शुरू हुआ था। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि महात्माजी के स्वदेशी आंदोलन के कुछ वर्ष पहले ही तिलक के अनुयायियों ने स्वदेशी को अपनाने और विदेशी के बहिष्कार का अभियान आरंभ कर दिया था। १९०६ में पं. माधवराव सप्रे का 'बॉयकाट और स्वदेशी' शीर्षक से एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ था। पं. वामनराव लाखे ने सहकारिता आंदोलन के माध्यम से भी इसका प्रचार किया था। पं. रामदयाल तिवारी ने लगभग ८५० पृष्ठों का ग्रंथ 'गांधी मीमांसा' लिखा, जिसमें गांधीवाद पर कुछ चुभते हुए प्रश्न भी उठाए गए थे। पं. रविशंकर शुक्ल जो सी.पी. एवं बरार के मुख्यमंत्री बने थे, शुरू में तिलक के ही अनुयायी थे। कालांतर में जब गांधीजी अहिंसक स्वतंत्रता आंदोलन के राष्ट्रीय नेता हो गए तो शुक्लजी गांधीवादी हो गए। शुक्लजी प्रखर राष्ट्रवादी होने के नाते सरदार वल्लभभाई पटेल के भी विश्वासपात्र थे। हैदराबाद के निजाम की अलगाववादी गतिविधियों के प्रति शुक्लजी ने ही सर्वप्रथम सरदार पटेल को विश्वस्त सूचनाएँ दी थीं। छत्तीसगढ़ में श्रमिक आंदोलन के प्रणेता ठाकुर प्यारेलाल सिंह के सार्वजनिक जीवन में शुचिता के आदर्श एवं अनुकरणीय आचरण ने जन-जन को प्रेरित-प्रभावित किया। मध्य प्रदेश राज्य निर्माण से पूर्व जब सी.पी. एवं बरार प्रांत था और उसकी राजधानी नागपुर थी तो उसमें छत्तीसगढ़ की तीन विभूतियों ने महत्त्वपूर्ण दायित्व सँभाले। मुख्यमंत्री पं. रविशंकर शुक्ल और नेता प्रतिपक्ष ठाकुर प्यारेलाल सिंह रायपुर नगर से थे। विधानसभा अध्यक्ष दुर्ग के दाऊ घनश्याम सिंह गुप्त थे। विधिवेत्ता होने के साथ ही भारत विभाजन से पूर्व गुप्तजी आर्य समाज के प्रतिष्ठित नेता थे। सिंध के हैदराबाद में हुए आर्य समाज के अखिल भारतीय सम्मेलन में उन्हें राष्ट्रीय महामंत्री का दायित्व सौंपा गया था।

फिर से एक दृष्टि १९१९-२० के कालखंड पर डालें तो छत्तीसगढ़ में वनवासियों और किसानों के हितों की रक्षा को लेकर अनेक प्रखर आंदोलन हुए। वनवासियों को अपने कच्चे-पक्के छोटे-छोटे आवास बनाने और दैनंदिन गृहकार्य में प्रयुक्त ईंधन एवं लघु वनोपज के लिए जंगलों पर निर्भर रहना पड़ता । मूलत: वे आदिवासी ही वनों के संरक्षक और स्वामी थे। परंतु ब्रिटिश सत्ता ने वनों पर कब्जा करके उन्हें उनके बुनियादी अधिकारों से ही वंचित कर दिया। उसके विरुद्ध आदिवासियों में असंतोष पनपने लगा। १९२० के आरंभ में उसने संगठित सत्याग्रह का रूप ले लिया। सर्वप्रथम रायपुर की तत्कालीन धमतरी तहसील के नगरी-

सिहावा के जंगल सत्याग्रह ने समूचे राष्ट्र का ध्यान आकृष्ट किया। उसके साथ ही कृषकों से नहर के पानी के उपयोग भी शासन ने भारी-भरकम कर लगा दिया। उसके विरुद्ध भी सत्याग्रह शुरू हो गया। पं. सुंदरलाल शर्मा के आमंत्रण पर महात्मा गांधी दो बार छत्तीसगढ़ पहुँचे और उन्होंने सत्याग्रहियों का समर्थन करके उसे एक राष्ट्रीय महत्त्व दे दिया। इनके साथ ही पं. सुंदरलाल शर्मा ने दलितोद्धार के लिए सार्थक पहल भगवान राजीव लोचन की नगरी राजिम में एक अभियान शुरू किया। दलितों को मंदिरों में प्रवेश का अधिकार दिलाने की मुहिम की शुरुआत उन्होंने राजिम के श्रीराम मंदिर में एक जत्थे को दर्शन तथा पूजा-उपासना के लिए प्रवेश दिलाने से की। पं. सुंदरलाल शर्मा ने एक दलित जत्थे का यज्ञोपवीत संस्कार करके अपनी अगुवाई में उन्हें श्रीराम मंदिर में प्रवेश दिलाया। सदियों पुरानी वर्जना को तोड़ने में उन्होंने सफलता पाई। महात्मा गांधी ने अपने छत्तीसगढ़ प्रवास में उस सार्थक दलितोद्धार अभियान की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। उसे संपूर्ण भारत के लिए एक अनुकरणीय दृष्टांत बताया।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से आजादी मिलने तक छत्तीसगढ़ का जो ऐतिहासिक अवदान रहा है, उसका वर्णन एक पुस्तक का विषय है। सरगुजा से लेकर बस्तर तक विस्तृत वनवासी क्षेत्रों में अनेक स्वातंत्र्य वीरों ने अपने प्राणों की आहुति दी। उन सबके वर्णन और नामोल्लेख के लिए यह आलेख पर्याप्त नहीं हो सकता। तत्संबंधी जानकारी यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। उसे जुटाने और प्रामाणिकता के साथ लिखने-लिखवाने का कार्य शासन तथा विश्वविद्यालयों को करना चाहिए। उस महान् राष्ट्रीय आंदोलन के साक्षी और उसमें सक्रिय भागीदारी करनेवाले अब गिने-चुने स्वातंत्र्य सेनानी ही शेष रह गए हैं। वे अपने जीवन के नवमें दशक के आसपास हैं। उनमें से दो से सतत संवाद करते रहने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को एक पत्रकार के रूप में मिलता रहा है। अब भी उनसे भेंट का सुअवसर मिल जाता है। उनमें दो नाम प्रमुख हैं—श्री केयूर भूषण और डॉ. महादेव प्रसाद पांडेय। केयूर भूषणजी दो बार रायपुर से लोकसभा सदस्य रहे। सार्वजनिक जीवन में व्यक्ति कैसे पवित्र रह सकता है, इसके साक्षात् उदाहरण हैं श्री केयूर भूषण। ७५ वर्ष की आयु तक केयूर भूषणजी ने निजी वाहन के रूप में केवल साइकिल का ही उपयोग किया। अभी भी वे यथाशक्ति सार्वजनिक हित के आंदोलनों में भागीदारी करते हैं। उनके पास स्मृतियों का विपुल भंडार है, जिसे यथाशीघ्र सुरक्षित कर लेना चाहिए। यही पूँजी डॉ. महादेव प्रसाद पांडेय की स्मृतियों में भी सुरक्षित है।

१५२-ए, समता कॉलोनी
रायपुर-४९२००१ (छ.ग.)
दूरभाष : ९४२५२०२३३६

रवींद्रनाथ सान्याल

● **श्रीकृष्ण 'सरल'**

बंगाल की 'अनुशीलन समिति' की एक शाखा उत्तर प्रदेश के बनारस नगर में भी स्थापित की गई। ऊपरी तौर पर यह शाखा अपने सदस्यों में नैतिकता का ही प्रसार करती थी; लेकिन आंतरिक रूप से यह लोगों को अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध क्रांति के लिए तैयार कर रही थी।

काली पूजा के समय वहाँ एक सफेद कुम्हड़ा (पेठा) काटने की प्रथा डाली गई। सफेद कुम्हड़ा गोरी चमड़ीवाले अंग्रेजों का प्रतीक था। उसको काटने का अर्थ था कि हम लोग जब अंग्रेजों को मार-काटकर यहाँ से भगाएँगे, तभी भारत आजाद हो सकेगा।

रासबिहारी बोस के लेफ्टिनेंट शचींद्रनाथ सान्याल ने बनारस में क्रांति के क्षेत्र में बहुत अच्छा काम किया। बनारस की सैनिक छावनियों को भी क्रांति के लिए तैयार कर लिया गया।

शचींद्रनाथ सान्याल चार भाई थे और वे चारों ही क्रांतिकारी थे। शचींद्रनाथ से छोटे भाई का नाम रवींद्रनाथ सान्याल था। रवींद्रनाथ भी अपने बड़े भाई शचींद्रनाथ के पदचिह्नों पर चलकर क्रांति के क्षेत्र में कूद पड़े। उन्होंने अपने सम वयस्क साथियों के साथ छावनियों में घूमना प्रारंभ कर दिया और सैनिकों को क्रांति के लिए उकसाने लगे। अखिल भारतीय स्तर पर क्रांति की तैयारी कर ली गई। यह देश का दुर्भाग्य था कि एक गद्दार ने पुलिस को इसकी सूचना दे दी और विस्फोट के पहले ही क्रांति का दमन कर दिया गया।

'बनारस षड्यंत्र कांड' के नाम से एक मुकदमा चला, जिसके अंतर्गत क्रांतिकारियों को लंबी-लंबी सजाएँ दी गईं। रवींद्रनाथ सान्याल ने डेढ़ वर्ष तक कच्ची जेल भुगती और इसके पश्चात् उन्हें छोड़ दिया गया। तुरंत ही उन्हें 'भारत रक्षा कानून' के अंतर्गत गिरफ्तार करके फिर जेल में डाल दिया गया और कई वर्ष उनको नजरबंद रखा गया। जेल से छूटने के बाद रवींद्रनाथ सान्याल ने जन-जागृति को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया।

रवींद्रनाथ से छोटे भाई जितेंद्रनाथ सान्याल ने सरदार भगतसिंह एवं चंद्रशेखर आजाद के साथ काम किया और सबसे छोटे भाई भूपेंद्रनाथ सान्याल काकोरी कांड में सम्मिलित रहे। इस प्रकार एक पूरे परिवार ने क्रांति के क्षेत्र में अपना भरपूर योगदान दिया।

आजादी की लड़ाई में झारखंड का योगदान

● अनुज कुमार सिन्हा

झारखंड वह क्षेत्र रहा है, जिसने कभी भी अँगरेजों की अधीनता स्वीकार नहीं की। उनके सामने घुटने नहीं टेके। अँगरेजों के खिलाफ सबसे पहले अगर किसी ने विद्रोह किया तो वे थे झारखंड-बंगाल और ओड़िशा के आदिवासी। इस क्षेत्र के आदिवासियों ने अँगरेजों के खिलाफ लंबा संघर्ष किया। पहले ये सारे क्षेत्र यानी बिहार, ओड़िशा और झारखंड बंगाल के अधीन ही था। भले ही यह माना जाता है कि आजादी का पहला बिगुल १८५७ में फूँका गया था, लेकिन आदिवासियों ने इसके बहुत पहले से ही अँगरेजों के खिलाफ मोरचा ले लिया था। इस पर इतिहासकारों में विवाद रहा है कि आदिवासियों के उन विद्रोहों को भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा माना जाए या नहीं। इतिहासकार मानें या नहीं, लेकिन इतना तय है कि आदिवासियों के इन्हीं विद्रोहों के बल पर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने का आधार तैयार हुआ था।

प्लासी के युद्ध में अँगरेजों से मिली हार के बाद मुगल शासकों ने १२ अगस्त, १७६५ को बंगाल, बिहार और ओड़िशा की दीवानी ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप दी थी। इस क्षेत्र के जमींदार अपने को स्वतंत्र मानते थे। अपने क्षेत्र में रैयतों के साथ संबंध की उनकी अपनी व्यवस्था थी। अधिकांश रैयत आदिवासी ही थे। जैसे ही कंपनी को लगान वसूलने का अधिकार मिला, ईस्ट इंडिया कंपनी ने जमींदारों पर लगान वसूली के लिए दबाव बनाना आरंभ कर दिया। इसका सीधा असर रैयतों पर पड़ा। सन् १७६६ में यानी दीवानी मिलने के एक साल बाद ही अँगरेज लगान वसूलने के लिए दबाव बनाने लगे। यह किसी को स्वीकार नहीं था। वर्तमान झारखंड का पड़ोसी क्षेत्र है मेदिनीपुर। यह बंगाल में पड़ता है। १७६६ में ईस्ट इंडिया कंपनी ने मेदिनीपुर जिले के उत्तर और पश्चिम भाग के जंगलमहाल में सेना भेजकर वहाँ के जमींदारों को लगान देने के लिए दबाव दिया। इसके बाद पूरे क्षेत्र में विद्रोह फैल गया। इस (बिहार, झारखंड, बंगाल) इलाके में इसे पहला विद्रोह माना गया। कंपनी के रेजिडेंट ग्राहम ने अपने लेफ्टिनेंट फर्ग्युसन को सेना के माध्यम से यह काम कराने का जिम्मा सौंपा था। उसने अपनी ताकत से कई जमींदारों को अपनी अधीनता स्वीकार करने में सफलता हासिल कर ली।

झारखंड क्षेत्र में अँगरेजों का प्रवेश मेदिनीपुर के रास्ते ही हुआ। मार्च १७६७ में फर्ग्युसन ने घाटशिला (वर्तमान में पूर्वी सिंहभूम, झारखंड का हिस्सा) पर चढ़ाई कर दी। धालभूम के राजा का यह क्षेत्र था,

'प्रभात खबर' में वरिष्ठ संपादक। 'शंकर नियोगी पत्रकारिता पुरस्कार', 'झारखंड रत्न' समेत कई अन्य सम्मान-पुरस्कार। 'झारखंड आंदोलन का दस्तावेज, शोषण, संघर्ष और शहादत' पुस्तक प्रकाशित।

जिन्होंने अँगरेजों की अधीनता स्वीकार नहीं की। उनके पास दो हजार सैनिक थे, जिन्होंने कंपनी सेना का विरोध किया। लेकिन अँगरेजी फौज के पास ज्यादा साधन थे। इसके आगे राजा की सेना नहीं टिक सकी। लेकिन राजा की सेना जंगलों में छिपकर कंपनी के सैनिकों पर हमला करती रही। छापामार युद्ध ही विकल्प था। बड़े और ताकतवर हथियारों के बल पर फर्ग्युसन ने घाटशिला में राजा के महल पर कब्जा कर लिया। महल छोड़कर जाते वक्त राजा और उनके सैनिकों ने उसमें आग लगा दी, ताकि हथियार अँगरेजों के हाथ में न आ सकें। बाद में राजा पकड़े गए। इस विद्रोह को 'धालभूम का विद्रोह' के नाम से जाना जाता है।

यह आदिवासी बहुल इलाका रहा है। आदिवासियों ने जंगल काटकर, उसे साफ कर इस इलाके को रहने लायक बनाया था। इसलिए जल, जंगल और जमीन पर वे अपने हक मानते हैं। अँगरेजों के समय में भी यही था। आरंभ के दौर में आदिवासियों को इससे कोई मतलब नहीं था कि कौन शासन कर रहा है। उनकी अपनी परंपरा और व्यवस्था थी, लेकिन जब स्थायी बंदोबस्ती के बाद अँगरेजों ने जमींदारों, महाजनों के माध्यम से उन पर लगान वसूलने के लिए जुर्म ढहाए तो उन्होंने विद्रोह कर दिया। अँगरेजों ने नए-नए कानून बनाकर आदिवासियों की जमीन पर कब्जा कर उसे जमींदारों को सौंप दिया था। उन दिनों यह पूरा इलाका एक था। इसलिए जो भी विद्रोह हुए, भले ही वह अभी बंगाल में हो, लेकिन यह विद्रोह बिहार-झारखंड तक फैला। पहाड़िया विद्रोह इसका उदाहरण है। १७८०-८५ के बीच संथाल-परगना की धरती पर तिलका माझी ने विद्रोह किया। जब संथालों की जमीन पर जबरन कब्जा होने लगा, उनकी फसल काटी जाने लगी तो तिलका माझी ने आदिवासियों को एकजुट किया। अपनी सेना बनाई और अँगरेजों पर हमला करना शुरू कर दिया। वे तेज-तर्रार और अँगरेजों के खजानों को लूटकर गरीबों में बाँटते

थे। इससे उनका समर्थन बढ़ता गया। अँगरेज किसी भी हाल में उन्हें रास्ते से हटाना चाहते थे।

जनरल आयर बुक की सेना को तिलका माझी को मारने की जिम्मेवारी दी गई थी। तिलका माझी छापामार युद्ध में जुट गए थे। एक अँगरेज अफसर क्लीवलैंड जब तिलका माझी को पकड़ने के लिए घोड़े से जा रहा था, उसी समय एक पेड़ पर चढ़कर तिलका माझी ने तीर से क्लीवलैंड को मार डाला। किसी बड़े अँगरेज अफसर के मारे जाने की यह सबसे बड़ी घटना थी। इससे अँगरेजों में भय छा गया। तिलका माझी को पकड़ने के लिए पूरी फौज लगा दी गई। अँगरेजों ने तिलका माझी और साथी आदिवासियों को घेर लिया और उन पर हमला कर दिया। तिलका माझी के चार भाई, पत्नी और साथी समेत कई लोग मारे गए, लेकिन तिलका माझी बच निकले। बाद में अँगरेजों ने उन्हें जिंदा पकड़ लिया। तिलका माझी के खिलाफ अँगरेजों में कितना आक्रोश था, इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि गिरफ्तारी के बाद उन्हें घोड़े से घसीटकर पूरे इलाके में घुमाया गया, ताकि लोगों में दहशत पैदा हो सके। बाद में उन्हें अँगरेजों ने फाँसी पर लटका दिया। अँगरेजों को सबक सिखानेवाले तिलका माझी ने जो बुनियाद रखी, जो संघर्ष किया, उसे आज भी सम्मान के साथ याद किया जाता है।

तिलका माझी के विद्रोह के बाद आदिवासी चुप नहीं बैठे। जमींदारों, अँगरेजों और महाजनों द्वारा अपनाई गई नीतियों से उनके अंदर आग जलती रही। जब-जब मौका मिला, पारंपरिक हथियारों से उन्होंने अँगरेजों के खिलाफ संघर्ष किया। इनमें तमाड़ का मुंडा विद्रोह (१७९५-१८००), चुआड़ विद्रोह (१७९८), मानभूम का भूमिज विद्रोह (१७९८-९९), पलामू का चेरो विद्रोह (१८००-१८०२), हो विद्रोह (८१२१), उराँव विद्रोह (१८३०-३२), कोल विद्रोह (१८३१-३२), खेरवार विद्रोह (१८३२-३३), गंगा नारायण सिंह की अगुवाई में भूमिज विद्रोह (१८३२-३३), संताल हुल (१८५५-५६), भागीरथ माझी के नेतृत्व में खेरवार विद्रोह (१८७४), खेरवार विद्रोह (१८८१), सरदार आंदोलन (१८५८-८१) और बिरसा मुंडा की अगुवाई में मुंडा विद्रोह (१८९५-१९००) प्रमुख हैं। इसके अलावा छोटे-छोटे कई और विद्रोह भी हुए। दुनिया के इतिहास में आदिवासियों के इतने लंबे संघर्ष का कहीं जिक्र नहीं मिलता।

अँगरेजों के खिलाफ आदिवासियों के संघर्ष का मूल कारण जमीन और लगान था। राँची के आसपास के मुंडा (जनजाति) लंबे समय से लड़ रहे थे, लेकिन उनकी समस्याओं का कोई हल नहीं निकल रहा था। अँगरेज, महाजन और अनेक जमींदार सब मिल गए थे। इसी बीच एक महानायक बिरसा मुंडा तेजी से उभरे और लड़ाई को अपने हाथ में ले लिया। तमाड़, खूँटी, बंदगाँव के पूरे इलाके में मुंडाओं ने जमींदारों और अँगरेजों के खिलाफ लड़ाई आरंभ कर दी। १८९५ से १९०० तक बिरसा मुंडा से अँगरेज तबाह हो चुके थे। बिरसा के पास बड़ी संख्या में उनके अनुयायी थे।

सन् १८०० में पलामू में भूषण सिंह (चेरो) के नेतृत्व में पलामू रियासत के लोगों ने विद्रोह कर दिया था। इसे दबाने के लिए अँगरेज सैनिकों को बुलाया गया था। पलामू और सरगुजा विद्रोह का केंद्र बना रहा। बाद में भूषण सिंह पकड़े गए और १८०२ में उन्हें फाँसी दे दी गई। इस विद्रोह को 'चेरो विद्रोह' के नाम से जाना जाता है। अँगरेज और उनके समर्थक जमींदार सबसे ज्यादा कोल विद्रोह से सहमे थे। १८३१ में राँची और सिंहभूम के मुंडा और हो आदिवासियों ने अँगरेज समर्थक जमींदारों के खिलाफ मोरचा खोल दिया था। अँगरेज ऐसे जमींदारों के समर्थन में आगे आए थे। रामगढ़ बटालियन की सहायता के लिए अँगरेजों ने बनारस, बैरकपुर और दानापुर से फौज मँगाई गई थी, ताकि कोल विद्रोह को दबाया जा सके। कोल विद्रोह की अगुवाई बुधु भगत ने की थी। अँगरेजों के खिलाफ उन्होंने बहादुरी से लड़ाई लड़ी। इस लड़ाई में खुद बुधु भगत, उनके बेटे-भतीजे समेत उनके लगभग १५० अनुयायी मारे गए।

सन् १८५५-५६ में संताल परगना के भोगनाडीह में संतालों ने सिदू-कान्हू की अगुवाई में जो विद्रोह किया था, उसने अँगरेज शासन को हिलाकर रख दिया था। जब संतालों की जमीन पर लोगों ने कब्जा करना आरंभ कर दिया, जमीन का लगान कई गुना बढ़ा दिया, जबरन वसूली होने लगी, संतालों को प्रताड़ित किया जाने लगा तो संतालों ने इसका विरोध किया। ३० जून, १८५५ को भोगनाडीह में दस हजार संताल जुटे। ये सभी संताल परगना के अलावा हजारीबाग, पलामू और बंगाल के कुछ क्षेत्रों से आए थे। इन्होंने अँगरेजों के खिलाफ युद्ध का बिगुल फूँक दिया और कोलकाता कूच करने का फैसला किया। यह लड़ाई लंबी चली। इस युद्ध का क्षेत्र बहुत ही बड़ा था और हजारीबाग तक फैला हुआ था। इस पूरी लड़ाई की अगुवाई चार भाई सिदू, कान्हू, चाँद और भैरव कर रहे थे। इस संघर्ष में संतालों ने कई अँगरेजों को मार डाला। पूरी लड़ाई में २५ हजार से भी ज्यादा संताल मारे गए। पहले यह लड़ाई पहाड़ी क्षेत्रों में लड़ी जा रही थी। बाद में संताल मैदानी क्षेत्र में उतरकर अँगरेजों से लड़ाई लड़ने लगे। इसी संघर्ष में कान्हू अँगरेजों की गोली से शहीद हो गए। सिदू उस समय तो अँगरेजों से बच निकले, पर बाद में पकड़े गए। अँगरेजों ने उन्हें फाँसी दे दी। धीरे-धीरे यह आंदोलन कमजोर हो गया। उधर तेलंगा खड़िया भी लंबे समय से अँगरेजों और जमींदारों के खिलाफ संघर्ष कर रहे थे। १८८० के आसपास यह संघर्ष अपने चरम पर था। अँगरेज इस आंदोलन को दबाना चाहते थे। १८८० अप्रैल माह में तेलंगा खड़िया बोधन सिंह नामक एक गद्दार की गोलियों के शिकार हो गए। उन्हें पीछे से गोली मारी गई थी।

अँगरेजों के खिलाफ आदिवासियों के संघर्ष का मूल कारण जमीन और लगान था। राँची के आसपास के मुंडा (जनजाति) लंबे समय से लड़ रहे थे, लेकिन उनकी समस्याओं का कोई हल नहीं निकल रहा था। अँगरेज, महाजन और अनेक जमींदार सब मिल गए थे। इसी बीच एक महानायक बिरसा मुंडा तेजी से उभरे और लड़ाई को अपने हाथ में ले

लिया। तमाड़, खूँटी, बंदगाँव के पूरे इलाके में मुंडाओं ने जमींदारों और अँगरेजों के खिलाफ लड़ाई आरंभ कर दी। १८९५ से १९०० तक बिरसा मुंडा से अँगरेज तबाह हो चुके थे। बिरसा के पास बड़ी संख्या में उनके अनुयायी थे। १८९७ में एक बार वे पकड़ लिये गए थे, पर बाद में रिहा कर दिए गए। रिहा होने के बाद बिरसा मुंडा ने फिर से अपने समर्थकों को एकजुट किया और अँगरेजों व उनके समर्थक जमींदारों पर धावा बोला। कई पुलिसकर्मी मारे गए। बिरसा के अनुयायियों ने थानों पर हमला करना आरंभ कर दिया था। ९ जनवरी, १९०० को सैल रकाब पर अँगरेजों और बिरसा के समर्थकों के बीच संघर्ष हुआ। बिरसा के अनुयायी पहाड़ पर थे। नीचे से अँगरेजों ने घेर लिया था। बिरसा के समर्थक इस मुठभेड़ में मारे गए, लेकिन बिरसा मुंडा बच निकले। पहाड़ों-जंगलों के बीच से वे सिंहभूम पहुँच गए। इस बीच अँगरेज सरकार ने बिरसा मुंडा पर इनाम घोषित कर दिया गया। इसी लोभ में कुछ गद्दारों ने फरवरी १९०० में बिरसा मुंडा के बारे में सूचना दे दी। बाद में उन्हें सिंहभूम के एक गाँव से गिरफ्तार कर लिया गया। राँची जेल लाया गया। बिरसा मुंडा को देखने के लिए सड़क के दोनों ओर भीड़ लग गई थी। राँची जेल में ९ जून, १९०० को उनकी मौत हो गई। यह बताया गया कि बिरसा मुंडा को हैजा हो गया था। उनकी मौत के कारणों पर आज तक सवाल उठता रहा है। राँची में ही कोकर के पास उन्हें दफनाया गया, जहाँ उनकी समाधि बनाई गई है। बिरसा मुंडा जब शहीद हुए तो सिर्फ २५ साल के थे।

सन् १८५७ में अँगरेजों के खिलाफ विद्रोह में राँची, हजारीबाग, सिंहभूम और पलामू में ज्यादा असर दिखा। झारखंड क्षेत्र में सबसे पहला विद्रोह देवघर के पास रोहिनी में हुआ। रोहिनी एक गाँव था। वह रेजीमेंट का हेडक्वार्टर भी था। वहीं पर बगावत हुई। १२ जून, १८५७ को रोहिनी में सैनिकों ने मेजर मैकडोनाल्ड, लेफ्टिनेंट सर नार्मन लेस्ली और असिस्टेंट सर्जन ग्रांट पर हमला कर लेस्ली को मार डाला। बाकी अँगरेज अफसर घायल हो गए। इसके बाद फौज के बल पर मैकडोनाल्ड ने विद्रोह को दबा दिया और हमला करनेवाले तीन सैनिकों को क्रूरता से मार डाला। इसके बाद रोहिनी से हेडक्वार्टर को भागलपुर स्थानांतरित कर दिया गया। यह विद्रोह हजारीबाग की ओर फैलता गया। ३० जुलाई, १८५७ को हजारीबाग के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। विद्रोही सैनिकों ने अँगरेज अफसरों के घरों में आग लगा दी, उनके घोड़ों को लूटकर ले गए। हजारीबाग जेल पर हमला कर कैदियों को छुड़ा लिया। सुरेंद्र शाही इस विद्रोह का नेतृत्व कर रहे थे। हजारीबाग के तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर मेजर सिंपसन और डॉ. डेलप्रेट उस समय सीतागढ़ा में लीबर्ट के पास थे। यह हजारीबाग शहर से सिर्फ तीन किलोमीटर दूर था। विद्रोहियों की कारर्वाई की खबर मिलते ही ये सभी जंगल के रास्ते बगोदर भाग गए और वहाँ शरण ली। जी.टी. रोड पर स्थित बगोदर से इन अँगरेज अफसरों ने कलकत्ता खबर कर सहायता माँगी। इस विद्रोह को दबाने के लिए ग्राहम को हजारीबाग भेजा गया था। कर्नल डाल्टन भी दूसरे रास्ते से हजारीबाग पहुँच गया था। उन दिनों रामगढ़ बटालियन का हेडक्वार्टर डोरंडा, राँची में ही था। ग्राहम की कंपनी में शामिल सैनिकों ने जमादार माधब सिंह और सूबेदार नादिर अली खाँ के नेतृत्व में बगावत कर दी और राँची लौट आए। यहाँ उन्हें डोरंडा में जयमंगल पांडेय का साथ मिला। विद्रोहियों ने राँची में कमिश्नर की कोठी को फूँक दिया। २ अगस्त, १८५७ को राँची और डोरंडा पर विद्रोहियों का कब्जा हो गया था। डोरंडा के सैनिक भी विद्रोहियों के साथ मिल गए थे।

चुटुपालू घाटी में उमरांव सिंह और शेख भिखारी ने नाकेबंदी कर दी थी, ताकि राँची से अँगरेज अफसर हजारीबाग की ओर न जा सकें।

अपनी ताकत को और मजबूत करने के लिए विद्रोहियों ने रणनीति बनाई। इन्होंने ठाकुर विश्वनाथ शाही को सर्वोच्च अधिकारी और पांडेय गणपत राय को प्रधान सेनापति चुन लिया। विद्रोही अब चतरा के रास्ते शेरघाटी की ओर बढ़ना चाह रहे थे। चतरा में जयमंगल पांडेय और नादिर अली खाँ की सेना के साथ अँगरेजों का युद्ध हुआ। जयमंगल पांडेय और नादिर अली बंदी बना लिये गए। उन्हें ४ अक्तूबर, १८५७ को चतरा में ही फाँसी दे दी गई। उमरांव सिंह और शेख भिखारी लगातार युद्ध करते जा रहे थे। बाद में वे दोनों भी पकड़े गए। उन्हें ८ जनवरी, १८५८ को चुटुपालू घाटी में एक वट वृक्ष पर फाँसी दे दी गई। मार्च आते-आते विश्वनाथ शाही को भी अँगरेजों ने गिरफ्तार कर लिया। कुछ दिनों के बाद पांडेय गणपत राय भी पकड़े गए। इन दोनों को राँची में जिला स्कूल के पास फाँसी दे दी गई। आजादी की लड़ाई में सिंहभूम भी पीछे नहीं था। वहाँ ३ सितंबर, १८५८ को भगवान सिंह और रामनाथ सिंह के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। इन दोनों की अगुवाई में विद्रोहियों ने सरकारी खजाना लूट लिया, जेल से कैदियों को रिहा कराया और ये सभी राँची की ओर बढ़े। अँगरेजों के खिलाफ लड़ने में पोड़ाहाट के राजा अर्जुन सिंह ने इन विद्रोहियों का पूरा साथ दिया। नदी पार कराने के लिए राजा ने अपना हाथी इन्हें दिया। पोड़ाहाट के आदिवासी भी अपने राजा के साथ थे। अँगरेजों ने पोड़ाहाट के राजा अर्जुन सिंह को बागी करार देते हुए उन पर एक हजार रुपए का इनाम घोषित कर दिया। अँगरेजों ने उनके गढ़ को कब्जे में ले लिया। महल के आसपास के घरों को जला दिया गया। पोड़ाहाट पर अँगरेजों का कब्जा होने के बाद १६ फरवरी, १८५९ को अर्जुन सिंह ने डाल्टन के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। इसी के साथ वहाँ विद्रोह की आग ठंडी पड़ गई। पलामू में नीलांबर-पीतांबर नामक दो भाइयों ने विद्रोह का नेतृत्व किया। दोनों ने २५ सितंबर, १८५७ को अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। धीरे-धीरे पलामू के चेरो और खरवार जाति के लोग विद्रोह में शामिल होते गए। इन्होंने पहले शाहपुर

थाना को लूटा, फिर चैनपुर गढ़ पर हमला किया। रंका पर हमला किया। पाँच हजार विद्रोहियों ने कोल खदान में आग लगा दी। इस विद्रोह को दबाने के लिए कप्तान नेशन और ग्राहम ने काररवाई की। लगातार हमले किए। आपस में फूट पैदा की। इससे धीरे-धीरे विद्रोह कमजोर होता गया। एक दिन नीलांबर-पीतांबर एक समारोह में थे, किसी ने अँगरेजों को सूचना दे दी। दोनों भाइयों को गिरफ्तार कर लिया और बाद में फाँसी दे दी गई। इस विद्रोह के असफल रहने के बावजूद अँगरेजों, जमींदारों महाजनों के खिलाफ आदिवासियों का संघर्ष जारी रहा। इसमें बिरसा मुंडा का आंदोलन भी शामिल है। बिरसा मुंडा की मौत के बाद यानी २०वीं शताब्दी में आंदोलन-विद्रोह का तरीका बदल गया।

२०वीं शताब्दी में महात्मा गांधी, राजेंद्र प्रसाद, सुभाष चंद बोस जैसे बड़े नेताओं का झारखंड क्षेत्र में आना-जाना आरंभ हो गया था। टाटा कंपनी में यूनियन के कारण भी इन बड़े नेताओं की गतिविधियाँ बढ़ी थीं। टाना भगतो ने गांधी के तरीके से अहिंसक आंदोलन आरंभ कर दिया था। संताल परगना में लाल बाबा और पैका मुर्मू आंदोलन की अगुवाई कर रहे थे। कलकत्ता से नजदीक रहने के कारण राँची तो बंगाल के क्रांतिकारियों की शरणस्थली बन गई थी। मौलाना अबुल कलाम आजाद राँची में कई साल तक रहे थे। ४ जून, १९१७ को पहली बार महात्मा गांधी राँची आए थे। वे यहाँ ले गवर्नर एडवर्ड गेट से मिले थे। राँची में उन दिनों गांधीजी श्याम किशोर सहाय के घर ठहरे थे। जब भी महात्मा गांधी ने कोई आह्वान किया, छोटानागपुर-संताल परगना क्षेत्र उसमें भाग लेने से पीछे नहीं रहा। जब महात्मा गांधी ने नमक कानून तोड़ने का आह्वान किया तो इस क्षेत्र के दो सौ लोगों ने ५० स्थानों पर नमक बनाया। सविनय अवज्ञा आंदोलन में हजारीबाग में कृष्ण बल्लभ सहाय ने लाठी चार्ज के बीच हजारीबाग कचहरी में झंडा फहराया था। राँची, सिगी, गुमला, लोहरदगा में सभा की गई थी। पलामू भी पीछे नहीं था। महात्मा गांधी के बंदी बनाए जाने की खबर के बाद पलामू में ८ मई, १९३० को हड़ताल रही। १९४० में रामगढ़ में कांग्रेस का महाधिवेशन होने से इस क्षेत्र में आंदोलनकारियों की सक्रियता और बढ़ी।

सन् १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन में यहाँ के लोगों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। १४ अगस्त को राँची जिला स्कूल से जुलूस निकला, लोहरदगा में स्कूली बच्चों ने स्कूल के हाते में ही झंडा फहराया। टाना भगतों ने विशुनपुर थाना को जला दिया, टाटानगर में १० अगस्त को हड़ताल रही, एम.के. घोष, माइकल जान, त्रेता सिंह पकड़ लिये गए। बड़े-बड़े नेताओं को पकड़कर हजारीबाग जेल भेज दिया गया। हजारीबाग जेल से ही जयप्रकाश नारायण अपने साथियों के साथ भाग निकले थे। झारखंड वह इलाका रहा है, जहाँ अँगरेज कभी भी आराम की स्थिति में नहीं रह सके। यहाँ उन्हें हमेशा विरोध-विद्रोह का सामना करते हुए हार स्वीकारनी पड़ी।

फ्लैट नं. २ ए, श्रीवाटिका अपार्टमेंट
चेशायर होम रोड, दीपाटोली, राँची (झारखंड)

बाबूराव परांजपे

● **श्रीकृष्ण 'सरल'**

नेताजी सुभाषचंद्र बोस के शब्द बाबूराव परांजपे के कानों में गूँज रहे थे—'यह याद रखो, युद्ध का मैदान ही सैनिक का वतन होता है। वह उसे छोड़ना नहीं चाहता और यह भी याद रखो कि युद्धभूमि ही किसी सैनिक की अरथी और आसमान ही उसके लिए कफन होता है।'

कुछ ऐसा ही वातावरण उस समय उपस्थित हो गया, जब ब्रिटिश बमवर्षकों ने आजाद हिंद फौज की बर्मा स्थित एक टुकड़ी पर अंधाधुंध गोलों की वर्षा प्रारंभ कर दी। नागरिक लोग अपने घरों से भाग-भागकर जंगलों की ओर दौड़ चले; क्योंकि उनका अनुभव था कि जब ब्रिटिश बमवर्षक गोलों की वर्षा करते हैं तो पूरा गाँव या नगर मलबे के ढेर में परिवर्तित हो जाता है। स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों की चीखों एवं कराहों से वातावरण भयानक हो रहा था। लोग दौड़ रहे थे और चीख रहे थे, चीख रहे थे और मर रहे थे। उस भयंकर बमवर्षा की चिंता न करके बाबूराव परांजपे ने अपनी खाई से निकलकर भागते हुए लोगों को खाइयों में छिप जाने के लिए कहा। उस सैनिक को यही कर्तव्य याद रह गया था कि वह नागरिकों की रक्षा के लिए खाइयाँ खुदवाकर तैयार रखे और यथासंभव उनकी सहायता करे।

बाबूराव परांजपे को यह संतोष था कि लोगों को छिपने के लिए खाइयों की कमी नहीं पड़ी और उसका श्रम सार्थक हुआ। सभी लोगों ने जब खाइयों में स्वयं को सुरक्षित कर लिया तो स्वयं छिपने के लिए बाबूराव परांजपे ने भी एक खाई में छलाँग लगा दी। इस क्रम में उसका एक घुटना टूट गया। उसके आसपास कई बर्मी औरतों ने शरण ले रखी थी। गोलियाँ इधर-उधर गिर रही थीं। खाई में एक गर्भवती बर्मी महिला ने एक बच्चे को जन्म दे दिया। उसके पास छिपी एक अन्य बर्मी महिला को उसे सँभालने का संकेत करके बाबूराव परांजपे ने अपना ओवरकोट प्रसविनी महिला पर डाल दिया और बरसती हुई गोलियों में बाहर कूदकर वहाँ जा लेटा, जहाँ कुछ लाशें पड़ी हुई थीं। जब शत्रु के विमान गोलियाँ और गोले बरसाकर चले गए तो बाबूराव परांजपे ने उठकर स्थिति का निरीक्षण किया। उसे संतोष था कि उसके श्रम और सूझ-बूझ ने कई प्राणों की रक्षा की।

दक्षिण भारत में स्वाधीनता आंदोलन

● बी.वाइ. ललितांबा

आज उनहत्तर साल बाद स्वाधीनता की लड़ाई की बात करने जा रहे हैं, क्योंकि उसकी जानकारी की आज की पीढ़ी को बहुत आवश्यकता है। आज भी हम 'स्वतंत्र भारत' शब्द का कई बार प्रयोग करते हैं, जिसके आंतरिक अर्थ की हमारी आज की पीढ़ी को जानकारी नहीं है। हमारे यहाँ 'भुक्त भोगी' नामक शब्द का बार-बार प्रयोग करते हैं, 'भोगा हुआ यथार्थ' भी उसके साथ जुड़ा हुआ है।

वैसे देखा जाए तो सत्तर वर्ष पूर्व हमारी लड़ाई उपनिवेशवाद के विरुद्ध चली थी। मनुष्य जहाँ जन्म से स्वतंत्र होता है, समाज में रहकर, सामाजिक व्यक्ति होते हुए भी अपने जीने की स्वतंत्रता को कायम रखता है, 'जननी-जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि' अपने स्वर्ग सुख का अनुभव करता है, पराई भूमि से आए इनसान के शासन में जब उसके सारे सुख और जीने की स्वतंत्रता छिन जाती है, वह दूसरों के शासन में चलने को मजबूर होता है, उसे हम गुलामी कहते हैं। अंग्रेजों का उपनिवेशवाद भारतवासियों पर इसी रूप में हावी था, भारत की संपदा ब्रिटिशों के हवाले उनकी अपनी बनी थी।

लाखों को जेलों में भरा गया, हत्याएँ हुईं। बलिदान की कोई सीमा न रही। जिन्होंने बलिदान किया, उन्होंने स्वाधीनता का स्वाद नहीं चखा, जो बचे रहे, उन्होंने देश को सँभालने की कोशिश की···कालचक्र के हाथों अधिकांश सेनानी अस्तंगत हुए। एक-दो जो बचे हैं, उनसे स्वाधीनता की लड़ाई का हम ब्योरा सुनते हैं; उस अविस्मरणीय लड़ाई का, अंतिम विजय का स्मरण, जो आज की हमारी स्वतंत्रता को बचाने के लिए अनिवार्य है।

अब स्वाधीनता की लड़ाई के कई दस्तावेज और उसका इतिहास हमें हर भाषा में मिल जाता है, कुछ ऐसे महान् वीर जिनका बलिदान हुआ था, और वे भी जो आंदोलन में अगुआ थे, उनमें से कुछ लोगों को हमने देखा भी था, यह भी सच है कि हमारी जितनी जानकारी है, उससे सौ गुना ज्यादा लोगों ने इस लड़ाई में भाग लिया था, स्वाधीनता संग्राम के लिए कइयों ने अपना सब कुछ लुटा दिया था, बलिदान किया था, मगर हमें उन सबकी जानकारी नहीं।

भारत के दक्षिणी राज्यों के बारे में स्वाधीनता आंदोलन को लेकर काफी गलत कहानियाँ फैली हैं। एक तो यह कहा जाता है कि भारत के

सुपरिचित लेखिका। 'हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति', 'तुलनात्मक साहित्य', 'तुलनात्मक भाषा', 'अनुवाद एवं अनुवाद कला', 'अनुप्रयुक्त भाषा एवं समाज भाषा विज्ञान' समेत लगभग पचास ग्रंथ प्रकाशित। कन्नड़ से हिंदी में अनुवाद। दो सौ से ज्यादा शोध। 'गणेशशंकर विद्यार्थी पुरस्कार' समेत लगभग दो दर्जन पुरस्कार प्राप्त।

उत्तरी-पूरबी-पश्चिमी भागों पर अंग्रेजों का जो दमन चक्र चला था, वह अनुभव दक्षिणी राज्यों का नहीं रहा। यह गलत धारणा है। अधिकार और ऐश्वर्य का मोह कहाँ कब सीमित हो पाया है? दक्षिणी राज्यों का इतिहास बताता है कि सन् १८५७ का सिपाही विद्रोह स्वाधीनता की प्रथम लड़ाई नहीं थी, बल्कि उससे बहुत पूर्व दक्षिण के चारों राज्यों में राजाओं ने अंग्रेजों से स्वाधीन होने की लड़ाई छेड़ी थी। हमारे पास अभी तक एक विस्तृत एवं सही जानकारी देनेवाला स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास उपलब्ध नहीं हो पाया है, जिससे इस तरह की भावनाएँ बनी हैं।

श्रीमती निर्मला देशपांडे राज्यसभा की भूतपूर्व सदस्य कहती हैं, 'भारत के स्वाधीनता संग्राम में तमिलनाडु का योगदान अद्वितीय है।' वे स्वाधीनता सेनानी भी रहीं। उनके अनुसार, 'सन् १८५७ के पूर्व ही तमिलनाडु ने अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज उठाई। सत्रहवीं शताब्दी में तमिलनाडु में फ्रांसीसी, पुर्तगाली, डच और अंग्रेज इन लोगों के व्यापार और वाणिज्य के लिए आपस में संघर्ष चल रहा था। अंग्रेज इस संघर्ष में कर्नाटक व तमिलनाडु के लोगों में फूट पैदा कर सत्ता को हथियाने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। अंत में इस प्रयत्न में फ्रांसीसी और अंग्रेज ही टिक पाए···अंग्रेजों के साथ बड़ी वीरता के साथ कट्ट बोम्मन, उम्मतुरै व अन्य सुदूर दक्षिण के पाल्यकारों ने अंत तक युद्ध किया। आपसी कलह के कारण इन सबको फाँसी की सजा दे दी गई।' यह तमिलनाडु के आरंभिक स्वाधीनता आंदोलन की एक रूपरेखा मात्र है। इसके साथ यह भी सच है कि इस आंदोलन में एकरूपता नहीं थी।

कर्नाटक के साथ भी कुछ-कुछ इसी तरह की बात है। झाँसी की लक्ष्मीबाई से पूर्व अंग्रेजों की दमन नीति का विरोध करनेवाली लड़ाई भी है। दोनों घटनाओं में युद्ध के पहले दौर में अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए इन्हें लड़कर अपनी आहुति देनी पड़ी थी। हैदर अली और टीपू

सुल्तान को अपने राज्य की रक्षा के लिए लड़ाई करनी पड़ी थी और अंग्रेजों ने दोनों को खत्म किया था। इसमें भी अपनी विस्तार नीति और अपने राज्य की रक्षा के लिए उन्होंने लड़ाई लड़ी थी। इस कारण हम इस लड़ाई को स्वाधीनता की लड़ाई का अंग नहीं मान सकते।

टीपू सुल्तान की मृत्यु के बाद ई. १७९९ में अंग्रेजों का मैसूर पर अधिकार हुआ और उन्होंने मैसूर राज्य को चार भागों में बाँटा, जिनमें निजाम, मराठे और ओडेयर (द्वितीय कृष्णराज ओडेयर) को नियुक्त किया। इन राज्यों की देखभाल के लिए दीवान नियुक्त किए गए।

सन् १८२४ आज के उत्तर कर्नाटक का एक राज्य कित्तूर जिसकी रानी चेन्नम्मा थी, उसने शिवलिंगप्पा नामक पुत्र को दत्तक के रूप में ग्रहण किया, जिसे अंग्रेजों ने स्वीकृति नहीं दी, इसका विरोध कर रानी ने अंग्रेजों के विरुद्ध जंग छेड़ी, युद्ध में अंग्रेज जनरल थेकरसे को मार गिराया। अंग्रेज इससे भड़क उठे और कमांडर चापलिन ने धावा बोलकर चेन्नम्मा को बंदी बनाकर धारवाड़ के बैलहोंगल दुर्ग में रखा। इसी तरह संगोल्ली रायण्णा ने चेन्नम्मा की लड़ाई को आगे बढ़ाया, उसने अपनी युद्ध की नीति में गोरिल्ला युद्ध चतुरता को अपनाया, किंतु अंत में अंग्रेजों ने उसे भी पकड़कर १९३१ में सूली पर चढ़ाया। उपरोक्त दोनों उदाहरणों को हम स्वाधीनता की प्रथम लड़ाई मान सकते हैं, क्योंकि इसमें अंग्रेजों की दमन नीति का विरोध था। यह अपनी स्वाधीनता के हक की लड़ाई थी।

केरल का इतिहास भी इसी पीठिका से भरा है। श्री पेरुन्ना के एन. नायर कहते हैं कि 'केरल के राष्ट्रप्रेमी भारतीयों ने प्रथम स्वाधीनता संग्राम (१८५७) से पूर्व ही अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी और अंग्रेजों ने उसे सिपाही विद्रोह की संज्ञा दी।' नायर के अनुसार अठारहवीं सदी के अंतिम दशक और उन्नीसवीं सदी के आरंभ काल में मलाबार, कोच्चि और तिरुवांकूर राज्यों ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध अपना प्रतिरोध जताया था। मलाबार के राजा वर्मा ने, पजासी राजा ने और कोच्चि में पलियात अच्चन जो वहाँ के प्रधानमंत्री थे और तिरुवांकूर में वेलुतंपी दलवा प्रधानमंत्री ने अंग्रेजों की दमन नीति का विरोध किया और अंग्रेजों ने बर्बरता से उनके विरोध को दबाया था।

आंध्र के साथ शायद इस प्रकार का पूर्वेतिहास उपलब्ध नहीं होता। स्वाधीनता की लड़ाई अथवा स्वाधीनता संग्राम नामक शब्द के साथ हमारी सार्थक ध्वनि इस राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ी है। हालाँकि १८५७ की लड़ाई का दक्षिणी राज्यों पर सीधा प्रभाव नहीं पड़ा था, अंग्रेजी शासन के प्रति असंतोष, उनके विरोध में क्रोध और कुढ़न आंतरिक और बाह्य रूप से समय-समय पर प्रकट होती रही। मगर राष्ट्रीय आंदोलन और आंदोलन का स्वरूप और उसमें भागीदारी में हजारों लोग जुड़े थे। आंदोलन के मुद्दों में राष्ट्रीय नीति शैली की सहभागिता रही।

डॉ. सूर्यनाथ कामत कर्नाटक के नामी इतिहासकार थे, जिन्होंने 'स्वाधीनता संग्राम की स्मृतियाँ' शीर्षक तीन खंडों का दस्तावेज इकट्ठा किया है, जिसके संग्रहकार्य में उन्होंने तीन प्रमुख आधार बिंदुओं को ध्यान में रखा है—१. सरकारी दस्तावेज; २. अखबार और ३. प्रत्यक्षदर्शी, यानि भागीदार अथवा भागीदारों के रिश्तेदारों के साक्षात्कार और उनसे प्राप्त सामग्री।

कामतजी ने करीब ६०० स्वाधीनता सेनानियों का परिचय और उनके कार्यों का विवरण एकत्र किया था, जिनमें से ३०० लोगों का तीन खंडों में परिचय और कार्यों का विवरण दिया है, जो हमारे लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करते हैं। आंदोलन के प्रमुख बिंदु यहाँ पर भी एक लड़ाई में भागीदारी, जिसके संबंध में कुछ विस्तार से आगे चर्चा करेंगे।

स्वाधीनता आंदोलन में जन जागृति के लिए ये सामुदायिक तरीके अपनाए गए—सभा, धार्मिक उत्सव, जुलूस निकालना, प्रदर्शनी, सत्याग्रह। हाट, जाथा आदि सामूहिक-सामुदायिक संदर्भों का भी उपयोग किया गया।

हिंदुस्थानी सेवादल की स्थापना से राष्ट्रीय भागीदारी का मार्ग प्रशस्त हुआ। बाढ़, अकाल, बीमारी आदि हालत में सेवादल के कार्यकर्ता सेवा करने जनता के पास पहुँच जाते, जनता की समस्याओं को दूर करने की कोशिश करते; किसान, मजदूर, छात्र अथवा समाज के किसी भी वर्ग में समस्या होती, उनके निवारण के लिए, दु:खी समाज के पास पहुँचकर उनका विश्वास पाते, फिर आंदोलन के लिए आवश्यक प्रबोधन-प्रशिक्षण देकर कार्यकर्ताओं को बनाने में सेवादल ने व्यायामशाला, हिंदी शिक्षा देने, राष्ट्रीय शालाएँ, अभ्यास की कक्षाएँ आदि रीतियाँ प्रमुख रूप से अपनाईं। साथ ही साथ देश के लिए त्याग करने की भावना, आवश्यकता पड़ने पर प्राण त्यागने के लिए भी तैयार रहने आदि का प्रशिक्षण आंदोलन की प्राथमिक तैयारी के मार्ग अपनाए गए। इस त्याग भावना की पृष्ठभूमि पर सारा संप्रेषण बना था, आंदोलन सक्रिय बना था।

फिर पत्रिकाओं की भागीदारी, इनकी पूरे दक्षिण के आंदोलन का प्रमुख मार्ग रहा अगरम् रंगय्या के संपादकत्व की 'साध्वी' दैनिक (मैसूर), हुब्ली से प्रकाशित संयुक्त कर्नाटक, ताइनाडु, वीरकेसरी, विश्व कर्नाटक, जनवाणी आदि दैनिक कर्मवी, प्रजामत (संपा.ती.ता. शर्मा), इनके अलावा कई छोटी-मोटी पत्रिकाएँ इन सभी की भूमिका अविस्मरणीय रही। इनके अलावा बाहर से तिलक द्वारा प्रकाशित 'केसरी' का भी कर्नाटक की जनता पर विशेष प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रेत 'केसरी' के वाचन के लिए ही कई लोगों ने मराठी सीखी।

अंग्रेजों की आँखों से बचाने के लिए कई पत्रिकाओं को प्रतीकात्मक पदार्थ, स्थान, देवता आदि के नाम देकर राष्ट्रीय समाचारों की जानकारी दी जाती थी। उत्तर कर्नाटक में महादेवन कट्टी नामक स्थान पर अंग्रेजों

की आँखों से बचाकर केसरी मँगाई जाती रही। 'केसरी' की देखादेखी 'वीर केसरी' निकली, 'कन्नड़ केसरी' निकली। इन सब पत्रिकाओं में 'केसरी' के विचार ही प्रकाशित होते थे। इनके अलावा और भी उल्लेखनीय कई पत्रिकाओं का अविस्मरणीय योगदान रहा। अंग्रेजी पत्रिकाओं में 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'फ्री प्रेस जर्नल' आदि द्वारा जनता को अपार प्रेरणा मिलती रही। कलकत्ता से प्रकाशित 'मॉडर्न रेव्यू', 'अमृत बाजार' पत्रिका ऋषि अरविंद की पत्रिका 'वंदे मातरम्', 'कर्मयोगिन्', 'आर्य' का राष्ट्रीयता की भावना को उजागर करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

कर्नाटक से ही प्रकाशित 'द हिंदू', 'न्यू इंडिया', 'स्वदेश मित्रन्', 'किडि (चिनगारी)' आदि का राष्ट्रीय संदेश वहन का कार्य महत्त्व का रहा। आलूर वेंकटराय की 'जय कर्नाटक' पत्रिका की इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। वह राष्ट्रीयता की भावनाओं से परिपूर्ण अग्रलेखा कई पत्रिकाओं में लिखते भी थे। 'कर्मवीर' पत्रिका में प्रकाशित उनके (शीर्ष) अग्रलेख के कारण उन पर हल्ला भी हुआ था।

असहयोग आंदोलन में भी इन पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। असहयोग की दिशाओं में जनता को सूचना देने और प्रेरित करने में इनकी बहुत बड़ी भूमिका रही। अभी बहुत सारी पत्रिकाएँ हैं जिन सबकी स्वाधीनता आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उन सबका स्थानाभाव के कारण उल्लेख नहीं कर पा रहे हैं।

यह जरूर कि इन पत्रिकाओं के कई संपादक और लेखकों को जेल की हवा खानी पड़ी थी, कई पत्रिकाओं को बंद करना पड़ा था। असहयोग आंदोलन में एक सौ दस पत्रकार और लेखक दंडित हुए थे। इन पत्रिकाओं से राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार तो हो ही रहा था, इसके अलावा कर्नाटक एकीकरण, अस्पृश्यता निवारण आदि संबंधी विचारों की प्रभावपूर्ण प्रस्तुति और विचार प्रकाशित होते थे।

ऐतिहासिक उपन्यास, आंदोलन संबंधी उपन्यास, कहानी आदि का प्रकाशन, उनके द्वारा राष्ट्रीयतावादी विचार लोगों तक पहुँचता रहा। विशेष रूप से उपन्यासकार गळगनाथ का इतना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा कि 'स्वाधीनता' की अर्थ व्याख्या और समर्थन लोगों को संवादित करने में समर्थ भूमिका निभाई। आलूर के कुछ लेख जैसे 'कर्नाटक का गत (विगत) वैभव', 'कन्नड़ के कलि वीर' उल्लेखनीय रहे। करगुप्पीकर का इसहकार (असहयोग) मीमांसा; तिलक के 'गीता रहस्य' के अनुवाद का जनता पर विशेष प्रभाव रहा। मिर्जि अण्णाराव, अ.न. कृष्णराव, कैयार किञण्ण रै, भारतीसुत, गुरुनाथ जोशी, कृष्णकुमार कल्लूर, गोरूर श्रीनिवास आयंगार आदि की लेखनी का आंदोलन के साथ निकट संबंध रहा। सावरकर और अन्य लेखकों का क्रांतिपूर्ण साहित्य जनता को प्रेरित करता रहा।

लावणी के माध्यम से बिदियार मादेगौड़ा ने कोडगु जिले में युवाओं को लोगों को राष्ट्र भक्ति से प्रेरित करने में सफल भूमिका निभाई थी। बेलगाँम जिले के भीम कवि ने 'गीगी' पदों से लोगों को आंदोलन में भागीदार बनने के लिए प्रेरित किया था। कोप्पळ जयरामाचार्य की हरिकथा का इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण कार्य रहा। कहते हैं कि बेंगलूर में इन कीर्तनकारों का सम्मेलन संपन्न हुआ था, सम्मेलन के तुरंत बाद विदेशी वस्तुओं की इन लोगों ने होली रचाई थी। कहते हैं, राष्ट्रीय कार्यों के लिए महिलाओं ने अपने गहने उतारकर आरती की थाली भर दी थी।

पौराणिक कथा वस्तुओं के केंद्र में रखकर स्वाधीनता संग्राम के विचार लोगों तक पहुँचाने की इनकी कला और प्रतिभा की विद्वानों ने खूब प्रशंसा की है। वेश्या पद्धति, देवदासी वाली बसवि पद्धति का विरोध भी इसमें हुआ था। गरुड सदाशिव राव के नाटक, नटभयंकर गंगाधर राव ने नाटक रचकर, प्रदर्शन कर प्राप्त धन को आंदोलन हेतु दान करते, आंदोलन का संदेश नाटकों की प्रमुख वस्तु हुआ करती थी। कोट्टूर नरेंद्रप्पा, राचप्पा जोळिगि आदि सभी का आंदोलन से सीधा संबंध था। बेंगलूर कंटोनमेंट में हाजी उस्मान सेठ की कोशिश से असहयोग पर्व में एक शाला का आरंभ हुआ था।

आंदोलन की शैली को लेकर कुछ विवरण इस प्रकार हैं; १९०३ में धारवाड़ में बंबई प्रांत की राजनीतिक परिषद् बनी, उस समय फिरोज शाह मेहता और तिलक पधारे थे ; १९०५ में कर्नाटक के बागलकोट में स्वदेशी का प्रचार हुआ; १९०७ में शराब बंद आंदोलन हुआ जब २५ लोगों को दंडित किया गया; १९०९ में हर्डीकर ने आर्य बाल सभा की स्थापना की; १९०६ में स्वदेशी वस्तु भंडार की स्थापना हुई।

व्यायाम शालाओं की स्थापना हुई। उनमें से कई व्यायाम शालाओं का आंदोलन से सीधा संबंध था। बेंगलूर की जयमारुति व्यायामशाला, धारवाड़ की जवाहरलाल नेहरू व्यायाम शाला आदि के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं। ग्रंथालय और पत्रिका वाचनालय की भूमिका भी यहाँ स्मरणीय है। उनसे पाठकों को बौद्धिक आहार तो मिलता ही था, मगर उसके साथ राजनीतिक सभा, समारोह भी यहाँ संपन्न होते थे। ये राष्ट्रीय विचारों के संप्रेषण का केंद्र थे। कई बार सरकार द्वारा प्रतिबंधित क्रांतिकारी विचारोंवाली रचनाएँ भी इन ग्रंथालयों में प्राप्त होती थीं।

आंदोलन की शैली को लेकर कुछ विवरण इस प्रकार हैं; १९०३ में धारवाड़ में बंबई प्रांत की राजनीतिक परिषद् बनी, उस समय फिरोज शाह मेहता और तिलक पधारे थे ; १९०५ में कर्नाटक के बागलकोट में स्वदेशी का प्रचार हुआ; १९०७ में शराब बंद आंदोलन हुआ जब २५ लोगों को दंडित किया गया; १९०९ में हर्डीकर ने आर्य बाल सभा की स्थापना की; १९०६ में स्वदेशी वस्तु भंडार की स्थापना हुई।

एक बात और, १९२१ में भारत के अन्य भागों में असहयोग आंदोलन चलने से पूर्व कर्नाटक के सिद्दापुर तालूक में भारत सामान्य जन सभा संपन्न हुई जिसमें सरकार को कर देने से इनकार (कर निराकरण) करने आंदोलन शुरू करने का निर्णय लिया गया। सरकार ने तुरंत जाग्रत् होकर लोगों को शांत करने के लिए कई रियायतें दीं। रंगनाथ दिवाकर कर्नाटक के थे जिन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में श्रेष्ठ भूमिका निभाई, नमक सत्याग्रह, दांडी यात्रा, असहयोग आंदोलन आदि सभी कार्यों के वे अगुआ थे। नमक

कानून तोड़ोवाले सत्याग्रह के लिए कर्नाटक ने अंकोला को चुना था। सिरसि-सिद्दापुर से उसके लिए अरुणोदय पथक संचालित हुआ था।

यह सच है कि दक्षिणी प्रांतों में स्वाधीनता आंदोलन के समय कर्नाटक की जबर्दस्त भूमिका रही। कुछ प्रमुख व्यक्तित्वों की जानकारी सभी को है, पर कइयों की सेवाओं की जानकारी किसी को नहीं है। कार्नाड सदाशिव राव (१८८१-१९३६) बेंगलूर की एक कॉलोनी सदाशिव नगर उन्हीं की स्मृति में खड़ा है। एक ऐसा व्यक्तित्व जो अति संपन्न परिवार में जन्म लेकर स्वाधीनता संग्राम के लिए, एक महान् उद्देश्य की साधना के लिए अपना सबकुछ समर्पित कर दिया, कहते हैं, वह खाली हाथ इस संसार से गए।

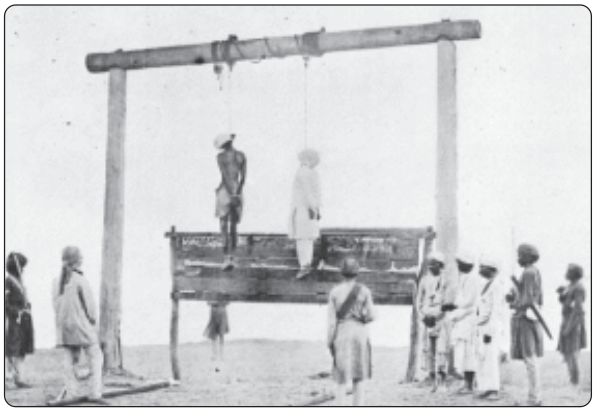

इसी संदर्भ में हम एक रामचंद्र वेंकण्ण हेग्गडे का भी स्मरण करना चाहेंगे, जिनके बारे में लोगों को नहीं के बराबर जानकारी है। १९३२ की बात है, कहते हैं कि वह लोगों की आँखों से अपने को बचाकर आंदोलन का काम करते थे। पहाड़ के ऊपर एक गुफा में बैठकर हथपत्ती (करपत्री) तैयार कर सरकार के विरुद्ध प्रचार करते थे। सरकार ने घोषणा की थी कि उसे पकड़कर लानेवाले को २०० रुपए का इनाम दिया जाएगा। अंत में उसे जेल में डाल दिया गया था।

श्री एन.एस. हर्डीकर का जन्म धारवाड़ में हुआ था। कांग्रेस के आश्रय में उन्होंने अपने को प्रशिक्षित कर एक निष्ठावान स्वयंसेवक के रूप में प्रतिष्ठित किया, उन्होंने असहयोग आंदोलन में बड़ी वीरता से अपना दियित्व निभाया। वैसे हजारों की संख्या में इन सेनानियों का यहाँ नामोल्लेख भी नहीं किया जा सकता। इतना ही बस कि इन राष्ट्र सेवियों में से कइयों ने स्वाधीन भारत की बागडोर सँभाली और राष्ट्र का मार्गदर्शन किया। कुछ नाम जैसे के.जी. गोखले, डी.वी. गुंडप्पा, एस. निजलिंगप्पा, नारायण एस. राजपुरोहित, डी.के. भारद्वाज, शांतकवि, निट्टूर श्रीनिवासराव, आर.एस. दोरेस्वामी (अभी बेंगलूर में निवास करते हैं), तिरुमले राजम्मा, श्रीमती यशोधरा दासप्पा आदि कई स्मरणीय हैं, उन्हें हमारा नमन।

स्वतंत्रता सेनानी जैसे कात्तप्प पुलितेवन, ऊमेत्तुरै, सुंदर लिंगम, शिवमलै, शेव्यकरामन पिल्लै, सुब्रह्मण्य भारती, भारती दासन आदि थे, व्यक्तिनाम सहज ही तमिल ध्वनियों से भरा हुआ था, किंतु सब भारतवासियों का भोगा हुआ यथार्थ एक-सा था। मद्रास शहर (आज के चेन्नै) में ईस्ट इंडिया कंपनी कार्यरत थी तो दमन का सीधा प्रभाव तमिल लोगों पर पड़ा था। उनके आक्रोश के लिए राष्ट्रीय आंदोलन से सहारा मिला था। श्री राजु शर्मा स्वाधीनता सेनानी थे। उनकी इस आंदोलन में सक्रिय भागीदारी थी। उन्होंने तमिलनाडु में स्वाधीनता संग्राम का एक इतिहास भी रचा है, वे एक हिंदी सेवी भी रहे। आंदोलन का स्वरूप, उसकी सफलता और असफलता को लेकर उनका तार्किक चिंतन है यह कि भारत आनेवाले अंग्रेजों की संख्या तीस हजार से ज्यादा न थी, मगर यहाँ के बीस करोड़ लोगों पर उन्होंने विजय पाई।

आत्म-परीक्षण पर बल देकर वे कहते हैं कि भारतीयों को पराजित करनेवाले अंग्रेज नहीं, बल्कि उनकी सामाजिक कुरीतियाँ हैं। इन कुरीतियों में से वे अस्पृश्यता को प्रथम स्थान देते हैं। सुब्रह्मण्य भारती के अभिमत का वे उल्लेख करते हुए कहते कि पंजाब पर मुसलमानों के आक्रमण जब हुए थे, तब अपने सवर्ण भाइयों के द्वारा अपने प्रति किए गए अत्याचार से तंग आकर अवर्णों ने आक्रमणकारियों का स्वागत किया था।

हिंदी प्रचार के कार्य में तमिलनाडु के.जी. सुब्रह्मण्य अय्यर का विशेष योगदान रहा। उन्होंने अपने मित्रों के सहयोग से 'साहित्य संघ' की स्थापना की थी। कहते हैं अय्यर बाल विवाह का विरोध करते थे और विधवाओं के पुनर्विवाह का समर्थन करते थे। कांग्रेस अधिवेशन का तीसरा समारोह जब मद्रास नगर में संपन्न हुआ था तो अय्यर और उनके मित्रों ने तमिल में प्रश्नोत्तरी तैयार की थी। यानि कांग्रेस ने दंशी भाषाओं को प्रमुखता देने का जो निर्णय लिया था, अय्यर और उनके मित्रों ने सिद्धांत को कार्यरूप दिया था।

आंदोलनकारियों को एक अंग्रेज बरकिंग हेड ने यह चुनौती दी कि क्या कांग्रेस भारत के लिए एक संविधान तैयार करने की योग्यता रखती है? जब और नेता इस प्रश्न पर स्तंभित से रह गए थे, श्री राघवाचार्य ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया और १९२७ में मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन में भारत का संविधान प्रस्तुत कर दिया। आज सेलम में उनके नाम पर एक भवन बना है जहाँ पुस्तकालय संचालित हो रहा है।

लार्ड कर्जन ने एक भाषण दिया था, जिसमें उसने कहा था कि 'अंग्रेजों को छोड़कर कोई और शक्ति यहाँ पनप नहीं सकती…'

महाकवि भारती ने कर्जन के उस भाषण का अपनी कविता में जवाब दिया था—

दासता करनेवाले हे गुलाम, तुझे
स्वतंत्रता का खयाल कैसे हो आया?
इससे पहले का अनुभव है?
क्या उसके तू लायक भी है?
क्या भय दूर हुआ, रे गुलाम, हिम्मत आई तुझ में?

भिक्षाटन कर जीवित तू, भिक्षा प्रवृत्ति की इच्छा से दूर हो जा तू…

बंग-भंग का जब सारे देश ने विरोध किया, तमिलनाडु की उसमें भागीदारी रही। स्वदेशी वस्तुओं का सम्मान और विदेशी माल का त्याग बहिष्कार का आंदोलन भी इस राष्ट्रीय आंदोलन का अंगभाग रहा, तमिलनाडु की इसमें भागीदारी रही।

चिदंबरम् पिल्लै की अंग्रेजों की जन्म की दुश्मनी थी।…अंग्रेजों के उसने शायद छक्के छुड़ाए थे। अंग्रेजों ने जवाब में पिल्लै का सिर काटकर उनके नगर में लटका दिया था।

सुब्रह्मण्यम शिव एक और अंग्रेजों की नजर में विद्रोही थे, जिन्होंने १९०८ में राजद्रोह कर राजनिंदा की थी। इस संबंध में एक विशिष्ट वारदात यह हुई कि ये चिदंबरम् के मित्र थे। अदालत में जब न्यायाधीश ने चिदंबरम् को जमानत पर छोड़ने का आदेश जारी किया और शिवा को जमानत देने से इनकार किया तो चिदंबरम् अड़ गए कि वह अकेले जमानत पर नहीं जाएँगे। कहते हैं भारत के सभी समाचार पत्रों ने तब इस मुकददमे को प्रधानता दी थी, फिर भी कलकत्ता के 'युगांतर' पत्र ने दो महीनों तक अतिरिक्त पृष्ठ छाप कर लोगों को अंग्रेजों के जुल्म की जानकारी कराई।

अखिल भारतीय कांग्रेस ने नमक कानून को तोड़ने का निर्णय लिया तब तमिलनाडु के लिए राजाजी को नेतृत्व के लिए चुना। राजाजी ने तिरुचिरापल्ली से नमक सत्याग्रह की पैदल यात्रा शुरू की थी। यह यात्रा १३ अप्रैल, १९३० को शुरू हुई थी और २९ अप्रैल, १९३० को इसे समाप्त होना था। यात्रा १६ दिनों की थी। राजाजी से निर्वाचित ९८ सत्याग्रही थे। मगर दर्शकों की संख्या दस हजार से ऊपर थी। सत्याग्रही दो-दो के हिसाब से ४९ पंक्तियों में खड़े थे। किसी के हाथ में हथियार न था। अगले दिन पहनने के कपड़े, सूत कातने के लिए तकली थी। गांधीजी का प्रिय गाना 'रघुपति राघव राजा राम' ग्राम के प्रांगणों को पवित्र बना रहा था। कलेक्टर इस टुकड़ी को हटाने में असफल रहा। नमक सत्याग्रह योजनानुसार सफल हुआ। राजाजी के इन सहायक वेदरत्नम् को तिरुनेलवेली के किसान सम्मेलन ने 'सरदार' की उपाधि देकर सम्मानित किया।

इसी प्रकार तमिलनाडु में कर्नल नील की ताम्र प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई थी। १९३७ में जब राजाजी मद्रास प्रांत के मुख्यमंत्री चुने गए तो राजाजी ने सर्वप्रथम कर्नल नील की प्रतिमा को हठाकर म्यूजियम में रखवाया। सरकार ने जब राजाजी से प्रतिमा माँगी तो उन्होंने यह लिखकर उत्तर दिया कि यह प्रतिमा मद्रास महानगर की है, इस कारण हम इसे नहीं दे सकते। इस प्रकार तमिलनाडु में आंदोलन के कुछ विशिष्ट स्वर और विशिष्ट घटनाएँ अंकित हुईं।

शराब बंदी भी आंदोलन का एक अंग रही। तमिल के राष्ट्रीय कवि रामलिंगम के शब्दों में—

सारे देश में हानियाँ ही हुईं इस शराब से
नाश होकर देशवासी शिथिल हो गए इस शराब से।

सत्यमूर्ति, कामराज नाडार, वेलु तंपी इस प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के हजारों सत्याग्रही तमिलनाडु के रहे, सभी का राष्ट्रीय कांग्रेस मुद्दों के क्रियान्वयन में संपूर्ण भागीदारी रही। दक्षिणी प्रस्थभूमि (पठार) के प्रमुख चार राज्य हैं, जिनमें से आंध्र की भी सत्याग्रह आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

स्वाधीनता किसको प्रिय नहीं। अंग्रेजों के दमनचक्र से आंध्र भी तंग आ चुका था। यह जरूर कि हम जिसे प्रथम स्वाधीनता संग्राम कहते हैं, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी लड़ाई का आंध्र प्रदेश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था।

१९४२ की एक और महत्त्वपूर्ण घटना स्मरणीय है। जब बंबई में प्रमुख सभी नेता गिरफ्तार हुए, जनांदोलन हुआ। युवा नायकों के मार्गदर्शन में सरकारी कार्यों को स्थगित होना पड़ा, कई युवा नेताओं ने हँसते-हँसते पुलिस की बंदूकों का सामना किया। केरल में स्वाधीनता की आंदोलन पूर्व घटनाओं का पहले उल्लेख हो चुका है। १९२० के बाद, भारत में गांधीजी के आगमन के बाद राष्ट्रीयता आंदोलन में केरल की भूमिका भी अत्यंत गहरी रही। राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी की स्थापना की प्रतिध्वनि केरल में भी सुनाई पड़ी तो कई राष्ट्रीय मुद्दे ग्रहण किए गए। कई प्रभावशाली नेता उभर आए। बैरिस्टर ए.के. पिल्लै और वी. अच्युत मेनन के नेतृत्व में केरल में राष्ट्रीय कांग्रेस समिति की स्थापना हुई। सत्याग्रह कांग्रेस का अस्त्र था, स्वयं कष्ट सहो, मगर शांति से लड़ो, असहयोग करो, नागरिक आज्ञा भंग करो, अनशन करो, सत्याग्रही बने रहो।

बीसवीं सदी का आरंभ काल, सारे देश में अंग्रेज शासन के विरुद्ध असंतोष- समान अधिकारों की माँग के साथ आरंभ हुआ। आरंभ करपत्र बाँटने से और जाग्रत् अंग्रेज सरकार द्वारा दमन के प्रयत्न ये आंध्र प्रदेश के स्वाधीनता आंदोलन के आरंभिक स्वरूप थे। गुडिचेर्ला हरि सर्वोत्तम राव अंग्रेजों के इस दमनयंत्र पहले शिकार बने थे। 'क्रूर विदेशी शेर' उनके लेख का शीर्षक था, जिस पर उन्हें दंडित किया गया। 'होम रूल' आंदोलन में 'वंदे मातरम्' गीत वाचन पर लोगों को दंड भुगतना पड़ा था।

इस प्रकार आंध्र में कांग्रेस के अस्तित्व अथवा प्रवेश से पहले ही विरोध प्रदर्शित होना शुरू हो चुका था। इस संदर्भ में कोप्पले हनुमंतराव का (१८८०-१९२२) आंध्र में विशेष स्मरण किया जाता है, जिन्होंने 'आंध्र जातीय कलाशाला' की स्थापना मछलीपट्टनम में की और छात्रों को आधुनिक उत्पादों की शिक्षा दी। शिक्षा का यह स्वरूप एक प्रकार से विदेशी सरकार से मुक्ति पाने की ही रीति थी।

फिर राष्ट्रीय आंदोलन शुरू हुआ तो आंध्र भी सत्याग्रह में भागीदार बना। कोंडा वेंकटाचलय्या का यहाँ स्मरण किया जाता है, जिनके मार्गदर्शन में तंगुतूरि प्रकाशम् पंतुलु, बोलुसु सांबमूर्ति और भोगराजु पट्टाभि सीतारामय्या आदि कई युवाओं ने अपना सब कुछ स्वाधीनता आंदोलन के लिए लुटा दिया। कई वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी, आंदोलन में शामिल हो गए। युवाओं ने अपनी पढ़ाई छोड़ दी, आंदोलन के भागीदार बन गए। १९२१ में कांग्रेस समिति ने आंध्र को असहयोग आंदोलन में भाग लेने की अनुमति दी, गांधीजी की नीति का अनुसरण कर आंध्र के युवा सत्याग्रही बन गए। असहयोग आंदोलन में प्रमुख रूप से तीन स्मरणीय घटनाएँ घटीं, जिस पर सारे देश का ध्यान आकर्षित हुआ।

पहला चिराला-पेराला घटना थी। दुग्गल गोपालकृष्णय्या इसके संचालक थे। वे कुछ समय तक मछलीपट्टनम के सरकारी महाविद्यालय और नेशनल कॉलेज में प्राध्यापक थे, तो उन्हें शिक्षा नीति पाठ्यक्रम से तृप्ति नहीं मिली। असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर और अंग्रेजों से

देश को मुक्त कराने के उद्देश्य से उन्होंने एक हजार युवाओं को अनुशासनबद्ध तरीके से तैयार किया। विरोध-असहयोग आंदोलन की छाया में एक और घटना घटी, चिराला और पेराला नामक दो छोटे जिलों की पालिका को अंग्रेज एक ही में विलीन करना चाहते थे। लोगों ने सरकारी निर्णय का विरोध किया। फलत: सरकार को एक अध्यक्ष को नियुक्त करना पड़ा।

गांधीजी चिराला आए। गोपालकृष्णय्या ने अगला कदम उठाने के लिए उनसे सलाह माँगी। गांधीजी के मार्गदर्शन में शांत रीति से कर निराकरण का आंदोलन चलाया; दूसरा खाली मैदानों में लोगों को मकान बनवाने का काम कराया, जिससे म्युनिसिपैलिटी (पुरसभा) द्वारा कर ग्रहण से सहज मुक्ति मिली। उन्होंने कांग्रेस पर दोषारोपण होने न दिया। उन्होंने 'राम नगर' नाम देकर इस प्रकार एक अस्थायी ग्राम का निर्माण किया। कर निराकरण के आंदोलन को सफल बनाया।

रापल्लि और विजयवाड़ा में भी इसी प्रकार के आंदोलन हुए। 'जंगल सत्याग्रह' एक और प्रमुख घटना थी। १९२१ में पालनाड और गुंटूर के किसानों द्वारा यह सत्याग्रह छेड़ था। जंगलों में पशुओं को चरने के लिए उन्हें कर भरना पड़ता था। उस वर्ष फसल खराब हो गई थी। तब किसानों ने अपनी गाय चरने के लिए जंगल में भेजने का निर्णय लिया। सरकारी अधिकारियों ने उनके विरुद्ध कठोर व्यवहार किया तो किसानों ने उन्हें खाना-पानी कुछ भी नहीं देने का निर्णय लिया। अधिकारियों पर इस विरोध का कुछ भी असर नहीं पड़ा और पशुओं को उन्होंने सरकारी कोठे में बंद कर दिया। इस समय किसान और पुलिस के बीच संघर्ष छिड़ा। तभी कन्नुगुंटि हनुमंतु की गोलीबारी में मृत्यु हुई।

यह आंदोलन इसलिए सफल नहीं हो सका, क्योंकि गांधीजी ने तभी तक असहयोग आंदोलन को खत्म कर दिया था। बापताला तालुका में कर निराकरण का तीसरा प्रमुख आंदोलन हुआ था। गांधीजी गुजरात में यह प्रयोग चालू करना चाहते थे, मगर बापताला वाले यहीं से आंदोलन शुरू करना चाहते थे। यह १९२२ में संपन्न हुआ था। ग्रामीण अधिकारियों को इस्तीफा देने के लिए सत्याग्रहियों ने मजबूर किया। कराधिकारी कर संग्रह नहीं कर सके। फिर अंत में स्थानीय अधिकारियों ने कर निराकरण का आंदोलन खत्म किया। कर भर दिए गए।

१९४२ की एक और महत्त्वपूर्ण घटना स्मरणीय है। जब बंबई में प्रमुख सभी नेता गिरफ्तार हुए, जनांदोलन हुआ। युवा नायकों के मार्गदर्शन में सरकारी कार्यों को स्थगित होना पड़ा, कई युवा नेताओं ने हँसते-हँसते पुलिस की बंदूकों का सामना किया। केरल में स्वाधीनता की आंदोलन पूर्व घटनाओं का पहले उल्लेख हो चुका है। १९२० के बाद, भारत में गांधीजी के आगमन के बाद राष्ट्रीयता आंदोलन में केरल की भूमिका भी अत्यंत गहरी रही। राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी की स्थापना की प्रतिध्वनि केरल में भी सुनाई पड़ी तो कई राष्ट्रीय मुद्दे ग्रहण किए गए। कई प्रभावशाली नेता उभर आए। बैरिस्टर ए.के. पिल्लै और वी. अच्युत मेनन के नेतृत्व में केरल में राष्ट्रीय कांग्रेस समिति की स्थापना हुई। सत्याग्रह कांग्रेस का अस्त्र था, स्वयं कष्ट सहो, मगर शांति से लड़ो, असहयोग करो, नागरिक आज्ञा भंग करो, अनशन करो, सत्याग्रही बने रहो।

केरल प्रांतीय कांग्रेस के क्रियाकलापों से कोच्चि भी मुक्त नहीं रह सका। मुदवीडु नारायण मेनन, ई. इक्कण्ड वारियर तथा अन्य नेताओं ने जन भागीदारी की दिशा में प्रयत्न जारी रखे। १९२५ में गांधीजी के आगमन पर सामूहिक सहभागिता शुरू हुई। मलाबार केरल का एक प्रमुख खंड प्रांत है। पहले तो इसके नायकों ने सत्याग्रह का मार्ग अपनाया था। पुलिस की दमन नीति के व्यवहार से असंतुष्ट होकर यहाँ के नेताओं ने हिंसात्मक आंदोलन का तरीका अपनाया। १९३१ में गुरुवायूर मंदिर प्रवेश का कार्यक्रम अपनाया था।

तिरुवांकूर राज्य कांग्रेस समिति ने एक जिम्मेदार सरकार की माँग आगे रखी, आंदोलन किया। दिवान सी.पी. रामस्वामी अय्यर ने आंदोलन को दबाने के सारे प्रयत्न किए। नेताओं पर हल्ला हुआ। आंदोलनकर्ता फिर तिरुवांकूर के महाराजा से मिले, एक जिम्मेदार सरकार बनाने की माँग की।

अगस्त १९३८ में नागरिक आज्ञाभंग आंदोलन को तीव्र रूप दिया। श्री पट्टमथानु पिल्लै, टी.एम. वर्गीस जैसे प्रांतीय नेताओं को तब हिरासत में लिया गया। परिणाम यह हुआ कि अक्कुमा चेरियन के नेतृत्व में एक बड़े विरोध को प्रकट करने का निर्णय लिया गया। और तभी सरकार ने परिस्थिति की गंभीरता को समझकर नेताओं को भी मुक्त किया। कांग्रेस पर लगाया गया निषेध भी रद्द कर दिया।

१९४२ के 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय सभी प्रमुख नेता जेल में थे। उस समय मार्क्सवादियों ने सरकार से हाथ मिलाना चाहा। मगर सत्याग्रहियों ने कहा कि हम दिवान के निरंकुश प्रभुत्व का विरोध कर रहे हैं। नीलकंठन नायर के नेतृत्व में कोच्चिन में एक जिम्मेदार सरकार की स्थापना के प्रयत्न हुए। कुछ प्रमुख नेताओं ने मिलकर प्रांतीय प्रचारमंडल की स्थापना की। उसमें कांग्रेस के अनुमती नेता थे। दिवान ने उनके प्रथम अधिवेशन को भी होने नहीं दिया। मगर नेताओं ने अपनी योजना में आगे बढ़ने का निर्णय किया। 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय प्रजामंडल की कई बैठकें हुईं, जुलूस निकाले गए। इस प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के नाना रूप, कई प्रदर्शन केरल में होते रहे।

१३०४, प्रथम 'सी' मेन, द्वितीय स्टेज
ब्लॉक-९, नगरभावी, बेंगलुरु-५६००७२
दूरभाष : ९४४८८५६१७४

भारत के स्वातंत्र्य समर में पंजाब ने निभाई केंद्रीय भूमिका

● अशोक मलिक

जलियाँवाला बाग और भगतसिंह की धरती पंजाब को अधिकांश विदेशी और कुछ भारतीय इतिहासकारों ने ब्रिटिश शासन के साथ सहयोग का दोषी ठहराया है। पंजाब के लिखित इतिहास के अनेक पहलू अभी भी विवादों में घिरे दिखाई देते हैं। आजादी के बाद के इतिहासकार मानते हैं कि पंजाब के कुछ शासक भले ही ब्रिटिश सत्ता के साथ रहे हों, पंजाब के लोग आजादी की लड़ाई में देश के अन्य प्रदेशों के लोगों की तरह बढ़-चढ़कर स्वतंत्रता संग्राम में शामिल हुए। आमतौर पर जलियाँवाला बाग स्वतंत्रता संग्राम में पंजाब ही नहीं, पूरे देश के सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम के रूप में दर्ज किया जाता है। परंतु दस्तावेज गवाह हैं कि मुल्तान, पेशावर और फिरोजपुर में भी आजादी की लड़ाई का उग्र रूप देखने में आया।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सतीश चंद्र मित्तल याद दिलाते हैं कि अंडमान जेल में गए पहले जत्थे में २१८ लोग पंजाबी थे। पटियाला और कुछ अन्य रियासतों के शासक अंग्रेजों के साथ थे, पर यह भी उतना ही सत्य है कि रियासतों की प्रजा अंग्रेजों और अपने शासकों के खिलाफ संगठित होकर खड़ी हुई। पटियाला रियासत की सेना ने रियासत के शासक की अंग्रेजपरस्त नीतियों के विरुद्ध हथियार भी उठाए। उस समय के पंजाब में आधुनिक भारत व पाकिस्तान के पंजाब प्रांतों के क्षेत्र आते थे। लाहौर, फिरोजपुर, अमृतसर, जालंधर, रावलपिंडी, झेलम, सियालकोट, अंबाला तथा गुरुदासपुर आदि में सैनिकों व आम जनता ने इस संग्राम में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला (काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश) कुलपति डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री के अनुसार पंजाब में ईस्ट इंडिया कंपनी और बाद में ब्रिटिश क्राउन के विरुद्ध हुए विभिन्न आंदोलनों आदि के लंबे सिलसिले में कूका आंदोलन, आर्य समाज आंदोलन, गदर आंदोलन, किसान आंदोलन, गुरुद्वारा आंदोलन आदि शामिल हैं। पर इतिहास के विद्यार्थियों के अलावा अधिकांश बुजुर्ग कामागाटामारू, साइमन कमीशन के विरोध में किए गए आंदोलन की घटनाओं से परिचित हैं, नई पीढ़ी इनके बारे में बहुत कुछ नहीं जानती। शायद इसी कारण पिछले कुछ वर्ष में पंजाब सरकार ने अनेक स्थानों पर शहीद स्मारक तथा 'विरासते खालसा' जैसा संग्रहालय बनाने की पहल की है।

पंजाब ब्रिटिश शासन के अधीन आनेवाला भारत का अंतिम राज्य था। दो अंग्रेज-सिख युद्धों के बाद २९ मार्च, १८४९ को पंजाब ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार में आ गया। प्रथम अंग्रेज-सिख युद्ध पंजाब के सिख राज्य तथा अंग्रेजों के बीच १८४५-४६ के बीच लड़ा गया था। इसके परिणामस्वरूप सिख राज्य का कुछ हिस्सा अंग्रेजी राज का हिस्सा बन गया।

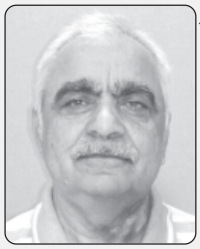

दैनिक ट्रिब्यून चंडीगढ़ में २००९ तक सहायक संपादक। चंडीगढ से प्रकाशित मासिक पत्रिका विकास जागृति के संपादन का दायित्व। १९९५-९८ तक भारतीय प्रेस परिषद् के सदस्य रहे। संप्रति पत्रकारिता में संलग्न।

द्वितीय आंग्ल-सिख युद्ध पंजाब के सिख प्रशासित क्षेत्रोंवाले राज्य तथा अंग्रेजों के ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच १८४८-४९ के बीच लड़ा गया था। इसके परिणामस्वरूप सिख राज्य का संपूर्ण हिस्सा अंग्रेजी राज का अंग बन गया। आंग्ल-सिख संघर्ष का बीजारोपण तभी हो गया, जब सतलज पर अंग्रेजी सीमांत रेखा के निर्धारण के साथ पूर्वी सिख रियासतों पर अंग्रेजी अधिकार (अभिभावकत्व) की स्थापना हुई। सन् १९३८ में सिख शासन की राजधानी लाहौर के निकट फिरोजपुर का अंग्रेजी छावनी में परिवर्तित होना भी सिखों के लिए आशंका का कारण बना।

पंजाब में ब्रिटिश शासन के खिलाफ पहले धार्मिक सामाजिक आंदोलन का सूत्रपात नामधारी समुदाय ने किया। नामधारी विद्वान् गुरुबचन सिंह नामधारी ने लिखा है कि इसके सिर्फ आठ वर्ष बाद १२ अप्रैल, १८५७ को वैशाखी के दिन ही लुधियाना जिले के गाँव 'भैणी' में नामधारी समुदाय के गुरु राम सिंह के नेतृत्व में 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का शंखनाद कर समुदाय ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की।

यह सन् १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध हुई दो क्रांतियों में पहली थी। इसका सूत्रपात सिख पंथ के दशम गुरु गुरु गोविंद सिंहजी द्वारा अमृतपान द्वारा खालसा की स्थापना के १५८ वर्ष बाद हुआ। उस दिन भैणी में एकत्र विशाल जनसमूह के सामने स्पष्ट घोषणा की गई—आज से देश की आजादी हमारे धर्म का आवश्यक अंग होगी। महाराजा रणजीत सिंह की सेना में रह चुके राम सिंहजी के आह्वान पर खालसा फौज के अनेक

पूर्व सैनिकों ने प्राण देकर भी मातृभूमि को दासता से मुक्त कराने की शपथ ली। इनमें कान्हा सिंह, साहब सिंह, गुरुचरण सिंह, दीवान बूटा सिंह, लहणा सिंह एवं हरि सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। सरदार लहणा सिंह महाराजा रणजीत सिंह के अति विश्वसनीय एवं विशिष्ट योद्धा हरी सिंह नलवा के दामाद थे।

दूसरी क्रांति ईस्ट इंडिया कंपनी की 'बंगाल आर्मी' में असंतोष के रूप में हुई। इसी समय बहादुर शाह जफर के नेतृत्व में झाँसी की रानी एवं तात्या टोपे आदि ने अंग्रेजों के विरुद्ध संग्राम छेड़ दिया। उत्तरी-पश्चिमी भारत पर कब्जा करने के लिए 'बंगाल आर्मी' की भूमिका के चलते पंजाब का जनमानस सैनिक विद्रोह के प्रति उत्साहित नहीं था। इसी तरह मुगल शासकों की क्रूरता को भी पंजाब के लोग भूले नहीं थे, इसलिए बहादुर शाह जफर की अपील का उन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हाल में अमृतसर के निकट स्थित अजनाला के गुरुद्वारा शहीद गंज परिसर में पुराने पाटे जा चुके कुएँ की खुदाई में मिले २८१ शवों के अवशेष इस तथ्य के गवाह हैं कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान पंजाब की धरती पर हुए घटनाक्रम इतिहास की परतों में दबी जानकारी को आम-आदमी तो दूर विशेषज्ञ भी अब तक आत्मसात् नहीं कर पाए हैं। ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना की २६वीं नेटिव इंफेंट्री के सिपाहियों के विद्रोह करने पर ब्रिटिश अधिकारियों ने इन्हें मौत के घाट उतारा, यह बात कुछ अधिकारियों ने अपनी पुस्तकों और सरकारी रिपोर्टों में लिखी, पर इसके बावजूद ब्रिटिश और भारतीय इतिहासकारों ने यह कहा कि पंजाब स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल नहीं था। स्पष्ट है कि उस दौर के बारे में देश की जानकारी और समझ में कमियाँ अभी भी ठीक की जानी बाकी हैं।

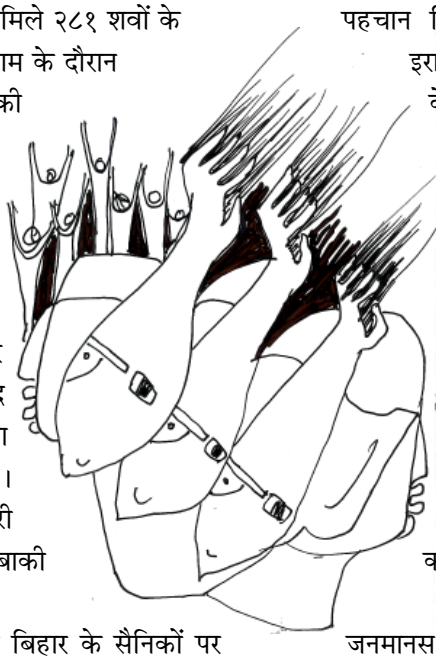

ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा उत्तर प्रदेश और बिहार के सैनिकों पर आधारित सेना की २६वीं नेटिव इन्फेंट्री के सिपाहियों का इस्तेमाल पंजाब की रियासती प्रजा के दमन के लिए किया गया, इसलिए इस क्षेत्र में १८५७ का 'सैनिक विद्रोह' गहरी जड़ें नहीं जमा पाया। दूसरी ओर सतगुरु राम सिंह के नेतृत्व में वैशाखी के दिन सुलगी आजादी की चिनगारी ने शीघ्र ही लपटों का रूप धारण कर लिया। अनुभवी सैनिक रहे राम सिंह एवं उनके साथियों के सैन्य अनुभव के कारण यह आंदोलन तेजी से फैल गया। सन् १८६७ में ५०० नामधारी क्रांतिकारियों ने फिरोजपुर में प्रदर्शन करते हुए नारा लगाया, 'ऐथों चुक ले फिरंगिया छावनी, के खालसे ने राज करना।'

सतगुरु राम सिंहजी के आंदोलन से अंग्रेज बहुत भयभीत थे, यह इस बात से स्पष्ट है कि उन्होंने नामधारियों के लिए भी सर्वप्रथम अमरीका के खतरनाक एवं हिंसक विद्रोहियों के लिए प्रयोग किया गया शब्द 'कूक्स', इस्तेमाल किया। अंग्रेजी रिकॉर्ड में नामधारी स्वतंत्रता संग्रामियों को 'कूका' लिखा गया और इस आंदोलन का नाम 'कूका आंदोलन' पड़ा। संभवत: इसी तर्ज पर जापान के विद्रोहियों के लिए कूकाई एवं असमी एवं नागा विद्रोहियों के लिए कूकी शब्द का प्रयोग किया जाता है।

आजादी के लिए अहिंसक और अत्यंत प्रभावशाली अस्त्र के रूप में 'असहयोग' का सर्वप्रथम प्रयोग उन्होंने सन् १८६५ में किया। उनका विश्वास था कि व्यापारी सोचवाले अंग्रेजों का बहिष्कार एवं अंग्रेजी वस्तुओं का क्रय-विक्रय बंद कर दिया जाए तो हुकूमत का आधार समाप्त किया जा सकता है। इसके अनुरूप उनके अनुयायियों अंग्रेजी न्यायालय, डाक व्यवस्था, अंग्रेजी स्कूलों, विदेशी वस्त्र, रेल सेवा आदि का पूर्ण बहिष्कार किया गया। गुप्त ब्रिटिश दस्तावेजों के अनुसार 'कूका पोस्टल सर्विस' अत्यंत गोपनीय, विश्वसनीय एवं द्रुतगामी थी।

सियालकोट (वर्तमान में पाकिस्तान) के डिप्टी कमिश्नर ने ५ अगस्त, १८६३ की अपनी रिपोर्ट में कहा, ''बाबा राम सिंह की धार्मिक पहचान सिर्फ दिखावा है। वस्तुत: आजादी के खतरनाक इरादोंवाला यह राजनीतिज्ञ अपने पाँच हजार अनुयायियों के साथ सक्रिय है।'' इसके बाद पंजाब के शहरों, कस्बों एवं गाँवों तक में गुप्तचरों का जाल बिछा दिया गया। गुरुजी, उनके समर्थकों और अनुयायियों की दैनिक गतिविधियों और सामूहिक कार्यक्रमों की जानकारी हर जिले से दिल्ली पहुँचने लगी।

लुधियाना के डी.आई.जी. मैकेण्ड्रयू एवं अंबाला के कमिश्नर जे.डब्ल्यू. मैकनाब ने अपनी चार नवंबर, १८६७ की रपट में 'कूका आंदोलन' को ब्रिटिश शासन के लिए सबसे बड़ा खतरा बताकर तत्काल सतगुरु राम सिंह और उनके सभी सहयोगियों को गिरफ्तार करने एवं नामधारी जत्थेबंदी को गैरकानूनी घोषित करने की सिफारिश की।

कूका आंदोलन की जड़ें सन् १८७० तक भारतीय जनमानस में गहरे तक उतर चुकी थीं। स्थान-स्थान पर ब्रिटिश हुकूमत के साथ टकराव होने लगा। गोहत्या का सख्त विरोध होने लगा। इसलिए इस आंदोलन को कुचलने के आदेश भेजे गए। कई नामधारियों को आजीवन कारावास की सजा दी गई। अनेक को अंडमान भेज दिया गया और अनगिनत नामधारियों को गहरे सागर में डुबो दिया गया।

अमृतसर के सत्र न्यायाधीश मेजर डब्ल्यू डेविस ने ३० जुलाई, १८७१ को चार नामधारियों को 'सरेआम फाँसी' की सजा सुनाई। १५ अगस्त, १८७१ को रामबाग के विशाल बरगद से लटकाकर चारों को फाँसी दी गई। ५ अगस्त, १८७१ को रायकोट में मंगल सिंह, मस्तान सिंह और गुरमुख सिंह को सरेआम फाँसी दी गई। २६ नवंबर, १८७१ को लुधियाना सेंट्रल जेल के बाहर सूबेदार ज्ञान सिंह, रतन सिंह और वतन सिंह को फाँसी दी गई।

स्वतंत्रता सेनानियों के विरुद्ध विश्व का सर्वाधिक क्रूरता एवं अन्यायपूर्ण इतिहास १७ एवं १८ जनवरी, १८७२ को रचा गया। बंगाल

रेगुलेशन ऐक्ट, १८१८ का ५४ वर्ष बाद पहली बार भारत माँ के नामधारी सपूतों के विरुद्ध प्रयोग किया गया। बिना मुकदमा चलाए ६५ क्रांतिकारियों को तोपों से उड़ा दिया गया और एक १२ वर्षीय बालक बिशन सिंह को तलवार से काट डाला गया। सतगुरु राम सिंह और उनके २२ विशेष सहयोगियों को गिरफ्तार कर १८ जनवरी, १८७२ को अलग-अलग स्थानों पर निर्वासित कर दिया गया। बाद में गुरु राम सिंह को रंगून (बर्मा) एवं उसके बाद मरगोई के बीहड़ जंगलों में नजरबंद रखा गया। उनके निर्वासन के बाद उनके छोटे भाई गुरु हरी सिंह और उनके बाद गुरु प्रताप सिंह ने यह आंदोलन जारी रखा। पूरे भारत में आजादी की लहर शक्तिशाली होती गई। गदर पार्टी के संस्थापक सरदार सोहन सिंह भाकना ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, ''आजादी की सोच का बीजारोपण और अंग्रेजों के प्रति नफरत की भावना मुझमें एक पड़ोसी बाबा केसर सिंह नामधारी ने भरी। सफेद वस्त्र एवं उज्ज्वल चरित्रवाले उस देशभक्त की सदाचार पूर्ण प्रेरणा ही मुझे गदर पार्टी के झंडे तले ले आई।''

सन् १९२८ में शहीद भगत सिंह के कूका क्रांति से संबंधित दो लेख छपे। एक दिल्ली से प्रकाशित कीर्ति मासिक में और दूसरा लाहौर से छपनेवाले महारथी मासिक में। महारथी (फरवरी, १९२८) में उन्होंने लिखा, ''स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हममें सतगुरु राम सिंह जैसा समर्पण चाहिए और नामधारी शहीदों जैसा मनोबल, जो स्वयं फाँसी की डोर गले में डाल सकें एवं जो आग उगलती तोपों के सामने भी खिलखिलाकर हँस सकें।''

सतगुरु राम सिंह के नेतृत्व में शुरू हुई कूका क्रांति में से आजादी की अनेक लहरें वर्षों तक निकलती रहीं। सुभाष चंद्र बोस, वीर सावरकर, शहीद भगत सिंह, सरदार सोहन सिंह भाकना, इंडियन नेशनल कांग्रेस सहित आजादी का कोई आंदोलन भैणी के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। महात्मा गांधी ने स्वीकार किया और डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद ने लिखा कि असहयोग आंदोलन के जिस अस्त्र को चलाकर हमने आजादी प्राप्त की, ५० वर्ष पूर्व सतगुरु राम सिंह ने उसका प्रयोग किया था।

स्वतंत्रता संग्राम का दायरा सिर्फ अंग्रेजी शासन से मुक्ति के प्रयासों तक सीमित रखने गलती नहीं की जाए तो विदेशी शासकों के खिलाफ देश के संघर्ष की शुरुआत देश के विभिन्न अंचलों में देखी गई मध्यकालीन संत परंपराओं के समांतर चली पंजाब की दशगुरु परंपरा का इतिहास निस्संदेह देश की आजादी की लड़ाई के इतिहास का पहला पन्ना है। बाबर के शासन की गुरु नानक देव की बाणियों में विदेशी शासक की क्रूरता के साथ-साथ प्रजा दर्द स्पष्ट दिखाई देता है।

अब तक ज्यादातर इतिहासकारों ने १८५७ के महासमर को विद्रोह कहा है। तथ्यों के विपरीत मंगल पांडेय को फाँसी ८ अप्रैल, १८५७ की बजाय २१ मार्च लिखी गई है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई तथा नाना साहब को एक स्वार्थी के रूप में बताया गया है। स्कूली पुस्तकों में १८५७ के महासमर को विद्रोह तथा संघर्षकर्ताओं को 'विद्रोहियो' कहा गया है। रानी झाँसी तथा नाना साहेब के संघर्ष में भाग लेने की घटना को जनता के दबाव का परिणाम; गाय तथा सुअर की चरबी के कारतूसों में प्रयोग को अफवाह, रोटी बाँटने की घटना को अस्पष्ट लिखा गया है। १८५७ के महासमर की व्यापकता में अनेक नवीन खोजों के पश्चात् भी युवा पीढ़ी को यही बताया जा रहा है कि इस लड़ाई में पंजाब कमोबेश शांत था। दक्षिण भारत तथा भारत के अन्य भागों में कुछ भी नहीं हुआ। स्कूली पुस्तक के लेखक ने १८५७ के संघर्ष, जिसमें सभी जातियों, वर्गों तथा संप्रदायों के लोगों ने भाग लिया था, के बारे में लिखा है—'इस विद्रोह के इर्द-गिर्द राष्ट्रवादी कल्पना का एक विस्तृत दृश्य-जगत् बुन दिया गया था।'

तथ्यपरक इतिहास की आवश्यकता

इतिहास की साक्ष्य आधारित व तथ्यपरक जानकारी से अवगत हो, यह समय की माँग है। स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, पं. नेहरू, डॉ. आंबेडकर सहित अनेक भारतीय चिंतकों और सैकड़ों विदेशी मनीषियों ने भी इस ओर ध्यान आकर्षित करवाया है। अनेक विद्वानों के अनुसार हमारा इतिहास पक्षपात एवं पूर्वग्रह से ग्रसित है। उनके अनुसार पक्षपात इतिहास की काल गणना, आर्य बाहर से आए कहना, आर्य द्रविड़ भेद करना, सिकंदर को महान् बताना आदि तक ही सीमित नहीं है। भारत के संघर्ष को गदर, बगावत कहना और भारत के महान् राष्ट्रीय आंदोलन को 'जानवरों की लड़ाई' बताना इसी षड्यंत्र का हिस्सा है।

इन विद्वानों ने इतिहास को यूरोपीय दृष्टि (यूरोसेंट्रिक) से हटकर भारतीय दृष्टि (इंडोसेंट्रिक) तथा राष्ट्रीय दृष्टि (नेशन सेंट्रिक) से देखने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इसमें तथ्यों के साथ भौतिक उन्नति, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दिशाबोध होना चाहिए। देश के इतिहासकारों को चाहिए कि वे भारत के इतिहास का तथ्यों के आधार पर सही और संतुलित खुलकर विश्लेषण करें।

इतिहास के छात्रों को १८५७ के तुरंत बाद तेजी से विकसित हुए ब्राह्म समाज, आर्यसमाज, सिख आंदोलन, कूका आंदोलन, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि की जानकारी से वंचित रखा गया है। कहीं-कहीं स्वामी दयानंद एवं स्वामी विवेकानंद का नाम दे दिया गया है। '१८५७ के विद्रोह' में दिल्ली के कोतवाल और पं. जवाहरलाल नेहरू के पितामह गंगाधर का नाम बताया गया है, पर यह नहीं बताया कि वह मेरठ के क्रांतिकारियों के पहुँचने पर दिल्ली में ही सामान छोड़कर भागनेवाले पहले सिपाहियों में से एक थे।

११२, टावर-३
साउथ सिटी वी.आई.पी. रोड
जीरकपुर, चंडीगढ़
दूरभाष : ०९८१४६४०७७४

आजादी के तराने

● सं. राजेंद्र पटोरिया

जलियाँवाला की वेदी

● माखनलाल चतुर्वेदी

नहीं लिया हथियार हाथ में, नहीं किया कोई प्रतिकार,
'अत्याचार न होने देंगे', बस इतनी ही थी मनुहार।
सत्याग्रह के सैनिक थे ये, सब सहकर रहकर उपवास,
वास बंदियों में स्वीकृत था, हृदय-देश पर था विश्वास।

मुरझा तन था, निश्चल मन था, जीवन ही केवल धन था,
मुसलमान हिंदूपन छोड़ा, बस निर्मल अपनापन था।

मंदिर में था चाँद चमकता, मसजिद में मुरली की तान,
मक्का हो चाहे वृंदावन होते आपस में कुरबान।
सूखी रोटी दोनों खाते, पीते थे रावी का जल,
मानो मल धोने को पाया, उसने अहा उसी दिन बल।

गुरु गोविंद तुम्हारे बच्चे, अब भी तन चुनवाते हैं,
पथ से विचलित न हों, मुदित, गोली से मारे जाते हैं।

गली-गली में अली-अली की गूँज मचाते हिल-मिलकर,
मारे जाते—कर न उठाते, हृदय चढ़ाते खिल-खिलकर।
कहो करें क्या, बैठे हैं हम, सुनें मस्त आवाजों को,
धो लेवें रावी के जल से हम इन ताजे घावों को।

रामचंद्र मुखचंद्र तुम्हारा, घातक से कब कुम्हलाया,
तुमको मारा नहीं वीर, अपने को उसने मरवाया।

जाओ-जाओ-जाओ प्रभु को, पहुँचाओ स्वदेश-संदेश,
'गोली से मारे जाते हैं भारतवासी, हे सर्वेश!'
रामचंद्र तुम कर्मचंद्र सुत बनकर आ जाना सानंद,
जिससे माता के संकट के बंधन तोड़ सको स्वच्छंद।

चिंता है होवे न कलंकित, हिंदू धर्म, पाक इसलाम,
गावें दोनों सुध-बुध खोकर या अल्ला, जय-जय घनश्याम।

स्वागत है सब जगतीतल का, उसके अत्याचारों का,
अपनापन रखकर स्वागत है, उसकी दुर्बल मारों का।
हिंदू-मुसलिम ऐक्य बनाया स्वागत उन उपहारों का,
पर मिटने के दिवस रूप धर आवेंगे त्योहारों का।

गोली को सह जाओ, जाओ—प्रिय अब्दुल करीम जाओ,
अपनी बीती हुई खुदा तक, अपने बनकर पहुँचाओ।

भारत जय

● भारतेंदु हरिश्चंद्र

चलहु वीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रनरंग जमाओ॥
परिकर कसि कठि उठो धनुषि पै धरि सर साधौ।
केसरिया बानो सजि-सजि रन-कंकन बाँधौ॥
जौ आरजगन एक होइ निज रूप सम्हारैं।
तजि गृह कलहहिं अपनी कुल-मरजाद विचारैं॥
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंह आगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मझारी॥
चिउँटिहु पदतल दबे डसत ह्वै तुच्छ जंतु इक।
ये प्रतच्छ अरि इनहिं उपेछै जौन ताहि धिक॥
उठहु वीर तरवार खींचि मारहु घन संगर।
लोह-लेखिनी लिखहु आर्य-बल सत्रु हृदय पर॥
मारू बाजे बजैं कहो धौंसा धह राहीं।
उड़हिं पताका सत्रु हृदय लखि-लिख थहराहीं॥
चारन बोलहिं आर्य-सुजस बेदी गुन गावै।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं॥
चमकहि असि भाले दमकहिं उनकहि तन बरवतर।
हींसहिं हल झनकहिं रथ गज चिंक्करहिं समर थर॥
छन महँ नासहिं आर्य नीच शत्रुन कहँ करि छय।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय॥

चल-चल रे नौजवान

● **प्रदीप**

चल-चल रे नौजवान, कहना मेरा मान!
चल-चल रे नौजवान···
दूर तेरा गाँव, और थके पाँव
फिर भी तू हरदम, आगे बढ़ा कदम,
सुभाष हमारे संग, विश्वास हमारे संग,
सभी इनके साथ-साथ, चलो कदम-कदम।
चलो देहली चलें हम, चलो देहली चलें हम।
चल-चल रे नौजवान···
तू आगे बढ़े जा, आफत से लड़े जा
आँधी हो या तूफान, फटता हो आसमान,
रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान।
चल-चल रे नौजवान···
किसने किया हम को इशारा
दूर की मंजिल से हमें किसने पुकारा,
भारत ने पुकारा आजादी ने पुकारा,
मोहन सिखा रहे हैं हमें गीत यह हरदम
चलो देहली चलें हम, चलो देहली चलें हम।
चल-चल रे नौजवान···
यह है जिंदगी का कारवाँ
आज यहाँ और कल वहाँ,
फिर भी हमें आ रही है नींद,
कब तक गुजारेंगे ऐसे दिन
हम न चलें अपने घर तो कौन चलेगा?
कौन चलेगा, मौका है आसान, कर लो एक जबान,
रुकना तेरा काम नहीं चलना तेरी शान।
चल-चल रे नौजवान···

निसार मैं तिरी गलियों में

● **फ़ैज अहमद फैज़**

निसार मैं तिरी गलियों में ऐ वतन कि जहाँ,
चली है रस्म की कोई न सर उठा के चले।
जो कोई चाहनेवाला तवाफ़ को निकले,
नजर चुरा के चले, जिस्मो-जाँ बचा के चले॥
है अहले-दिल के लिए अब ये नज्मे-बस्तो-कुशाद।
कि संगो-खिश्त मुकय्यद हैं और संग आजाद॥
बहुत है जुल्म के दस्ते-बहाना-जू के लिए,
जो चंद अहले-जुनूँ तेरे नामलेवा हैं,
बने हैं अहले-हबस मुद्दई भी, मुंसिफ भी,
किसे वकील करें, किससे मुंसिफी चाहें।
मगर गुजारनेवालों के दिन गुजरते हैं।
तेरे फ़िराक़ में यूँ सुब्हो-शाम करते हैं॥
बुझा जो रौजने-जिंदाँ तो दिल ये समझा है,
कि तेरी माँग सितारों से भर गई होगी।
चमक उठे हैं सलासिल तो हमने जाना है,
कि अब सहर तिरे रुख पर बिखर गई होगी॥
गरज तसव्वुरे-शामो-सहर में जीते हैं।
गिरिफ्ते-साय-ए-दीवारो-दर में जीते हैं॥
यूँ हीं हमेशा उलझती रही है जुल्फ से खल्क,
न उनकी रस्म नई है न अपनी रीत नई।
यूँ ही हमेशा खिलाए हैं हमने आग में फूल,
न उनकी हार नई है न अपनी जीत नई॥
इसी सबब से फ़लक का गिला नहीं करते।
तिरे फ़िराक़ में हम दिल बुरा नहीं करते॥
गर आज तुझसे जुदा हैं तो कल वहम होंगे,
ये रात भर की जुदाई तो कोई बात नहीं।
गर आज ओज पे है तालए-रकीब तो क्या,
ये चार दिन की खुदाई तो कोई बात नहीं॥
ये तुझको अहदे-नफा उस्तवार रखते हैं।
इलाजे-गर्दिशे-लैली-नहार रखते हैं॥

वीर ऊधम सिंह की शहादत

● **नंदा राही 'देहलवी'**

तेरे खूँ से शहीद ऊधम सिंह,
हिंद का हर चिराग रोशन है।
तेरी कुरबानियों के सदके ही,
आज अपना दिमाग रोशन है॥
तेरे हलके से एक झटके से,
बादशाहों के तख्त डोल गए।
'जलियाँवाले का मैंने बदला लिया',
आसमाँ तक तेरे ये बोल गए॥
तेरी मिट्टी तो उड़ गई लेकिन,
आँधियों के कदम उखाड़ गई।
तेरी आवाज दब गई बेशक,
जलजलों को मगर पिछाड़ गई॥
क्या मिटाएँगे आसमाँ उसको,
नक्श जो तू जमीं पे छोड़ गया।
खून तेरा बिखर गया लेकिन,
जुल्म की सरहदों को तोड़ गया॥
बदला लेने की आरजू तेरी,
तेरे सीने का खून चाट गई।

तेरी गरदन तो कट गई लेकिन,
जुल्म का बंद-बंद काट गई॥

भगतसिंह किधर गया

● **नेमपाल मिश्र कोविद 'पंकज'**

मुद्दत से एक नाम जो सबकी जुबाँ पै था।
जिसके लिए कि तीर 'उर्दू' की कमाँ पै था॥
कब्जा न जिसका खुद भी अपने जिस्मो-जाँ पै था।
मिटना जिसे जरूर ही हिंदोस्ताँ पै था॥
आखिर वो वीर-वीर की करतूत कर गया।
आया था जिसके लिए वह करके गुजर गया॥

कानून के उन्हीं के वह मुजरिम जरूर था।
तर्जे-अमल अहिंसा से गो' उसका दूर था॥
यह भी सही कि नादाँ जवानी में चूर था।
और मेटनेवाला भी कोई भी जरूर था॥
लेकिन यही न कहना कि वह क्यों मर गया?
आया था जिसके लिए वह करके गुजर गया॥

फाँसी का हुक्म भी था, वो कैदी असीर था।
इस पर वजन का बढ़ना बहुत बे-नजीर था॥
बलिदान त्याग कि वो मुजरिम जरूर था।
कुछ माँगता किसी से न ऐसा फकीर था॥
सौदा था जिसका 'सर' पै उसी पर तो सर गया।
आया था जिसके लिए वह करके गुजर गया॥

इन तीनों में से एक भी बाकी नहीं रहा।
कैसे कहें वतन के लिए किसने क्या कहा॥
भारत तमाम चीख के चिल्ला के रो रहा।
प्यारा भगत हमारा दुलारा किधर गया?
आया था जिसके लिए वह करके गुजर गया॥

भगतसिंह, आजाद, तात्या के—
बलिदानों की धरती को।
झाँसी की रानी लक्ष्मी के
मर मिटने की उस मस्ती को॥
निज तन, मन, अर्पण करके भी,
आँच नहीं आने देंगे हम।
मातृभूमि की रक्षा करने,
सर्वस्व आज लुटा देंगे हम॥

बलिवेदी

● **बालकृष्ण महिपाल**

आओ देश की बलिवेदी पर, सिर की भेंट चढ़ाएँ।
भारत की नैया है भँवर में, मिलकर पार लगाएँ॥
भारत प्यारा, देश हमारा, विपदा इस पर आई।
आलस त्यागो, रण में आओ, हिंदू-मुसलिम भाई॥

वैरी से टक्कर लेवें, फिर मारें और मर जाएँ।
आओ देश की बलिवेदी पर सिर की भेंट चढ़ाएँ॥
रणभूमि है मात हमारी, इसमें वीरो आओ।
देशधर्म पर तन-मन-धन की, बाजी आन लगाओ॥
प्यारे देश की रक्षा करके, जीवन सफल बनाएँ।
आओ देश की बलिवेदी पर, सिर की भेंट चढ़ाएँ॥

राष्ट्र को जीवन दान करो

● **भवानी प्रसाद तिवारी**

जीत मरण को वीर, राष्ट्र को जीवन दान करो,
समर-खेत के बीच, अभय हो मंगल-गान करो।
भारत-माँ के मुकुट छीनने आया दस्यु विदेशी,
ब्रह्मपुत्र के तीर पछाड़ो, उघड़ जाए छल वेषी।
जन्मसिद्ध अधिकार बचाओ सह-अभियान करो,
समर-खेत के बीच, अभय हो मंगल-गान करो।

क्या विवाद में उलझ रहे हो हिंसा या कि अहिंसा?
कायरता से श्रेयस्कर है छल-प्रतिकारी हिंसा।
रक्षक शस्त्र सदा वंचित है, द्रुत संधान करो,
समर-खेत के बीच, अभय हो मंगल-गान करो।

कालनेमि ने कपट किया, पवनज ने किया भरोसा,
साक्षी है इतिहास विश्व में किसका कौन भरोसा।
है विजयी विश्वास 'ग्लानि' का अभ्युत्थान करो,
समर-खेत के बीच, अभय हो मंगल-गान करो।

महाकाल की पाद-भूमि है, रक्त-सुरा का प्याला,
पीकर प्रहरी नाच रहा है देशप्रेम मतवाला।
चलो, चलो रे, हम भी नाचें, नग्न कृपाण करो,
समर-खेत के बीच, अभय हो मंगल-गान करो।
आज मृत्यु से जूझ राष्ट्र को जीवन दान करो,
रण-खेतों के बीच अभय हो, मंगल-गान करो॥

(श्री राजेंद्र पटोरिया द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'आजादी के तराने' पुस्तक से साभार)

पूर्वोत्तर भारत के स्वातंत्र्यवीर

● स्वर्ण अनिल

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम एक ऐसा महान् यज्ञ था, जिसमें हर भारतीय अस्मिता के प्रति समर्पित राष्ट्रभक्त ने निस्स्वार्थ भाव से अपने प्राणों की आहुति दी थी। भारतभूमि का कोई भी भाग आत्मोत्सर्ग के इस पर्व में पीछे नहीं रहा था। हमारा पूर्वोत्तर, जिसे आज हम 'अष्टलक्ष्मी' अर्थात् आठ राज्यों के रूप में पहचानते हैं। इसके शूरवीरों ने भी स्वतंत्रता-संग्राम में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, परंतु शेष भारत में प्राय: उनकी चर्चा भी नहीं हुई, फिर तथाकथित बुद्धिजीवियों द्वारा लिखे गए दस्तावेजों में उनके ऐतिहासिक ग्रंथों में पूर्वोत्तर के क्रांतिवीरों के नाम ढूँढ़ पाना कैसे संभव होता। अंग्रेजों के दमनचक्र का शिकार बनने के विरोध में पूर्वोत्तर के स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदान का वर्णन करने से पूर्व मैं पूर्वोत्तर की चर्चा करना समीचीन मानती हूँ। हमारा पूर्वोत्तर, जिसका वर्णन रामायण, महाभारत और पुराणों से पूर्ववर्ती वैदिक काल में 'किरात-देश' के नाम से मिलता है। जो कामरूप और प्रागज्योतिषपुर के नाम से विश्व के प्राचीन साहित्य और यात्रा-वर्णनों में समृद्ध प्रदेश के रूप में अपना स्थान रखता है। भारत के प्राचीन इतिहास में जिसका विशिष्ट स्थान है, वह प्रदेश आज के आठ राज्य नहीं, एक समग्र इकाई के रूप में वर्णित है। १२२८ से लेकर सन् १८३८ तक पठानों और मुगलों के सत्रह आक्रमणों का मुँहतोड़ जवाब देकर स्वतंत्रतापूर्वक अपनी सत्ता कायम रखनेवाले 'अहोम राज्य' के अंतर्गत यह भू-भाग शक्तिसंपन्न समृद्ध राज्य के रूप में प्रतिष्ठित था।

इस ऐतिहासिक सत्ता से हम सब परिचित हैं कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने १७५७ के प्लासी के युद्ध के बाद षड्यंत्रों की आधारशिला पर बंगाल में अपनी सत्ता कायम की। पूर्वोत्तर को 'आसाम प्रोविंस' नाम देने से पहले ब्रिटिश राजनैतिक अधिकारी इसे बंगाल का ही भाग मानते थे, इसलिए यह समझना आसान है कि बेशक हम भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम को स्वीकारते हैं, परंतु विदेशी-तंत्र को भारतभूमि से उखाड़ फेंकने का संघर्ष तो पूर्वोत्तर के इस अंचल में एक शताब्दी पूर्व ही आरंभ हो गया था। इसकी शुरुआत तब हुई जब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सत्य को मन-प्राणों से स्वीकार करनेवाले देश की हवाओं में 'फूट डालो और राज करो' के नकारात्मक मूल्य को घोलने वाले अंग्रेजों के राजनीतिक प्रतिनिधि डेविड स्कॉट ने १७६५ में अपनी चालों में उलझाकर स्वयं को बंगाल का दीवान घोषित कर दिया

सुपरिचित रचनाकार। बंद मुट्ठी की रेत (काव्य-संग्रह), एक जोड़ी आँखें (कहानी-संग्रह), सात बहनों की लोकगाथाएँ (पूर्वोत्तर की लोककथाएँ)। 'वनांचल की पाती' की संस्थापक संपादक। पूर्वोत्तर में रामायण की परंपरा, डुग्गर, असम, मणिपुर, मिजोरम की सांस्कृतिक विरासत का धारावाहिक प्रसारण।

था। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का वर्चस्व बनाने के लिए इसी डेविड स्कॉट ने अपनी कपट नीति के तहत दो प्रमुख कार्यों का वर्णन किया—

१. 'मारवाड़ियों के पैसे और बंगालियों की बुद्धि का इस्तेमाल कर हमें सड़क का निर्माण करवाकर सूखा घाटी और ब्रह्मपुत्र को जोड़ना होगा, क्योंकि इस प्रदेश को शेष भारत के विरुद्ध स्प्रिंग-बोर्ड की तरह इस्तेमाल कर हम अपना प्रभुत्व बढ़ा सकते हैं।'

२. 'इस जगह के अधिकांश बर्बर और आदिम लोग हमारा विरोध बहुत ही दृढता से एकजुट होकर कर रहे हैं, इसलिए क्रिश्चियन मिशनरियों को अपना प्रभाव बहुत ही तीव्र गति से कुशलतापूर्वक बढ़ाना है।'

अमर स्वतंत्रता सेनानी राजा यू तीरोत सिंह (खासी) से किए गए षड्यंत्रों की सफलता के पुरस्कारस्वरूप १८३६ में डेविड स्कॉट को असम का पहला कमिश्नर बनाया गया। अपने इन निर्देशों को कार्यान्वित करने के लिए उसने १८३६ में ईसाई मिशनरी नाथन ब्राउन और ओलिवर को बुलाया। उनके सादिया पहुँचने के दो वर्षों के भीतर ही इस प्रदेश का इतिहास बदल गया। लगभग ६०० वर्षीय महान् अहोम राज्य १८३८ में पूर्णत: समाप्त हो गया। अंग्रेजों द्वारा यह 'असभ्य, जंगली, बर्बर, दासतुल्य, तुच्छ और हैड हंटर्स' के रूप में प्रचारित की गई। इस महान् संस्कृति-संपन्न प्रदेश के लोगों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, पारिवारिक और राष्ट्रीय आस्थायों एवं संस्कारों को 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' (अंग्रेजों द्वारा संचालित कलकत्ता और असम की प्रेस में छपवाकर) के प्रपत्रों में पूर्वग्रह और अपने राजनैतिक स्वार्थों से परिपूर्ण कार्यकर्ताओं ने जिस रूप में रखा, उसी का प्रचार उन्होंने 'स्प्रिंग बोर्ड' से शेष भारत को और विश्व को दूर रखने के लिए किया।

सुप्रसिद्ध गांधीवादी अर्थशास्त्री डॉ. जे.सी. कुमारप्पा का कथन है—''पाश्चात्य सेना के चार अंग रहे हैं। स्थल, वायु और नौसेना के

अतिरिक्त इनका चौथा और महत्त्वपूर्ण अंग है—चर्च।' पूर्वोत्तर में अंग्रेजों द्वारा वे सभी दाँव खेले गए, जिनका प्रभाव वे अन्य देशों पर आजमा चुके थे। 'बार काउंसिल ऑफ चर्चिज' द्वारा प्रकाशित पुस्तक—'क्रिश्चियनिटी एंड एशियन रेव्यॉल्यूशन' में पृष्ठ २१६ पर स्पष्ट लिखा गया है—'क्रिश्चियनिटी ने एशिया के लोगों को अपने देश के प्रति वफादारी से दूर कर दिया। परंतु परतंत्रता को नकारने और अपनी आस्थाओं-विश्वासों पर अडिग रहनेवाले पूर्वोत्तर के रियांग, मेइते आदि, मिशिंग, मिश्मी, चकमा, गारो, गुरंग, मिजो, नागा, राभा, बोडो, जयंतिया, करबी, खमटी, डिमसा, कुंकी, सिंगपो, नोअतिया खासी, नेपाली, त्रिपुरी, लेपचा, राजबोंगशी, सिंग्फो, तमांग, बंगाली आदि विभिन्न समुदायों ने अपने देश के प्रति वफादारी नहीं छोड़ी और अंग्रेजों के विरुद्ध जमकर संघर्ष किया। 'गोम्धर कुँवर' के नेतृत्व में सिंगपो व खासी समुदायों ने अंग्रेजी सेना को लोहे के चने चबवाए तो 'सादिया खोवा गोहेन' के साथ खामटी वीरों ने अंग्रेजों के शस्त्रागार और सैनिकों को भारी क्षति पहुँचाई। १८२९ से १८३५ तक राजा ऊ तीरोत सिंह की खासी सेना ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ाए। जयंतिया में अपने वीर चाचा 'यूक्सान सजर नांगबाह' की अंग्रेजों के विरुद्ध शूरवीरता की कथाएँ सुनकर बड़ा होते 'यूकियांग नांगबाह' की, जयंतिया सेना के साथ ब्रिटिश अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष गाथा की १८६२ में सार्वजनिक रूप से दी गई फाँसी पर समाप्ति हुई। 'मनिराम दीवान' और 'पियॉली बरुआ' के प्रतिकार पर १८५२ में दी गई फाँसी, लुशाई के पर्वतों पर रक्त की अंतिम बूँद तक अंग्रेजों को अपनी धरती से बाहर रखने को प्रतिबद्ध मिजो नायक 'पासाल्था खुआंगछेरा' के वीर साथी, कछारी वीर 'शंभु फुंग्लो का तैंतीस वर्ष की आयु में १२ फरवरी, १८८३ में दिया गया बलिदान, 'आनो निजी (बापू) मोजे रीबा, गोपीनाथ बारदोलाई ललित हजारिका जैसे राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के सेनानी-अंग्रेजी शासन के भारत से हटाने के निमित्त बने थे।

पूर्वोत्तर के स्वतंत्रता सेनानियों में 'भारत-छोड़ो आंदोलन' में राष्ट्रध्वज फहराने वाली 'कनकलता बरुआ' भी है, जिसने सत्रह वर्ष की आयु में राष्ट्रभक्ति को सर्वोच्च स्थान देते हुए ब्रिटिश पुलिस की गोलियों को झेला और २० सितंबर, १९४२ को अपना बलिदान दिया। नोगाँव की 'भोगेश्वरी फुकानी' भी राष्ट्रध्वज के सम्मान हेतु अंग्रेजों की गोलियों का शिकार बन वीरगति को प्राप्त हुई। गारो समुदाय के 'पा तोगन नेंगमिंजा' ने १२ दिसंबर, १८७२ में 'पाउना ब्रजवाशी' ने १८९१ में ब्रिटिश सेना के विरुद्ध भीषण संघर्ष करते हुए वीरगति प्राप्त की थी।

पूर्वोत्तर के स्वतंत्रता सेनानियों में 'भारत-छोड़ो आंदोलन' में राष्ट्रध्वज फहराने वाली 'कनकलता बरुआ' भी है, जिसने सत्रह वर्ष की आयु में राष्ट्रभक्ति को सर्वोच्च स्थान देते हुए ब्रिटिश पुलिस की गोलियों को झेला और २० सितंबर, १९४२ को अपना बलिदान दिया। नोगाँव की 'भोगेश्वरी फुकानी' भी राष्ट्रध्वज के सम्मान हेतु अंग्रेजों की गोलियों का शिकार बन वीरगति को प्राप्त हुई। गारो समुदाय के 'पा तोगन नेंगमिंजा' ने १२ दिसंबर, १८७२ में 'पाउना ब्रजवाशी' ने १८९१ में ब्रिटिश सेना के विरुद्ध भीषण संघर्ष करते हुए वीरगति प्राप्त की थी। मिजो 'रानी सेपुइलियानि को जनवरी १८९४ में ब्रिटिश जेलों में बेटे के साथ कैद किया गया, जहाँ १९१४ में इस वीरांगना ने मृत्यु का वरण किया। पुत्र मोह या अपने प्राणों का मोह छोड़कर अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता का चयन करनेवाली रानी रोपुलियानी, शूरवीर 'माहमूर जमोह' को देशभक्ति के दंडस्वरूप १९११ में सेल्युलर जेल अंडमान भेजा गया था। पूर्वोत्तर के कई अन्य क्रांतिकारी भी देशप्रेम के अपराध में काले पानी की भीषण यातनाओं का शिकार हुए, परंतु उनका नामोल्लेख इतिहास में नहीं किया गया। अंग्रेजों की गोलियों को हँसते-हँसते झेलनेवाले 'आजाद हिंद फौज' के मित्र—सैनिक दार्थव्मा, सरुपथर पर ब्रिटिश सैनिकों से भरी रेलगाड़ी को उलटने और ब्रिटिश सैनिकों की हत्या के आरोपी 'कुशल कुँवर' ने १५ जून, १९४३ को फाँसी के फंदे को चूमा था तो 'ताजी मीदेरेन' को हत्या के मुकदमे चलाकर १९ जनवरी, १९१८ में फाँसी दी गई। अंग्रेजों की नाक में दम करनेवाले, गांधीजी के गीत बनाकर गोने वाले 'हेपोउ जादोनांग' को धोखे से पकड़कर २९ अगस्त, १९३१ में फाँसी दी गई। 'रानी माँ गाइदिन्ल्यू', वीर तीकेंद्र जीत आदि कितने ही भारतीय वीर इस स्वातंत्र्य-संग्राम के पुरोधा रहे हैं। इनके अतिरिक्त १८५८ से इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत पर ब्रिटिश राज की स्थापना के साथ पूर्वोत्तर में भी असंगत कर प्रणाली और अंग्रेजों के भारतीयों के प्रति अमानवीय व्यवहार एवं दमनकारी शासन तंत्र के विरोध में तीव्र स्वर उभरे और संघर्ष ने 'रायेजमल' (पंचायत) के समर्थन से किसान आंदोलन, फुलागुड़ी धावा, रांगिया, लुछिमा, पाथरुधार आदि कई आंदोलन हुए। सन् १७५६ से विदेशी शक्तियों के प्रति संघर्षरत रहनेवाला पूर्वोत्तर का विशाल अंचल, भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के इस अत्यंत जागरूक प्रहरी के पास देश पर सर्वस्व अर्पित करनेवाले क्रांतिवीर की विशाल परंपरा है, परंतु भारत के अधिकांश लोग उनसे अनभिज्ञ हैं। सबकी तो संभवत: नहीं, परंतु भारतमाता के कुछ अमर सपूतों की गाथा कहे बिना यह प्रसंग अधूरा रहेगा, इसलिए पूर्वोत्तर के अमर सेनानियों की संक्षिप्त गाथा—

१. ऊ तीरोत सिंह : खासाफा राज्य के शूरवीर और लोकप्रिय राजा ऊ तीरोत सिंह के राजदरबार में बंगाल का दीवान और अंग्रेजों का राजनीतिक प्रतिनिधि डेविड स्कॉट सूरमा घाटी के बाद ब्रह्मपुत्र की घाटी को अपने नियंत्रण में लाने की साजिश के तहत पहुँचा था। कथनी और करनी में अंतर रखनेवाले स्कॉट ने बड़ी विनम्रता से व्यापार के लिए सड़क निर्माण की आज्ञा माँगी तो उस सड़क से होनेवाले लाभों का वर्णन इस पर्वतीय अंचल के लोगों के संदर्भ में किया। खासी पहाड़ियों से निकलने वाले मार्ग को केवल व्यापार-मार्ग मानकर राजा ने आज्ञा दे दी। तीरोत सिंह के सैनिकों से जब नोंगरव्लाव के निकट ब्रिटिश हथियारबंद सैनिकों के आने की सूचना मिली तो अंग्रेजों के पर्वतीय क्षेत्र को छल से छीनने के षड्यंत्र को भाँपने में उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने अंग्रेजों को

जोंगख्लाव से हटने का आदेश दिया, परंतु अंग्रेजों ने उनके आदेश का पालन नहीं किया। ऊ तीरोत सिंह ने उनको खदेड़ने का निर्णय लिया और २ अप्रैल, १८२९ को अपने वीर योद्धाओं के साथ अंग्रेजों की सैनिक छावनी पर धावा बोल दिया। बड़ी संख्या में अंग्रेज मारे गए, परंतु सड़क निर्माण के कारण और सैनिक टुकड़ियाँ बुलाने में अंग्रेज सफल हुए। 'अंग्रेज खासी-युद्ध' का बिगुल फूँकने वाले राजा तीरोत सिंह अपने योद्धाओं के साथ अंग्रेजों से लोहा लेते रहे। १८२९ से प्रारंभ हुए इस युद्ध में मातृभूमि की रक्षा में जुटे वीरों की संख्या बेशक कम हो रही थी, परंतु वे अपने राजा के नेतृत्व में अंतिम साँस तक लड़ते रहे और अंत में ऊ तीरोत सिंह को बंदी बनाकर अंग्रेजों ने ढाका जेल में डाल दिया, जहाँ अमानवीय यातनाएँ सहकर भी गुलामी को अस्वीकार करने वाले भारतमाता के इस वीर सपूत ने १७ अप्रैल, १८३५ में मृत्यु का वरण किया।

२. मनिराम देवन : मनिराम दत्ता बरुआ के पूर्वज अहोम राजवंश में प्रतिष्ठित पदों पर रहे थे। १८२६ की यांदावो संधि के बाद अहोम और बर्मी शासकों से अंग्रेजों ने सत्ता अपने हाथ में ले ली थी। युवा मनिराम के अंग्रेजों से संबंध अच्छे थे। सिंगपो समुदाय द्वारा चाय की खेती की जानकारी ब्रूस भाइयों को मनिराम ने ही दी थी। चाय पर चीन के एकाधिकार को तोड़ने के लिए १८३३ में 'असम टी कंपनी' की दिशा में काम शुरू किया गया। १८३९ में मनिराम को इसका दीवान बना दिया गया। चाय बागान के श्रमिकों और भारतीयों के प्रति अंग्रेजों के रवैये के कारण उन्होंने १८४० में उसे छोड़ दिया। असम चाय पर भारतीय अधिकार के प्रति सजग मनिराम ने जोरहाट में अपना चाय बागान आरंभ किया, यह पहला भारतीय चाय बागान था। असम चाय पर अपना एकाधिकार समाप्त होते देख अंग्रेजों ने मनिराम देवन के प्रयासों में बाधा उत्पन्न करनी प्रारंभ की। अब तक मनिराम भारतीयों के प्रति अंग्रेजों के अमानवीय व्यवहार से क्षुब्ध हो उठे थे। १८५२ में उन्होंने सदर कोर्ट के जज ए.जी. मॉफ्ट मिल्स को एक याचिका दी, जिसमें भारतीयों की तत्कालीन स्थिति के प्रति रोष प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा था, 'अंग्रेज अपने हितों व स्वार्थपूर्ति के लिए ऐसी नीतियाँ बना रहे हैं, जिससे असम की आर्थिक स्थिति बिगड़ रही है। अनावश्यक करों का बोझ, अफीम की खेती, कामाख्या देवी की पूजा बंद करवाने, हमारे पर्वतीय समुदायों (नागा आदि) के साथ अमानवीय व्यवहार और अहोम राजाओं की धरोहरों को जबरदस्ती लूटना आदि कार्यों से वे हमारे जन-धन और आस्थाओं पर प्रहार कर रहे हैं।' प्रधान न्यायाधीश ने इसे व्यर्थ की बातें कहकर खारिज कर दिया तो मनिराम ने कलकत्ता आकर वहाँ विभिन्न प्रतिष्ठित लोगों को एकजुट कर अहोम राजा कंदर्पेश्वर सिंघा को सिंहासन पर बिठाने की सहमति का ज्ञापन दिया। अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए मनिराम ने फकीर वेशधारी गुप्तचर के हाथ राजा को सलाहकार पियोली बरुआ को संदेश भेजा। क्रांतिकारियों ने विदेश सत्ता के प्रति एकजुट होकर २९ अगस्त, १८५७ को दुर्गापूजा के दिन कंदर्पेश्वर को राजा के रूप में गद्दी पर बिठाने की योजना को सफल बनाने की दिशा में कार्यारंभ किया। दुर्भाग्यवश योजना असफल हुई—कई क्रांतिकारी पकड़े गए। मनिराम देवन और पियोली बरुआ को प्रमुख षड्यंत्रकारी घोषित कर २६ फरवरी, १८५८ में जोरहाट जेल में सार्वजनिक रूप से फाँसी पर लटका दिया गया और उनके चाय-बागान जार्ज विलियम्सन को नीलामी में दिए गए। आज भी 'मनिराम देवनेर गीत' श्रद्धापूर्वक गाकर लोग भारतीय स्वतंत्रता के इस पुरोधा को नमन करते हैं। उनके अद्वितीय साहस की स्मृति में उनकी २१२वीं जयंती पर २०१३ में 'चाय को राष्ट्रीय पेय' घोषित कर श्रद्धांजलि दी गई।

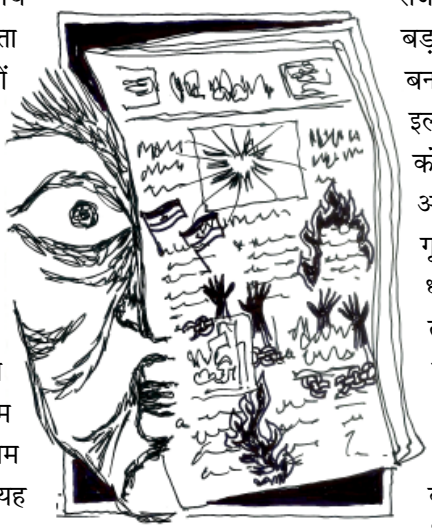

३. ऊ कियांग नांग्बाह : सात-आठ वर्ष का नन्हा ऊ कियांग नांग्बाह अपनी माँ से अपने चाचा ऊ कसान सजर नांग्बाह के, जयंतिया राजा राजेंद्र सिंह की सेना के वीर योद्धा के किस्से सुनकर बड़ा हुआ। अंग्रेजों की दुष्टतापूर्ण नीतियों का शिकार बनता जयंतियापुर उसके सामने था, जिसके कुछ पहाड़ी इलाके ही बचे थे। उनके षड्यंत्रों का शिकार बने राजा को आखिर में अपना पद त्यागना पड़ा था। भारतीयों को अपना गुलाम मानने वाले अंग्रेजों ने १८५८-५० का गृह-कर (हाउस टैक्स) का असह्य बोझ लादकर जब धार्मिक गतिविधियों में भी बाधा पहुँचाना प्रारंभ किया तो ऊ कियांग नांग्बाह ने क्रोधित होकर घोषणा की—हम यहाँ के मूल निवासी हैं, हम किसी को कर क्यों दें। हमारी धरती, हमारा धर्म, हमारी मरजी। और जयंतिया में अंग्रेजों के खिलाफ खुला संघर्ष शुरू हुआ। कर देने से मना करने पर सबक सिखाने के लिए ब्रिटिश अधिकारी दल-बल सहित लाखी पीरदियांग के घर में तोड़-फोड़ मचाने लगे तो ऊ कियांग ने अपने साथियों सहित उन पर धावा बोल दिया। ब्रिटिश अधिकारी मारे गए तो अंग्रेजों ने इस संघर्ष को बढ़ता देख सेना की सात रेजीमेंट तैनात कर दी गई। तीन सप्ताह तक जयंतिया स्वतंत्रता सेनानियों ने पूरे जोवाई क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया था। पूरे संग्राम का सुयोग्य संचालन युवा क्रांतिकारी ऊ कियांग नांग्बाह ने किया था। अंग्रेज सेना और गुप्तचर संस्थाओं की आँखों में धूल झोंककर स्वतंत्रता संग्राम के लिए अपने समाज को संगठित कर सशस्त्र सेना तैयार कर गोरी सरकार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन चलानेवाले इस क्रांतिवीर को धोखे से पकड़कर ३० दिसंबर, १८६२ को सार्वजनिक रूप से फाँसी दी गई। फाँसी के तख्ते पर उनके आखिरी वाक्य थे—'फाँसी के रस्से पर झूलता मेरा सिर पूर्व की ओर मुड़ा तो सौ वर्ष में स्वतंत्रता हमारी होगी। पश्चिम की ओर मुड़ा तो हम परतंत्र रहेंगे।' स्वतंत्रता के इस अमर पुजारी ऊ कियांग नांग्वाह का सिर पूर्व की ओर ही मुड़ा और नांग्वाह की भविष्यवाणी उनके बलिदान के ८५वें वर्ष में पूर्ण हो गई।

३. वीर शंभुधन फुंग्लो : उत्तरी कछार के पर्वतीय क्षेत्र माइबांग के निकट लंकर गाँव में १६ मार्च, १८५० में शंभुधन फुंग्लो का जन्म हुआ। मेइती, डिमसा आदि कछारी समुदायों के परंपरागत गुण साहस, स्वाभिमान, परिश्रम और स्वाधीनता उनको घुट्टी में मिले थे। कद्दारी समाज द्वारा स्थापित नियमों और अपनी पारंपरिक संस्कृति का सम्मान करनेवाले शंभुधन फुंग्लो को, अंग्रेजों का अपने आसपास बढ़ता विस्तार फूटी आँख नहीं सुहाता था। सोलह वर्षीय इस वीर ने भारत के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम और अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों की जो चर्चाएँ सुनी थीं, उसके कारण इस जागरूक युवक ने १८६६ में माइन गाँव में एक बड़ी सभा बुलाई। संगठित होकर अंग्रेजी शासन का विरोध और असहयोग करने का निर्णय तथा अंग्रेजी षड्यंत्रों के प्रति जागरूकता रखने के संकल्प ने सभी लोगों में नई स्फूर्ति भर दी। शंभुधन के कुशल नेतृत्व में क्रांतिकारियों की सेना 'मदाईराव' सब ओर स्वतंत्रता का अलख जगाने में जुट गई। इस स्वतंत्रता-आंदोलन को कुचलने के लिए सैन्य अधिकारी मेजर बायड को एक बड़ी सैन्य टुकड़ी के साथ भेजा गया। क्रांतिवीर शंभुधन को पकड़ने के लिए नगद इनाम की घोषणा की गई। प्राण हथेली पर लेकर चलनेवाले 'मदाईराव' ने अंग्रेजों की सेना पर घात लगाकर हमला किया। मेजर बायड के माइबांग स्थित सैनिक गतिविधियों के केंद्र सैन्य मुख्यालय पर शंभुनाथ फुंग्लो के कुशल नेतृत्व में जोरदार आक्रमण हुआ कि मेजर बायड और उसके कई सैनिक मौत के घाट उतार दिए गए। वीर शंभुधन को पकड़ना ब्रिटिश सेना के लिए प्रतिष्ठा का सवाल बन गया था। गोरों और भारतीय वीरों की सेना 'मदाईराव' के बीच भीषण संघर्ष हुए। स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व अर्पित करनेवाले वीर शंभुधन फुंग्लो को अंग्रेज कभी नहीं पकड़ पाए। युद्ध क्षेत्र में लगी गोली से १२ फरवरी, १८८३ में तैंतीस वर्ष के भारतमाता के इस वीर सपूत ने वीरगति पाई। आज भी कछारी समाज पूरी निष्ठा से वीर शंभुधन फुंग्लो शहीद दिवस मनाकर श्रद्धासुमन अर्पित करता है।

रानी गाइदिन्ल्यू

४. रानी माँ गाइदिन्ल्यू : तेरह वर्ष की गाइदिन्ल्यू अपने चचेरे भाई 'हेपाउ जादोनांग' की (हेराका (पवित्र/शुद्ध) समुदाय) नागराज के रूप में अपनी प्रजा को अंग्रेजों से मुक्त करने के लिए संगठित की गई सेना में भरती हुई। कुछ समय तक ब्रिटिश फौज का अंग रहे 'जादोनांग', ने ब्रिटिश दमनचक्र और सैन्य संरक्षण में विस्तार पाते ईसाई मिशनरी से क्रुद्ध होकर फौज की नौकरी छोड़ी और अपनी देवी-भक्ति के बल पर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अस्मिता बनाए रखने के लिए अपने प्रदेश के लोगों को जागरूक किया। जेलियांगरांग समाज के साथ अंगामी, कारबी, ओग्लांक और कछारी समुदाय भी उनके साथ जुड़ गए। धोखे से पकड़कर हेव्न जादोनांग को कछार से इंफाल तक नंगे पाँव, नंगे बदन मार-मारकर अंग्रेज पैदल लाए और २९ अगस्त, १९३१ को पेड़ से लटकाकर नांबुला नदी के किनारे उनकी हत्या की तो स्वतंत्रता संग्राम की बागडोर गाइदिन्ल्यू ने सँभाल ली। १६ फरवरी, १९३२ में उत्तरी कछार में और १८ मार्च, १९३२ में हांग्रम गाँव में रानी की सेना ने अंग्रेजों की असम राइफल्स के छक्के छुड़ा दिए थे। वे दो मोरचों पर लड़ रही थीं। पहला, अंग्रेजों की गुलामी और दूसरा मिश्नरियों द्वारा भोले-भाले लोगों का धर्मांतरण। रानी को पकड़ने के लिए दस साल तक पूरे गाँव को टैक्स मुक्ति का लालच दिया गया। अंग्रेजी शासन उनकी हत्या करवाना चाहती थी। रानी माँ पोइलुमा गाँव में अपने ५०० सैनिकों का गुप्त किला बनवा रही थी, उसी समय हेरालू परिवार के एक ईसाई बने जेलियांग ने उनको धोखा दिया और ब्रिटिश सेना की बड़ी टुकड़ी ने भीषण युद्ध के बाद इनको पकड़ लिया। १७ अक्तूबर, १९३२ में गिरफ्तारी के बार रानी माँ के सैनिकों की सक्रियता के कारण उनको आजीवन कारावास के लिए गुवाहाटी, शिलांग, आइजोल और तुरा की जेलों में रखा गया। २६ जनवरी, १९१५ में जनमी इस पर्वत पुत्री के शौर्य से प्रभावित होकर पंडित नेहरू ने उनको अपनी एक भेंट में रानी कहा था। कितनी विरोधाभासीय स्थिति है कि सत्रह वर्ष की आयु में अंग्रेजों की जेल की बंदिनी बनी रानी माँ को स्वतंत्र भारत में जब आजाद किया गया तब चौदह वर्ष का वनवास भोग चुकी रानी माँ को अपने गाँव लुंगकाओ जाने की स्वतंत्रता नहीं मिली। चर्च समर्थित दलों के विरोध और बढ़ते ईसाई प्रभाव के कारण स्वाधीन भारत की सरकार को यह रोक लगानी पड़ी। १९५२ में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्रप्रसादजी के मणिपुर आने पर उनके हस्तक्षेप करने पर ही वे अपने पैतृक गाँव जा सकीं। स्वतंत्रता की रजत जयंती पर ताम्रपत्र और बाद में 'पदम्भूषण' से अलंकृत रानी माँ गाइदिन्ल्यू जीवनपर्यंत राष्ट्रीय और सांस्कृतिक विरासत की रक्षा में लगी रहीं। १७ फरवरी, १९९३ में उनके निधन पर पूरे राज्य और राष्ट्र ने उनको श्रद्धांजलि दी।

वास्तव में पूर्वोत्तर के स्वतंत्रता सेनानियों में मणिदीपों की एक विशाल शृंखला जगमगा रही है। इनका प्रकाश सबको अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठा और पारंपरिक संस्कृति के प्रति गहरी आस्था और सामाजिक व आर्थिक स्तरों पर समानता का संदेश दे रहा है।

सा.अ.

सी-२२८, साउथ मोती बाग, नानक पुरा
नई दिल्ली-११००२१
दूरभाष : ०९८६८९८७५७९

बंगाल : स्वतंत्रता संग्राम का अग्रदूत

● प्रियदर्शी दत्ता

१५ अगस्त, १९४७ का दिन भारत के लिए स्वतंत्रता का आनंद भी लाया और विभाजन की पीड़ा भी। बंगाल के लिए यह एक असमंजस की घड़ी थी। एक ओर त्याग-तपस्या-संग्राम से अर्जित स्वतंत्रता थी, तो दूसरी ओर विभाजन से दो-तिहाई भूमि की हानि। लाखों हिंदू शरणार्थी पश्चिम बंगाल में प्रवेश करने लगे। बहुत बड़े संख्यक हिंदू पूर्वी पाकिस्तान में डटे रहे और दुर्गति का शिकार हुए। विडंबना यह थी कि इनमें से कितने ही थे, जो स्वयं स्वतंत्रता संग्राम के लिए जेल गए थे या उनके परिवार से कोई फाँसी भी चढ़ा था। आज करीब तीन पीढ़ी बीत जाने के बाद भी बंगाल विभाजन की त्रासदी खतम नहीं हुई है। अभी भी वहाँ के हिंदुओं के भविष्य पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है। परंतु वह विषय इस निबंध के मुद्दे से परे है। यहाँ हम केवल स्वतंत्रता आंदोलन में बंगाल का योगदान या बंगाल में स्वतंत्रता आंदोलन के स्वरूप को समझने की कोशिश करेंगे।

प्लासी की लड़ाई (२३ जून, १७५७) में अग्रेजों ने बंगाल के अंतिम स्वतंत्र नवाब सिराज-उद-दौला को हरा दिया और बंगाल में अंग्रेजों का वर्चस्व स्थापित हुआ। पहले कुछ साल परोक्ष रूप से और १७६४ के बक्सर के युद्ध के बाद प्रत्यक्ष रूप से उनका शासन स्थापित हुआ और बंगाल के दरवाजे से ही अंग्रेजों ने बाकी भारत पर अपनी अपना सिक्का जमाया। परंतु क्या बंगाल अंग्रेजों के आने से पहले स्वतंत्र था? नहीं, बंगाल की अपनी स्वतंत्रता १३वीं सदी के अंत में तुर्की हमलावरों की भेंट चढ़ गई थी। उसके बाद आए पठान, मुगल और फिर एक स्वतंत्र तुर्की वंश। सिराज-उद-दौला उसी का प्रतिनिधि था, तो अंग्रेज उसी कड़ी में एक नए शासक थे। तत्कालीन बंगाल ने अंग्रेजों को उसी दृष्टि से देखा। बंगाल के हिंदुओं ने मुसलिम शासन के उन्मूलन के लिए अंग्रेजों का साथ दिया। इनमें विशेष नाम आता है नवकृष्ण देव का, जिन्हें बाद में महाराज बहादुर की उपाधि मिली। प्लासी की लड़ाई के तीन महीने बाद जब नवकृष्ण देव ने कलकत्ता में पहला बड़ा दुर्गा पूजा उत्सव आयोजित किया। इसमें लार्ड क्लाइव सहित कई दूसरे अंग्रेज मौजूद थे और लार्ड क्लाइव ने लड़ाई जीतने के उपलक्ष्य में देवी को पूजा चढ़ाई।

कलकत्ता अंग्रेज-शासित भारत की राजधानी थी। समय के साथ

जाने-माने शोधकर्ता और स्तंभकार। अंग्रेजी दैनिक 'द पायनियर' में पिछले पंद्रह वर्षों से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर लेखन। इसके अलावा पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में रुचि। संप्रति भारत में वाग्मिता के ऐतिहासिक विकास पर एक पुस्तक लिखने में व्यस्त।

अंग्रेज शासन का दायरा बढ़ रहा था। एक समय में पेशावर से लेकर बर्मा का शासन कलकत्ता के राइटर्स बिल्डिंग से ही चलता था। इसी शहर में १८१४ में देश का पहला टाउन हॉल बना और १८१७ में पहला आधुनिक कॉलेज (हिंदू कॉलेज) भी। यह एक मिथक है कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा को लार्ड मैकॉले द्वारा प्रवर्तित किया गया। उसके भारत आने से अठारह साल पहले देश का पहला अंग्रेजी कॉलेज हिंदू कॉलेज कोलकाता के हिंदू समाज ने अपने पैसे से बनाया था। बाद में इस कॉलेज का नाम 'प्रेसीडेंसी कॉलेज' पड़ा। बंगाल ने ही सबसे पहले अंग्रेजी को अपनाया, जिसके कारण आधुनिक ज्ञान का उद्भव इस प्रांत में हुआ।

बंगाल राष्ट्रीय आंदोलन का इंजन

बंगाल के ही सुरेंद्र नाथ बनर्जी (१८४८-१९२५) पहले अखिल भारतीय नेता थे। वे पहले राजनीतिज्ञ थे, जिन्होंने भारत में फैलते रेलवे तंत्र का लाभ उठाते हुए देश का दौरा किया। १८७७ में उनका उत्तर भारत और पंजाब का दौरा; १८७८ में तत्कालीन बंबई तथा मद्रास प्रांतों का दौरा अत्यंत सफल रहा। वे जहाँ भी गए, समाज के शीर्ष व्यक्तियों से मिलकर राजनीतिक संस्थाओं की नींव डाली। यह उनकी बनाई हुई संस्था इंडियन एसोसिएशन अर्थात् भारत सभा से संबद्ध हो गए। इस प्रकार से उन्होंने १८८५ में बननेवाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए जमीन तैयार की। यहाँ तक कि कांग्रेस शब्द का प्रयोग पहली बार सुरेंद्र नाथ ने ही किया था।

सुरेंद्रनाथ एक नरम पंथी थे, हालाँकि १९०५ में बंग-भंग के निर्णय पर बहुत तीखे तेवर अपनाए। उनका मानना था कि सरकार की व्यर्थता और संवेदना-हीनता के कारण ही क्रांतिकारियों को बढ़ावा मिल रहा है। नरमपंथी होते हुए भी उन्होंने इटली के जोसफ मेजिनी का एक

आदर्श राष्ट्रवादी के रूप में प्रचार किया।

१८८५ से लेकर १९२५ तक चालीस वर्षों में ११ बार बंगाल प्रांत के कांग्रेस के अध्यक्ष बने। इसी कालखंड में बंबई प्रांत (प्रेसीडेंसी) के व्यक्ति ९ बार अध्यक्ष बने।

गैर-राजनीतिक राष्ट्रवाद

इस समय बंगाल की दो विभूतियों ने राष्ट्रप्रेम का अलख जगाया। उनका राष्ट्रप्रेम भाव-प्रधान था, जिसमें राजनीति की कोई भूमिका नहीं थी। परंतु आज भी राष्ट्रवाद के मुद्दे पर उनका ही उल्लेख होता है। इनमें से पहले है बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय (१८३८-१८९४), जिन्होंने हमें वंदे मातरम् का अमोघ मंत्र दिया। दूसरे थे स्वामी विवेकानंद (१८६३-१९०२), जिन्होंने भारत को पुण्यभूमि और अविच्छिन्न आध्यात्मिक परंपराओं का देश बताया। उन्होंने विदेश की धरती पर देश का गौरव बढ़ाया और देश के उत्थान के लिए युवाशक्ति का आह्वान किया।

बंकिम चंद्र भारत के पहले उपन्यासकार थे। उन्होंने करीब १७ उपन्यास, ५ धर्म तत्त्व से संबंधित पुस्तकें और ४ निबंध संकलन लिखे। बंकिम के कई उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर थे। वे बंगाल में इतिहास बोध जाग्रत् करना चाहते थे। बंगाल ने मराठा, सिख या राजपूतों की तरह मुसलिम शासन के विरुद्ध लड़ाई लड़कर स्वतंत्रता नहीं अर्जित की थी। ऐसा भी मानते हैं कि तत्कालीन महाराष्ट्र में वासुदेव बलवंत फड़के के विद्रोह ने बंकिम चंद्र के मन पर गहरी छाप छोड़ी।

बंकिम चंद्र भारत के पहले उपन्यासकार थे। उन्होंने करीब १७ उपन्यास, ५ धर्म तत्त्व से संबंधित पुस्तकें और ४ निबंध संकलन लिखे। बंकिम के कई उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर थे। वे बंगाल में इतिहास बोध जाग्रत् करना चाहते थे। बंगाल ने मराठा, सिख या राजपूतों की तरह मुसलिम शासन के विरुद्ध लड़ाई लड़कर स्वतंत्रता नहीं अर्जित की थी। ऐसा भी मानते हैं कि तत्कालीन महाराष्ट्र में वासुदेव बलवंत फड़के के विद्रोह ने बंकिम चंद्र के मन पर गहरी छाप छोड़ी। उपन्यास में आनंदमठ एक ऐसे संन्यासियों का मठ है, जो हिंदू स्वराज्य की पुनर्स्थापना करना चाहता है। और वे सशस्त्र क्रांति के माध्यम से अंग्रेज और मुसलिम शासक दोनों से देश को स्वतंत्र करना चाहते हैं।

आनंदमठ में ही वंदे मातरम् गीत है, जो संस्कृत मिश्रित बांग्ला में लिखा गया। इस गीत को ७ नवंबर, १८७५ (जगधात्री पूजा) के दिन लिखा गया था।

स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद ने भारत की एक नई व्याख्या दी। प्राची में प्रथम सार्वजनिक व्याख्यान में कोलंबो में (१६ जनवरी, १८९७) उन्होंने कहा, यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है, जिसे हम धन्य पुण्यभूमि कह सकते हैं, यदि ऐसा कोई स्थान है, जहाँ पृथ्वी से सब जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिए आना पड़ता है, यदि ऐसा कोई स्थान है, जहाँ भगवान् की ओर उन्मुख होने के प्रयत्न से संलग्न रहनेवाले जीवमात्र को अंततः आना होगा, यदि ऐसा कोई स्थान, जहाँ मानव जाति की क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्वृत्तियों का सर्वाधिक विकास हुआ और यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ आध्यात्मिकता तथा सर्वाधिक आत्मान्वेषण का विकास हुआ था, तो वो भारतभूमि है।

स्वामी विवेकानंद ने राष्ट्रवाद के व्यापक पृष्ठभूमि का निर्माण किया।

अनुशीलन समिति का तंत्र

स्वामी विवेकानंद एक ऐसी युवा पीढ़ी को देखना चाहते थे जिनकी मांसपेशियाँ लोहे जैसी मजबूत हों और जिनका स्नायुतंत्र इस्पात जैसा। उनके जीवन के अंतिम दिनों में कलकत्ता में एक व्यायाम समिति का गठन किया था, जिसका उद्देश्य युवाओं का शरीर तथा चरित्र का निर्माण था। १९०२ के २४ मार्च होली के दिन उत्तरी कलकत्ता में अनुशीलन समिति का गठन हुआ। इसके निर्माता थे सतीश चंद्र बोस (१८७६-१८४८) और बैरिस्टर प्रमथनाथ मित्र (पी मित्र) इसके प्रमुख संगठक थे। यही संस्था क्रांतिकारियों की पाठशाला साबित हुई। अनुशीलन समिति ने लाठी खेला, व्यायाम, जिमनास्टिक, घुड़सवारी आदि को अपनाया और चरित्र निर्माण पर जोर दिया। उन्हें गीता पढ़ाया जाता था और कई बार दक्षिणेश्वर-बेलूर मठ के दर्शन के लिए भी ले जाया जाता था।

बंगाल के एक युवक जतिंद्रनाथ बंद्योपाध्याय अपने नाम का हिंदीकरण कर यतींद्रनाथ उपाध्याय के रूप में वरोदा राज्य के सेना में भरती हुए थे। वे वरोदा राजदरबार में कार्यरत अरविंद घोष (बाद में श्री अरविंद) से मिले और भारत की स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र क्रांति की बात की। इस योजना के तहत जतिंद्रनाथ बंगाल वापस आए। अनुशीलन समिति की आड़ में उन्होंने ही बंगाल में क्रांतिकारी गतिविधियों की नींव रखी। उन्हें ही हम बंगाल में क्रांति के 'ब्रह्मा प्रपितामह' मान सकते हैं। बाद में श्रीअरविंद भी वरोदा से कलकत्ता आए और उस योजना में शामिल हुए। और यह भी संयोग है कि बाद में जतिंद्रनाथ और श्रीअरविंद दोनों ही बाद में अध्यात्म के रास्ते पर चले गए।

बंगाल के हिंदू युवाओं में अचानक ऐसे आक्रामक तेवर देखकर गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन का प्रस्ताव रखा। बंगाल के हिंदुओं में विभाजन के विरुद्ध घोर प्रतिक्रिया हुई। राष्ट्रीय कांग्रेस भी इसके विरोध में था। और इसी पृष्ठभूमि में राष्ट्रवादी विचार और क्रांतिकारी गतिविधियाँ बढ़ी। १९०६ से लेकर १९११ (जब विभाजन को निरस्त किया गया) बंगाल में राष्ट्रवादी ऊर्जा का अद्भुत संचार हुआ। श्री अरविंद जैसे राष्ट्रवादी विचारक और बिपिन चंद्र पाल जैसे वक्ता ने बंगाल को ही नहीं बल्कि भारत में हलचल पैदा की। राष्ट्रवाद की तरंगें केवल पंजाब या महाराष्ट्र तक ही नहीं बल्कि लंदन तक पहुँची।

हुतात्मा खुदीराम बोस को आज भी पूरे देश में याद किया जाता है। परंतु वे एक बड़ी योजना के छोटे से हिस्से थे। उसे क्रांतिकारी योजना मानिकतला बम कांड या अलीपुर बम मुकदमा के नाम से जाना

जाता है। इसके मूल षड्यंत्रकारी श्रीअरविंद के अनुज बारींद्र कुमार घोष थे। अलीपुर बम मुकदमा में श्रीअरविंद को भी एक वर्ष तक कारागार में रहना पड़ा। खुदीराम के अलावा कानाईलाल दत्ता और सत्येन बोस भी फाँसी चढ़े। बारींद्र घोष और उल्हास्कर दत्ता अंडमान में कारावास के लिए भेजे गए।

बंग-भंग और आत्मशक्ति का विकास

७ जुलाई, १९०५ के दिन वाइसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो सूबों में बाँट दिया। उस दिन पंडित रामेंद्र सुंदर त्रिवेदीजी (जो विज्ञान पर बांग्ला में लिखनेवाले पहले व्यक्ति थे) के कथन पर अरंधन रखा गया। बंगाल के हिंदू घरों में उस दिन चूल्हा नहीं जला। गुरुदेव रवींद्रनाथ ने राखी बंधन उत्सव पालन किया, जहाँ लोगों ने गंगा और दूसरे नदी या जलाशयों में स्नान कर एक-दूसरे के हाथ में एकता की प्रतीक राखी बाँधी। राष्ट्रीय आंदोलन में अब तक जो सांस्कृतिक पक्ष का अभाव था पूरा हुआ। विभाजन से जनता का रोष भड़का और प्रांत में देश का पहला जन-आंदोलन खड़ा हुआ। बंग-भंग ने बंगाल को स्वदेशी की भावना से विकसित करने का अवसर दिया। उद्देश्य केवल बंगाल को पुन: एकीकृत करना नहीं था बल्कि भारत को स्वतंत्र करवाना था। देश की स्वतंत्रता उस युग के लिए एक दुस्साहसिक स्वप्न थी। लेकिन श्री अरविंद ने एक युगपुरुष की भाँति कहा कि एक भारतवासी उतना ही स्वतंत्र होना चाहता है जितना कि इंग्लैंड में एक अंग्रेज, अमेरिका में एक अमेरिकी और फ्रांस में एक फ्रांसीसी नागरिक होता है। आंदोलन का उद्देश्य आत्मशक्ति का विकास करना था जिसके अंतर्गत स्वदेशी उद्योग, स्वदेशी कला, स्वदेशी शिक्षा तंत्र इत्यादि का विकास शामिल था। विदेशी वस्त्रों की होली और विदेशी सामान का बहिष्कार पहली बार बंगाल में ही हुआ। बाद में असहयोग आंदोलन (१९२०-२२) के दौरान गांधीजी ने इन उपायों को अपनाया।

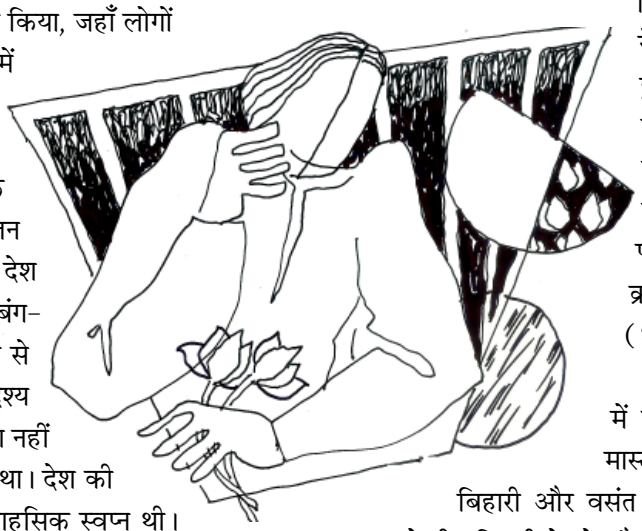

स्वदेशी गीतों ने आंदोलन को समृद्ध किया। इस आंदोलन के दौरान ही बंकिम चंद्र का गीत वंदे मातरम् बंगाल के मानस पर छा गया। १९०६ में बालगंगाधर तिलक, खापर्डे आदि कलकत्ता आए और कलकत्ता में भी शिवाजी उत्सव मनाया जाना लगा। कलकत्ता में ही उस समय अनुशीलन समिति ने सार्वजनिक दुर्गा पूजा का प्रवर्तन किया। इस पूजा में कोई मूर्ति नहीं होती थी बल्कि चाकू, तलवार, भाला, खुकरी इत्यादि से एक अमूर्त दस हाथोंवाली देवी का प्रतीक बनाया जाता था। इसकी पूजा के लिए महाराष्ट्र से ब्राह्मण आते थे। महाराष्ट्र से क्यों? थोड़ा गौर करें तो पाएँगे कि महाराष्ट्र के चित्तपावन ब्राह्मण उन दिनों में क्रांति के अग्रदूत थे।

क्रांति का तंत्र

बंग-भंग विरोधी आंदोलन से जो क्रांति का तंत्र उभरा वह सूबे तक ही सीमित नहीं था। वह देश के अन्यत्र यहाँ तक विश्व के अन्य स्थानों तक फैला हुआ था। अलीपुर बम का मुकदमा के साथ क्रांति का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ। परंतु उसके बाद नए-नए अध्याय खुलने लगे। गौर करने की बात है जब बंगाल का पुन: एकीकरण किया गया, उसके बाद भी देश के स्वतंत्रता के लिए ऐसे उपक्रम चलने लगे। जतिंद्रनाथ मुखोपाध्याय (१८७९-१९१५) उर्फ बाघा जतिन (जतिन बग्घा) ने जर्मनी से समुद्र के रास्ते कुछ अस्त्र-शस्त्र मँगवाए थे। इन हथियारों के सौदे के लिए उनके दल के एक सदस्य नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य विदेश गए थे। एक बाद में प्रसिद्ध मार्क्सवादी नेता मानवेंद्र नाथ राय के नाम से ख्यात हुए। परंतु ओडिशा के बालासोर के निकट उन शास्त्रों के ग्रहण करते वक्त पुलिस ने बाघा जतिन को घेर लिया। वे अपने साथियों के साथ घायल हुए और बाद में मारे गए। परंतु बाघा जतिन भारत को एक अद्भुत क्रांतिकारी दे गए थे, वे थे रासबिहारी बोस (१८८५-१९४५)।

रासबिहारी ने पहले तो १९१२ में दिल्ली में लार्ड हार्डिंज पर बम फिंकवाया, जिसमें मास्टर आमीर चंद, भाई बालमुकुंद, अबोध बिहारी और वसंत कुमार विश्वास को फाँसी हुई। इनमें से पहले तीन दिल्ली के थे और वसंत कुमार बंगाल के। परंतु वेश बदलने में माहिर रासबिहारी बच निकले। वे लाहौर जाकर बस गए और गदर पार्टी के सदस्यों के नेता बन गए। उनका उद्देश्य था २१ फरवरी, १९१५ को पेशावर की छावनी से लेकर सिंगापुर तक एक साथ बगावत होगी। लेकिन एक विश्वासघात के कारण पूरी योजना व्यर्थ हो गई। उनके कई साथी पकड़े गए, जिन पर लाहौर षड्यंत्र मुकदमा चला। उनमें से कई लोगों को फाँसी हुई और कई लोगों को कालापानी भेजा गया। रासबिहारी वेश बदलकर फिर बच निकले। वे फिर से क्रांतिकारियों को संगठित करना चाहते थे, परंतु उनके घनिष्ठ सहयोगी सचिंद्रनाथ सान्याल (जो कई वर्षों के बाद काकोरी कांड के सरगना बने और खुद कालापानी गए) ने उन्हें भारत से भाग जाने के लिए राजी कर लिया। अपना परिचय बदलकर रासबिहारी जापान चले गए और अपना बाकी जीवन वहीं व्यतीत किया। टोक्यो में उन्होंने 'हिंदू महासभा' का गठन किया, जापानी भाषा में रामायण, भगवत गीता आदि का अनुवाद किया। सन् १९४२ में सिंगापुर के पतन के बाद कप्तान मोहन सिंह के साथ मिलकर उन्होंने 'आजाद हिंद फौज' का गठन किया। बाद में श्री सुभाष चंद्र बोस इसके सर्वोच्च नायक बने।

१९२० के दशक में गांधीजी के उत्थान से क्रांतिकारी आंदोलन कुछ प्रशमित हुआ। बंगाल के क्रांतिकारी एक जन-आंदोलन (बंग-भंग

विरोधी आंदोलन) के उपज थे। परंतु आंदोलन समाप्त होने के बाद वे फिर जनता से कट गए। उनकी कार्यपद्धति भी स्वाभाविक रूप से गोपनीय होती थी। गांधीजी ने सत्याग्रह और अहिंसा के माध्यम से एक जन-आंदोलन का निर्माण किया। बंगाल में भी कांग्रेस का जोर रहा। परंतु प्रदेश कांग्रेस से देशबंधु चित्तरंजन दास और सुभाष चंद्र बोस जैसे नेता आए, जिन्होंने गांधीजी के नेतृत्व को चुनौती दी। उसी दशक में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी शब्द को खारिज किया गया था) का उदय हुआ। यह देखा गया कि बहुत से भूतपूर्व राष्ट्रवादी/क्रांतिकारी बाद में कम्युनिस्ट बन गए। इसका कारण था जेल में उन्हें संगठित रूप से साम्यवादी साहित्य मुहैया कराया जाना। उनकी एक प्रकार से मगज धुलाई (ब्रेन वॉश) हुई। कहा जाता है, अंग्रेजों की तरफ से इस प्रक्रिया को मदद मिली। वह इसलिए कि कम्युनिस्ट जिस संगठित क्रांति की बात करते थे, उससे हिंसा/हत्या समाप्त होने की उम्मीद थे। ऐसा नहीं है कि अंग्रेजों को कम्युनिज्म से सैद्धांतिक रूप से खतरा नहीं था।

कलकत्ता कांग्रेस और बेंगाल वॉलंटियर्स

१९२८ में कलकत्ता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन आयोजित किया गया। स्वागत समिति की ओर से सभापति पं. मोतीलाल नेहरू को एक अनोखा गार्ड ऑफ ऑनर प्रस्तुत किया गया। इस टोली का नेतृत्व कर रहे थे युवा सुभाष चंद्र बोस। इन्हीं स्वयंसेवकों को लेकर बाद में बेंगाल वॉलंटियर्स का गठन किया था। यह एक गुप्त समिति जैसी थी। इसके नेता थे हेमचंद्र घोष, जिन्होंने १९०५ में 'मुक्ति संघ' नामक एक गुप्त संस्था का निर्माण किया था। वे अपनी पुरानी संस्था को नई संस्था में मिलाकर इसके नेता बने। बेंगाल वॉलंटियर्स (संक्षेप में) वास्तव में कलकत्ता पुलिस का दिया नाम था, जिसे संस्था के सदस्यों ने अपना लिया। ८ दिसंबर, १९३० के दिन बेंगाल वॉलंटियर्स के तीन सदस्य विनय बोस, बादल बोस और दिनेश गुप्त ने कलकत्ता सचिवालय राइटर्स बिल्डिंग में घुसकर कई अंग्रेज अधिकारियों को गोलियों से भून दिया। भवन के गलियारों में घंटों तक दोनों तरफ से गोलियाँ चलती रहीं। अंत में गोरखा रेजिमेंट के जवानों को बुलाना पड़ा। बादल की घटनास्थल पर ही मृत्यु हुई, विनय की अस्पताल में और दिनेश खुशी-खुशी फाँसी चढ़े।

चटगाँव में सशत्र अभ्युत्थान

अप्रैल १९३० में ही पूर्वी बंगाल के त्रिपुरा से लगता हुआ जिला चटगाँव (चट्टग्राम) में सूर्यसेन के नेतृत्व में चटगाँव शास्त्रभंडार की लूट और सशत्र अभ्युथान हुआ। अप्रैल १९१६ में आयरलैंड में हुए ईस्टर अप-राइजिंग से उसकी तुलना की जा सकती है, जहाँ क्रांतिकारी मरने के लिए तैयार थे। इस प्रकरण में सूर्य सेन और उनके एक साथी तारकेश्वर दोस्तीदार को फाँसी हुई और बाकियों को जेल। प्रीतिलता वाद्देदार भारत के स्वतंत्रता संग्राम की पहली महिला हुतात्मा बनीं।

मुसलिम राजनीति और बंगाल का विभाजन

गौरतलब बात है कि बंगाल के क्रांतिकारी और स्वतंत्रता सेनानी सभी हिंदू थे, हालाँकि संयुक्त बंगाल में मुसलिम बहुसंख्यक (५५ प्रतिशत) थे। पूर्वी बंगाल में, जो बाद में पूर्वी पाकिस्तान और अंत में बांग्लादेश बना, हिंदू केवल एक तिहाई थे। अपितु पूर्वी बंगाल के जिलों का प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम में सर्वाधिक योगदान रहा। परंतु सबकुछ बहुत तेजी से बदल रहा था। १९३५ में भारत सरकार अधिनियम के अनुसार प्रदेशों में विधान सभाएँ बनीं। कोई भी पार्टी का हो, बंगाल का मुख्यमंत्री (उस जमाने में प्रधानमंत्री कहा जाता था) कोई मुसलिम ही बनता। १९३७ से १९४३ तक अबुल कासेम फजलुल हक (प्रजा कृषक पार्टी) मुख्यमंत्री रहे और १९४६ के चुनाव के बाद मुसलिम लीग के हुसैन शहीद सुहरावर्दी। उनके मुख्यमंत्री बनने के एक महीने के अंदर ही कलकत्ता में १६-१९ अगस्त, १९४६ को हिंदू नरसंहार हुआ। हिंदू महासभा के नेता डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने सांप्रदायिक आधार पर विभाजन की बात की। वे बंगाल के दो-तिहाई हिंदुओं को एक सुरक्षित जमीन (पश्चिम बंगाल) चाहते थे। मुसलिम लीग सरकार आने के बाद बंगाल के हिंदुओं पर मुसलिमों द्वारा अत्याचार बढ़ते ही जा रहे थे। १९४० में जब लाहौर में पाकिस्तान प्रस्ताव लाहौर में पास हुआ तो उसको प्रस्तावित करनेवाले थे फजलुल हक। जिन्ना ने पाकिस्तान के अंतर्गत पूरा बंगाल और पूरा आसाम माँगा था। लेकिन यह स्पष्ट था कि पंजाब की तरह बंगाल का भी विभाजन होगा। एक और प्रस्ताव आया सुभाष बोस के अग्रज श्री शरत बोस और सुहरावर्दी की तरफ से, यूनाइटेड सॉवरेन बंगाल या संयुक्त स्वतंत्र बंगाल। परंतु बंगाल के हिंदू मानस ने श्यामाप्रसाद मुखर्जी की योजना को समर्थन दिया। इसके दो कारण थे—एक बंगाल के हिंदू, बंगाल की एकता की कीमत पर भी भारत के साथ रहना चाहते थे। दूसरा उनको पता था कि मुसलिम बहुल स्वतंत्र बंगाल वास्तव में पाकिस्तान ही होगा। जिस बंगाल में स्वतंत्रता आंदोलन की शुरुआत हुई थी, उसकी समाप्ति भी बंगाल के विभाजन से ही हुई।

९१/ए द्वितीय तल सुखवीर सदन
प्रतीक मार्केट, मुनीरका
नई दिल्ली-११००६७
दूरभाष : ०९८९९१४६८४१

१८५७ बिहार-झारखंड : काला पानी के कैदी

● श्रीकांत

बिहार-झारखंड में १८५७ के महाविद्रोह से आजादी की लड़ाई के दौरान कालापानी की सजा भुगतनेवालों में सैकड़ों क्रांतिकारी शामिल हैं। इनमें कुछ अनचीहे और गुमनाम नायक ऐसे हैं, जो आज भी इतिहास में स्थान नहीं पा सके हैं। बिहार-झारखंड के नक्शे पर लड़ाकों की महागाथा अब उभरकर सामने आई है। अंग्रेजी राज की प्रोसीडिंग और ट्रायलों के दस्तावेजों में एक-से-एक नायक गर्द-गुबार झाड़ते हुए उठ खड़े हुए हैं, जो अब तक फाइलों में दबे पड़े हुए थे। उनमें याद अली, अमन सिंह, कंचन सिंह, सूरज मांझी और सोना मांझी प्रमुख हैं। कारु रजवार हैं तो जफर अली और १८५७ में फाँसी पर चढ़ाए जानेवाले हरकिशन सिंह के भाई लक्ष्मी सिंह भी शामिल हैं।

बंगाल प्रेसिडेंसी की विभिन्न जेलों से कुल ५५ कैदियों को अलीपुर जेल से अंडमान जेल भेजा गया था। एफ.जे. मॉट द्वारा १६ नवंबर, १८५८ को सरकार को भेजी गई ५५ कैदियों की सूची में बिहार और झारखंड के ३२ कैदी शामिल थे। इन कैदियों पर विद्रोह, डकैती और लूट तथा हत्या के आरोप थे। अनेकों पर विद्रोह का मुकदमा चला था और उन्हें सजा दी गई थी।

पोर्ट ब्लेयर के नौ कैदियों की १८६४ की एक सूची के अनुसार गया के छह कैदी—गोधानी, रूपचंद, काक रजवार, बबन, जफर अली और जोधन शामिल थे। एक कैदी लक्ष्मी सिंह आरा, बीसो सिंह छोटानागपुर और हरगुना कोचर के थे। ये कैदी विद्रोह के समय विभिन्न जेलों से विद्रोहियों के साथ निकल भागे थे। बाद में पकड़े जाने पर उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी। अंडमान जेल जानेवाले अन्य लोगों में भैरव बावरी, पुरनम अहीरबैजू कुँवर, किशनचंद भगत, हरदन मिस्त्री, पंचू हज्जाम ,अर्जुन मुरिया, खमन सिंह भुइयां, नन्हका, करम सिंह, सोधन सिंह, रंजीत सिंह, फूच्चा, गिरिजा दत्त, गुमी झा, हरगुना, बबन आदि शामिल हैं।

छोटानागपुर में विद्रोह के दौरान बड़ी संख्या में कैदी पहले अलीपुर और उसके बाद पोर्ट ब्लेयर भेजे गए थे। अलीपुर जेल के अधीक्षक ने १४ जुलाई, १८६३ को अपने पत्र में बंगाल सरकार के सचिव को बताया कि छोटानागपुर से कुल ३७ कैदी पोर्ट ब्लेयर, मोलमीन सैंडवे भेजे गए। इन कैदियों में एक की अलीपुर में ही मृत्यु की सूचना भी दी गई थी। कैदियों में अधिकांश १४ वर्ष अथवा उम्र कैद की सजा पानेवाले कैदी थे। छोटानागपुर के कमिश्नर डाल्टन ने बंगाल सरकार के सचिव को २२ अप्रैल, १८६३ को बताया कि लोहरदग्गा से २९ कैदी भेजे गए, जिनमें दो की मृत्यु हो गई और दो फरार हो गए। उनमें २५ पोर्टब्लेयर पहुँचे। सिंहभूम से १३ कैदी भेजे गए, जिसमें सात पोर्टब्लेयर भेजे गए। एक कैदी मानभूम से भेजा गया। पोर्टब्लेयर के ५७ कैदियों को सरकार ने १८६५ में उनके परिजनों से मिलने की इजाजत दी थी। देश भर के कैदियों की सूची में पटना एक विद्रोही मदार बच्चा और गया जेल से भागनेवाले बंधु कुर्मी शामिल थे।

जाने-माने पत्रकार। बिहार में चुनाव : जाति, बूथ लूट और हिंसा, सामाजिक परिवर्तन और दलित आंदोलन पर पुस्तकें प्रकाशित। चर्चित नाटक 'मैं हूँ बिहार' के लेखक। 'राजेंद्र माथुर पुरस्कार' से सम्मानित। संप्रति 'दैनिक हिंदुस्तान' पटना में विशेष संवाददाता।

बहावी आंदोलन के दौरान बिहार-झारखंड के नारायण, मौलवी, अहमदुल्ला, इब्राहिम मंडल, मोहम्मद मुकिम मौलवी, याहिया अली को बहावी आंदोलन के कारण सजा हुई थी और इन्हें अंडमान जेल भेजा गया गया था। अहमदुल्ला और याहिया अली बहावी आंदोलन के बड़े नेता थे।

याद अली को मुंगेर में गिरफ्तार किया गया था। उसे विद्रोही होने के कारण सजा दी गई थी। वह एक नॉर्थ-वेस्ट प्रोविंस के सिपाही का नौकर था। लखनऊ में विद्रोह के दौरान ७वीं २९वीं रेजिमेंट के विद्रोहियों के साथ था। मुंगेर के विशेष आयुक्त जे.सी. विल्सन की २६ मई, १८५७ की रिपोर्ट के अनुसार वह सातवीं रेजिमेंट के विद्रोहियों के साथ दिल्ली गया था। उसे गोली भी लगी थी। उसने पोर्ट ब्लेयर से रिहाई के लिए आवेदन दिया था।

अमन सिंह को बिहार के विशेष कमिश्नर एफ.जे. लाटुर ने सजा दी थी और उसे पोर्टब्लेयर भेज दिया गया था। वजीरंगज में खुशियाल सिंह कौशल सिंह के साथ विद्रोह का आरोप था। जब ६ सितंबर, १८५७ को वजीरगंज में झंडा फहराया गया था, तब वे उनके साथ। विद्रोहियों ने बनियों से अंग्रेजी सरकार को कर नहीं देने का निर्देश दिया था। कहा गया कि अंग्रेजों का राज खत्म हो गया है। अमन सिंह ने पोर्टब्लेयर से कमिश्नर के फैसले के खिलाफ सरकार को पत्र लिखा

था। जिसे बंगाल सरकार के जूनियर सचिव ने पटना के कमिश्नर को १० जुलाई, १८६० को भेजा था। इस संबंध में जाँच-पड़ताल के बाद अमन सिंह के आवेदन को खारिज कर दिया गया।

शिवसहाय दुबे अंग्रेजी राज के खिलाफ हथियार उठानेवाले नायकों में एक थे। उन्हें ग्रैंड ट्रंक रोड पर ७२वीं नेटिव इन्फैंट्री के सिपाहियों के साथ २४ अगस्त, १८५७ को ग्रैंड ट्रंक रोड के किनारे बसे मोहल्ले के एक मंदिर में मुठभेड़ के दौरान गिरफ्तार किया गया था। मेजर रैट्रे ने दो विद्रोहियों को ४ अगस्त, १८५८ को फाँसी की सजा सुनाई और शिवसहाय दुबे को उम्रकैद की सजा दी गई। सजा के बाद उन्हें पोर्टब्लेयर भेज दिया गया। १८६० में उन्होंने सरकार के पास रिहाई का आवेदन दिया था। जाँच के बाद उनकी रिहाई के आवेदन को अस्वीकृत कर दिया गया था।

कंचन सिंह, बडामहाल खसपेल के जमींदार थे। रामगढ़ बटालियन के विद्रोह के दौरान उन्होंने विद्रोहियों का साथ दिया था। उनकी दस गाँवों की जमींदारी थी। विशेष कमिश्नर जी.एन. ऑक्स ने उन्हें चौदह साल की सजा सुनाई। कंचन सिंह को पोर्टब्लेयर भेज दिया गया था। उनकी मृत्यु पोर्टब्लेयर में ही हो गई। इसकी सूचना पोर्टब्लेयर के डिप्टी कमिश्नर ने मानभूम के कमिश्नर को ११ अक्तूबर, १८६१ को दी थी।

चुनमुन हजारीबाग के रहनेवाले थे और कहार जाति के थे। उम्र थी पचास वर्ष। वे जेल से भाग निकले थे। उन पर विद्रोहियों को मदद करने का आरोप था। उन्हें १९ जुलाई, १९५८ को १४ वर्ष की सजा दी गई थी। ३० जुलाई को अलीपुर जेल से अंडमान जेल भेजा गया, वहाँ वे २६ अगस्त को पहुँचे।

सूरज मांझी, उम्र साठ वर्ष। विद्रोहियों के नेता। उन पर भाषण के माध्यम से उत्तेजना फैलाने का आरोप था। १३ नवंबर, १८५७ को उन्हें उम्रकैद की सजा दी गई। ३ सितंबर, १९५८ को उन्हें अलीपुर जेल से अंडमान जेल भेजा गया। वे १४ अक्तूबर को अंडमान पहुँचे।

सोना मांझी संथाली थे। उन पर लोगों को उत्तेजित करने और भाषण के माध्यम से भड़काने का आरोप था। १३ अप्रैल, १९५८ को उन्हें सश्रम आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी। वे १४ अक्तूबर को अंडमान जेल पहुँचे।

एल.आई.जी. कॉलोनी
आशियाना, पटना
दूरभाष : ०९४३१०१६३०१

कमलनाथ तिवारी

● श्रीकृष्ण 'सरल'

बिहार के चंपारन जिले के बेतिया स्थान के हाई स्कूल में पढ़नेवाले एक छात्र कमलनाथ तिवारी को हाई स्कूल से निकाल दिया गया और उसके प्रमाण-पत्र पर लिख दिया गया—

'इस विद्यार्थी ने धारा १४४ का उल्लंघन स्वयं किया और अन्य छात्रों को ऐसा करने की प्रेरणा दी।'

अब तो कमलनाथ का भविष्य अंधकारमय हो गया। वह भरती के लिए जहाँ भी जाता, उससे गत विद्यालय छोड़ने का प्रमाण-पत्र माँगा जाता और प्रमाण-पत्र देखकर कोई भी उसे भरती करने के लिए तैयार नहीं होता था। परिवार के लोगों की ओर से वह अलग प्रताड़ित किया जा रहा था।

कमलनाथ का एक मित्र मणिभूषण भट्टाचार्य कलकत्ता में रह रहा था। वह उसीके पास कलकत्ता पहुँच गया और वहाँ के आर्यसमाज मंदिर में रहने लगा। आर्यसमाज मंदिर में वह झाड़ू लगाता, दरियाँ बिछाता और छोटे-मोटे सभी काम करता था। कलकत्ता में उसकी रहने की समस्या भी हल हो गई और विद्यालय प्रवेश की समस्या भी डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के सहयोग से हल हो गई।

क्रांतिकारी विचारों का होने के कारण कलकत्ता में कमलनाथ का संपर्क कुछ क्रांतिकारियों के साथ हो गया। उन्हीं दिनों सरदार भगतसिंह बम बनाने के काम आनेवाली रासायनिक सामग्री खरीदने कलकत्ता पहुँचे। वे स्वयं वह सामग्री खरीदने के लिए दुकानों पर जाना नहीं चाहते थे। बम के काम आनेवाली रासायनिक सामग्री खरीदकर लाने का काम कमलनाथ तिवारी को दिया गया। कमलनाथ ने वह दायित्व बहुत जिम्मेदारी के साथ पूरा किया। बमों के लिए गन कॉटन भी कलकत्ता में ही बनाया गया। वह सब सामग्री लेकर भगतसिंह आगरा पहुँच गए।

भगतसिंह के साथ उनके साथी क्रांतिकारी फणींद्रनाथ घोष ने भी काम किया था। फणींद्रनाथ घोष गिरफ्तार होते ही पुलिस का गवाह बन गया और उसने सभी लोगों के पते-ठिकाने बता दिए। पुलिस ने कमलनाथ तिवारी को २८ मई, १९२९ को बेतिया में गिरफ्तार कर लिया।

कमलनाथ तिवारी को गिरफ्तार करके लाहौर षड्यंत्र केस में सम्मिलित करने के लिए लाहौर भेज दिया गया। क्रांतिकारियों द्वारा किए गए ऐतिहासिक अनशन में वे भी सम्मिलित रहे। कमलनाथ तिवारी को आजीवन कालेपानी की सजा दी गई। कुछ दिन उन्हें मुलतान जेल में रखकर कालेपानी की काल कोठरियों में भेज दिया गया।

मध्य प्रदेश और स्वाधीनता आंदोलन

● दिलीप बेहरे

इतिहास यद्यपि १८५७ में मेरठ छावनी में हुए 'विद्रोह' को ही आजादी की लड़ाई की पहली चिनगारी मानना है, किंतु मध्य प्रदेश में इस घटना के १५ वर्ष पूर्व ही अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष का सूत्रपात हो चुका था।

लेखक परिचय

स्वतंत्र लेखक एवं पत्रकार।

नागपुर में अप्पाजी भोंसले से अंग्रेजों ने जो भू-भाग जीता, उसे सागर-नर्मदा प्रदेश नाम दिया, जिसमें वर्तमान सागर, दमोह, जबलपुर, मंडला और बैतूल जिले शामिल थे। सागर और आसपास के इलाकों के बुंदेले जमींदारों की प्रतिष्ठा और आत्मसम्मान ही उनकी सबसे बड़ी थाती थी। अंग्रेजों को यह रास नहीं आई और उन्होंने जमींदारों को बेइज्जत तथा परेशान करने की नीयत से उन पर भारी कर लगाए और जब वे नहीं दे सके तो सागर के न्यायालय में उन पर 'नालिश' कर दी और घर, जमीन-जायदाद, स्त्रियों के जेवर, सब नीलाम कर दिए। ऐसी घटनाएँ प्राय होने लगीं तो बुंदेले बहादुरों के लिए सम्मानपूर्वक जीवन जीना दूभर हो गया। आखिर चंद्रपुर (सागर) के जमींदार जवाहर सिंह ने १८४२ में खुले विद्रोह की घोषणा कर दी। नरहुत के जमींदार मधुकर शाह भी उनसे आकर मिल गए। आम जनता अंग्रेजों के अत्याचारों से पहले ही परेशान थी। इसीलिए वे एक झंडे तले जमा हो गए।

विद्रोहियों ने पहले पुलिस थानों को लूटकर शस्त्रास्त्र एकत्र किए और फिर खुरई आदि कुछ कस्बों में लूटमार की। पुलिस सेना और देशभक्तों में जगह-जगह मुठभेड़ होने लगी। बाद में नरसिंहपुर के गोड जमींदार ढिल्लन शाह भी विप्लवकारियों से मिल गए, जिससे उनकी शक्ति और बढ़ गई। इस शक्ति के आगे अंग्रेजों की सेना टिक नहीं सकी। बुंदेलों ने एक वर्ष से अधिक समय तक अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए रखी, किंतु सन् १८४३ मे अंग्रेज भारी सेना के साथ आए और लोगों को शक के आधार पर पकड़-पकड़कर मौत के घाट उतारा गया। मधुकर शाह को गिरफ्तार कर फाँसी दे दी गई। इस प्रकार १६४२ का विप्लव तो दब गया, लेकिन बुंदेलों और इस क्षेत्र की जनता के मन में उठा विद्रोह दब नहीं सका। उसकी अनुगूँज सन् सत्तावन तथा उसके बाद आजादी मिलने तक निरंतर होती रही।

सन् १८५७ में जब अंगेजों के विरुद्ध संघर्ष की शुरुआत मेरठ छावनी से हुई तो मध्य प्रदेश भी अछूता नहीं रहा। मध्य प्रदेश के कोने-कोने से अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत के स्वर फूटने लगे। मध्य प्रदेश में ग्वालियर, सागर, जबलपुर, मंडला, राहतगढ़ महू, इंदौर और रायपुर में अंग्रेज विरोधी गतिविधियाँ तेज होने लगी थीं। मध्य प्रदेशवासियों के लिए झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का शौर्य और उनके सहयोगी वीरवर तात्या टोपे सदैव प्रेरणा के स्रोत बने रहे।

ग्वालियर

स्वाधीनता आंदोलन में ग्वालियर पूरी तरह सक्रिय बना रहा। दुर्भाग्य से ग्वालियर के शासक शिंदे महाराज ने स्वतंत्रता प्रेमियों का साथ नहीं दिया अन्यथा कहानी कुछ और ही होती। झाँसी और दिल्ली के बीच होने से ग्वालियर को हर घटना की खबर रहती थी, इसीलिए दिल्ली की लपटों की आँच ग्वालियर को भी सदैव तपाती रही। जून १८५७ में ग्वालियर में शिंदे की छावनी में विद्रोह की आग भड़क उठी। न सिर्फ ग्वालियर राज्य की सेना वरन् कंपनी की सेना भी विद्रोहियों के साथ मिल गई। १४ जून, १८५७ को विद्रोहियों ने मेजर ब्लेक तथा अन्य कई अंग्रेज अधिकारियों को गोलियों से उड़ा दिया। ग्वालियर के सिंधिया महाराज ने अंग्रेजों के परिवारों को पहले ही आगरा सुरक्षित भेज दिया था। उन्हीं दिनों इंदौर के विद्रोही दिल्ली जाते हुए ग्वालियर में रुके तो उन्होंने ग्वालियर के सैनिकों से दिल्ली चलने का आह्वान किया। ग्वालियर के सैनिक चाहते थे कि महाराजा सिंधिया अपने को विद्रोही राजा घोषित कर दें, अन्यथा कम-से-कम ब्रिटिश फौज के लिए सुरक्षित राजकोष और सैन्य उपकरण ही उन्हें दे दें। लेकिन महाराजा सिंधिया ने विद्रोहियों की किसी बात को नहीं माना और ग्वालियर के सैनिक अपने मन में आग दबाए विवश हो गए। ग्वालियर के सैनिक दिल्ली तो नहीं जा सके पर तात्या टोपे के नेतृत्व में कानपुर जाने से उन्हें कोई रोक नहीं सका।

इंदौर

इंदौर में होल्कर महाराज और अंग्रेजों की संधि के फलस्वरूप एक रेजीडेंसी बनी थी और १८५४ को वहाँ एक रेजीडेंट नियुक्त किया गया था। पहली जुलाई को इंदौर में सदावत खाँ के नेतृत्व में विद्रोह का बिगुल बज उठा और सदर बाजार क्षेत्र में तोपें आग उगलने लगीं। विद्रोहियों ने रेजीडेंसी पर कब्जा कर लिया। रेजीडेंट कर्नल ड्यूरेंड

अपनी जान बचाकर सीहोर भाग गया । लेकिन सीहोर, महू, धार; सभी जगह विप्लव फैल चुका था। सदावत खाँ बड़े कुशल संगठनकर्ता थे, उनके नेतृत्व में हिंदू-मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर लड़ते रहे।

भोपाल-सीहोर

फाजिल मोहम्मद खाँ और उनके भाई आदिल मोहम्मद खाँ अंबापानी के जागीरदार थे। उन्होंने ब्रिटिश राज्य के विरोध में विद्रोह का नेतृत्व किया। उन्होंने काफी संस्था में शस्त्र एकत्र किए और सीहोर तथा भोपाल में सिपाहियों की भरती करने लगे। भोपाल की बेगम नवाब सिकंदर अंग्रेजों के पक्ष में थी। राष्ट्रीय अभिलेखागार भोपाल में फाजिल मोहम्मद खाँ के विद्रोह और उनके प्रभाव का पूरा वर्णन मिलता है।

रामगढ़ और रानी अवंतीबाई

१८५० में लक्ष्मण सिंह के देहांत के बाद उनका पुत्र विक्रमजीत अंग्रेजों की दृष्टि में मानसिक रूप से उत्तराधिकार का पात्र नहीं था, इसलिए रानी की इच्छा के विरुद्ध वहाँ देख-रेख के लिए अंग्रेजों ने एक तहसीलदार रख दिया। रानी स्वयं बड़ी विवेकशील और स्वाभिमानी थीं। उन्होंने बार-बार इस नियुक्ति का विरोध किया और कहा कि अपने पति की जागीर सँभालने में वे सक्षम हैं, परंतु उनकी एक नहीं सुनी गई। इसी बीच अंग्रेजों ने गढ़ा-मंडला के राजा शंकर शाह को तोप से उड़ा दिया। इस समाचार ने सारे मंडला में विद्रोह की आग फैला दी। इस विद्रोह की केंद्र बनी रामगढ़ की रानी। रानी ने तहसीलदार को अपनी जमीन से भगा दिया और अंग्रेजी सत्ता के प्रति संघर्ष की घोषणा कर दी। कमिश्नर ने रानी और उनके पुत्र को बुलाया, किंतु रानी ने उसकी माँग ठुकरा दी। अंग्रेजों ने रानी के विद्रोह को दबाने के लिए लेफ्टिनेंट वार्डन को भेजा। रानी बड़ी वीरता से लड़ी, परंतु जब उन्होंने देखा कि शक्तिशाली अंग्रेज सेना के आगे वे अधिक टिक नहीं सकेंगी तो उन्होंने कटार मारकर आत्मोत्सर्ग कर दिया।

रायपुर

रायपुर क्षेत्र में वीर नारायण सिंह ने विद्रोह का झंड़ा उठाया। वे सोना खान के आदिवासियों के नेता थे। सन् १८५६ में सोना खान के आसपास के इलाके में भयानक सूखा पड़ा। किसानों ने माखन नामक व्यापारी से उधार अनाज माँगा और फसल आने पर लौटा देने का वायदा किया। व्यापारी इस पर तैयार न हुआ। अंत में वीरनारायण सिंह ने उसका अनाज भूखे लोगों में बँटवा दिया। व्यापारी ने सारी घटना डिप्टी कमिश्नर को लिखी। जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी सेना आ पहुँची। कई जगह वीर नारायण सिंह पर मुकदमा चला और अंत में अंग्रेजों ने उन्हें जनता के सामने १० दिसंबर, १८५७ को तोप से उड़ा दिया। जिन लोगों ने इसका विरोध किया, उन्हें भी फाँसी दे दी गई।

जबलपुर का झंडा सत्याग्रह

स्वाधीनता आंदोलन में मध्य प्रदेश की बात तब तक अधूरी है, जब तक जबलपुर के झंडा सत्याग्रह का उल्लेख न किया जाए। १९२३ में जबलपुर की नगरपालिका के कुछ उत्साही सदस्यों ने नगरपालिका भवन पर तिरंगा ध्वज फहरा दिया। अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर ने भवन से न सिर्फ झंडा उतरवा लिया वरन् उसे पुलिस द्वारा पैरों से कुचलकर अपमानित भी करवाया। जनता में इस घटना से रोष फैल गया। पंडित सुंदरलाल तथा कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान के नेतृत्व में झंडे को लेकर जुलूस निकला, पंडित सुंदरलाल तो जबलपुर में ही गिरफ्तार कर लिये गए, किंतु सुभद्राजी तथा उनके पति श्री लक्ष्मण सिंह चौहान अनेक कार्यकर्ताओं के साथ झंडा लेकर नागपुर पहुँच गए। वहाँ इस सत्याग्रह ने देशव्यापी रूप ग्रहण कर लिया। कांग्रेस अध्यक्ष पट्टाभि सीतारामैया ने अपने 'कांग्रेस के इतिहास' में झंडा सत्याग्रह का उल्लेख करते हुए लिखा है कि नागपुर सत्याग्रह ने भीषण रूप धारण कर लिया तो नागपुर की पुलिस ने १ मई, १९२३ को धारा १४४ के अंतर्गत सिविल लाइंस में राष्ट्रीय झंडे के साथ जुलूस निकालने पर प्रतिबंध लगा दिया। सत्याग्रहियों ने कहा कि हमें अधिकार है, जहाँ चाहें झंडा ले जाएँ। बस फिर क्या था—गिरफ्तारियाँ और सजाएँ प्रारंभ हो गईं। कई वरिष्ठ कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिये गए, जिसकी संपूर्ण देश में प्रतिक्रिया हुई। देशभर में लोग झंडा लेकर जुलूस निकालने लगे और गिरफ्तारियाँ होने लगीं।

मध्यप्रदेश यद्यपि देश के अन्य राज्यों से अलग एवं पिछड़ा प्रदेश था, पर आजादी की भावना और अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह कहीं भी कम नहीं था। अनेकानेक शहीदों ने अपने प्राण बलिदान कर दिए, उनमें ज्ञात वीरों में अमर शहीद उदय चंद जैन, साबूलाल जैन, सेठ सुंदरलाल बरोहा, मांधू और मिंदू कुमार, मंसाराम और गौराबाई, दिनेश प्रसाद पांडे, त्रिभुवन नाथ तिवारी, भैरव प्रसाद, नारायण दास खरे, देवनाथ और केदारनाथ, वीरसा गौड, जिर्रा, कैला और उदय किराड, बूचा कोरकू, प्रेमचंद जैन, यशवंत सिंह और देवनारायण सिंह, लाल बुद्धि प्रताप सिंह, रामाश्रय प्रसाद और मधीर राम प्रसाद, ठाकुर रणमत सिंह, लाल पद्मधर सिंह, वीर नारायण सिंह, बख्तावर सिह, ठाकुर रुद्रप्रताप सिंह, प्रेमलाल कसेरा, सुखलाल कसेरा तथा मौलाना बरकतउल्ला भोपाली शामिल हैं, जिनका स्मरण आज भी पूरी श्रद्धा के साथ किया जाता है। मध्य प्रदेश की जनता की भावना आजादी की ६९वीं वर्षगाँठ पर कुछ इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है—

सेनानी करो प्रयाण अभय, भावी इतिहास तुम्हारा है।
ये नखत अमा के बुझते हैं, सारा आकाश तुम्हारा है।

आलेख

स्वतंत्रता संग्राम और दिल्ली देहात

● नलिन चौहान

देश की आजादी के आंदोलन में दिल्ली के गाँवों की भागीदारी का सिरा सन् १८५७ में हुए पहले स्वतंत्रता संग्राम तक जाता है, जब चंद्रावल, अलीपुर सहित राजधानी के अनेक अधिक गाँवों के निवासियों ने विदेशी शासन के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजा दिया था। अंग्रेजों ने इस पहले भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दमन और दिल्ली पर दोबारा कब्जा करने के बाद इसमें हिस्सा लेनेवाले क्रांतिकारियों को बहुत ही कठोरता से कुचला। आजादी की पहली लड़ाई में शामिल हुए गाँवों को बागी घोषित कर दिया गया और ऐसे गाँवों में भारतीयों की अंधाधुंध हत्याएँ की गईं। ऐसा कहा जाता है कि डेरा फतेहपुर गाँव में माँओं की गोद में रहे केवल दुधमुँहे बच्चे ही मौत के मुँह से बच पाए थे। गाँवों की फसलें लूट ली गईं अथवा जला दी गईं और पशु जब्त कर लिये गए।

क्रांति का केंद्र दिल्ली लालकिला

जनवरी १९०३ में वायसराय लार्ड कर्जन ने दिल्ली में दूसरा दरबार किया। इस दरबार पर रुपया पानी की तरह बहाया गया। बहुत से लोगों ने सरकार के इस दिखावे का विरोध किया। सन् १९०६ में दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुए कांग्रेस अधिवेशन में यह प्रस्ताव पास हुआ कि विदेशी वस्त्रों का बायकॉट किया जाना चाहिए। इस आह्वान के फलस्वरूप घर-घर स्वदेशी की भावना का प्रचार करने के लिए दिल्ली में चार सोसाइटियाँ बनीं। यह आंदोलन दिल्ली के गाँवों में भी फैल गया। दिल्ली के सरसोसी गाँव के लोगों ने विदेशों से मँगाई जानेवाली चीनी का इस्तेमाल न करने की कसम खा ली। जब एक व्यापारी विदेशी चीनी बेचते हुए पकड़ा गया, तब वहाँ की पंचायत द्वारा उस पर दस रुपए का जुरमाना किया गया। पंचायत ने घोषणा की कि इन दगाबाजों के बारे में जो भी सूचना देगा, उसे दो रुपए इनाम दिया जाएगा। यह भी घोषणा की गई कि ऐसे लोगों को गाँव में नहीं रहने दिया जाएगा।

फरवरी १९१७ में दिल्ली में होमरूल लीग की स्थापना की गई। १९१७ में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक और सरोजिनी नायडू दिल्ली आए। इससे दिल्ली में राजनैतिक हलचल और भी तेज हो गई। २८ दिसंबर, १९१८ को पंडित मदनमोहन मालवीय ने दिल्लीवासियों को यह सलाह दी कि वे हर मोहल्ले और हर गाँव में कांग्रेस कमेटियाँ बनाएँ।

सन् १९१८ तक ग्रामीण दिल्ली राजनीतिक दृष्टि से पूरी तरह जाग्रत् हो चुकी थी। यह बात इस तथ्य से ही साबित होती है कि दिसंबर १९१८ में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन में ग्रामीण दिल्ली के ८०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष पंडित मदन मोहन मालवीय ने जनसाधारण में राष्ट्रीयता की अलख जगाने के लिए दिल्ली के हर गाँव में कांग्रेस की एक समिति स्थापित करने की वकालत की। इसीलिए मार्च १९१९ में जब ब्रिटिश सरकार ने रौलेट एक्ट पारित किया तो ग्रामीण दिल्ली स्वतंत्रता संग्राम में कूदने के लिए तैयार थी।

सन् १९२० के बाद से ही पश्चिमी दिल्ली का करावला गाँव कांग्रेस की गतिविधियों का केंद्र बन गया था। १२ अक्तूबर, १९३० को इस गाँव में एक बैठक हुई, जिसमें करीब सौ पुरुषों, महिलाओं और बच्चों ने भाग लिया। १४ अक्तूबर को करावला गाँव में शीशराम राम के घर में दिल्ली प्रदेश कांग्रेस समिति की एक शाखा खोली गई।

अंग्रेज सरकार के दमन किए जाने के बावजूद दिल्ली में क्रांतिकारियों का आंदोलन तेजी पकड़ रहा था। ८ सितंबर, १९२८ में यहाँ फिरोजशाह कोटला में हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन आर्मी की स्थापना हुई। इसके क्रांतिकारियों के छिपने के ठिकाने ग्रामीण क्षेत्रों में फैले हुए थे। चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, भगवती चरण, यशपाल, धन्वंतरि और कैलाश पति इस संस्था के प्रमुख सदस्य थे। इन लोगों का संयुक्त प्रांत, राजस्थान और हावड़ा के क्रांतिकारी दलों के साथ सपंर्क बना हुआ था। ये लोग रिपब्लिकन आर्मी के लिए धन प्राप्त करने के लिए सशस्त्र डकैती डाला करते थे।

२३ दिसंबर, १९२९ को पुराने किले के पीछे वाइसरॉय की स्पेशल ट्रेन को पटरी से उतारने की कोशिश की गई, जो कि एक साहसिक कदम था। इसे ही बाद में 'दिल्ली षड्यंत्र केस' कहा गया। इनमें से कुछ क्रांतिकारियों के खुफिया ठिकाने सुदूर हिंडन रिवर तक में थे और कहा जाता है कि पुराना किला के पास वाइसरॉय के काफिले पर बम फेंकने वालों ने जिस मोटर साइकिल का इस्तेमाल किया था, उसके हिस्से हिंडन नदी में मिले थे। यह कोशिश तो नाकामयाब रही, लेकिन

इसकी चर्चा बहुत दिनों तक होती रही। एक-एक करके सभी क्रांतिकारी पकड़े गए।

१४ अभियुक्तों में से दो को नजरबंद रखा गया, चार को बरी कर दिया गया और आठ व्यक्तियों को अलग-अलग मामलों में दोषी ठहराया गया। विमल प्रसाद, हीरानंद सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय और बाबू राम पर दिल्ली में मुकदमा चला। आजाद, यशपाल तथा कुछ व्यक्ति गिरफ्तारी से बच निकले। यमुना पार के इलाके में स्वतंत्रता सेनानियों की गतिविधियों पर निगाह रखने के लिए सन् १९१५ में शाहदरा परगना और गाजियाबाद तहसील के कुछ अन्य गाँवों को दिल्ली में शामिल किया गया, क्योंकि स्वतंत्रता सेनानी अधिकतर यमुना पार के इलाके से अपनी गतिविधियाँ संचालित करते थे।

कांग्रेस के दिसंबर १९२९ में लाहौर सत्र में असहयोग आंदोलन पर एक प्रस्ताव पारित करने के बाद ग्रामीण दिल्ली में 'कोई कर नहीं' (नो टैक्स) का अभियान तेजी से फैल गया। दिल्ली के मुख्य आयुक्त ने बताया कि कांग्रेस समिति की प्रांत के ग्रामीण क्षेत्रों में असामान्य रूप से गतिविधियाँ बढ़ गई हैं। उसका उद्देश्य ग्रामीणों को असहयोग को सिद्धांत के रूप में स्वीकार करके करों का भुगतान न करने के लिए तैयार करना है।

गांधी के नमक सत्याग्रह शुरू करने के बाद 'कोई कर नहीं' (नो टैक्स) अभियान भी ग्रामीण दिल्ली में तेजी से फैला। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने गाँवों में प्रचार अभियान शुरू किए। इस उद्देश्य के लिए ८ अप्रैल से १० अप्रैल, १९३० के अंतराल में २० स्वयंसेवकों के एक समूह ने २४ गाँवों का दौरा किया। इस समूह ने महरौली से अपना अभियान शुरू करते हुए १२ घंटे में ही सुल्तानपुर, छतरपुर, नायडू, गढ़ी, देवली, खानपुर, मदनगीर और सैदुल अजाब गाँवों का दौरा किया। इन सभी गाँवों में आठ बैठकें आयोजित की गईं, जिनमें इन स्वयंसेवकों, जिन्हें स्नेह से गांधीजी की सेना का नाम दिया गया, को सुनने के लिए पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की भीड़ उमड़ पड़ी।

स्वतंत्रता के लिए लड़ाई में दिल्ली के गाँवों का योगदान अतुलनीय रहा। दिल्ली के गाँवों में से एक बड़ी संख्या कांग्रेस में स्वयंसेवकों के रूप में जुड़ी, जिन्होंने गाँवों में कांग्रेस के बारे में प्रचार-प्रसार में एक प्रमुख भूमिका निभाई। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान राजधानी के ग्रामीणों ने भूमि-कर देने से इनकार करके अंग्रेजी साम्राज्य की ताकत को चुनौती दी। दिल्ली के ग्रामीणों ने स्वतंत्रता सेनानियों को अपने घरों में आश्रय भी दिया था।

अगले दिन यह समूह लाडो सराय गाँव के लिए रवाना हो गया। इस गाँव के सरपंच ने स्वयंसेवकों के प्रवेश का विरोध करते हुए महरौली पुलिस स्टेशन में इस बात की सूचना दर्ज करवा दी। हालाँकि यहाँ पर एक बहुत ही सफल सभा का आयोजन हुआ। इस तरह की सभाएँ हौजखास, अधचीनी और बेगमपुर गाँवों में भी में आयोजित की गईं। हर जगह लोगों ने पूरे उत्साह के साथ इन सभाओं में हिस्सेदारी की। ग्रामीण दिल्ली में सविनय अवज्ञा आंदोलन के मुख्य सूत्रधार कृष्णा नायर थे। उन्होंने नरेला और आसपास के गाँवों में 'कोई कर नहीं' अभियान का सफलतापूर्वक आयोजन किया। १५ जून को नायर को और छह अन्य कार्यकर्ताओं के साथ गिरफ्तार किया गया तथा १६ जुलाई, १९३० को सभी को ग्यारह महीने की कैद की सजा सुनाई गई।

सुपरिचित साहित्यकार। संघ लोक सेवा आयोग से चयन के बाद दिल्ली सरकार के सूचना एवं जनसंपर्क विभाग में राजपत्रित अधिकारी के नाते उपनिदेशक के पद पर कार्यरत। दिल्ली के अनछुए और अनजान इतिहास पर टाइम्स ऑफ इंडिया के सांध्य दैनिक 'सांध्य टाइम्स' और राजस्थान पत्रिका समूह की हिंदी वेबसाइट 'कैच न्यूज' में नियमित लेखन।

सरकार ने ग्रामीण दिल्ली में कोई कर नहीं (नो टैक्स) अभियान को हतोत्साहित करने के लिए एक विशेष अध्यादेश पारित किया, पर इसके बावजूद अभियान जारी रहा। पुलिस ने न केवल इन सभाओं में भाग लेनेवालों को गिरफ्तार किया बल्कि ऐसी सभाओं के नजदीक खड़े रहनेवालों को भी धर पकड़ा। जून १९३१ के अंतिम सप्ताह में नरेला में आयोजित एक बैठक में ७५० लोगों ने भाग लिया। इस बैठक में राजस्व की छूट को अपर्याप्त बताते हुए उसकी निंदा की गई और किसानों को उनकी क्षमता के अनुसार ही राजस्व भुगतान करने की सलाह दी गई। आधिकारिक तौर पर सूचना दी गई कि कांग्रेस ने दिल्ली के ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी पैठ बना ली है और उसके प्रचार को ग्रामीण जनता में समर्थन मिला है। ग्रामीण क्षेत्रों में आंदोलन जारी रहा, जिसके कारण सरकार को राजस्व जमा करने में काफी कठिनाई हुई।

तत्कालीन आधिकारिक सूत्रों के अनुसार, जुलाई १९३१ तक केवल २० प्रतिशत राजस्व ही एकत्र हो पाया। अंग्रेज सरकार के साहूकारों की ताकत को रोकने के लिए किसी योजना के बारे में विचार करने की कांग्रेस की विफलता को लेकर शुरू किए गए दुष्प्रचार को जाट हिंदुओं में कोई खास सफलता नहीं मिली। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि मोटे तौर पर ग्रामीण दिल्ली के जमींदारों ने सविनय अवज्ञा आंदोलन का विरोध किया।

इस सदी की शुरुआत से ही कांग्रेस स्वयंसेवक ग्रामीण दिल्ली में सक्रिय थे। सन् १९३० में दिल्ली के गाँवों के कुछ कार्यकर्ताओं गांधी से नरेला में एक स्थायी आश्रम स्थापित करने का अनुरोध किया। गांधी की सहमति के बाद सन् १९३१ में 'श्री गांधी सेवा आश्रम' अस्तित्व में आया। नरेला के ग्रामीणों को इस उद्देश्य के लिए १७ बीघा भूमि दान दी। इस शिविर का प्रभारी कृष्णा नायर को बनाया गया था, जबकि बृज कृष्ण चाँदीवाला ने भी आश्रम की स्थापना में मदद की। स्थानीय ग्रामीणों को आम तौर पर कांग्रेस कार्यकर्ताओं की मदद करते थे। इस आश्रम में स्थायी आधार पर १० व्यक्ति रहते थे। इसी तरह अगस्त, १९३१ में

रामतल, महरौली में एक और आश्रम स्थापित किया गया। मार्च, १९३१ में गांधी-इरविन समझौते के बाद ग्रामीण दिल्ली में कुछ समय के लिए राजनीतिक गतिविधियाँ थम गईं, लेकिन गोलमेज सम्मेलन की विफलता के बाद ग्रामीण दिल्ली में राजनीतिक सरगर्मी फिर से बढ़ गई।

स्वतंत्रता के लिए लड़ाई में दिल्ली के गाँवों का योगदान अतुलनीय रहा। दिल्ली के गाँवों में से एक बड़ी संख्या कांग्रेस में स्वयंसेवकों के रूप में जुड़ी, जिन्होंने गाँवों में कांग्रेस के बारे में प्रचार-प्रसार में एक प्रमुख भूमिका निभाई। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान राजधानी के ग्रामीणों ने भूमि-कर देने से इनकार करके अंग्रेजी साम्राज्य की ताकत को चुनौती दी। दिल्ली के ग्रामीणों ने स्वतंत्रता सेनानियों को अपने घरों में आश्रय भी दिया था।

दिल्ली में जो स्वतंत्रता संग्राम लड़ा गया, उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ गाँव के निवासियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। उल्लेखनीय है कि दिल्ली में रहने वाले लोगों में १९०१ में ४८.६ प्रतिशत, १९११ में ४३.७ प्रतिशत, १९२१ में ३७.७ प्रतिशत और १९४१ में २९.७ प्रतिशत लोग गाँव के ही निवासी थे। महरौली और नरेला के खादी आश्रम, बवाना की चौपाल, बदरपुर का गांधी खैराती अस्पताल, ये कुछ ऐसे केंद्र थे, जिनसे स्वतंत्रता संग्राम का संदेश फैलता रहा।

१९३० का सविनय अवज्ञा आंदोलन दिल्ली के गाँवों में बड़ा ही लोकप्रिय रहा, जिसका उद्देश्य विदेशी माल का बहिष्कार करना था। दिल्ली के गाँवों में नमक सत्याग्रह की भूमिका भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही। स्वामी स्वरूपानंद, सी.के. नायर, डॉ सुखदेव, किशनलाल वैद्य और चौधरी ब्रह्मप्रकाश ने ग्रामीण दिल्ली में स्वतंत्रता संग्राम में अत्यधिक योगदान दिया। इस तरह कुल मिलकर कहा जा सकता है कि आजादी की लड़ाई में दिल्ली देहात का योगदान किसी से कम नहीं था। वह बात अलग है कि उसकी अंगारवाली भूमिका पर समय की राख जमने से लोक स्मृति से दिल्ली के गाँवों और गाँववालों की तस्वीर धुँधली पड़ गई है।

बी-४, दिल्ली सरकार अधिकारी आवास, १-ए बैटरी लेन,
राजपुर रोड, सिविल लाइंस दिल्ली-११००५४
दूरभाष : ०९८९९८१८६१६

गौतम डोरे, मल्लू डोरे

● **श्रीकृष्ण सरल**

भारत माता की स्वाधीनता का अमर पुजारी, अन्याय व उत्पीड़न का घोर शत्रु अल्लूरी सीताराम राजू बलिदान की वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे चुका था। ब्रिटिश शासन ने सोचा होगा कि बागियों से अब मुक्ति मिली, पर ऐसा नहीं हुआ। राजू के दोनों ही विश्वासपात्र लेफ्टिनेंट गौतम डोरे एवं मल्लू डोरे सक्रिय हो उठे और अपने साथी राजू की आन निभाने का उत्तरदायित्व उन्होंने अपने ऊपर ले लिया।

उस दिन जब गौतम डोरे एक गाँव में पहुँचा तो गाँव के एक आदिवासी ने उसे बताया कि उसकी खोज में पुलिस का एक दल कुछ समय पूर्व ही वहाँ पहुँचा था। सभी गाँववालों से पुलिस दल के मुखिया ने पूछताछ की थी, पर गाँव में से किसीने कोई भेद नहीं दिया। ग्रामीण आदिवासी ने गौतम को परामर्श दिया कि कुछ दिन के लिए या तो वे लोग कहीं और चले जाएँ या अपनी क्रांतिकारी गतिविधियाँ बंद रखें। गौतम के दल को यह परामर्श पसंद आया और लगभग एक माह तक उन्होंने कोई वारदात नहीं की। पुलिस ने समझा कि क्रांतिकारियों का दल भाग खड़ा हुआ है।

पुलिस ने भी उस क्षेत्र को छोड़ने से पहले अंतिम तलाश संपन्न करनी चाही। ७ जून, १९२४ को पुलिस का विशाल दल तीन समूहों में बँट गया और प्रत्येक समूह ने क्रांतिकारियों के छिपने की सभी संभावित जगहों की तलाशी लेनी आरंभ कर दी। पुलिस के एक समूह को नदी के बेहड़ों में सात-आठ क्रांतिकारियों का दल दिखाई दिया। पुलिस को देखते ही वह दल छिपने का प्रयत्न करने लगा। पुलिस के उस समूह ने क्रांतिकारी दल पर गोलियाँ चलाईं। गोलियों की आवाज सुनकर पुलिस के शेष दो समूह भी वहाँ पहुँच गए और गोलियाँ दागने में वे भी सम्मिलित हो गए। गौतम डोरे ने पुलिस के तीनों समूहों का डटकर मुकाबला किया। उसके ऊपर तीन तरफ से गोलियाँ चल रही थीं और वह पुलिस के तीनों समूहों पर गोलियाँ दागकर उन्हें पीछे धकेल रहा था। अंत में बहुसंख्यक और सुसज्जित पुलिस दल के सामने गौतम का दल अधिक समय तक मुकाबला नहीं कर सका। उसके कुछ साथी मारे गए तथा वह स्वयं गंभीर रूप से घायल हुआ और कुछ समय पश्चात् ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई। भारत माता की स्वाधीनता के लिए उसने मृत्यु का वरण किया।

अब गौतम का भाई मल्लू डोरे अकेला रह गया था। घायल हो जाने के कारण वह किसी दूरस्थ स्थान तक नहीं जा सका। एक दिन वह पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। उसपर मुकदमा चला और १९ जून, १९२४ को उसे फाँसी पर लटका दिया गया।

इस प्रकार अल्लूरी सीताराम राजू द्वारा प्रारंभ किए गए 'फितूरी विद्रोह' का दमन कर दिया गया। लगभग सभी आंदोलनकारियों ने वीरता के साथ मृत्यु का वरण कर शहीद का पद अर्जित किया।

महाराष्ट्र में स्वतंत्रता आंदोलन

● दीपक हनुमंत जेवणे

ब्रिटिश सत्ता की गुलामी से मुक्त होने के लिए देशभर में जो स्वतंत्रता आंदोलन चला, उसमें महाराष्ट्र राज्य ने भी निर्णायक योगदान दिया। जब महाराष्ट्र में १८१८ में मराठाशाही अर्थात् पेशवाई का पतन हुआ और शनिवारबाड़ा पर यूनियन जैक फहराया गया, तब से ही पूरे भारतवर्ष पर अंग्रेजों की सर्वंकष हुकूमत स्थापित हो गई, ऐसा कहा जा सकता है। महाराष्ट्र की बंबई महानगरी की शुरू से ही पूरे देश की आर्थिक राजधानी के रूप में पहचान रही है तथा गेटवे ऑफ इंडिया अर्थात् भारत का प्रवेशद्वार भी बंबई के सागरतट पर ही बना हुआ है। अंग्रेजी हुकूमत के विरोध में जो कुछ भी आंदोलन चलाने का विचार किया गया, उसके विचार तथा आंदोलनकर्ता बंबई से विशेष रूप से जुड़े हुए थे और देश पर प्रभाव डालनेवाले अनेक निर्णयों का स्थान भी बंबई रहा है। बंबई के साथ-साथ पुणे शहर का भी विशेष स्थान रहा है। पुणे शहर अंग्रेजी शासन के दौरान शिक्षा की गंगोत्तरी ही बन गया था और अंग्रेजी हुकूमत का तख्ता पलट देने की चाह मन में रखनेवाले कई क्रांतिवीरों का केंद्र भी पुणे रहा। अंग्रेजों के खिलाफ चलनेवाली हिंसक तथा अहिंसक गतिविधियों में पुणे की अहम भूमिका रही है। इसके साथ महाराष्ट्र के अन्य शहरों और महानगरों ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान दिया। वैसे जिस महाराष्ट्र का हम विचार करते हैं, उसे संयुक्त महाराष्ट्र भी कहा जाता है। स्वतंत्रता के पूर्व मध्य प्रांत और वरहाड को अलग समझा जाता था तथा मराठबाड़ा-हैदराबाद में निजाम का शासन था, अन्य छोटे-छोटे संस्थान भी यहाँ थे, उसी के साथ स्वतंत्रता के पश्चात् बंबई को महाराष्ट्र में रखने के लिए बड़ा आंदोलन चलाना पड़ा था। अब इस संयुक्त महाराष्ट्र को ही ध्यान में रखकर हमें स्वतंत्रता आंदोलन में इस राज्य के योगदान का विचार करना होगा।

इसलिए हमारा इतिहास का सिंहावलोकन १८१८ से बाद में ही आरंभ होता है। मराठा की राजधानी के अंतिम प्रधानमंत्री पेशवा बाजीराव द्वितीय ने ३ जून, १८१८ को आत्मसमर्पण कर दिया। अपने उत्तराधिकारी नानासाहब पेशवा को छोड़कर १८५१ में कानपुर के बिठूर में वे मृत्यु को प्राप्त हो गए। नानासाहब पेशवा आगे १८५७ के स्वतंत्रता युद्ध के प्रमुख प्रणेता एवं अग्रणी बन गए। अंग्रेजों ने १८१८ में जब खानदेश पर कब्जा जमा लिया, तब वहाँ के भीलों ने विद्रोह कर दिया। यह सिलसिला १८३१ तक चला। १८५७ के स्वतंत्रता समर में भी भीलों ने खानदेश, नाशिक और अंबापाणी स्थानों पर विद्रोह किया था। पुणे-सातारा में अंग्रेजी शासन आया और वहाँ के रामोशी लोगों के इनाम उन्होंने खारिज कर दिए। तब अंग्रेजों के विरोध में सशस्त्र विद्रोह हुआ। इसका नेतृत्व उमाजी नाईक ने किया था। सावंतबाड़ी और कोल्हापुर में गडकरी (किले के रखवालदार) लोगों ने विद्रोह किया। लेकिन अंग्रेजों ने सेना का सहारा लेकर यह विद्रोह दबा दिया। १८५७ में उत्तर हिंदुस्थान में सेना का विद्रोह खड़ा हुआ। नानासाहब पेशवा इस विद्रोह के सूत्रधार थे। उन्होंने अपने आदमी कोल्हापुर भेजे थे। वहाँ विद्रोह हुआ, लेकिन गद्दारी के कारण दबाया भी गया। सातारा के गेंडामाल पर रंगो बापूजी की प्रेरणा से विद्रोह हुआ। तब सभी विद्रोहियों को अंग्रेजों ने फाँसी पर लटका दिया था। रत्नागिरी और बेलगाँव में भी विद्रोह की घटनाएँ हुईं। १५ अक्तूबर, १८५७ की रात अंग्रेजों पर हमला कर बंबई को जीतने का विद्रोहियों का मनसूबा भी असफल रहा। नागपुर, औरंगाबाद में जो सेना का विद्रोह हुआ, तब विद्रोहियों को तोपों से उड़ाया गया।

पुणे में विद्रोह के प्रयास ब्रिटिश शासन के प्रारंभ से ही किए जाने लगे थे। उमाजी नाईक के नेतृत्व में १८२६-१८३० में विप्लव आरंभ हो गया। भाऊ खरे, चिमाजी जाधव, नाना दरबारे के नेतृत्व में हुए विप्लव अधिक महत्त्वपूर्ण थे। रामचंद्र गणेश गोरे और अन्य कोली नेता को फाँसी पर लटकाया गया। १८४४ में रघु माँगरे और बापू माँगरे ने विप्लव चलाया। मगर ब्रिटिशों ने यथावकाश दोनों को भी पकड़ लिया। इस तरह विद्रोह की गतिविधियाँ १८५७ से पूर्व भी जारी थीं।

बीजापुर जिले में १८४१ में नरसिंह पेटकर के नेतृत्व में बड़ा विप्लव हुआ। मगर उसे पकड़कर काला पानी भेज दिया गया। १८४४ और १८४५ में सावंतबाड़ी और कोल्हापुर में विद्रोह हुआ। सावंतबाड़ी के

जाने-माने लेखक। 'मराठी भाषेतूनच इंग्रजी बोलायला शिका', 'वंदे मातरम्ची आत्मकथा', 'गुरुजी गोळवलकर जीवनचरित्र', 'छत्रपती शिवाजी आणि सुराज्य', 'ऑपरेशन ब्लैक टौरनैडो', 'अपूर्ण परिक्रमा कैलास मानसरोवर की', 'अपनाओ हिप्नॉटिज्म का सामर्थ्य' (हिंदी) विविध सामाजिक व साहित्यिक विषयों की २५ पुस्तकें एवं पुस्तिकाओं का अनुवाद प्रकाशित।

मनोहरगढ़ मे प्रजा ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह एवं अव्यवस्था के कारण कोल्हापुर क्षेत्र की ब्रिटिश सरकार असमंजस में पड़ गई थी। सावंतवाड़ी के जंगलों में छिपकर लोगों ने अंग्रेजों के विरोध में सशस्त्र गतिविधियाँ चलाई थीं, जिससे अंग्रेज अधिकारी काफी चिंतित हो गए थे।

कोल्हापुर का मराठा राज्य १८१२ में अंग्रेजों के अधीन हो गया था। १८५७ से लगभग एक दशक पूर्व कोल्हापुर के लोगों में असंतोष सुलग रहा था और १८४४ में भारी विद्रोह हुआ, क्रांतिकारियों ने सामनगढ़ किले पर अधिकार कर लिया था।

रंगो बापूजी ने भारत में संवैधानिक तरीके से न्याय मिल पाएगा, यह विश्वास खोकर ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम शुरू करने की बात सोची और सातारा लौटने के बाद उन्होंने युद्ध के लिए मानव, धन और अन्य संसाधन जुटाना आरंभ कर दिया। सातारा, कोल्हापुर, बेलगाँव तथा धारवाड़ में बसे ब्रिटिश-भारतीय दलों को उत्तेजित करना आरंभ कर दिया। उन्होंने नानासाहब पेशवा, तात्या टोपे से मिलकर सातारा से प्रारंभ कर ब्रिटिश के विरुद्ध राष्ट्रीय युद्ध छेड़ने की योजना पर विचार किया। यह योजना ११ जून, १८५७ को ब्रिटिश सरकार को पता चली और संघटन के कुछ नेतासमेत रंगो बापूजी को भी पकड़ लिया गया। पर रंगो बापूजी ग्वालियर जेल से भाग निकलने में कामयाब हो गए, मगर बाद में उनका कहीं पता नहीं चला।

हैदराबाद राज्य में रंगाराव रत्नाकर, नारखेड के पटवारी, जमींदार अथवा कोवलास के राजा, राजा दीप सिंह, निजाम का मराठा सरदार निंबालकर का पुत्र आदि निजाम के क्षेत्र के ब्रिटिश विरोधी विप्लव के प्रमुख संगठक थे। स्थानीय नेताओं का नानासाहब पेशवा और तात्या टोपे से संपर्क भी था। मगर रंगाराव को ब्रिटिशों ने गिरफ्तार कर लिया और राजद्रोह के अभियोजन में मुकदमा चलाकर उन्हें मृत्युदंड दिया गया। मगर उसे कालापानी में बदलकर रंगाराव को अंडमान भेजा गया, जहाँ १८६० में वे मृत्यु को प्राप्त हुए।

हैदराबाद राज्य में रंगाराव रत्नाकर, नारखेड के पटवारी, जमींदार अथवा कोवलास के राजा, राजा दीप सिंह, निजाम का मराठा सरदार निंबालकर का पुत्र आदि निजाम के क्षेत्र के ब्रिटिश विरोधी विप्लव के प्रमुख संगठक थे। स्थानीय नेताओं का नानासाहब पेशवा और तात्या टोपे से संपर्क भी था। मगर रंगाराव को ब्रिटिशों ने गिरफ्तार कर लिया और राजद्रोह के अभियोजन में मुकदमा चलाकर उन्हें मृत्युदंड दिया गया। मगर उसे कालापानी में बदलकर रंगाराव को अंडमान भेजा गया, जहाँ १८६० में वे मृत्यु को प्राप्त हुए।

३० अगस्त, १८५७ को बंबई स्थित फौजी पलटन के विद्रोह की तिथि निश्चित हुई। मगर ब्रिटिशों के संज्ञान में यह योजना आ गई। १५ अक्तूबर को विद्रोह के नेताओं को तोप से उड़ा दिया गया। दक्षिण नासिक और उत्तर अहमदनगर की दो पहाड़ी जातियाँ कोल और भील पेशवाओं के समर्थक थे। वे १८३० से निरंतर अंग्रेजों से युद्धरत रहे। गोविंदराव खारी और राम किरवा इनमें महत्त्वपूर्ण नाम थे। नासिक जिले में पेठ रियासत में भगवानदास ने भागोजी नाईक और फालदीखान के साथ मिलकर विद्रोह किया था। इस विद्रोह को भी अंग्रेजों ने दबा दिया। विद्रोहियों को समुद्र पार निष्कासन की सजा दी गई थी। बीड़ में सातारा के राजा और नानासाहब पेशवा के नाम पर ब्रिटिश विरोधी बगावत की योजना बनाई गई थी।

१८५७ के विफल विद्रोह के बाद कोल्हापुर के राजा के छोटे भाई चिमा साहब के नेतृत्व में विद्रोह की योजना आकार लेने लगी थी। पुराने कोल्हापुर राज्य की रानी ताईबाई ने कोल्हापुर में पुन: क्रांति को प्रेरित करने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मातंग समाज के लहूजी वस्ताद सालवे का नाम क्रांतिगुरु के रूप में लिया जाता है। महात्मा फुले, वासुदेव बलवंत फड़के, लोकमान्य तिलक, गोपाल आगरकर आदि महापुरुषों को शस्त्र चलाने की शिक्षा लहूजी वस्ताद सालवे ने दी थी। १८७४ में पश्चिम महाराष्ट्र में अकाल का तांडव शुरू हो गया था। हजारों लोग और जानवर मर गए और बाकी लोग अपना गाँव छोड़कर अनाज की खोज में भटकने लगे। अपने देश की यह हालत अंग्रेजों के कारण ही हुई है, यह जानकर वासुदेव बलवंत फड़के ने रामोशी लोगों की मदद से विद्रोह किया। अंग्रेजों ने उसका दिन-रात पीछा कर उसे १८८१ में एडन की जेल में कालापानी की सजा पर भेज दिया। बाद में जनरोश इस देश में खड़ा हो गया, इसे दबाने के लिए एलन ह्यूम नामक एक गोरे ने संवैधानिक मार्ग से जनता को ले जाने हेतु १८८५ में कांग्रेस की स्थापना की।

हम जानते ही हैं कि सन् १८५७ का समर असफल रहा, मगर जनता में जागृति आ गई थी। अंग्रेजों ने अपना शिकंजा मजबूत करने हेतु नि:शस्त्रीकरण का कानून बनाकर सरदार, सैनिक और वनवासियों से शस्त्र इकट्ठा कर उन्हें नष्ट कर दिया। इस देश में शिक्षित गुलामों की फौज बनाने के लिए अंग्रेजों ने विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों की स्थापना की। अंग्रेजी शिक्षण के कारण डॉक्टर, वकील, बैरिस्टर और क्लर्क ऐसी बड़ी पीढ़ी देश में खड़ी हो गई। संवैधानिक मार्ग से स्वतंत्रता आंदोलन चलाने का विचार शिक्षित लोगों के मन में जड़ पकड़ने लग गया। हिंदी राजनीति के सूत्र इन लोगों के हाथों में आ गए और १८५२ में बंबई में बॉम्बे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन की स्थापना हुई। दादाभाई नौरोजी को भारत का पितामह कहा जाता है। बॉम्बे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन से ही दादाभाई के राजनीतिक जीवन प्रारंभ हुआ था। इंग्लैंड में निवास करने के कारण आधुनिक विचारों से वे परिचित थे और समकालीन तथा बाद में आए मेहता, वाच्छा और गोखले इनसे भी अधिक आक्रामक थे। उन्होंने ही स्वदेशी, स्वराज और बहिष्कार का महामंत्र इस राष्ट्र को दिया है। देश

की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का अध्ययन कर उसे विकास की ओर ले जाने के लिए राजनीतिक जागृति का सामुदायिक मार्ग अंगीकार करनेवाले पहले नेता दादाभाई ही थे। आर्थिक साम्राज्यवाद क्या होता है और जब कोई राष्ट्र दूसरे को गुलाम बनाता है, तब पराजित राष्ट्र का शोषण कैसे किया जाता है, इस बात को दादाभाई ने ही सर्वप्रथम उजागर किया था। यह विदेशी सत्ता देश की संपदा को अनगिनत तरीकों से लूट रही है और दिन-ब-दिन हम कंगाल बनते जा रहे हैं, यह सत्य उन्होंने सबके सामने सर्वप्रथम रखा। स्वराज ही गरीबी और भूख से मुक्ति दिला सकता है, ऐसा कहनेवाले दादाभाई ही हिंदी राष्ट्रवाद के जनक कहलाते हैं।

दादाभाई के साथ न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे, दादोबा पांडुरंग, लोकहितवादी, विष्णुबुवा ब्रह्मचारी, महात्मा फुले भी महाराष्ट्र में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सामाजिक और राजनीतिक सुधार लाने हेतु जी-जान से जुटे हुए थे। १८५८ का महारानी का घोषणा-पत्र, विश्वविद्यालयों की स्थापना, ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रिटिश पार्लियामेंट को हिंदी राज्यसूत्रों का संक्रमण और १८६१ में विधिमंडल सुधार कानून के तहत कुछ बिनसरकारी सदस्यों की विधिमंडल में नियुक्ति आदि कारणों से नवशिक्षित पीढ़ी के अंत:करण में राजनिष्ठा का पुनरुज्जीवन हो रहा था, ऐसे कालखंड में रानडेजी का उदय हुआ और लोकमान्य तिलक की भाषा में कहना है तो 'ठंडे पड़ी ग्रंथी में गरमी लाने का कार्य रानडेजी ने किया। गणेश वासुदेव जोशी अर्थात् सार्वजनिक काका की सहायता से सार्वजनिक कार्य में उन्होंने चेतना भर दी थी। ब्रिटिश शासकों ने हिंदी लोगों के साथ समानता से व्यवहार करना चाहिए और हिंदी लोगों ने ब्रिटिश शासकों से एकनिष्ठ रहना चाहिए, ऐसा राजनीतिक तत्त्वज्ञान रानडेजी ने दिया था। मगर उनके काल में क्रांतिकारी विचारों से प्रभारित युवाओं का पक्ष बढ़ने लगा था। पुणे की सार्वजनिक सभा में तो विद्रोही विचार रखनेवाले लोगों की बहुसंख्या थी। १८८० के बाद रानडेजी की प्रागतिक विचारधारा और दादाभाई का शोषण सिद्धांत आगे चलानेवाली विचारधारा में संघर्ष बढ़ने लगा और महाराष्ट्र की राजनीति में जहाल और मवाल इस संघर्ष के बीज पैदा हो गए। १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय सभा अर्थात् कांग्रेस की स्थापना हुई, तब तक महाराष्ट्र का आंदोलन लगभग असंगठित और प्रेरणाहीन ही था। मगर उसके पश्चात् आंदोलन में संगठन आया और स्वराज्यप्राप्ति लक्ष्य बन गया।

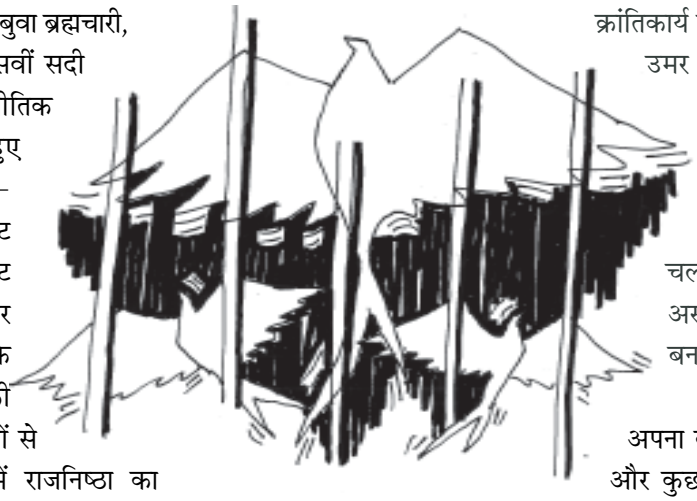

राष्ट्रवाद के आंदोलन में विष्णुशास्त्री चिपळूणकर (१८५०-१८८२), लोकमान्य तिलक (१८५६-१९२०) और आगरकर (१८५६-१८९५) का योगदान विशेष रहा है। आगरकर सामाजिक सुधार के ही पक्षधर अधिक थे। मगर लोकमान्य तिलक मानते थे कि भारत की वर्तमान समस्या राजनीतिक गुलामी की है और उसका हल निकालने हेतु राष्ट्र में स्वाभिमान जगाना आवश्यक था। बंगाल में बंगभंग आंदोलन के कारण जो शक्तिपुंज निर्माण हुआ था, उसे नि:शस्त्र क्रांति का रूप देकर राष्ट्रसभा के राजनीति के समर्थन में उसे खड़ा करने का प्रयास १९०८ तक तिलक ने किया। स्वराज यही लोकमान्य का अंतिम लक्ष्य था और साधनानाम् अनेकता, यह उनकी कार्यपद्धति का सूत्र था। संवैधानिक मार्ग से हिंदी लोगों को अधिकार मिलने चाहिए, यह वे जानते थे, मगर उस समय युवा देशभक्तों के मन में ब्रिटिश सत्ता के विरोध में असंतोष दहक रहा था। चापेकर बंधु, स्वातंत्र्यवीर सावरकर और अभिनव भारत संघटना के अन्य सहकारी गण तथा सेनापति बापट आदि क्रांतिकारी बलिदान हेतु सिद्ध थे। स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने अभिनव भारत संगठन के माध्यम से क्रांतिकार्य चलाया। उनको पकड़ने के बाद दोहरी उमर कैद सुनाई गई। अंडमान कारागार में उनको काला पानी पर भेजा गया। उन्हें कोलू चलाना पड़ा। बाद में रत्नागिरी में उनको स्थानबद्ध रखा गया। उन्होंने फिर समाज सुधार का आंदोलन चलाया। उनका जहाज से पलायन का असफल प्रयास आज भी प्रेरणा का विषय बनता है।

कुछ क्रांतिकारी हिंसात्मक मार्ग अपना कर हँसते-हँसते फाँसी पर लटक गए और कुछ लोगों ने अंडमान में कालेपानी की सजा भी काटी। इस मार्ग को अपनानेवाले क्रांतिकारियों के बारे में लोकमान्य के मन में बड़ा आदरभाव था, मगर आम आदमी को स्वतंत्रता आंदोलन में सहभागी करने के बारे में वे अधिक विचार करते थे। बंगभंग के समय स्वदेशी, विदेशी बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज इन चार सूत्रों का उन्होंने उद्घोष किया। कानून के दायरे में रहकर उन्होंने कई आंदोलन चलाए थे। हिंसात्मक साधन का उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से करना चाहिए, ऐसा वे मानते थे। १९०६ के बाद सशस्त्र क्रांतिकारी दल की स्थापना हो गई। आगे चलकर तिलक अखिल भारतीय नेता बन गए। रेंड का कत्ल, बंगभंग, सूरत कांग्रेस और होमरूल आदि आंदोलन तिलक युग में हुए। लोकमान्य तिलक के बाद महाराष्ट्र के नेता केलकर बने थे। होमरूल लीग के सचिव भी वे ही थे। कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए १९२५ में उनका ही नाम कई प्रांतों से सुझाया गया था। असहयोग नीति के स्वीकार के बाद कांग्रेस वर्किंग कमिटी में महाराष्ट्र की ओर से उनका ही चयन किया गया था। राष्ट्रीय सभा का प्रथम संविधान बनाने का काम भी गांधी ने उनको ही सौंपा था। शिवराम महादेव परांजपे (संपादक 'काल') और कृष्णाजी प्रभाकर खाड़िलकर (संपादक 'नवाकाल') दोनों तिलक के सच्चे अनुयायी थे। महाराष्ट्र के राष्ट्रीय आंदोलन में एक संघर्षशील गुट के वे प्रतिनिधि थे। इनके साथ चिंतामणराव वैद्य, शंकरराव देव भी महाराष्ट्र के असहयोग आंदोलन के जनक थे। स्कूल और कॉलेजों का बहिष्कार किया गया। १९२० में तिलक महाराष्ट्र

महाराष्ट्र में नमक का कानून तोड़ने का सत्याग्रह प्रथम विलेपार्ले और बाद में शिरोड़े, रत्नागिरी, वड़ाला और धारासना इन स्थानों हुआ था। ७ अप्रैल, १९३० को बंबई में महालक्ष्मी स्थान पर दस हजार लोगों ने नरीमन के नेतृत्व में नमक कानून भंग किया। बाद में धुलिया, जलगाँव, बंबई तथा पुणे में हजारों लोगों गैरकानूनी नमक बनाकर उसकी बिक्री भी की थी। इस के बाद बारी आती है जंगल सत्याग्रह की। जंगल के इस्तेमाल का टैक्स देना लोगों ने मना कर दिया था।

विद्यापीठ की स्थापना हुई। जगह-जगह पर राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की गई।

महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में वर्णभेद के विरोध में आंदोलन चलाया था और भारत लौटकर १९१६ में यूरोपियन ठेकेदारों के विरोध में नील मजदूरों का आंदोलन चलाया। १९१९ में रौलेट एक्ट के विरोध में भी संगठित आंदोलन हुआ। बाद में असहयोग आंदोलन खड़ा हुआ। खादी, अस्पृश्यता निवारण, मद्यपान बंदी आदि कार्यक्रम सामने आए और १९२० से १९३० तक उनके सर्वंकष कार्यक्रम के चलते बहुजन समाज गांधीजी की ओर आकर्षित होने लगा। दांडी मार्च, नमक आंदोलन ऐसे कार्यक्रम उन्होंने देशवासियों को दिए।

गांधीजी ने स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु ब्रिटिशों के विरोध में प्रभावी संघर्ष करने हेतु हिंदू-मुसलिम एकता का विचार रखा। फूट डालो और राज करो, यह अंग्रेजों की नीति असफल बनाने का प्रयास है, ऐसा उनका कथन था। गांधीजी ने अपने आंदोलन में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक, नारीशक्ति आदि सारी समस्याओं का अंतर्भाव किया और राजनीतिक विचार तथा आंदोलन को एक सर्वंकषता एवं सर्वसमावेशक दृष्टिकोण प्रदान किया।

सविनय अवज्ञा भंग के संघर्ष की दृष्टि से १९२७-१९३० इस कालावधि की घटनाएँ महत्त्वपूर्ण रही हैं। कांग्रेस के प्रस्ताव, युवा आंदोलन, दांडी मार्च और महाराष्ट्र के लिए युद्धमंडल (वॉर कॉन्सिल) नियुक्ति तथा २६ जनवरी, १९३० को पूरे भारत में स्वतंत्रता दिवस की प्रतिज्ञा एक साथ करने की योजना जनता का निर्धार ही दिखाती है। बंबई और बंगाल में यूथ लीग नामक युवा आंदोलन ने जोर पकड़ लिया था। चौरीचौरा घटना के बाद असहयोग आंदोलन स्थगित किया गया और युवाओं को यह बात कतई पसंद नहीं आई। बंबई में अखिल भारतीय युवक परिषद् हुई, जिसके अध्यक्ष नरिमन और स्वागताध्यक्ष सुभाषचंद्र बोस थे। पुणे में भी विद्रोही कार्य करनेवाली पुणे यूथ लीग यह संस्था आगे थी और फर्ग्युसन कॉलेज इस का केंद्र बन गया था।

मुलशी सत्याग्रह महाराष्ट्र का प्रथम सत्याग्रह था और सेनापति बापट की अगुवाई में कई बड़े नेताओं ने यह सत्याग्रह महाराष्ट्र के सैकड़ों गाँव, पूँजीवादियों की गुलाम होने से बच पाए, इस हेतु से यह सत्याग्रह चलाया था। सरदार पटेल द्वारा चलाए बारडोली सत्याग्रह से भी महाराष्ट्र के किसानों को संघर्ष की प्रेरणा मिली थी। उसी तरह औद्योगिकीकरण के पश्चात् मिल मजदूरों का अंग्रेजी व्यवस्था द्वारा शोषण आरंभ हो गया, तब १८८४ में नारायण मेघाजी लोखंडे की अध्यक्षता में बॉम्बे मिलहंडस एसोसिएशन नामक मजदूर संगठन शुरू हुआ और यह केवल महाराष्ट्र ही नहीं बल्कि शायद पूरे भारत में ही पहला मजदूर संगठन था।

महाराष्ट्र सशस्त्र क्रांति में भी आगे था। शिवराम हरी राजगुरु, मलका पूरकर, सावरकर आदि ने ब्रिटिशों के खिलाफ कई षड्यंत्रों में सहभाग लिया था। नागपुर में झेंडा सत्याग्रह किया गया। बंबई में विद्यार्थी मंडल असंवैधानिक संस्था घोषित की गई और बंबई तथा पुणे के कॉलेज युवाओं पर पुलिसिया अत्याचार किए गए। बंबई में २६ जनवरी, १९३० को स्वतंत्रता दिवस मनाया गया और चौपाटी पर विराट जनसभा संपन्न हुई। 'नहीं रखनी नहीं रखनी, जालिम यह सरकार नहीं रखनी' ऐसी घोषणाएँ की गईं। पुणे में जुलूस निकाले गए और हिंदुस्तान सोशॅलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी के हिंसात्मक संघर्ष के पत्रक लोगों में बाँटे गए। भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के चित्र जगह-जगह पर बेचे गए। महाराष्ट्र में सत्याग्रह का आंदोलन तीव्र बन गया, सानेगुरुजी ने पूर्व खानदेश (जलगाँव), शंकरराव ठकार ने पश्चिम खानदेश (धुले), आचार्य भागवत ने कुलाबा (रायगड) और आप्पासाहेब पटवर्धन ने रत्नागिरी में तूफानी प्रचारतंत्र प्रारंभ कर दिया था। कानूनभंग आंदोलन का बंबई का प्रथम शहीद था दाऊद मुंशी नामक एक मुसलिम युवक। १९३० में गढ़वाल दिवस के जुलूस पर पुलिस लाठीचार्ज में उसकी मौत हो गई। रुईकर और कांदलकर नामक मजदूर नेताओं ने रेलवे मजदूरों की हड़ताल संगठित की। एक लाख लोगों का भव्य जुलूस बंबई के रास्ते में उमड़ पड़ा था। अमेरिकन कौंसिल जनरल ने ऐसा कहा था, 'बंबई में दो सरकार हैं, एक ब्रिटिशों की और दूसरी कांग्रेस की।' (रिबेल इंडिया, पृ. १३) महाराष्ट्र में नमक का कानून तोड़ने का सत्याग्रह प्रथम विलेपार्ले और बाद में शिरोड़े, रत्नागिरी, वड़ाला और धारासना इन स्थानों हुआ था। ७ अप्रैल, १९३० को बंबई में महालक्ष्मी स्थान पर दस हजार लोगों ने नरीमन के नेतृत्व में नमक कानून भंग किया। बाद में धुलिया, जलगाँव, बंबई तथा पुणे में हजारों लोगों गैरकानूनी नमक बनाकर उसकी बिक्री भी की थी। इस के बाद बारी आती है जंगल सत्याग्रह की। जंगल के इस्तेमाल का टैक्स देना लोगों ने मना कर दिया था।

बंबई शहर छोड़कर अन्य सभी जिलों में यह सत्याग्रह किया गया। यह कानून पहले बापूजी अणे ने तोड़ा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निर्माता सरसंघचालक डॉक्टर केशव बलीराम हेडगेवार ने भी जंगल सत्याग्रह में भाग लिया था। अकोले, पुसद में भी यह सत्याग्रह हुआ। ब्रिटिश सरकार इस आंदोलन से सचमुच अचंभे में पड़ गई थी। विदेशी कपड़े का

बहिष्कार किया गया और १२ दिसंबर, १९३० को बंबई में बाबू गेनू ने विदेशी कपड़े की लॉरी के सामने अपने प्राणों का बलिदान किया। सोलापुर में ब्रिटिश सत्ता के विरोध में जो विद्रोह जगा था, उसे दबाने के लिए वहाँ मिलिटरी राज लाया गया और सभी तरह के हथकंडे अपनाते हुए प्रजा पर भयानक जुल्म और सितम ढाए गए। सोलापुर की जुल्मी शासन का निषेध करने हेतु वासुदेव बलवंत गोगटे ने बंबई के गवर्नर हॉटसन पर गोलियाँ चलाई थीं, मगर हॉटसन बच गया। सोलापुर का अनुकरण अगर भारतभर के सारे औद्योगिक केंद्रों द्वारा किया गया होता तो यह ब्रिटिश राज्य के लिए मृत्युघंटा साबित होता, ऐसा इस बारे में कहा गया है। लेकिन आखिर असहयोग आंदोलन असफल सिद्ध हुआ। बाद में साइमन कमीशन भेजा गया। इस में कोई भारतीय सदस्य नहीं था और स्वराज की माँग सरकार को मंजूर भी नहीं थी। इसलिए देश में विद्रोह की चिनगारी भड़क उठी।

अगस्त १९४२ में गांधीजी ने भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत की और अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर करने हेतु सामूहिक नगरिक अवज्ञा आंदोलन 'करो या मरो' आरंभ कर दिया। इस आंदोलन में रेलवे स्टेशन, दूरभाष कार्यालय, सरकारी भवन और अन्य उपनिवेश राज के संस्थानों में बड़े पैमाने पर हिंसा शुरू हो गई। महाराष्ट्र में भी इसकी काफी घटनाएँ हुईं। कांग्रेस के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद सत्ता में आई लेबर पार्टी के ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लीमेंट रिचर्ड एटली को भारतीय नागरिकों से सहानुभूति थी। १९४६ में एक कैबिनेट कमीशन भारत आया और अंतरिम सरकार के निर्माण का प्रस्ताव दिया गया। मुसलिम लीग ने अलग राज्य की माँग उठाई और भारतीय नेताओं ने विभाजन स्वीकार किया। इस तरह १४ अगस्त, १९४७ की मध्यरात्रि को भारत आजाद हो गया और १५ अगस्त अपना स्वतंत्रता दिवस कहलाया।

१८१८ से १९४७ तक की कालावधि में अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने के प्रयास में महाराष्ट्र का जो योगदान है, वह एक लेख का विषय नहीं बन सकता है। यह बड़े अनुसंधान का विषय है। इस लेख में केवल कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया गया है। संक्षेप के कारण कुछ घटनाओं और व्यक्तियों का उल्लेख नहीं हो पाया, तो भी उनका योगदान कम रहा है, ऐसा लेखक बिल्कुल नहीं मानता है। स्थान के अभाव से ही यह उल्लेख रह गया है।

३०२, महाकाय अपार्टमेंट्स, मैत्री पार्क, लक्ष्मी पार्क के पास,
यशोधन नगर, ठाणे-४००६०६ (पश्चिम)
दूरभाष : ०९५९४९६१८६४

अमरसिंह हरियाणवी

● श्रीकृष्ण 'सरल'

यह अमरसिंह का दुर्भाग्य था कि वह एक अंग्रेज अफसर मि. मोर के दफ्तर में चपरासी का काम करता था। उसे साहब के घर पर भी काफी काम करना पड़ता था। वैसे अमरसिंह ऊँचे सिद्धांतोंवाला था और भारतीय क्रांतिकारियों के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति थी। वह हरियाणा के सुनारिया ग्राम का रहनेवाला था।

मि. मोर चरित्र का हलका आदमी था। वह आने-जानेवाली महिलाओं पर फबतियाँ कसा करता था। एक दिन उसने अमरसिंह से अपने ही दफ्तर के एक बाबू की पत्नी के विषय में पूछताछ की। अमरसिंह को यह अच्छा नहीं लगा और उसने साहब को बुरी तरह झिड़क दिया। वह बोला, ''आप हमारे शासक हैं, इसका अर्थ यह तो नहीं कि आप हमारी देवियों को बुरी दृष्टि से देखें। इस तरह के पापियों को हम लोग दंड देते हैं, उन्हें कभी क्षमा नहीं करते।''

साहब ने नाराज होकर उसे नौकरी से निकाल दिया। उसने अमरसिंह को बुरा-भला कहा और सभी भारतीयों के प्रति अपमानजनक शब्द कहे।

अमरसिंह अपने और देशवासियों के अपमान को भूला नहीं। वह अपने गाँव के बल्लू लुहार के पास गया और उससे एक फरसा लिया। रात के समय वह अंग्रेज अफसर के बंगले में पहुँच गया। मि. मोर उस समय सो रहा था। अमरसिंह ने भारतीय आदर्श के अनुसार सोते हुए व्यक्ति पर प्रहार करना उचित नहीं समझा। उसने अपने साहब को जगाया। मि. मोर ने अमरसिंह को फरसा लिये क्रोध की मुद्रा में देखा तो वह टेबल की दराज में से अपना रिवॉल्वर लेने के लिए लपका। इसके पहले कि वह अपना रिवॉल्वर उठा सके, अमरसिंह ने फरसे के भरपूर वार से उसका काम तमाम कर दिया। उसने साहब की मेम को नहीं मारा; क्योंकि भारतीय आदर्श के अनुसार, नारी पर हाथ नहीं उठाया जाता। फरसा उसने वहीं छोड़ा और आँगन में खड़े नीम के दरख्त पर चढ़कर, उसकी शाखा के सहारे वह बाहर पहुँचकर अपने गाँव में चला गया।

अंग्रेज फौज ने अमरसिंह के गाँव को घेर लिया और उसने पूरे गाँव को तोपों से उड़ा देने का फैसला किया। निरपराध लोगों को दंड न मिले, इस कारण अमरसिंह ने स्वयं उपस्थित होकर आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेजों ने उसपर कोई मुकदमा नहीं चलाया, पर क्रूरतापूर्वक उसके प्राण ले लिये। उन्होंने उसे एक खंभे से बाँध दिया और उसके ऊपर शिकारी कुत्ते छोड़ दिए। शिकारी कुत्तों ने अमरसिंह को नोच डाला।

भारतीय आदर्शों की रक्षा के लिए अमरसिंह ने अपने प्राण दे दिए।

स्वातंत्र्य समर का महानायक : राजस्थान का 'आउवा'

● इंदुशेखर शर्मा

ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती देनेवाले सन् १८५७ के महान् क्रांति ज्वालानल को चिनगारी दिखाने का कार्य १९ मार्च को अमर शहीद मंगल पांडे द्वारा चलाई गई गोली से हुआ माना जाता है। किंतु यह भी सत्य है कि असंतोष की ऐसी चिनगारियाँ देश में अनेक स्थानों पर उठ रही थीं और इन्हीं ने देश में अनेक स्थानों पर अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय राजाओं, नवाबों, ठिकानेदारों और सिपाहियों की सशस्त्र संघर्ष की भूमिका का निर्माण किया।

राजस्थान में भी ब्रिटिश सत्ता को सशक्त चुनौती दी गई और अंग्रेज सिपाहियों को जगह-जगह मुँह की खानी पड़ी। इसी क्रम में राजस्थान के एक छोटे से ठिकाने 'आउवा' के ठिकानेदार कुशाल सिंह चांपावत और उनके सहयोगी सेनानियों का स्वतंत्रता-संघर्ष समूचे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के ललाट पर राजतिलक की भाँति सुशोभित और सम्मानित है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि ब्रिटिश सत्ता द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपरांत युद्ध-बंदियों पर तत्काल मुकदमा चलाकर, चौबीस स्वतंत्रता सेनानियों को मृत्युदंड देकर हाथो-हाथ गोली मार देने की यह देशभर में अनूठी घटना थी। अंग्रेजों द्वारा लूटपाट, विध्वंस, हत्या, दमन जैसी अमानुषिक और बर्बर काररवाइयाँ तो देश में सर्वत्र हुई हैं। आउवा में भी यह सब घटित हुआ था, किंतु एक साथ चौबीस लोगों को मृत्युदंड देने की यह संभवत: देश की सबसे भयानक और क्रूर न्यायिक काररवाई थी। आउवा के स्वतंत्रता सेनानियों का यह बलिदान राजस्थान के स्वाधीनता संग्राम का सर्वाधिक गौरवपूर्ण अध्याय है।

इन घटनाओं का विवरण A History of the Sepoy War in India (1857-1858) By John William Kaye, F.R.S, Rajasthan's Role in the Struggle of 1857 By Nathu Ram Khadgawat, A Missing Chapter of the Indian Mutiny by Showers. C.L. 1888. आदि पुस्तकों में तो वर्णित है ही, इनके अतिरिक्त ब्रिटिश सैन्य अधिकारियों द्वारा लिखे गए पत्रों और दैनिक डायरियों में भी दर्ज हैं। ये दस्तावेज राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित हैं।

वस्तुत: ब्रिटिश शासकों द्वारा किए जा रहे शोषण एवं दमन के परिणामस्वरूप १९वीं सदी के पहले दशक में ही राजपूताना में ब्रिटिश-शासन विरोधी भावनाएँ फूट पड़ी थीं। जब अंग्रेजों की सेना ने मल्हार राव होल्कर का पीछा किया तो वह भरतपुर की तरफ गया, जहाँ भरतपुर के राजा रणजीत सिंह ने होल्कर को शरण दी। डीग में ब्रिटिश सेना और

सुपरिचित लेखक। 'खिली-खिली धूप' (काव्य-संग्रह) 'मूर्धन्य कवियों का आलोचनात्मक अध्ययन' तथा पत्र-पत्रिकाओं में कविता, निबंध, आलेख, आलोचना प्रकाशित। 'साहित्यश्री', 'साहित्यकार सम्मान' तथा 'सुमनेश जोशी पुरस्कार' सहित कई सम्मान।

भरतपुर की सेना के बीच २ जनवरी, १८०५ को युद्ध हुआ, जिसमें अंग्रेजों को भारी क्षति हुई और उन्हें अपना साजोसामान छोड़कर भागना पड़ा। इस प्रसंग पर जोधपुर के कविराज बांकीदास ने सारे देशवासियों और विशेषकर राजपूताना के राजाओं को चेतावनी देते हुए यह गीत लिखा—

गीत चेतावणी रो

'आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर, आहंस लीधा खैंच उरा।
धणियां मरे न दीधी धरती, धणियां ऊभां गई धरा॥
फौजां देख न कीधी फौजां, दोयण किया न खळां-डळा।
खवां-खांच चूड़ै खवंद रै, उणहिज चूड़ै गई यळा॥
छत्रपतियां लागी नहँ छांणत, गढ़पतियां धर परी गुमी।
बळ नहँ किया बापड़ां बोतां, जोहतां-जोतां गई जमी॥
दुय चत्रमास वादियो दिखणी, भोम गयी सो लिखत भवेस।
पूगो नहीं चाकरी पकड़ी, दीधो नहीं मड़ैठो देस॥
वजियो भलो भरतपुर वाळो, गाजै गजर धजर नभ गोम।
पहलां सिर साहब रो पड़ियो, भड़ ऊ भां नह दीधी भोम॥
महि जातां चींचाता महिलां, अै दुय मरण तणा अवसांण।
राखो रे कींहिक रजपूती, मरद हिंदू की मुसळमांन॥
पुर जोधांण, उदैपुर, जैपुर, पह थांरा खूटा परियांण।
आंकै गई आवसी आंकै, वांकै आसल किया वखांण॥'

अंग्रेजों की भरतपुर में हुई इस पराजय के बाद ब्रिटिश शासन ने पूरी तैयारी के साथ सन् १८०९-१० में जनरल लैक के नेतृत्व में विशाल सेना के साथ भरतपुर पर आक्रमण किया, किंतु अंग्रेज सेना भरतपुर के किले पर अधिकार नहीं कर पाई। भरतपुर एवं डीग में अंग्रेज सेना को मिली चुनौती के बाद अंग्रेजों ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन पर अंकुश लगाने एवं स्वतंत्रता सेनानियों के दमन करने की नीयत से देसी रियासतों के साथ राजनैतिक संधियाँ कीं। जोधपुर, उदयपुर एवं राजपूताना की

अधिकांश रियासतों के साथ अंग्रेजों की लिखित संधियाँ सन् १८१८ में निष्पादित हुईं, जिसमें देसी रियासतों द्वारा यह शर्त स्वीकार की गई कि यदि कोई अन्य शक्ति राजपूताना की किसी रियासत में अंग्रेजों को चुनौती देगी तो वे सैन्य काररवाई में अंग्रेजों का साथ देगी।

इधर समूचे उत्तर भारत में क्रांति के लिए जो तैयारी चल रही थी, राजस्थान उससे अछूता नहीं था। अंग्रेज अफसरों द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में शामिल भारतीय सिपाहियों के साथ किए जानेवाले सौतेले व्यवहार ने सिपाहियों में असंतोष उत्पन्न किया। राजस्थान की सैनिक छावनियों में यह अफवाह फैल गई थी कि सेना को भेजे जानेवाले आटे में मानव अस्थियों का चूर्ण मिला हुआ है। इसको लेकर सिपाहियों में बड़ा रोष रहा। चरबीयुक्त कारतूसों के अलावा इस प्रकार की चर्चाओं से सिपाहियों के मन में यह बात घर कर गई कि ये सब उनके धर्म को भ्रष्ट करने की चाल है। अंग्रेजों ने चरबीयुक्त नवीन कारतूसों का प्रयोग करने के लिए १९वीं पलटन का चयन किया। सारी पलटनों ने अंग्रेजों के आदेश को बड़े साहस के साथ न केवल ठुकरा दिया अपितु यह भी चेतावनी दे डाली कि चरबीयुक्त कारतूसों के प्रयोग के लिए यदि उनके साथ किसी प्रकार की जबरदस्ती की गई तो वे अपने हथियार लेकर संग्राम में कूद पड़ेंगे।

२३ मई, १८५७ को ब्रिगेडियर जनरल जार्ज पैट्रिक लॉरेंस कार्यवाहक ए.जी.जी. ने राजपूताना के सभी राजाओं के नाम विद्रोहियों को पकड़ने में उनकी सहायता करने के लिए घोषणा-पत्र जारी किया। जोधपुर रियासत के दस्तावेज 'महाराजा तखतसिंह री ख्यात' में तात्कालीन घटना के बारे में उल्लिखित हैं कि ''जेठ सुद ७ नसीराबाद री छांवणी रो लोग बदळ १० तथा १२ अंगरेजां नै मार नै मैगजीण नै शजांनां रौ बंदबस्त कर लीयौ नै अजमेर आवण रौ मनसोभो है। जेठ सुद ११ किलादार अनाड़सिंघ नै मेतो छतरमल, बड़ो साहब जारज लारनस अजमेर जावै जिण कनै मेलीया पाली, सो बड़ा साहब पाली मिळियो नहीं तरै सोझत गया। नै सिसटाचार दीवी कै अपणे मुलक का षूब बंदबस्त रखो। बागी लोग आपकै मुलक में आणै पावै नहीं।'' (संदर्भ: महाराजा तखतसिंह री ख्यात, पृ.सं. २३१, २३२)

राजपूताना के गर्वनर जनरल के प्रतिनिधि ब्रिगेडियर जॉर्ज पैट्रिक लॉरेंस ने भी जोधपुर के महाराजा तखत सिंह को कठोर शब्दों में चेतावनी दी कि वे ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती देनेवाले ऐरनपुरा छावनी के जोधपुर लेजन के इन सैनिकों के विरुद्ध यथाशीघ्र कठोर काररवाई कर उन्हें दंडित करें। जोधपुर के महाराजा तखत सिंह ने किलेदार ओनाड़ सिंह पंवार और सेनापति राजमल लोढ़ा को एक हजार से अधिक सशस्त्र सैनिकों, तोपों आदि से सुसज्जित कर ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देनेवाले सशस्त्र क्रांतिकारियों का दमन करने के लिए रवाना किया।

२८ मई, १८५७ को शाम को ४.०० बजे अजमेर के निकटवर्ती नसीराबाद नेटिव इन्फेंट्री ने विद्रोह कर दिया। क्रांतिकारी सैनिकों ने नसीराबाद छावनी को नष्ट कर दिल्ली की ओर कूच कर दिया। जोधपुर रियासत के लगभग १००० सैनिकों ने अंग्रेजों के साथ मिलकर उनका पीछा किया, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। कर्नल न्यूबरी व मेजर स्पाटबुड को नसीराबाद के क्रांतिकारियों ने गोली मारकर ढेर कर दिया। अंग्रेज सेना के लेफ्टिनेंट लोन और कर्नल हाटी बुरी तरह घायल हुए। नसीराबाद छावनी का सैन्य अधिकारी वहाँ से भाग छूटा और उसने ब्यावर में जाकर शरण ली।

हिंदुस्तान के विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता आंदोलन की गूँज से प्रभावित होकर १० अगस्त, १८५७ को जोधपुर लेजन के सैनिकों ने भी ऐरनपुरा छावनी में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध क्रांति का बिगुल बजा दिया। भारतीय स्वतंत्रता सैनिकों ने माउंट आबू में अंग्रेज अधिकारियों एवं सत्ता केंद्र पर शस्त्रों से हमला बोला। अनेक गोरे उस हमले के शिकार हुए। ब्रिगेडियर जनरल लॉरेंस के पुत्र ए. लॉरेंस भी ऐरनपुरा के क्रांतिकारियों की गोली से गंभीर रूप से घायल हो गया। घंटों तक क्रांतिकारियों और अंग्रेजी सेना के बीच गोलीबारी हुई। लेफ्टिनेंट कोनोली ने ऐरनपुरा छावनी के क्रांतिकारियों की सूचना ब्रिटिश साम्राज्य के पॉलिटिकल एजेंट मॉक मेसन को भेजी। इधर क्रांतिकारियों ने स्वतंत्रता आंदोलन को सशक्त बनाने के लिए मेहरबान सिंह को जनरल घोषित किया। आबू और अनादरा की क्रांति की घटना में अनेक ब्रिटिश समर्थक लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया।

राजपूताना के गर्वनर जनरल के प्रतिनिधि ब्रिगेडियर जॉर्ज पैट्रिक लॉरेंस ने भी जोधपुर के महाराजा तखत सिंह को कठोर शब्दों में चेतावनी दी कि वे ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती देनेवाले ऐरनपुरा छावनी के जोधपुर लेजन के इन सैनिकों के विरुद्ध यथाशीघ्र कठोर काररवाई कर उन्हें दंडित करें। जोधपुर के महाराजा तखत सिंह ने किलेदार ओनाड़ सिंह पंवार और सेनापति राजमल लोढ़ा को एक हजार से अधिक सशस्त्र सैनिकों, तोपों आदि से सुसज्जित कर ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देनेवाले सशस्त्र क्रांतिकारियों का दमन करने के लिए रवाना किया।

जोधपुर की सेना के आने की खबर सुनकर ऐरनपुरा के क्रांतिकारी सैनिकों ने आउवा की ओर प्रस्थान किया। ऐरनपुरा के क्रांतिकारियों ने आउवा के ठाकुर कुशाल सिंह चांपावत से सीधा संपर्क किया। स्वातंत्र्य चेतना के धनी कुशालसिंह चांपावत ने क्रांतिकारियों को ब्रिटिश साम्राज्य और जोधपुर रियासत की सेना के विरुद्ध हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। नेतृत्व-कौशल के धनी आउवा के ठाकुर कुशालसिंह चांपावत की अगुवाई में मातृभूमि के रक्षक ठाकुर शिवसिंह (आसोप), ठाकुर बिशन सिंह (गूलर), ठाकुर अजीत सिंह (आलनियावास) एवं ठाकुर पृथ्वीसिंह (लांबिया) एकजुट हो गए। इनका साथ देने के लिए मेवाड़ के सलूंबर, कोठारिया, रूपनगर, लसाणी, आसींद के शासकों ने भी अपनी सेनाएँ आउवा भेजीं, जिससें आऊवा स्वाधीनता-समर के लिए

एक विशाल छावनी में बदल गया।

आउवा के निकट बिठौड़ा के पास ऐरनपुरा छावनी के क्रांतिकारियों और जोधपुर की सेना के बीच ८-९ सितंबर, १८५७ को आमने-सामने युद्ध हुआ। स्वतंत्रता सेनानियों ने जोधपुर के सेनापति राजमल लोढ़ा, किलेदार ओनाड़ सिंह पंवार और उनके सैनिकों को युद्ध के मैदान में मार गिराया गया। जोधपुर की सेना में भगदड़ मच गई और वे युद्ध के मैदान से भाग गए। इस युद्ध में सैकड़ों स्वतंत्रता सेनानी वीरगति को प्राप्त हुए। आउवा के निकट बिठौड़ा के इस युद्ध में क्रांतिकारियों की इस विजय ने केवल राजपूताना ही नहीं अपितु हिंदुस्तान के अन्य हिस्सों में भी स्वातंत्र्य वीरों के मन में उत्साह का नव संचार किया और ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध वे एकजुट होने लगे। जोधुपर की सेना के पराजित होने के बाद आउवा के ठाकुर कुशाल सिंह की कीर्ति चारों तरफ तेजी से फैली। ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष करने में आउवा के ठाकुर कुशाल सिंह का साथ आसोप के ठाकुर शिवराज सिंह, आलनियावास के ठाकुर अजीत सिंह और गूलर के ठाकुर बिशन सिंह एवं लांबिया, बांका, भीमालिया, बगड़ी एवं मेवाड़ के कोठारिया, लसानी, रूपनगर, सलूंबर, राड़ावास, बीजापुर आदि के ठिकानेदारों ने दिया।

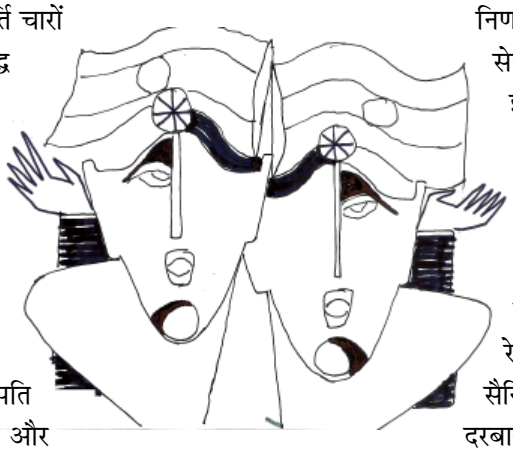

किलेदार ओनाड़ सिंह पंवार और सेनापति राजमल लोढ़ा की क्रांतिकारियों के हाथों मौत और जोधपुर की बड़ी सेना की हार ने राजपूताना के पॉलिटिकल एजेंट लेफ्टिनेंट जी.एच. मॉक मेसन को झकझोरकर रख दिया। उसने स्वयं आउवा की ओर सेना के साथ प्रस्थान किया। उधर ब्रिगेडियर लॉरेंस ने भारी भरकम सेना के साथ आउवा का दमन करने के लिए प्रस्थान किया। अंग्रेज-सेना के साथ लॉरेंस ने आउवा को तीन दिन तक घेरे रखा, किंतु क्रांतिवीर सैनिकों के आगे लॉरेंस और उसकी सेना टिक नहीं सकी। पॉलिटिकल एजेंट मेसन ए.जी.जी. की मदद के लिए सीधा आउवा की युद्ध भूमि में पहुँचा। क्रांतिकारी सेनानी मेसन को आते हुए देख उस पर झपट पड़े और उसका सर धड़ से अलग कर दिया। सेनानियों ने मेसन का कटा हुआ सर आउवा के किले पर उत्साहपूर्वक टाँग दिया। यह एक ऐसा क्षण था, जब भारत के स्वतंत्रता सेनानियों ने अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए जबरदस्त चुनौती दी। आउवा के ठाकुर कुशाल सिंह के नेतृत्व में सैकड़ों क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश सेना और जोधपुर की सेना का बंदूकों और तोपों से मुकाबला किया। भारी गोलीबारी के सामने ब्रिगेडियर लॉरेंस सेना सहित अजमेर की ओर भाग गई।

आउवा की इस घटना ने स्वतंत्रता सेनानियों के मन में नव-ऊर्जा का संचार किया। इससे उत्साहित होकर उन्होंने ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ने के लिए सीधा दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। प्राप्त विवरणों के अनुसार लगभग ६ से १० हजार तक की संख्या में स्वतंत्रता सेनानियों की फौज दिल्ली की ओर आगे बढ़ी। राजपूताना के पॉलिटिकल एजेंट ने दिल्ली की ओर प्रस्थान करनेवाले इन क्रांतिकारियों को रोकने और उन्हें मारने अथवा जिंदा पकड़ने का आदेश अनेक रियासतों को जारी किया। किंतु छुटपुट घटनाओं को छोड़कर क्रांतिकारी नारनौल तक बढ़ गए। १६ नवंबर, १८५७ को नारनौल में ब्रिटिश सेना ने क्रांतिकारियों का रास्ता रोका और आमने-सामने तोपों और शस्त्रों से युद्ध किया। ब्रिटिश सेना का अधिकारी ब्रिगेडियर गैराल्ड क्रांतिकारियों के हाथों मारा गया। परंतु ब्रिटिश सेना की संख्या अधिक थी, अत: क्रांतिकारियों ने सूझ-बूझ के साथ दाएँ-बाएँ होकर निकलना उचित समझा। कुशल नेतृत्व के अभाव में इन सेनानियों का दिल्ली पहुँचने का लक्ष्य भी तितर-बितर हो गया।

ब्रिटिश सत्ता ने राजपूताना के सहयोगी शासकों से बातचीत कर आउवा के ठाकुर कुशाल सिंह चांपावत और समर्थक क्रांतिकारियों से निर्णायक युद्ध करने का फैसला किया। ब्रिटिश सेनापतियों ने देश के विभिन्न हिस्सों से सेना को इकट्ठा किया और कर्नल होम्स के नेतृत्व में आउवा के विरुद्ध आक्रमण करने की योजना बनाई। इस बार ब्रिटिश सेना कोई मौका नहीं चूकना चाहती थी। कर्नल होम्स के नेतृत्व में एक सैन्यदल गठित किया गया, जिसमें अजमेर, नसीराबाद, नीमच, मऊ व देवली से आई रेजीमेंटों के ७०० अश्वारोही, ११०० पैदल सैनिक, तोपखाना और सैनिक इंजीनियर थे। जोधपुर दरबार की ओर से पंचोली धनरूप को अंग्रेज सेना की अगवानी करने का आदेश दिया गया। इस विशाल ब्रिटिश सेना ने १८ जनवरी, १८५८ को आउवा की घेराबंदी की। कुशाल सिंह चांपावत एवं उसके साथ सभी मुख्य सैनिकों, ठाकुरों और ग्रामवासियों ने आउवा के किले को शस्त्रों से सुसज्जित कर दिया और हर प्रकार के हमले का डटकर मुकाबला करने का निर्णय किया। आउवा के किले में २००० से अधिक सशस्त्र क्रांतिकारी सैनिकों, ग्रामवासियों एवं आसपास के नागरिकों ने अंग्रेजी सेना से मुकाबला करने की तैयारी कर ली।

१९ जनवरी को अंग्रेज सेना ने आक्रमण कर १८ स्वतंत्रता सेनानियों को गोली का निशाना बनाकर शहीद कर दिया। क्रांतिकारियों ने भी जवाबी कारवाई में ब्रिटिश सेना अनेक सिपाहियों को ढेर कर दिया। चार दिन तक लगातार आउवा पर तोपों, बंदूकों से हमला होता रहा और आउवा के किले से ब्रिटिश सेना को भी तोपों और बंदूक की गोलियों से प्रत्युत्तर मिलता रहा। २३ जनवरी, १८५८ को सूरज के ढलते-ढलते तेज काली आँधी आई, जिसमें हाथ को हाथ नहीं दिखाई दे रहा था। इस आँधी को एक अवसर समझकर आउवा किले में मोर्चा जमाए स्वतंत्रता सेनानियों ने विचार-विमर्श कर स्वतंत्रता आंदोलन को निरंतर जारी रखने के उद्देश्य से कुशाल सिंह चांपावत को आउवा के किले से निकालकर सुरक्षित स्थान पर भेज दिया। कुशाल सिंह चांपावत अपने कुछ सैनिकों के साथ मेवाड़ की दुर्गम पहाड़ियों की ओर चले गए।

विशाल सैन्य शक्ति के बावजूद अंग्रेज, क्रांतिकारी सेना से रणभूमि

में पार नहीं पा सके तो फिरंगियों ने छल-प्रलोभन और षड्यंत्र से आउवा के किलेदार से गढ़ का दरवाजा खुलवाकर धावा बोल दिया। अंग्रेज सेना ने आउवा के किले पर हमला किया। सैकड़ों सैनिक और ग्रामवासी अंग्रेज सेना का मुकाबला करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। २४ जनवरी, १८५८ को ब्रिटिश सेना ने जब आउवा के किले में प्रवेश किया तो उसे न तो वहाँ कुशाल सिंह चांपावत मिले और न ही उनको मौत के घाट उतारने की उनकी इच्छा पूरी हुई। २४ जनवरी, १८५८ को ही ब्रिटिश सेना ने १२० स्वतंत्रता सेनानियों को गिरफ्तार किया। इनमें से २४ शूरवीरों को अलग से चिह्नित कर ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने का अपराधी मानते हुए उनका कोर्ट मार्शल किया गया। न्यायालय में मुकदमा चलाया गया और २५ जनवरी, १८५८ को अदालती फैसला सुनाकर उन्हें मृत्युदंड देने की घोषणा की। मातृभूमि के इन वीर सपूतों के हाथ-पाँव बाँधकर, पंक्ति में खड़ा करके गोलियों से उनके सीने छलनी कर दिए गए। वे २४ स्वतंत्रता सेनानी आउवा के स्वतंत्रता समर में शहीद हो गए।

ब्रिटिश सेना ने आउवा के किले में मिले गोला-बारूद का उपयोग कर पूरे आउवा गाँव को पूर्णत: ध्वस्त कर दिया। गाँववालों की निर्दयतापूर्वक हत्या की। यही नहीं, गाँव के पेड़ तक काट दिए गए, गाँव के कुओं को ढहा दिया गया। रिहायशी घरों को ध्वस्त कर दिया और घरों मे नागरिकों के जो भी कीमती आभूषण, वस्त्र इत्यादि सामान थे, उनको अपने कब्जे में ले लिया। पूरे आउवा गाँव को तहस-नहस कर वीरान कर दिया। आउवा की कुलदेवी सुगाली माता की मूर्ति को अंग्रेज सेना ने खंडित कर उखाड़ दिया। यह दशमुख एवं चौवन हाथोंवाली सुगाली देवी की खंडित प्रतिमा आज भी पाली के राजकीय संग्रहालय में संगृहीत है। अंग्रेजी सेना ने आउवा के गढ़ में ६ पीतल की और ७ लोहे की तोपें और तीन टन बारूद बरामद किया, जो जोधपुर की सेना को सौंप दिया। आउवा के किले और गाँव में जो बहुमूल्य वस्तुएँ थीं, उनको भी ब्रिटिश सेनापति और उनकी सेना ने अपने कब्जे में कर लिया। कर्नल होम्स व मेजर मोरिसन के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने आउवा के स्वतंत्रता समर में साथ देनेवाले भीमालियाँ, लांबिया, आलनियावास, आसोप, बगड़ी गूलर एवं बांता के किलों को भी सुरंगों में बारूद बिछाकर ध्वस्त कर दिया।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम (सन् १८५७-५८) में अग्रेजों के शासन के विरुद्ध राजस्थान के अनेक वीर राजाओं, ठिकानेदारों और स्वतंत्रता-प्रेमी सेनानियों ने अपने प्राणों की आहुति देकर क्रांति की मशाल को जलाए रखा। ऐसे क्रांतिवीरों में आउवा के ठाकुर कुशाल सिंहजी चांपावत का नाम स्वतंत्रता के अग्रदूत के रूप में लिया जाता है, जिन्होंने भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में आउवा के नाम को अमर कर दिया। राजस्थान के इन रणबाँकुरे वीरों ने स्वतंत्रता के रक्षा हेतु मातृभूमि के चरणों में अपने प्राणों की भेंट चढ़ा दी। धन्य है वह माटी, जिसने इन वीरों को जन्म दिया।

६ ए, विश्वकर्मा नगर-३
महारानी फार्म, दुर्गापुरा, जयपुर
दूरभाष : ०८३८७०६२६११

अमरसिंह 'अमर'

● **श्रीकृष्ण 'सरल'**

स्याम देश (थाईलैंड) में उन दिनों निर्माण-कार्य तीव्र गति से चल रहा था। बहुत से भारतीय इंजीनियर उस देश के निर्माण-कार्य में सहयोग देकर अपनी आजीविका चला रहे थे। अमरसिंह भी उनमें से एक था। था तो वह इंजीनियर, पर बहुत भावुक और कवि-हृदय था। काम पर रहते हुए भी वह अपनी धुन में मस्त रहा करता था और राष्ट्रीय गीत गाया करता था।

एक दिन लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने देखा कि अमरसिंह के निवास स्थान को पुलिस ने घेर रखा है, उसके मकान की तलाशी ली जा रही है और उसे गिरफ्तार किया जा चुका है।

वह कार नहीं रखता था, पर उसके बंगले में गैरिज था, जिसमें कुछ टूटा-फूटा सामान रखा हुआ था। उसकी भी तलाशी ली गई और टूटे-फूटे सामान के नीचे से बहुत सारे हथियार बरामद किए गए। ये हथियार जर्मनी में बने हुए थे।

अमरसिंह को गिरफ्तार करने का सुराग पुलिस को एक अन्य क्रांतिकारी के पास पाए गए कागजों से मिला था; जिसमें यह दर्ज था कि जर्मनी से आए हुए हथियार कहाँ-कहाँ रखे गए हैं। जर्मनी से उन दिनों भारतीय क्रांतिकारियों को बहुत सहायता प्राप्त हो रही थी। जहाज भर-भरकर हथियार जर्मनी से आते थे, जो कभी-कभी तो पकड़ लिये जाते थे और कभी-कभी क्रांतिकारियों के पास पहुँच जाते थे। स्याम, बर्मा, हांगकांग और सिंगापुर से ये हथियार भारत के गदर वीरों के पास भेजे जा रहे थे।

इंजीनियर अमरसिंह विप्लव आयोजन में सहयोग दे रहा था। उन दिनों भारत से बाहर रहनेवाले सभी भारतीयों के दिल में भारत माता को आजाद करने के अरमान थे और वे इस कार्य में अपने प्राणों को झोंक रहे थे।

देशभक्ति के अपराध में इंजीनियर अमरसिंह को सन् १९१५ में मृत्युदंड की सजा सुनाई गई। बाद में फाँसी की सजा आजीवन कालेपानी की सजा में परिवर्तित कर दी गई।

विदेशों में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन

● राजीव गुप्ता

भारत की आजादी के लिए १७५७ से १९४७ के बीच जितने भी प्रयत्न हुए, उनमें स्वतंत्रता का सपना सँजोए क्रांतिकारियों और शहीदों की उपस्थिति सबसे अधिक प्रेरणादायी सिद्ध हुई। वस्तुत: भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। जिस प्रकार एक विशाल नदी अपने उद्‌गम स्थान से निकलकर अपने गंतव्य अर्थात् सागर मिलन तक अबाध रूप से बहती जाती है और बीच-बीच में उसमें अन्य छोटी-छोटी धाराएँ भी मिलती रहती हैं, उसी प्रकार हमारी स्वाधीनता की गंगा का प्रवाह भी सन् १७५७ से सन् १९६१ तक अजस्र रहा है और उसमें मुक्ति यत्न की अन्य धाराएँ भी मिलती रही हैं। इसी संक्षेप पृष्ठभूमि से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि अंग्रेज शासकों से भारत को पूर्णत: स्वतंत्र करवाने के लिए भारतीय क्रांतिकारों ने अपनी आवाज को बुलंद किया। कुछ भारतीय क्रांतिकारियों ने भारत की धरती से ही अंग्रेज शासकों के खिलाफ शंखनाद किया तो कुछ भारतीयों ने अपनी मेधा के आधार पर ब्रिटिश शासकों को उनके गृहदेश ब्रिटेन में जाकर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को बुलंद किया।

नवोदित लेखक। प्रतिष्ठित दैनिक हिंदी समाचार पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेखन। वर्तमान में एक निजी कंपनी में प्रबंधक के पद पर कार्यरत।

सन् १९०७, १९१६ और १९१९ में पैदा हुई विप्लव की प्रचंड भावना को जैसे कुचला गया, वैसे ही असंतोष की आग अनवरत तेज होती गई। पंजाब की फौजी हुकूमत की आड़ में अपनाया गया दमन पराकाष्ठा पर पहुँच गया और जलियाँवाला बाग में रचा गया नरमेध-यज्ञ सारे देश में असंतोष पैदा करने का कारण बन गया। उसी असंतोष के गर्भ से अहिंसक असहयोग और सत्याग्रह रूपी अस्त्र के जरिए स्वराज्य हासिल करने की अदम्य भावना का जन्म हुआ।

सन् १९२० में शुरू हुई इस लड़ाई का आधार सत्य, अहिंसा और आत्म-बलिदान होने पर भी खूनी क्रांति की लपटें अंदर-ही-अंदर सुलगती रहीं और वे अपना काम निरंतर करती रहीं। देश की आजादी के लिए इस प्रकार दोहरी लड़ाई लड़ी जाती थी। महात्मा गांधी और कांग्रेस द्वारा सत्य और अहिंसा को अपनाए जाने पर इतना अधिक जोर देने का परिणाम था कि देश में हिंसात्मक क्रांति ने जोर नहीं पकड़ा। फिर भी गुलामी से मुक्त होने की तीव्र आकांक्षा, आजाद होने की अदम्य भावना और क्रांति की वेगवती लहर देश में चारों तरफ फैल गई। सिर हथेली पर रखकर जान पर खेल जानेवाली युवा पीढ़ी ने जब भी विराट् रूप धारण किया, तब सदैव बम धमाके, गोलीबारी, हत्याकांड आदि के रूप में विदेशी हुकूमत को चुनौती दी जाती रही। दूसरे देशों के इतिहास के वे पन्ने उनके सामने थे, जिनमें जनता का दमन, उत्पीड़न और शोषण करनेवाली हुकूमतों के पूरी तरह पलटने की कहानी गर्व और गौरव के साथ सुनहरे अक्षरों में लिखी गई है। अपने देश की आजादी के इतिहास को उन्हीं सुनहरे अक्षरों में लिखने के लिए देश के युवा उतावले हो उठे थे। अब खुलकर अपना काम करना उनके लिए संभव नहीं था। अपना देशव्यापी संगठन बनाने में वे सफल नहीं हो सके। अपने हर प्रयोग के लिए उनको भारी कीमत चुकानी पड़ती थी।

ऐसे क्रांतिकारियों को कालापानी, फाँसी और निर्वासन जैसे दंड भुगतने पड़ते थे। उनमें से बहुतों के लिए स्वदेश में रहना मुश्किल हो गया था। सर्वशक्ति संपन्न ब्रिटिश सरकार की पुलिस मौत के साए की तरह उनके पीछे लगी रहती थी। परंतु कुछ क्रांतिकारी पुलिस की आँखों में धूल झोंककर अंग्रेजी राज की सरहद पार विदेशों में चले गए थे और कुछ क्रांतिकारी अपनी उच्च शिक्षा हेतु लंदन चले गए थे, बाद में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से जुड़कर अपना अमूल्य योगदान दिया। कुछ बर्मा से पूर्व की ओर और कुछ यूरोप चले गए। उनमें पंजाब केसरी लाला लाजपत राय, रासबिहारी बोस, सुभाषचंद्र बोस, लाला हरदयाल, राजा महेंद्र प्रताप, मौलाना बरकत उल्ला, श्यामजी कृष्ण वर्मा, सरदार अजीत सिंह, मैडम भीकाजी कामा, सरदार सिंह राव राणा, विनायक दामोदर सावरकर, मदनलाल ढींगरा इत्यादि लोग थे। उन दिनों लंदन में रह रहे श्यामजी कृष्ण वर्मा और सरदार सिंह राव राणाजी ने मिलकर अपनी क्रांतिकारी योजना के तहत एक बँगला खरीद लिया। कुछ ही दिनों में ६५ क्रोमबेल एवेन्यू, लंदन एन. ६ स्थित वह बँगला 'इंडिया हाऊस' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। १ जुलाई, १९०५ को 'इंडिया हाउस' का विधिवत् उद्‌घाटन समारोह हुआ, जिसमें कई सम्मानित अंग्रेजचिंतक, दार्शनिक इत्यादि लोग शामिल हुए। कालांतर में यह इंडिया हाऊस भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का लंदन स्थित मुख्यालय बना, जिसे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपतराय आदि से आशीर्वाद प्राप्त था। जल्दी ही वह इंडिया हाऊस ब्रिटिश सरकार की आँख की किरकिरी बन गया और

ब्रिटिश मीडिया उसे 'हाऊस ऑफ मिस्ट्री' के नाम से प्रचारित किया। इतना ही नहीं प्रसिद्ध अखबार 'द टाइम्स' ने श्यामजी कृष्ण वर्मा को 'कुख्यात कृष्ण वर्मा' की उपाधि दे दी।

श्यामजी ने अपने सहयोगियों के साथ चिंतन-मनन कर उनके साथ मिलकर 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक मासिक पत्रिका की शुरुआत की। जल्दी ही यह पत्रिका लंदन में अपनी धूम मचाने लगी और वहाँ के बौद्धिक जगत् में इस पत्रिका का प्रभाव बढ़ने लगा। श्यामजी अपनी इस पत्रिका के माध्यम से ब्रिटेन मीडिया जगत् में छपनेवाले लेखों के प्रश्नों का उत्तर देते थे। उन्हीं दिनों लाला हरदयाल ऑक्सफोर्ड में पढ़ रहे थे और उस समय श्यामजी कृष्ण वर्मा भी लंदन में ही थे तथा लंदन में 'इंडिया हाऊस' की स्थापना को लेकर उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। परिणामत: लाला हरदयाल का भी इंडिया हाऊस से संबंध स्थापित हो गया। तत्कालीन समय दक्षिण अफ्रीका में बोअरों अपनी स्वतंत्रता के लिए ब्रिटिश सेना से युद्ध लड़ रहे थे। परंतु गांधीजी ने बोअरों के समर्थन की बजाय अंग्रेजों का समर्थन किया था, जिसके कारण गांधीजी से श्यामजी और लाला हरदयाल असहमत थे और उन्होंने कहा, 'यदि भारत में अंग्रेज शासकों का भारतीय समर्थन करना छोड़ दें तो भारत स्वत: ही स्वतंत्र हो जाएगा'। इंडिया हाऊस की स्थापना के मात्र २० दिन बाद ही भारत ऐसा राजनीतिक भूचाल आया, जिसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की नई पटकथा लिख दी।

सन् १८५७ के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से सबक लेते हुए २० जुलाई, १९०५ को वायसराय लॉर्ड कर्जन ने हिंदू-मुसलिम एकता को खत्म करने के उद्देश्य से बंगाल-विभाजन कर एक कूटनीतिक चाल चली। अंग्रेजों की इस चाल के विरोध में पूरे भारत में तीखी प्रतिक्रिया हुई। लॉर्ड कर्जन के बंगाल विभाजन के निर्णय ने भारतीय आक्रोश को उसके चरम पर पहुँचा दिया। बंगाल विभाजन का भारतीय स्वाधीनता आंदोलन पर व्यापक असर पड़ा। अंग्रेज अपनी चाल में उस समय कामयाब हुए, जब १९०६ में उन्होंने भारत की हिंदू-मुसलिम एकता को खत्म करने के लिए कांग्रेस के समानांतर 'मुसलिम-लीग' की स्थापना की। सन् १९०६ में भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन बंगाल के कलकत्ता में हुआ, जिसकी अध्यक्षता दादा भाई नौरोजी ने की। इस अधिवेशन में पहली बार 'स्वराज्य' की माँग की गई, जिसे चौतरफा समर्थन मिला। लंदन में श्यामजी ने दादाभाई की माँग को आगे बढ़ाकर उन दिनों लंदन में रह रहे भारतीयों को जोड़ने का काम किया और उनकी कोशिश से नियमित बैठक इंडिया हाऊस में होने लगी। इन घटनाओं से लाला हरदयाल का मन व्यथित हो गया और उन्होंने अपनी छात्रवृत्ति को लेने से मना करते हुए अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी। यह बात श्यामजी को पता चली तो उन्होंने लाला हरदयाल की आर्थिक चिंता की और लाला हरदयाल 'सोशियोलाजिस्ट' के लिए लेखन का कार्य करने लगे। उन दिनों सेवानिवृत्त कर्जन वायली लंदन में थे। कर्जन वायली ने अपने एक कथन में कहा कि भारत के लोग मात्र शोरगुल ही कर सकते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। कर्जन की यह बात श्यामजी को काँटे की तरह चुभ गई। उसके बाद श्यामजी की लेखनी ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आग उगलने लगी। श्यामजी के उग्र लेखों ने ब्रिटिश शासकों को भयभीत कर दिया। श्यामजी की लेखनी पर कर्जन वायली भी चुभती हुई प्रतिक्रिया कर रहे थे। यद्यपि श्यामजी निर्भय थे, परंतु उन्होंने अपने पूर्वानुभव के आधार पर अंग्रेजों की कूटनीति को समझ लिया कि अंग्रेज सरकार उन्हें गिरफ्तार करने का मन बना चुकी है।

श्यामजी की यह आशंका व्यर्थ नहीं थी। जल्दी ही ब्रिटिश सरकार की तरफ से गुप्तचर इंडिया हाऊस के आस-पास घूमने लगे। इसकी भनक श्यामजी को लग चुकी थी। श्यामजी को यह चिंता थी कि यदि उन्हें ब्रिटिश सरकार गिरफ्तार कर लेगी तो इंडिया हाऊस से जनमा भारतीय स्वाधीनता का आंदोलन अपनी शैशवास्था में ही दम तोड़ देगा। श्यामजी अभी इस उधेड़बुन में थे कि भारत से एक नवयुवक ने लोकमान्य तिलक का एक अनुशंसा-पत्र लेकर इंडिया हाऊस के अंदर प्रवेश किया। उस नवयुवक का नाम था—विनायक दामोदर सावरकर। सावरकर शुरू से ही अंग्रेजों को उन्हीं की भाषा में प्रत्युत्तर देना चाहते थे, अत: विदेश जाकर बम इत्यादि हथियार बनाने की कला सीखना चाहते थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा से चर्चा कर सावरकर के इस सपने को पूरा करने में बाल गंगाधर तिलक ने अहम भूमिका निभाई। शिवाजी छात्रवृत्ति के माध्यम से ९ जून, १९०६ को सावरकर इंग्लैंड के लिए चले। लंदन में सावरकर 'इंडिया हाउस' में ही रुके। उसके बाद सावरकर के लेखन और इनके ओजस्वी भाषणों की चर्चा लंदन के बाहर अन्य देशों में भी फैलने लगी।

इसी बीच २० अक्तूबर, १९०६ को गांधीजी लंदन आए और इंडिया हाऊस में दो दिनों तक ठहरकर एक होटल में पाँच सप्ताह तक ठहरे। उस समय गांधीजी की भेंट श्यामजी और सावरकरजी से हुई। भारतीय स्वाधीनता को लेकर श्यामजी और सावरकरजी से गांधीजी के वैचारिक मतभेद थे। अंतत: सावरकर ने भारत में लोकमान्य तिलक को 'बम मैनुअल' भिजवाया, जिसे देखकर तिलक भावविह्वल हो गए। इसी बीच इंडिया हाऊस के माध्यम से लाला हरदयाल का संपर्क सावरकर से हो गया। सावरकर और लाला हरदयाल ब्रिटिश सरकार जड़ पर प्रहार करना चाहते थे। लाला हरदयाल भाई परमानंद को अपना गुरु मानते थे और उन दिनों लाला हरदयाल की विलक्षण प्रतिभा और उनकी ख्याति के कारण गोपालकृष्ण गोखले उन्हें अपने साथ जोड़ना चाहते थे, जिसे लाला हरदयाल ने श्रद्धापूर्वक साफ शब्दों में मना कर दिया था। इसी बीच रासबिहारी बोस भी १९०७ से ही क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़ चुके थे। बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रांत, दिल्ली और पंजाब में क्रांतिकारी प्रवृत्तियों को पैदा कर वे संगठन का अभियान चलाते रहे। सन् १९०७ भारतीय स्वाधीनता के प्रथम संग्राम के पचास वर्ष पूरे हो चुके थे और भारत के अंग्रेजभक्त भारत के अखबारों में 'धन्यवाद लेख' लिखकर अंग्रेजों के प्रति अपनी निष्ठा जाहिर कर रहे थे। लंदन के अखबार ब्रिटिश सरकार के गुणगान से भरे रहते थे। ९ मई, १९०७ को लाला लाजपत राय को स्वातंत्र्य-समर में भड़काऊ भाषण देने के आरोप में अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर लिया। यह खबर लंदन तक जा पहुँची। १८५७ के महासमर को

अंग्रेज 'गदर' व 'लूट' बताकर बदनाम करते आ रहे थे, उन्हें मुहँतोड़ जबाव देने के लिए श्यामजी ने सावरकरजी की सहायता से १० मई, १९०७ को लंदन में रह रहे भारतीयों का समागम कर एक भव्य कार्यक्रम का आयोजन कर भारत में अंग्रेजों की क्रूरता की पोल खोल दी। इस कार्यक्रम का वहाँ रह रहे भारतीयों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा, परिणामत: भारतीय देशभक्त नवयुवक कैंब्रिज और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों में १८५७ महासमर की स्वर्णजयंती के बिल्ले लगाकर पढ़ने गए। लंदन की गलियों में वंदेमातरम् गूँजने लगा। इतना ही नहीं, 'श्यामजी कृष्ण वर्मा के कहने पर सावरकर ने १९०७ में, '१८५७ का प्रथम स्वातंत्र्य-समर' ग्रंथ लिखना शुरू किया, जिसे प्रकाशित करवाने के लिए भारतीय देशभक्तों को नाकों चने चबाने पड़े और अंत में राजा महेंद्र प्रताप के सहयोगी शाह नामक एक गुजराती सज्जन की आर्थिक सहायता से १९०९ में यह ग्रंथ फ्रांस से प्रकाशित करवाने में सफलता मिली।

२ जून, १९०७ को भगतसिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह को भी अंग्रेजों ने बंदी बनाकर उन्हें निर्वासित कर मांडले जेल भेज दिया। ७ जून, १९०७ को श्यामजी लंदन में एक बड़ी सभा कर लाला लाजपत राय को नायक और ब्रिटिश सरकार को खलनायक बना दिया। इससे ब्रिटिश सरकार श्यामजी पर बुरी तरह उखड़ गई और उनको नैतिक-अनैतिक किसी भी तरीके से गिरफ्तार करना चाहती थी, परंतु उसके पास श्यामजी के खिलाफ कोई सबूत नहीं था। श्यामजी और इंडिया हाऊस से ब्रिटिश सरकार इतनी अधिक भयभीत थी कि इंडिया हाऊस से हो रहे सभी पत्राचारों को खोलकर अंग्रेज अधिकारियों द्वारा पढ़ा जाने लगा। उन दिनों अपनी चिकित्सा करवाने हेतु मैडम भीकाजी कामा भारत से इंग्लैंड आ चुकी थीं। श्यामजी द्वारा स्थापित इंडिया हाऊस के माध्यम से ही मैडम कामा का परिचय लाला हरदयाल, भाई परमानंद, एम.पी.टी. आचार्य और सावरकर जैसे महान् क्रांतिकारियों से हो चुका था। लंदन में बसने से पूर्व उन्होंने स्कॉटलैंड, जर्मनी और फ्रांस में एक-एक वर्ष का समय बिताया। उन दिनों वरिष्ठ नेता दादाभाई नौरोजी भी वहीं थे और मैडम कामा ने दादाभाई के निजी सचिव के रूप में काम भी किया। वे उनके साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में हाथ भी बँटा रही थीं। इटली के मेजिनी के विचारों का उन पर गहरा असर था। यद्यपि गांधीजी इंडिया हाऊस को 'हिंसक दल' मानते थे, परंतु उन लोगों की बौद्धिक क्षमता, सच्चाई और उनके आत्मत्याग की प्रशंसा भी करते थे।

२२ अगस्त, १९०७ को जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में दादाभाई नौरोजी के प्रतिनिधित्व में अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में मैडम कामा ने यूनियन जैक की जगह अपने बैग से एक छोटा सा तिरंगा ध्वज फहराकर अपना उद्‌बोधन दिया, जिसे सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोगों की तालियों की गड़गड़ाहट से सारा वातावरण गुंजायमान हो उठा। ३० अप्रैल, १९०८ को खुदीराम बोस ने अपनी देशभक्ति का परिचय देते हुए मुजफ्फरपुर में मुख्य प्रेसीडेंसी न्यायाधीश किंग्स फोर्ड पर बम फेंका, जिसकी चर्चा देश भर में होने लगी। इसके बाद अनेक स्थानों पर हो रहे बम-विस्फोटों ने अंग्रेजी-सरकार की चूलें हिला दीं। इसी बीच इंडिया हाऊस के एक नवयुवक और भारतीय भारतीय क्रांतिकारी मदनलाल ढींगरा, जिसे विदेशी धरती पर १७ अगस्त, १९०९ को लंदन में लॉर्ड कर्जन वायली की हत्या के आरोप में फाँसी पर लटकने का गौरव प्राप्त है, ने १ जुलाई, १९०९ को लंदन के इंपीरियल इंस्टीट्यूट में कर्जन वायली की गोली मारकर हत्या कर दी। लंदन के तत्कालीन अखबारों में प्रकाशित खबरों का यदि आज विश्लेषण किया जाए तो पाएँगे कि मदनलाल ढींगरा पर उन अखबारों ने बड़े पैमाने पर शोध-कार्य किया था। अखबारों का शोध-कार्य स्वाभाविक भी था, क्योंकि मदनलाल ढींगरा ने ब्रिटिश सरकार की नाक के नीचे भारत के बंगाल-विभाजन का दोषी लार्ड कर्जन वायली को भरी पार्टी के बीच में पिस्तौल की गोलियों से भून दिया था, जिसके कारण लंदन से लेकर भारत तक ब्रिटिश सरकार सन्न रह गई थी।

मुकदमे में बहुत सारे गवाहों की गवाहियाँ चलीं और अंत में अदालत द्वारा जब मदनलाल ढींगरा से अपने बचाव में कुछ कहने के लिए कहा गया तो मदनलाल ढींगरा ने पश्चात्ताप के बिना अदालत में कहा, 'मुझे अपने इस कार्य को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए कुछ कहना है। मैं कहना चाहता हूँ कि यदि कोई निष्ठुर शिकारी किसी सिंह शावक को धोखे से अपना दास बना ले तो क्या उसकी दासता उसकी स्वातंत्र्य-प्रवृत्ति को बदल देगी। क्या वह अपनी स्वतंत्रता के किसी भी प्रयास से पीछे हटेगा! नहीं, वह प्रयास में उस शिकारी को भी कच्चा चबा जाएगा। मैं पूछना चाहता हूँ कि जब १६८८ में ब्रिटेन पर जेम्स द्वितीय का अत्याचारी-निरंकुश शासक था, तब ब्रिटेन के लोगों ने क्या किया था! उसके विरुद्ध क्रांति न हुई थी! तब इन्हीं ब्रिटेन के लोगों ने हॉलैंड के राजा विलियम तृतीय को इंग्लैंड का राजा बनाने की अपील की थी। क्यों? स्वतंत्रता के लिए न? तब यदि यही कार्य भारतीय करे तो अपराध है। हाँ, मैंने एक अंग्रेज का रक्त बहाया है। मैंने अपने देश भारत में अत्याचारी ब्रिटिश शासन की अनीतियों का प्रतिकार किया है। यह प्रत्येक भारतीय का अधिकार और परम कर्तव्य है। हमें विवश किया है ब्रिटिश सरकार की शोषण नीतियों ने कि हम युद्धरत हों। हम युद्धरत हैं। मेरे इस कार्य में मेरा कोई सहयोगी या परामर्शदाता नहीं है। मैं स्वविवेक से इस युद्ध की विधा को, आकस्मिक आक्रमण को एक सबक के रूप में स्थापित करके मृत्यु का वरण करने को इच्छुक हूँ। जिस प्रकार १८५७ के अमर शहीदों ने मुझे प्रेरित किया, उसी प्रकार मेरी शहादत यदि किसी

एक भारतीय को भी प्रेरित कर सकी तो मेरा जन्म सार्थक हुआ। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि मुझे पुन: पुरुषपुष्प के रूप में भारतमाता के उपवन में जन्म दे तो मैं बार-बार अपने प्राण उस स्वातंत्र्य देवी को अर्पित करूँ।'

मदनलाल ढींगरा के इस बयान ने क्रांति की ज्वाला को और अधिक भड़का दिया। चूँकि उस समय तक लंदन में 'इंडिया हाऊस' की ख्याति बहुत अधिक फैल चुकी थी और ब्रिटिश सरकार को संभवत: यह भनक लग चुकी थी कि मदन लाल ढींगरा का 'इंडिया हाऊस' से संबंध थे और 'इंडिया हाऊस' के संस्थापक उन दिनों श्यामजी कृष्ण वर्मा पेरिस चले गए थे। अत: ब्रिटिश सरकार फ्रांस की सरकार से श्यामजी को अपने हवाले करने के लिए राजी करने में लगी हुई थी, पर वह सफल न हो सकी। श्यामजी ने मदनलाल ढींगरा की शहादत को व्यर्थ न जाने दिया; उन्होंने एक विस्तृत लेख लिखा, 'भारतमाता के वीर सपूत मदनलाल ढींगरा की राष्ट्र-भक्ति को हम सब भारतवासियों का नमन! उनके निर्भीक, सत्य और प्रामाणिक बयानों के लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाए, कम होगी। वे भारतमाता के सच्चे सपूत और परम देशभक्त थे। मैं यह स्वीकार करता हूँ। उन्होंने अदालत में जो निर्भीक बयान दिया, वह अद्‌भुत है। ब्रिटिश सरकार की तानाशाही नीतियों के खिलाफ यह एक साहस भरा बयान है।' कुछ अंग्रेज-भक्त भारतीयों ने इस घटना की सार्वजनिक निंदा की शोकसभा रखी तो सावरकर ने उन शोकसभाओं का पुरजोर विरोध कर अपने न केवल अदम्य साहस का परिचय दिया अपितु 'टाइम्स' में एक लेख लिखकर यह स्पष्ट कर दिया कि जब तक मदनलाल ढींगरा का केस अदालत में है, उसे अपराधी घोषित नहीं किया जा सकता। सावरकर ने भी अपने लेखों में मदनलाल ढींगरा को सच्चा देशभक्त और अमर शहीद स्वीकार करते हुए ब्रिटिश सरकार की उन मंशाओं पर पानी फेर दिया, जिनमें वे मदनलाल ढींगरा को अर्धविक्षिप्त और वहशी सिद्ध करने में जुटे थे।

शहीद भगत सिंह इससे भलीभाँति परिचित थे कि परिवार और समाज की क्रांतिकारियों के प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया होती है। वे ढींगरा के संबंध में लिखते हैं, 'वह न तो कोई नेता था, जिसकी आत्मकथा लिखी जाती और उसकी प्रतियाँ हाथोहाथ बिक जातीं, न ही वह कोई अवतारी पुरुष था, जिसके बारे में ज्योतिषी कसीदे काढ़ते और उसके बचपन की कहानियाँ गढ़ते कि कैसे वह सबसे अलग-थलग था, इसलिए हम उसके आरंभिक जीवन के बारे में अच्छी तरह नहीं जानते हैं।' मदनलाल ढींगरा की फाँसी के उपरांत मैडम कामा ने 'वंदेमातरम्' का प्रकाशन सितंबर १९०९ से आरंभ कर दिया। शुरू में वंदेमातरम् का मुद्रण जेनेवा से होता था। उन दिनों लाला हरदयाल भी पेरिस में ही थे, अत: मैडम कामा ने पत्र के संपादन का कार्य उन्हें सौंप दिया। कालांतर में बिपिनचंद्र पाल ने भारत में 'वंदेमातरम्' पत्र की स्थापना की, जिसे अरविंद घोष संपादित करते थे।

श्यामजी ने अंग्रेजों की चाल में फँसने से पहले ही सावरकरजी को इंडिया हाऊस की जिम्मेदारी सौंपकर सकुशल पेरिस चले गए थे। श्यामजी का अब नया पता १० एवेन्यू एंग्रेस, पासे (पेरिस) था। पेरिस में ही राणा का व्यवसाय था और भीकाजी कामा भी उन दिनों वहीं पेरिस में ही थी। अत: श्यामजी को किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं हुई। श्यामजी की प्रतिष्ठा के कारण वहाँ के अखबार श्यामजी के लेखों को प्रकाशित करने को आतुर रहते थे। पेरिस में श्यामजी ने इंडियन होमरूल सोसाइटी को प्रचार-प्रसार का विषय बनाया। विनायक दामोदर सावरकर द्वारा कर्जन वायली की हत्या का खुलकर समर्थन करने से वहाँ की पुलिस की नजरों की वे किरकिरी बने हुए थे। परिणामत: श्यामजी के बुलाने पर सावरकर पेरिस चले गए, पर उन्हें वहाँ यह चिंता बार-बार सताए जा रही थी कि लंदन में उनके साथी सुरक्षित नहीं होंगे। अंतत: सावरकर पेरिस से पुन: इंग्लैंड के लिए चले और इनके लंदन के रेलवे स्टेशन पहुँचते ही लंदन-पुलिस द्वारा इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और इनपर पाँच अभियोग लगाए गए। सावरकर की गिरफ्तारी की खबर से भारतीय-जनमानस पर रोष की लहर दौड़ गई। भारतीय देशभक्तों ने सावरकर के मुकदमों का खर्च उठाया और लंदन की अदालत ने यह निर्णय दिया कि चूँकि सावरकर पर भारत में भी कई मुकदमे हैं, अत: सावरकर को भारत ले जाकर वहीं मुकदमा चलाया जाए। 'मोरिया' नामक जहाज से इन्हें भारत लाया जा रहा था। श्यामजी की योजना अनुसार सावरकर रास्ते में ही अंग्रेज सिपाहियों की नजर में धूल झोंकते हुए जहाज से बीच समुद्र में ही कूद गए और तैरते हुए फ्रांस के तट पर जा पहुँचे, परंतु दुर्भाग्य से अंग्रेज सैनिकों ने सावरकर को पकड़ लिया और उन्हें वापस जहाज में लाया गया। इस घटना के प्रकाशित होते ही सावरकर के अदम्य साहस और उनके शौर्य की भारत में हर तरफ प्रशंसा होने लगी।

मैडम कामा ने लंदन में कर्जन वायली की हत्या के पश्चात् श्यामजी के निर्देशानुसार सावरकर के जेल में बंद होने के पश्चात् उन्हें छुड़ाने की असफल कोशिश की। इसी बीच मैडम भीकाजी कामा ने श्यामजी को यह जानकारी दी कि इंडियन पॉलिटिकल इंटेलीजेंस ऑफिस के बारे जानकारी देते हुए सूचित किया कि ब्रिटिश सरकार आपको गिरफ्तार करने के लिए तैयारी कर रही है। मैडम भीकाजी कामा की इस खबर की पुष्टि श्यामजी के एक वरिष्ठ राजनीतिक साथी ने की। अंतत: श्यामजी वहाँ के अधिकारियों को चकमा देकर जिनेवा पँहुच गए। इस प्रकार श्यामजी के इंडिया हाऊस से बाहर निकलकर स्वाधीनता का वह ज्वार भारतीयों के मन में अंग्रेजों के प्रति नफरत भर चुका था, जिसके कारण वे सभी भारतीय आंदोलित होने लगे। उन दिनों ब्रिटेन में रह रहे विलक्षण प्रतिभावाले लाला हरदयाल अपनी कलम के जादू के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे, अत: उनका लेखन पंजाबी, इंडियन रिव्यू और मॉडर्न रिव्यू में लगातार चलता रहा, जिससे अनेकों लोग प्रभावित होकर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़े थे। लाला हरदयाल ने सन् १९१० में 'हिंदू जाति पर अंग्रेजों की सामाजिक विजय' नामक एक पुस्तक लिखकर अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों की पोल खोल दी, जिसके कारण ब्रिटिश सरकार की बहुत बदनामी हुई। अत: ब्रिटिश सरकार ने प्रेस एक्ट के तहत इस पुस्तक को प्रतिबंधित कर दिया। लाला हरदयाल के पीछे हापकिंस नामक एक ब्रिटिश जासूस लगा दिया गया। एक रिपोर्ट में वह जासूस

लिखता है, 'लाला हरदयाल विद्यार्थियों के समक्ष जो भाषण देते हैं, उसमें उनका उद्देश्य उन विद्यार्थियों को पढ़ाना नहीं होता अपितु भारतीय क्रांति के बारे में बताकर उन विद्यार्थियों को जागरूक करना होता है।' सन् १९१० में मौलाना बरकत उल्ला ने भी पेरिस से एक साप्ताहिक अखबार शुरू किया, जिसका बाद में जर्मनी से प्रकाशन किया गया।

मार्च १९१३ में सेंट जान में रहनेवाले भारतीयों ने एक सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें भाई परमानंद और लाला हरदयाल भी शामिल हुए। वे लोग धन-संग्रह से कुछ क्रांतिकारियों का एक दल संगठित करना चाहते थे और संगठन के लिए एक प्रेस खोलने तथा समाचार-पत्र निकालने के पक्षधर थे। २५ जून, १९१३ को अमेरिका के सैन-फ्रांसिस्को के एस्टोरिया में भारत से अंग्रेजी साम्राज्य को जड़ से उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से अमेरिका और कनाडा में रहनेवाले भारतीयों (अध्यक्ष-सरदार सोहन सिंह, उपाध्यक्ष-केसर सिंह थथगढ, महामंत्री—लाला हरदयाल, संयुक्त सचिव—लाला ठाकुर दास धुरी, कोषाध्यक्ष—पंडित कांशी राम मदरोली) ने मिलकर 'गदर पार्टी' बनाई, जिसे प्रशांत तट का हिंदी संघ भी कहा जाता था। इस पार्टी के लोग आंदोलन के लिए पूर्णत: तैयार थे और आंदोलन को संचालित करने के लिए दो-मंजिला एक मकान लिया गया और इसे 'युगांतर आश्रम' के नाम से जाना गया। यहीं पर लाला हरदयाल रहने लगे और नवंबर १९१३ में गदर पार्टी ने 'हिंदुस्तान गदर' का प्रथम अंक प्रकाशित किया। गदर के प्रथम पृष्ठ पर ही लाला हरदयाल 'अंग्रेजी राज का कच्चा चिट्ठा' एक स्थायी प्रसंग-लेख लिखते थे। अल्पकाल में भारतीय क्रांतिकारियों के बीच गदर अखबार प्रसिद्ध हो गया। दूसरी तरफ रासबिहारी बोस ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ही २१ फरवरी, १९१४ को उत्तरी भारत की छावनियों में विद्रोह का शंख फूँककर १८५७ जैसी क्रांति करने की योजना बनाई थी, लेकिन उनकी वह योजना सफल नहीं हो पाई और १९१५ में उन्हें भारत छोड़ने पर विवश होना पड़ा। वर्ष १९१४ में गदर कार्यकर्ताओं के लिए हिंदी, ऊर्दू और पश्तो भाषा में एक घोषणा प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था, 'नवीन युग के नवीन आदर्श'। इस घोषणा में लिखा था, '१८५७ में जब मेरठ में गदर आरंभ किया गया, तब राष्ट्र को स्वतंत्रता का प्रथम दर्शन हुआ। अब यदि आपने कोई काम करना है तो ब्रिटिश राज के विरुद्ध करें, नहीं तो व्यर्थ में शोर न मचाएँ।' लाला हरदयाल आंदोलन की आत्मा थे, उसके केंद्र-बिंदु थे और उनके आह्वान पर हजारों भारतीय समर्पण के लिए उद्धृत हो गए। गदर अखबार में अंग्रेजों के खिलाफ उत्तेजक सामग्री प्रकाशित होती थी, जिसके कारण अंग्रेज असहज थे। गदर का प्रभाव निरंतर बढ़ता ही जा रहा था जिसके कारण ब्रिटिश सरकार भयभीत हो रही थी। लेकिन लाला हरदयाल अंग्रेजों की चाल समझ चुके थे और उन्होंने अपनी कूटनीति से अंग्रेजों की चाल को धराशायी कर दिया। वर्ष १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध की आग भड़क उठी थी। युगांतर आश्रम में लाला हरदयाल ने यह निर्णय लिया था कि गदर पार्टी के लोग जर्मनी का समर्थन करेंगे। इसके कारण अंग्रेज लाला हरदयाल पर बौखला गए और उनके खिलाफ जमानती वारंट निकाल दिया। २५ मार्च, १९१४ को लाला हरदयाल को गिरफ्तार करने अंग्रेज अधिकारी गए, परंतु जमानती वारंट होने के कारण ५०० पौंड की नगद राशि चुका गिरफ्तारी से बचा जा सकता था। अत: तुरंत पैसे की व्यवस्था कर लाला हरदयाल की जमानत लेकर उन्हें युगांतर आश्रम लाया गया।

२५ जून, १९१३ को अमेरिका के सैन-फ्रांसिस्को के एस्टोरिया में भारत से अंग्रेजी साम्राज्य को जड़ से उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से अमेरिका और कनाडा में रहनेवाले भारतीयों (अध्यक्ष-सरदार सोहन सिंह, उपाध्यक्ष-केसर सिंह थथगढ, महामंत्री—लाला हरदयाल, संयुक्त सचिव—लाला ठाकुर दास धुरी, कोषाध्यक्ष—पंडित कांशी राम मदरोली) ने मिलकर 'गदर पार्टी' बनाई, जिसे प्रशांत तट का हिंदी संघ भी कहा जाता था। इस पार्टी के लोग आंदोलन के लिए पूर्णतः तैयार थे और आंदोलन को संचालित करने के लिए दो-मंजिला एक मकान लिया गया और इसे 'युगांतर आश्रम' के नाम से जाना गया। यहीं पर लाला हरदयाल रहने लगे और नवंबर १९१३ में गदर पार्टी ने 'हिंदुस्तान गदर' का प्रथम अंक प्रकाशित किया।

कालांतर में लाला हरदयाल छोड़कर जेनेवा चले गए, उसके कुछ दिन बाद वे बर्लिन चले गए। उन दिनों बर्लिन में भारतीय क्रांतिकारी 'स्वतंत्रता समिति' चला रहे थे। लाला हरदयाल भी उनके साथ मिलकर कार्य करने लगे। परंतु जल्दी ही उनका मन उचाट हो गया और वे पुन: जेनेवा आ गए। वर्ष १९१५ में समिति के सदस्यों ने उन्हें मनाकर पुन: बर्लिन ले आए। अब लाला हरदयाल ने अपनी पहचान छुपाकर अपना नाम 'रामदास' रख लिया। इसी वर्ष भारत की स्वतंत्रता के लिए जर्मनी द्वारा किए जा रहे प्रयासों में लाला हरदयाल का मुख्य हाथ था। विश्व युद्ध में टर्की जर्मनी के साथ था, अत: लाला हरदयाल ने टर्की की भी यात्रा की। परंतु टर्की के पाशा का विचार इसलाम-समर्थक था, अत: लाला हरदयाल पुन: बर्लिन लौट आए। परंतु अपने लेखन से लाला हरदयाल बार-बार भारतीयों से यह अपील करते थे कि इंग्लैंड के विरुद्ध जर्मनी का समर्थन करे। वर्ष १९१५ में ही लाला हरदयाल ने अपने साथियों के संग मिलकर एक भारत में विद्रोह करने की योजना बनाई। इस योजना के अंतर्गत भारतीय क्रांतिकारियों को सर्वप्रथम बंगाल में अंग्रेजी शासन के खिलाफ विद्रोह करना था, उसके बाद कराची, पंजाब, मद्रास, बंबई और दिल्ली में विद्रोह फैलाना था। इस योजना में लाला हरदयाल के साथ जर्मनी था। योजना को मूर्तरूप देने के लिए हथियारों की व्यवस्था कर उन्हें जहाजों पर लादकर भारत भेज दिया गया। लेकिन उन जहाजों को ब्रिटिश सरकार द्वारा पकड़ लिया गया। इस प्रकार गदर की योजना विफल हो गई और वह विद्रोह होने से पहले ही कुचल दिया गया था, जिसकी कल्पना लाला हरदयाल ने की थी। इसी बीच राजा महेंद्र प्रताप सिंह ने २९ अक्तूबर, १९१५ को अफगानिस्तान में 'आजाद हिंद फौज' बनाई, जो कि मूलत: यह 'आजाद हिंद सरकार' की सेना थी, जो अंग्रेजों से लड़कर भारत को मुक्त कराने के लक्ष्य से ही बनाई गई थी। ध्यान देने योग्य है कि यह आजाद हिंद

फौज रासबिहारी बोस की आजाद हिंद फौज से भिन्न थी, परंतु दोनों के ही उद्देश्य समान थे। इन सबके बीच भारत कोकिला सरोजिनी नायडू के बहनोई ए.सी.एन. नांबियार ने जर्मनी में क्रांतिकारी गतिविधियों का केंद्र स्थापित किया। सन् १९१९ में नांबियार उच्च शिक्षा हेतु यूरोप गए और वहाँ चल रही क्रांतिकारी योजनाओं में शामिल हो गए। उसके बाद वे मास्को में कुछ समय तक रहे, तत्पश्चात् बर्लिन में जाकर इंफार्मेशन ब्यूरो की स्थापना की। वहीं से उन्होंने भारत के संबंध में प्रचार एवं आंदोलन का काम शुरू किया।

एडोल्फ हिटलर के सत्तारूढ़ होने पर सन् १९३४ तक यह केंद्र सक्रिय रहा। उसके बाद नांबियार को गिरफ्तार कर निर्वासित कर दिया गया। आस्ट्रिया के जर्मनी में मिलाए जाने के समय तक वे फ्रांस में रहे। उन्हीं दिनों शहीद भगत सिंह के चाचा अजीत सिंह भारत से निकलने के पश्चात् ब्राजील में रह रहे थे। सन् १९३८ के मध्य में वे फ्रांस आ गए थे। उन्हीं दिनों इंग्लैंड के राजा अपनी रानी के साथ फ्रांस का दौरा करने आए थे। ब्रिटिश स्कॉटलैंड यार्ड को आशंका हुई कि कहीं पेरिस में राजा के विरुद्ध कोई साजिश तो नहीं रची जा रही है। पेरिस में रहने वाले भारतीयों को तंग कर उनकी तलाशी भी ली जाने लगी। अंतत: सरदार अजीत सिंह को पेरिस छोड़ने के लिए विवश किया गया तो वे इटली जाकर रहने लगे। इटली सरकार ने उनका स्वागत कर उन्हें अपने यहाँ शरण दी। उनके ही सुझाव पर रोम रेडियो से हिंदुस्तानी कार्यक्रम शुरू किया गया और उन्हें उस कार्यक्रम का प्रभारी बनाया गया। युद्ध के दिनों उस रेडियो स्टेशन से वे प्रसारण भी करने लगे थे, जिसके कारण उनका नाम युद्ध के दिनों में प्रसिद्ध हो गया था। इसी रेडियो स्टेशन का नाम सरदार अजीत सिंह ने 'आजाद हिंदुस्तान रेडियो' रख दिया था। कामागाटामारू के बाबा लाभ सिंह भी सरदार अजीत सिंह के सहयोगी थे और उनके साथ ही इटली में रहते थे। इटली के विश्व युद्ध में कूदने से उसकी लपटें यूरोप से उत्तरी अफ्रीका तक फैल गईं और बाद में जर्मन सेना को भी इटालियन सेना की मदद के लिए वहाँ जाना पड़ा। जर्मन सेना के सामने मित्र सेना टिक नहीं सकी और उसके हजारों सैनिकों को आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसमें भारी तादाद में भारतीय सैनिक भी शामिल थे। सरदार अजीत सिंह, इकबाल शैदाई, बाबा लाभ सिंह तथा उनके साथियों ने युद्ध से पैदा हुई इस परिस्थिति का लाभ उठाने का निश्चय किया।

युद्धबंदी भारतीय सैनिकों के बीच प्रचार करने के लिए एक योजना बनाई गई और यूरोप में आजाद सरकार बनाने का निश्चय किया गया। इस तरह द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यूरोप में भारत की आजादी के आंदोलन का सूत्रपात हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सन् १९४२ में रासबिहारी बोस ने जापान की सहायता से टोकियो में भारत को अंग्रेजों के कब्जे से स्वतंत्र कराने के लिए आजाद हिंद फौज या इंडियन नेशनल आर्मी का संगठन किया। शुरुआत में इस फौज में उन भारतीय सैनिकों को लिया गया था, जो जापान द्वारा युद्धबंदी बना लिये गए थे। बाद में इसमें बर्मा और मलाया में स्थित भारतीय स्वयंसेवक भी भरती किए गए। एक वर्ष बाद सुभाष चंद्र बोस ने जापान पहुँचते ही जून १९४३ में टोकियो रेडियो से यह घोषणा की कि अंग्रेजों से यह आशा करना बिल्कुल व्यर्थ है कि वे स्वयं अपना साम्राज्य छोड़ देंगे। हमें भारत के भीतर व बाहर से स्वतंत्रता के लिए स्वयं संघर्ष करना होगा। इससे गद्गद होकर रासबिहारी बोस ने ४ जुलाई, १९४३ को ४६ वर्षीय सुभाष चंद्र बोस को आजाद हिंद फौज का नेतृत्व सौंप दिया। ५ जुलाई, १९४३ को सिंगापुर के टाउन हॉल के सामने 'सुप्रीम कमांडर' के रूप में सेना को संबोधित करते हुए सुभाष चंद्र बोस ने 'दिल्ली चलो!' का नारा दिया और जापानी सेना के साथ मिलकर ब्रिटिश व कॉमनवेल्थ सेना से बर्मा सहित इंफाल और कोहिमा में एक साथ जमकर मोर्चा लिया। तत्पश्चात् २१ अक्तूबर, १९४३ को सुभाष बोस ने आजाद हिंद फौज के सर्वोच्च सेनापति की हैसियत से स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार बनाई, जिसे जर्मनी, जापान, फिलीपींस, कोरिया, चीन, इटली, मांचुको और आयरलैंड ने मान्यता दी। इतना ही नहीं, जापान ने अंडमान व निकोबार द्वीप सुभाष चंद्र बोस की इस अस्थायी सरकार को दे दिया। सुभाष चंद्र बोस ने उन द्वीपों का नया नामकरण 'शहीद द्वीप' तथा निकोबार का 'स्वराज्य द्वीप' कर दिया और ३० दिसंबर, १९४३ को इन द्वीपों पर स्वतंत्र भारत का ध्वज भी फहरा दिया गया।

४ फरवरी, १९४४ को आजाद हिंद फौज ने अंग्रेजों पर दोबारा जोरदार आक्रमण किया और कोहिमा, पलेल आदि कुछ भारतीय प्रदेशों को अंग्रेजों से मुक्त करा लिया। ६ जुलाई, १९४४ को सुभाष चंद्र बोस ने रंगून रेडियो से महात्मा गांधीजी के नाम जारी एक प्रसारण में अपनी स्थिति स्पष्ट की और आजाद हिंद फौज द्वारा लड़ी जा रही इस निर्णायक लड़ाई की जीत के लिए उनकी शुभकामनाएँ माँगी। २१ मार्च, १९४४ को 'चलो दिल्ली' के नारे के साथ आजाद हिंद फौज का हिंदुस्तान की धरती पर आगमन हुआ। २२ सितंबर, १९४४ को शहीदी दिवस मनाते हुए सुभाष बोस ने अपने सैनिकों से मार्मिक शब्दों में कहा—''हमारी मातृभूमि स्वतंत्रता की खोज में है। तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा। यह स्वतंत्रता की देवी की माँग है।'' किंतु दुर्भाग्यवश युद्ध का पासा पलट गया और जर्मनी ने हार मान ली और जापान को भी घुटने टेकने पड़े। ऐसे में नेताजी को टोकियो की ओर पलायन करना पड़ा।

उपर्युक्त विवरण से हम कह सकते हैं कि भारत को स्वाधीन करवाने में विभिन्न क्रांतिकारियों ने अपने-अपने ढंग से आजीवन प्रयत्न किया और यह भी एक तथ्य है कि भारत को स्वतंत्रता दिलाने में अनगिनत क्रांतिकारियों ने अपने प्राणों की आहुति दी। परंतु यह देश का दुर्भाग्य है कि इतिहासकारों के पूर्वग्रह और उनकी भेदभावपूर्ण नीति के चलते इतिहास के पन्नों पर मात्र कुछ क्रांतिकारियों की स्वर्णिम गाथा लिखी गई, जबकि असंख्य गुमनाम क्रांतिकारी उनकी स्वर्णिम गाथा की चमक में कहीं खो गए और उन्हें इतिहास के पन्नों पर वह सम्मान नहीं मिला, जिसके वे हकदार थे।

एस-८४/३५९ कार्पूरी ठाकुर जनजीवन कैंप
श्रीनिवासपुरी, नई दिल्ली-११००६५
दूरभाष : ९८११५५८९२५

स्वतंत्रता संग्राम में हिमाचल का योगदान

● दयाशंकर शुक्ल 'सागर'

सन् १८५७ की महाक्रांति हो या फिर स्वतंत्रता प्राप्ति का १५ अगस्त, १९४७ तक का आंदोलन, देश के कई हिस्सों की तरह हिमाचल की भी स्वतंत्रता संग्राम में अहम भागीदारी रही। यह भागीदारी इसलिए भी रही, क्योंकि शिमला अंग्रेजों की ग्रीष्मकालीन राजधानी थी। सूबे में जहाँ कई तरह के संघर्ष का दौर चला रहा, वहीं शिमला, जतोग, धर्मशाला, रामपुर, बुशहर, कसौली, कुल्लू आदि कई क्षेत्रों में तो सशस्त्र क्रांतियाँ भी हुईं।

हिमाचल में अंग्रेज सरकार के विरोध और रियासती राज के खिलाफ दोहरा विद्रोह भड़कता रहा। अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह की पहली चिनगारी कसौली की सैनिक छावनी में भड़की थी। २० अप्रैल, १८५७ में अंबाला राइफल डिपो के छह देशी सैनिकों ने कसौली में एक पुलिस चौकी में आग लगाई थी। तब कसौली की सैनिक छावनी ब्रिटिश सरकार की सैन्य शक्ति का पहाड़ी क्षेत्रों का एक प्रमुख केंद्र थी। इस घटना के बाद ही भारतीय सैनिकों पर कड़ी निगरानी शुरू कर दी गई। इससे भारतीय सैनिकों और आम लोगों में विद्रोह भड़क उठा। कसौली, डगशाई, सपाटू और जतोग की छावनियों में भारतीय सेना तैनात होती थी। इससे सेना में विद्रोह की आग भड़क उठी। सभी सैनिक छावनियों, सार्वजनिक स्थानों, जनसभाओं और सरकारी कार्यालयों में ब्रिटिश शासन के खिलाफ विरोध मुखर हो गया। मई १८५७ में तो शिमला में भय और सन्नाटे का माहौल था। प्रदेश के कई हिस्सों का यही हाल था। इसके बाद नालागढ़ का विद्रोह, सिरमौर में विप्लव, काँगड़ा क्षेत्र में क्रांति, कुल्लू-लाहौल में बगावत, चंबा में उपद्रव, मंडी-सुकेत में उपद्रव जैसी कई घटनाएँ हुईं, जिससे हिमाचल में अंग्रेजी शासन के खिलाफ एक विद्रोह का माहौल बन गया।

सन् १८५९ में बुशहर रियासत के किसानों ने नकद भूमि लगान के विरोध में आंदोलन किया। १८६२ में सुकेत रियासत जनांदोलन हुआ। १८७६ में लॉर्ड लिटन वायसराय ने शिमला में वायसराय निवास बनाने को कहा। इसके बाद पहाड़ी शहर शिमला स्वतंत्रता संग्राम के बीच में ही अंग्रेजी शासन की धुरी बन गया। १८७८ में सुकेत रियासत में प्रजा ने राजा के खिलाफ बगावत की। १८८३ में बिलासपुर रियासत में झुग्गा सत्याग्रह हुआ। १८९५ में चंबा में किसान आंदोलन हुआ। इसके बाद स्वाधीनता आंदोलन की शुरुआत हिमाचल के प्रथम देशभक्त बाबा लछमन दास आर्य ने वर्ष १९०५ में की। सरदार भगत सिंह के चाचा अजीत सिंह से प्रेरित होकर लछमन दास ने पुलिस की नौकरी छोड़ दी। वर्तमान के ऊना जिले के निवासी लछमन दास इसके बाद लाला लाजपत राय और महात्मा हंसराज जैसे राष्ट्रीय नेताओं के संपर्क में आए। १९०६ में जब लाला लाजपत राय मंडी आए तो उन्होंने आर्य समाज की आड़ में यहाँ एक क्रांतिकारी संगठन की स्थापना की। इसके बाद हिमाचल के इन क्षेत्रों में क्रांतिकारी गतिविधियाँ भी बढ़ गईं। १९०८ में उन्हें ब्रिटिश सरकार विरोधी गतिविधियों में शामिल होने पर गिरफ्तार किया गया। १९१० में ऊना के देशभक्त बाबा लछमन दास लाहौर जेल से रिहा होकर ऊना आए। उन्होंने इसके बाद भी लोगों ममें जागृति लाने से इनकार नहीं किया।

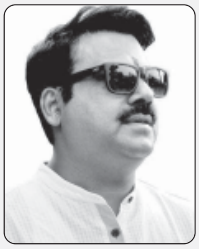

सुपरिचित लेखक एवं पत्रकार। देवनागरी में प्रकाशित उर्दू साप्ताहिक 'जदीद मरकज' से सहायक संपादक की नौकरी शुरू करने के बाद लखनऊ से प्रकाशित 'दैनिक जागरण' में पाँच वर्ष और फिर 'अमर उजाला' में दो वर्ष खबरनवीसी की। संप्रति (हिमाचल प्रदेश) अमर उजाला के संपादक।

बाद के वर्षों में मंडी के शिक्षक हरदेव राम ने नौकरी छोड़ी। वे अमेरिका से होते हुए जापान पहुँच गए। वहाँ से वे चीन के शंघाई गए, जहाँ पर उनकी मुलाकात गदर पार्टी के नेता डॉ. मथुरा दास से हुई। लाला हरदयाल की गदर पार्टी से प्रभावित होकर वे १९१४ में हरदेव सिंह एक क्रांतिकारी के रूप में भारत लौटे। उन्होंने यहाँ गदर पार्टी का प्रचार शुरू कर दिया। डॉ. मथुरा सिंह के साथ हरदेव राम ने कश्मीर, अमृतसर और बंबई में गदर पार्टी के संगठन बना लिये। हरदेव राम ने मंडी में भी गदर पार्टी की गतिविधियों को तेज किया। क्रांतिकारी हरदेव को मंडी में भाई हिरदाराम मिले, जो दिसंबर १९१४ में क्रांति का प्रशिक्षण लेने अमृतसर गए। भाई हिरदाराम बम बनाने की ट्रेनिंग ले चुके थे। भाई हिरदा राम ने जो बम बनाए, उनका प्रयोग करतार सिंह सराबा ने अनेक गुरिल्ला हमलों में किया। बाद में इनके बनाए गए बम लाहौर तक पहुँच गए। फरवरी १९१५ में भाई हिरदाराम के पास बम बरामद हुए और मंडी में हरदेव राम के घर में भी छापा पड़ा। हरदेव राम पुलिस की पकड़ से भाग निकले। भाई हिरदा राम को फाँसी की सजा हुई। बाद में उनकी पत्नी की अपील पर उनकी फाँसी की सजा आजीवन कारावास

में बदली गई। उन्हें कालापानी की सजा सुनाई गई।

काँगड़ा से १९१६ में बाबा कांशीराम स्वतंत्रता संग्राम में कूदे। लाहौर में शिक्षा ग्रहण करते हुए वे लाला हरदयाल और अजीत सिंह से प्रभावित होकर आंदोलन में कूद गए। यही बाबा कांशीराम बाद में 'पहाड़ी गांधी' के नाम से संबोधित किए गए। १९१९ में बाबा कांशी राम को दो साल कैद की सजा सुनाई गई। १९१७ में मंडी के क्रांतिकारी सिंधु खराड़ा को देशद्रोह के अपराध में सात साल की कैद हुई। वे मंडी और सुकेत में सक्रिय थे। १९१८ में हमीरपुर के नादौन के निवासी युवा यशपाल भी स्वतंत्रता संग्राम में शामिल हुए। वे मंडी के क्रांतिकारी बालमुंकुद के साथ लाहौर तक चले गए। १९२० में काँगड़ा में पंचम चंद्र कटोच, सर्वमित्र, बाशीराम, कृपाल सिंह, सिद्धू राम, थोहलो राम जैसे क्रांतिकारी आजादी के आंदोलन में सक्रिय हुए। १६ जुलाई, १९३९ को धामी गोलीकांड हुआ। भागमल सौहटा के नेतृत्व में जब क्रांतिकारियों का एक बहुत बड़ा दल हलोग पहुँचा तो स्थानीय शासक राणा के सेवकों और पुलिस ने उन पर पत्थर बरसाए और गोलियाँ चलाईं। इसमें से दो दुर्गादास और उमादत्त मौके पर ही शहीद हो गए। रियासती सरकार से घबराकर लगभग २०० धामीवासी उस समय शिमला भागे।

नवंबर १९४० में कांगड़ा क्षेत्र में व्यक्तिगत सत्याग्रह के संचालन के लिए एक समिति बनाई गई। इस समिति में ठाकुर हजारा सिंह, पंडित परसराम और ब्रह्मानंद को सत्याग्रह का प्रभारी बनाया गया। उन्होंने काँगड़ा जिले के नगरपालिका वसीर मैदान में विशाल जनसभा के सामने गिरफ्तारी दी। सितंबर १९४३ में पझौता किसान आंदोलन के ६९ क्रांतिकारी गिरफ्तार किए गए। इन पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया गया। ५२ आंदोलनकारियों को तो आजीवन कारावास और कालापानी की सजा सुनाई गई। १९४३ में हिमाचल के कई क्षेत्रों में अंग्रेजों भारत छोड़ो आंदोलन का जोरदार प्रचार किया। इसी तरह से यह सिलसिला आजादी मिलने तक जारी रहा। एक के बाद एक क्रांतिकारियों ने अपने जीवन को देश के लिए समर्पित किया।

हाल ही में प्रदेश के राज्य भाषा एवं संस्कृति विभाग ने २३१० स्वतंत्रता सेनानियों की जानकारी एकत्र की है। इसे एक पुस्तक 'हिमाचल प्रदेश के स्वतंत्रता सेनानी' में प्रकाशित किया है। इसमें १७३२ से अधिक छायाचित्रों के साथ उनके विवरण छापे गए हैं।

सावित्री सदन, एम.४/५३, विनय खंड, गोमतीनगर,
लखनऊ-२२६०१० (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९४१५००२२९९

छैलबिहारी

● श्रीकृष्ण सरल

विश्वंभरदयाल के साथ छैलबिहारी भी भारती भवन, उज्जैन में पं. सूर्यनारायण व्यास के साथ ठहरा हुआ था। इन दोनों क्रांतिकारियों की भरती कुंदनलाल गुप्त ने राजस्थान से की थी और दोनों ही चंद्रशेखर आजाद के भरोसे के आदमी सिद्ध हुए। इसीलिए आजाद ने उन्हें हथियार खरीदने के लिए उज्जैन होते हुए अजमेर भेजना चाहा था।

जब पुलिस विश्वंभरदयाल को पकड़ने में सफल हो गई तो उसने छैलबिहारी को गिरफ्तार करने के लिए भारती भवन को घेर लिया। पुलिस को आया हुआ जान पं. सूर्यनारायण व्यास ने धोती का एक टुकड़ा छैलबिहारी को दिया और कहा कि तुम अपने सारे कपड़े उतारकर अलमारी में रख दो तथा पंडितों की तरह यह पंचा लपेटकर, एक लँगोट कसकर कमर में खोंस लो। छैलबिहारी ने ऐसा ही किया। पं. सूर्यनारायण व्यास ने उसे जल से भरा हुआ एक लोटा दे दिया और एक थाल में पूजन की सामग्री दे दी। उसके माथे पर तिलक भी लगा दिया गया। अब छैलबिहारी पूरे पंडा दिखने लगे। पं. सूर्यनारायण व्यास के निवास भारती भवन से एक जीना सीधे महाकाल के मंदिर में जाता था। उस जीने से उतरने के लिए उसे कहा गया। इधर पुलिस दरवाजा पीट रही थी और धमकी दे रही थी यदि दरवाजा नहीं खोला गया तो तोड़ दिया जाएगा। पं. सूर्यनारायण व्यास ने दरवाजा खोल दिया। उस समय तक छैलबिहारी पंडे के रूप में महाकाल मंदिर में पहुँच चुका था। पुलिस ने भारती भवन को छान मारा, लेकिन छैलबिहारी का कहीं पता नहीं चला। पुलिस महाकाल मंदिर में भी गई; लेकिन वह कुरता-पायजामाधारी क्रांतिकारी को खोजती रही। पंडे के रूप में छैलबिहारी को वह नहीं पहचान सकी। छैलबिहारी उज्जैन छोड़कर अजमेर जा पहुँचा।

इसके पहले छैलबिहारी कई महत्त्वपूर्ण अभियानों में चंद्रशेखर आजाद का साथ दे चुका था। जब भगतसिंह को जेल से छुड़ाने के लिए चुने हुए क्रांतिकारी लाहौर की बहावलपुर कोठी में एकत्र हुए थे तो उस कोठी में छैलबिहारी को नौकर की भूमिका दी गई थी। उस अभियान के पहले ही रावी के किनारे बम विस्फोट के कारण साथी भगवतीचरण बोहरा शहीद हो गए और एक रात कोठी में रखे दो बम अपने आप फट गए। इन दुर्घटनाओं के कारण भगतसिंह को जेल से छुड़ाने का अभियान स्थगित कर दिया गया और छैलबिहारी को दुर्गा भाभी एवं सुशीला दीदी के साथ दिल्ली भेज दिया गया।

छैलबिहारी की विशेषता यह थी कि वह हर भूमिका को बखूबी निभा सकता था।

कोल्हू का बैल

● विनायक दामोदर सावरकर

मैंने लगभग एक महीना छिलका कूटने का काम किया। सभी लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि मुझे कोल्हू कैसे नहीं दिया गया। इसपर कुछ आशावादियों ने कहा, ''नहीं जी, बैरिस्टर बाबू को किस मुँह से कोल्हू का काम देंगे?'' मैं उनसे कहता, ''उसी मुँह से जिससे बैरिस्टर बाबू को काले पानी भेजकर, लँगोटी पहनाकर छिलका कुटवाया।'' आखिर एक दिन सुपरिंटेंडेंट ने आकर मुझसे कहा, ''कल से आपको कोल्हू पर जाना है। छिलका[१] कूट-कूटकर अब आपके हाथ कठोर बन गए होंगे। अब और अधिक कठोर काम करने में कोई आपत्ति नहीं होगी।'' बारी साहब ने हँसते हुए कहा, ''अब आप ऊपरी कक्षा में प्रवेश कर रहे हैं।'' उस दिन शाम के समय बारी साहब ने मुझे कचहरी में बुलाया। मुझसे हुए संभाषण से उन्हें ज्ञात हो चुका था कि राजबंदियों की हड़ताल से मेरी सहानुभूति थी और उस हड़ताल और निर्भीक आचरण की उद्दंड, अशिष्ट तथा मूर्खता के प्रतीक-रूप में निंदा करते उन राजबंदियों के मुख मेरी नीति के समर्थन से शांत हो गए थे। कुल मिलाकर ये वार्त्ताएँ बारी तक गुप्त रूप में नित्य पहुँच रही थीं, उससे यही संभावना दिख रही थी कि शीघ्र ही मैं उन 'अशिष्ट बर्बरों' का शिरोमणि बननेवाला हूँ। इसकी टोह लेने के लिए कि कहीं मैं कोल्हू पेरने के लिए मना तो नहीं कर रहा और ऐसा करने से परावृत्त करने के लिए बारी ने मुझे बुलावा भेजा था। बहुत देर तक गपशप लड़ाने के बाद अंत में उन्होंने कहा, ''मैं क्या करूँ? ऊपर से मिले आदेश का मुझे पालन तो करना ही चाहिए। लिखित ऑर्डर आया है कि आपको कोल्हू ही दिया जाए। फिर भी मैंने इतना किया कि आपकी योग्यता के बारे में बताकर आपको सुपरिंटेंडेंट द्वारा केवल चौदह दिन ही कोल्हू का काम दिलवाया। अन्य बंदियों जैसा बार-बार नहीं दिलवाऊँगा। हाँ, आप मना मत कीजिए। जाइए, खड़े हो जाइए। मैं यथासंभव आपकी सहायता करूँगा। परंतु दंड मत भुगतिएगा।'' मैंने कहा, ''पहले ही हमारा जीवन मटियामेट हो चुका है। फिर बिना किसी कारण और अत्याचार सहने का हमें शौक थोड़े ही चढ़ा है? मैं सदैव यथासंभव काम करता ही रहूँगा।'' बारी ने जैसे दयाभाव से कहा, ''देखो भाई, मैं आपके लिए कहता हूँ। पचास बरस का दंड जो है। मेरा तो दिल फट जाता है। इसीलिए तो कहता हूँ, अन्यों का चाहे जो हो,

आप सबसे अलग ही रहना।'' मेरा मनोधैर्य भंग करने के लिए बारी जैसे-जैसे पचास बरस के दंड का बार-बार स्मरण दिलाता गया, वैसे ही उसकी नीति का विपरीत परिणाम होता गया और उन शब्दों के अर्थ से मैं इतना परिचित हो गया, जैसे तोपखाने के फौजी तोपखाने की आवाज से परिचित हो जाते हैं। उसके गर्जन से काँपना ही बंद हो गया। दूसरे दिन प्रात:काल से ही मुझे कोल्हू के काम पर लगा दिया गया।[१]

तेलघानी में

मैं जिस सात नंबर में रहता था, वहाँ से उस कोल्हू का काम छठवें भाग में था। अत: मुझे प्रात:काल ही उधर ले जाया गया। उस विभाग को बदलने से मुझे बड़ा आनंद हुआ, क्योंकि वे राजबंदी, जो उधर रहते थे, अब मुझे दिखाई देने लगे और कभी-कभी मुझसे बात भी करने लगे। काम पर जाते ही देखा, बर्मा देश के एक राजबंदी को भी मेरे कोल्हू में ही जोता गया था। मुझे कहा गया कि यह आपकी सहायता करेगा, परंतु आपको लगातार कोल्हू घुमाते रहना होगा। तनिक भी बैठना नहीं चाहिए। अन्य राजबंदियों की तुलना में मुझे यह सुविधा मिली थी, तथापि वह कोल्हू के काम की सुविधा थी। सुविधा घटाकर भी शेष जो कष्ट बचा वह उसे, जिसे किसी भी तरह कष्टों का अभ्यास नहीं, सीधा करने के लिए पर्याप्त था। लँगोटी पहनकर प्रात: दस बजे तक काम करो, बिना रुके गोल-गोल घूमने से सिर चकराता था। अंग-प्रत्यंग ढीले पड़ जाते थे, शरीर इतना थक जाता कि रात में तख्ते पर लेटते ही नींद आने के बदले करवट बदलते हुए रात काटनी पड़ती थी। दूसरे दिन प्रात:काल पुन: कोल्हू के सामने जा पहुँचता। इस तरह छह-सात दिन गुजारे। तब तक काम पूरा कहाँ होता था? एक दिन बारी आया और इठलाते हुए कहने लगा, ''यह देखिए, आपके पासवाली कोठरी का बंदी दो बजे पूरा तीस पौंड तेल तौलकर देता है और आप शाम तक कोल्हू चलाकर भी पौंड-दो पौंड ही निकालते हैं, इसपर आपको शर्म आनी चाहिए।'' मैं बोला, ''शर्म तो तब आती जब मैं भी बचपन से ही उसके समान कुलीगिरी करने का आदी होता। यदि आप उसे एक घंटे के अंदर एक सुनीत (सॉनेट) रचने के लिए कहें तो क्या वह रच सकेगा? मैं आपको आधे घंटे के अंदर रचना करके दिखाता हूँ। परंतु इसलिए आप यदि उस श्रमिक को ताना मारें कि 'अरे, तुम सॉनेट की

रचना शीघ्रतापूर्वक नहीं कर सके, इसके लिए तुम्हें लाज आनी चाहिए' तब क्या कहेगा वह, 'बचपन से कविता करना मुझे किसीने सिखाया नहीं।' अपने कार्यालय में आप अर्ध शिक्षित किसानादि चोर-डाकुओं को लिखने का काम देते हैं। उन्हें जैसे हमारे सरीखे त्वरित अंग्रेजी नहीं बोल पाने पर लज्जा आने का कोई कारण नहीं, उसी तरह हम उनके जैसा शारीरिक श्रम झेलने में एकदम असमर्थ हैं और इस कारण हमारा लज्जित होना अनावश्यक है। उसे भी लज्जित नहीं होना चाहिए जो सॉनेट की रचना नहीं कर सकता। वास्तव में लज्जित उन्हें होना चाहिए जो बुद्धिजीवी वर्ग को कोल्हू में जोतते हैं, श्रमजीवी अनपढ़ों को क्लर्क की जगहों पर रखते हैं और अपने दोनों काम बिगाड़ते हैं।''

उदार मित्रों का सहयोग

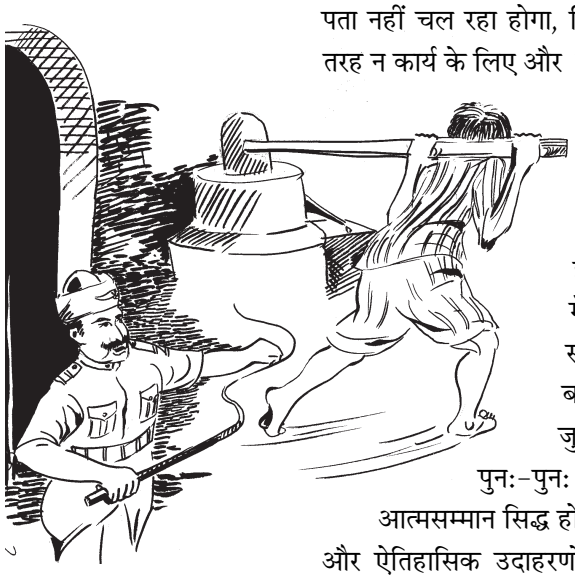

कोल्हू पेरते समय राजबंदियों में से एक-दो बंदी, जो उधर गुप्त रूप से आ सकते थे, आकर मेरी सहायता करते। इतना ही नहीं, मेरे अंत तक 'ना-नु' करने के बाद भी और उनके दु:ख, कष्ट, मुझसे अधिक होते हुए भी राजबंदियों में से कई जन मुझे अपने कपड़े भी नहीं धोने देते, न ही अपना थाल-कटोरा माँजने देते। मेरे कपड़े धोने तथा बरतन माँजने के संबंध में कई बार पेटी अफसर तथा वॉर्डर लोग उनसे धक्का-मुक्की करते, गालियाँ देते; परंतु इस तरह के कष्ट झेलकर भी ये उदार तथा स्नेही लोग मेरे काम करते रहते। उनको रोकने का मैंने बहुत प्रयास किया। कभी-कभी उनके कपड़े गुपचुप धो डाले। जब उन्हें पता चला तब उनके मन को भारी ठेस पहुँची। इतनी कि वे हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए मुझसे प्रार्थना करने लगे। जब मैंने इस बात का अनुभव किया कि यदि मैंने उनकी सहायता अस्वीकार की तो सहायता देने में जितना कष्ट होता, उससे कहीं अधिक उन्हें मन:क्लेश होगा। तब मैंने निश्चय किया कि इन उदार एवं निरपेक्ष मित्रों को अपना काम करने दिया जाए। साधारणत: प्राय: सभी राजबंदियों की मुझपर इसी तरह निश्छल भक्ति और प्रगाढ़ स्नेह है, इसका अनुभव मैंने कर लिया। कभी-कभी तो उनमें मेरे कपड़े धोने तथा मेरी सेवा करने के लिए होड़ लगती और मनमुटाव भी हो जाता। तब मुझे बारी-बारी से अलग-अलग मित्रों को अपने कपड़े धोने के लिए देने पड़ते। उन लोगों की इस महानता तथा स्नेह के लिए मैं आज भी उनका कृतज्ञ हूँ। इसी प्रसंग में उन साधारण बंदियों ने भी, जो राजबंदी नहीं थे, हमें बिन माँगा जो सहयोग आखिरी दम तक दिया और हमारे शब्दों को सर-आँखों पर रखते गए, उन्हें भी सार्वजनिक धन्यवाद देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। मनोरंजक होते हुए भी विस्तार भय से यहाँ उन अनेक प्रसंगों का वर्णन करना असंभव है। केवल एक बार और संगठित रूप से उनके प्रति कृतज्ञता ही प्रदर्शित की जा सकती है।

मानसिक विद्रोह

किसीसे चर्चा करनी नहीं, किसीको कुछ कहना नहीं, परंतु कोल्हू चलाते-चलाते पसीने से नहाए शरीर पर उड़ रही वह बुकनी (पीसकर निचोड़ा हुआ भूसा) और सारा कचरा चिपका हुआ गँदला नंग-धड़ंग शरीर देखकर मन बार-बार विद्रोह कर उठता। अपने आपसे घिन आती। अरे, इस तरह का दु:ख झेल क्यों रहे हो? तुम्हारी इस देह तथा कर्तृत्व का राष्ट्रों के उदयार्थ उपयोग होना चाहिए। वह अब माटीमोल हो गया है। फिर इस अँधेरे में ही इतने सारे कष्ट सहते क्यों सड़ रहे हो? इसका तुम्हारे कार्य के लिए, तुम्हारी मातृभूमि के उद्धारार्थ कौड़ी भर उपयोग नहीं है। उधर तुमपर हो रहे अत्याचारों के संबंध में एक अक्षर का भी पता नहीं चल रहा होगा, फिर नैतिक परिणाम तो दूर की बात है। इस तरह न कार्य के लिए और न ही तुम अपने लिए उपयुक्त हो। इतना ही नहीं, वह कष्टप्रद भी हो रहा है। ऐसा जीवन तुम व्यर्थ ही क्यों धारण कर रहे हो।[१] बस जो उपयोग होना था, सो हो चुका। अब चलो उठो, रस्सी के एक ही झटके से कर डालो इस जीवन का अंत! तुम्हारी कर्तृत्व शक्ति के मेरुदंड का निर्माण इसलिए हुआ था कि उसका समुद्रमंथनार्थ उपयोग हो, उसे इस य:कश्चित् बटलोई के चुल्लू भर छाछ मथने के काम में जुटाकर उसका अनादर क्यों कर रहे हो? चित्त पुन:-पुन: कहता, 'अब जीना व्यर्थ, अब आत्मघात ही आत्मसम्मान सिद्ध होगा।' नोवालिस आदि कई नीति विशारदों का और ऐतिहासिक उदाहरणों का स्मरण होने लगा, जिन्होंने प्रसंगवश आत्मघात को आत्मकर्तव्य सिद्ध किया था।

एक दिन दोपहर की चिलचिलाती धूप में कोल्हू चलाते समय मैं हाँफने लगा; ऐसा लगा, चक्कर आ रहा है। मैं धम्म से नीचे बैठ गया। अत्यधिक श्रम के कारण अँतड़ियाँ ऐंठने लगीं। पेट पकड़कर दीवार से सिर टिकाया, आँखें मूँद लीं और तभी उसी जगह गहरी नींद आ गई। इतनी गहरी कि जब चौंककर आँख खुली तब दिशा-विदिशा, स्थल-काल किसीका भी चार-पाँच मिनट तक भान नहीं हो रहा था। इस तरह शांत, शून्य, निर्विकार, सुखद अवस्था में ऐसे रह गया जैसे मेरा अस्तित्व ही नहीं रहा। थोड़ी देर बाद मेरी चेतना लौट आई। एक-एक वस्तु दिखाई देने लगी, उसके अर्थ का आकलन होने लगा। अत: पुन: काम में जुट गया। परंतु मन सतत एकतारा छेड़ने लगा, यह अंतिम कार्य संपन्न क्यों नहीं होने देता? थोड़ी देर पहले जो शून्यवत् हो गया था, वही मृत्यु है। रस्सी के एक टुकड़े से, जिसके सहारे रातों में सैकड़ों बंदी पोर्ट ब्लेअर में मृत्यु को पार करके गए, उस डोर का गले में फंदा डालो और कर डालो इस यंत्रणा का अंत।

(प्रभात प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित (मेरा आजीवन कारावास, भाग-२ से साभार)

स्वाधीनता आंदोलन में हरियाणा का योगदान

● रामेंद्र सिंह

हमारे राष्ट्र के स्वाधीनता आंदोलन में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम-१८५७ की निर्णायक भूमिका रही है, जिससे भारतवासियों के मन में देश को आजाद कराने की भावना को एक नई स्फूर्ति एवं उत्साह मिला था। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में हरियाणा के लोगों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया तथा देश से विदेशियों को खदेड़ने में अनुपम वीरता एवं शौर्य का परिचय दिया था। इस आंदोलन के दौरान हरियाणा के अनेक स्वतंत्रता-सेनानियों और देशभक्तों ने जेलों में विदेशियों के हाथों कष्ट सहे, गोलियाँ खाईं और उनमें से अनेक ने हँसते-हँसते अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में अपना राज स्थापित किया। समय-समय पर यहाँ अंग्रेजी शासकों ने अपने राज्य के विस्तार के लिए अनेक हथकंडे अपनाए। सन् १८५७ में लॉर्ड डलहौजी के काल में भारत की प्रथम स्वतंत्रता की लड़ाई हुई, जिसमें हरियाणा के रणबाँकुरों का विशेष योगदान रहा। १८५७ की इस क्रांति का आरंभ एक सैनिक विद्रोह के रूप में हुआ, परंतु आगे चलकर यह स्वतंत्रता संग्राम के रूप में परिवर्तित हो गया। बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह, झज्जर तथा बहादुरगढ़ के नवाब तथा रिवाड़ी के राजा राव तुलाराम ने इस संग्राम में भाग लिया और अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। नाहर सिंह को उनके साथियों सहित दिल्ली में फाँसी दे दी गई थी। इनकी बगावत का यह परिणाम हुआ कि १८५८ के बाद झज्जर, बहादुरगढ़, रेवाड़ी को जींद, नाभा, पटियाला रियासतों के साथ मिला दिया गया। तब से हरियाणा पंजाब का एक हिस्सा बन गया। १ नवंबर, १९६६ को जब राज्यों का पुनर्गठन हुआ, तब हरियाणा पंजाब से अलग होकर एक अलग राज्य बन गया। हरियाणा को सदैव इस बात पर गर्व रहा है कि यहाँ प्राचीनकाल से ही शौर्य, राष्ट्रप्रेम, बलिदान व देश पर मर-मिटने की परंपरा रही है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान और उसके बाद भी एकता एवं अखंडता के लिए यहाँ के लोगों ने महान् बलिदान दिए हैं।

दौलत राव सिंधिया व ईस्ट-इंडिया कंपनी के बीच ३० दिसंबर, १८०३ को सिरजीअंजन गाँव की संधि हुई, जिसके अनुसार मराठों के अधिकार वाले क्षेत्र, यमुना के उत्तर-पश्चिमी हरियाणा प्रदेश (करनाल, रोहतक, झज्जर, रेवाड़ी, फिरोजपुर-झिरका, तावडू, पटौदी, बावल, पलवल, कैथल, फतेहाबाद, लड़सौली, सोहना, हथीन, सोनीपत, गोहाना, पानीपत, मुरथल, बेरी, बादली, लोहारी और पाटोदा) पर अंग्रेज़ों का

सुपरिचित लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। अनेक संस्थाओं के सदस्य, संरक्षक, निदेशक। कई संस्थाओं द्वारा सम्मानित। विभिन्न विषयों पर अभी तक ५७ विचार-गोष्ठियों में संयोजक का दायित्व।

अधिकार हो गया। डेविड आक्टरलोनी को इस प्रदेश का रेजीडेंट नियुक्त किया गया। १८०३ में ही अंग्रेज जनरल लार्ड लेक ने भरतपुर रियासत के हरियाणा के इलाके पर हमला किया और इस इलाके को १८०५ तक अपने कब्जे में कर लिया। भरतपुर व मराठों से लिए इलाके को १० रियासतों में बाँट दिया। ये रियासतें जागीर के रूप में उन लोगों को दी गईं, जिन्होंने १८०३ से १८०५ तक भरतपुर रियासत के विरुद्ध युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की थी। ये रियासतें बल्लभगढ़, बहादुरगढ़ (दादरी), फरूखनगर, फिरोजपुर-झिरका, पटौदी, दुजाना, लोहारू, रानियाँ व झज्जर थी। १८५७ की क्रांति वास्तव में भारत के हिंदू और मुसलमान नरेशों व नवाबों और भारतीय जनता, दोनों की ओर से देश को विदेशियों की राजनैतिक अधीनता से मुक्त कराने की एक जबरदस्त कोशिश थी। १८५७ की क्रांति की नींव १७५७ के मैदान में रखी गई थी। प्लासी के समय से ही भारतवासियों के दिलों में अंग्रेजों और उनके शासन के विरुद्ध क्रोध और असंतोष का भाव बढ़ता जा रहा था। क्लाईव के समय से लेकर डलहौजी के समय तक जिस तरह कंपनी के प्रतिनिधियों ने अपने वादों और हस्ताक्षरित संधियों की परवाह न कर भारत के अनगिनत राजकुलों को पददलित किया और उनकी रियासतों को एक-एक करके अंग्रेजी राज्य में शामिल किया, देश के प्राचीन उद्योग-धंधों को नष्ट करके लाखों भारतवासियों को बेरोजगार किया, बेगमों और रानियों के महलों में घुसकर उन्हें लूटा और उनका अपमान किया, जमीदारों की जमींदारी जब्त करके हजारों घरानों को खत्म किया, लाखों भारतीय किसानों को उनकी पैतृक जमीनों से बेदखल कर दिया।

१६ मई, १८५७ तक दिल्ली में फिरंगियों का पूरी तरह सफाया कर देने का अभियान चलता रहा। क्रांतिकारी सैनिकों ने पचास गोरे बंदियों को खुले मैदान में लाकर हजारों दिल्ली निवासियों के सामने गोली से उड़ा दिया। जिस भी इमारत, स्थान या वस्तु से अंग्रेजी नाम चिपका हुआ था, उसे भी नष्ट कर दिया गया। बहुत से अंग्रेज दिल्ली से

देहात में भाग गए। वहाँ पर भी बच न सके। १६ मई, १८५७ को दिल्ली फिरंगी शासन से मुक्त हो गई। दोबारा लाल किले पर हरा झंडा फहरा दिया गया और इसी के साथ दिल्ली के आसपास और दूसरे प्रांतों में भी फिरंगियों के विरुद्ध बगावत फैल गई।

राजधानी दिल्ली पर विजय की उपलब्धि प्राप्त करने में हरियाणा का योगदान सर्वप्रथम रहा। कमांडर-इन-चीफ के वीर मुंशी रजब अली खान द्वारा एक सूची तैयार की गई, जिसमें यह दरशाया गया था कि किस स्थान से कितनी भारतीय सैनिक टुकड़ियों ने बगावत की और दिल्ली पहुँचीं। ११ मई, १८५७ को मेरठ से तीसरी रेग्यूलर कैवेलरी के ३०० जवान और ११वीं व १२वीं नेटिव इंफेक्ट्री के २०० जवान, दिल्ली से ३८वीं, ५४वीं और ७वीं इंफेक्ट्री के ३०० जवान ६ तोपों और हार्स लाईट फील्ड बैटरी के साथ और मथुरा से ५ जून, १८५७ को चौथी इरेगुलर कैवेलरी के २०० जवान एवं ४४वीं और ६७वीं नेटिव इंफेक्ट्री के १०० जवान दिल्ली पहुँचे। बड़े गर्व व सम्मान के साथ कहा जा सकता है कि १४ जून, १८५७ को चौथी इरेगुलर कैवेलरी हाँसी के ४०० घुड़सवार, हरियाणा बटालियन के देशभक्त सैनिक, ३०० सैनिक झज्जर से, २०० सैनिक दादरी से और १०० घुड़सवार व सैनिक बल्लभगढ़ से अंग्रेजी सत्ता को जड़ से उखाड़ने के लिए दिल्ली पहुँचे। हरियाणा के लोगों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। विभिन्न जातियों और वर्गों के लोग इसमें सक्रिय रहे। वे निर्दय शासन के विरुद्ध एकत्र हुए। १० मई, १८५७ को ६०वीं और ५वीं रेजीमेंटों ने अंबाला में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजा दिया। विद्रोही सिपाहियों ने रेजीमेंट के स्टोर में रखे हथियारों पर कब्जा कर लिया और यूरोपियन अफसरों को गिरफ्तार कर लिया। सिपाहियों की तरह साधारण नागरिक चाहे वह किसी भी जाति, वर्ग या व्यवसाय में थे, अंग्रेजों के विरुद्ध खड़े हो गए और देखते-ही-देखते यह विद्रोह आंदोलन में परिवर्तित हो गया। लगभग चार माह तक दिल्ली पर बहादुरशाह जफर का अधिकार रहा और इसके बाद देशी राजाओं पटियाला, जींद, नाभा की सैनिक सहायता व अंग्रेजपरस्तों के सहयोग से अंग्रेजी सेना ने २० सितंबर, १८५७ को दिल्ली पर पुन: अधिकार कर लिया। इसके बाद देश के दूसरे क्षेत्रों में भी अंग्रेजों ने अपना आधिपत्य जमा लिया और क्रांतिकारियों पर दमनचक्र चलाया।

राजधानी दिल्ली पर विजय की उपलब्धि प्राप्त करने में हरियाणा का योगदान सर्वप्रथम रहा। कमांडर-इन-चीफ के वीर मुंशी रजब अली खान द्वारा एक सूची तैयार की गई, जिसमें यह दरशाया गया था कि किस स्थान से कितनी भारतीय सैनिक टुकड़ियों ने बगावत की और दिल्ली पहुँचीं। ११ मई, १८५७ को मेरठ से तीसरी रेग्यूलर कैवेलरी के ३०० जवान और ११वीं व १२वीं नेटिव इंफेक्ट्री के २०० जवान, दिल्ली से ३८वीं, ५४वीं और ७वीं इंफेक्ट्री के ३०० जवान ६ तोपों और हार्स लाईट फील्ड बैटरी के साथ और मथुरा से ५ जून, १८५७ को चौथी इरेगुलर कैवेलरी के २०० जवान एवं ४४वीं और ६७वीं नेटिव इंफेक्ट्री के १०० जवान दिल्ली पहुँचे।

विद्रोहियों ने पानीपत के मजिस्ट्रेट मैकह्विरटर की हत्या कर दी और समाल खाँ पर कब्जा कर लिया। नौलथा जेल के १६ जाट गाँवों ने राजस्व देने से इनकार कर दिया तथा वे रोहतक जिले के विद्रोह में सम्मिलित हो गए। भालसी व कुराना जैल के १९ गाँवों ने विद्रोह कर दिया, सरकारी भवन जला दिए, हत्याएँ कीं और राजस्व देने से इनकार कर दिया। बुअली कलंदरशाह व पानीपत के धार्मिक स्थलों में बगावत का प्रचार खुलेआम किया गया। सीवान, असंध, जलमाना, गोंधर, सालवान, बला व डाचर गाँवों ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह में हिस्सा लिया। विद्रोही रोहतक से अंग्रेजी सेना के सिपाही तफज्जल हुसैन, जो कि बादशाह बहादुरशाह का दूत था, के नेतृत्व में सरकार के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उन्होंने साँपला पर हमला किया और अंग्रेजों के मकानों को जला डाला। महम, मदीना और मांडोठी के कस्टम बँगलों को जला दिया गया। खरखौदा में विद्रोही अंग्रेजों के साथ लड़े। झज्जर, दादरी और फारुखनगर के नवाबों ने विद्रोह में भाग लिया और बादशाह की धन एवं सेना ने सहायता की।

हिसार, हाँसी और सिरसा में क्रांतिकारियों ने, जिनमें अधिकतर रांगड़ (मुस्लिम राजपूत) थे, अंग्रेजों का सफाया कर दिया और अपना शासन कायम कर लिया। रानियाँ के नवाब नूर समद खाँ ने भी अंग्रेजों का मुकाबला किया और उसके ६०० जवान मारे गए; बाद में अंग्रेजों ने उसे फाँसी पर चढ़ा दिया। झाँसी में विद्रोही लाला हुकम चंद जैन के नेतृत्व में इकट्ठे हुए और ११ यूरोपियनों को मार डाला। रोहनात, मंगाली, जमालपुर, हाजिमपुर, ओढ़ा, भट्टल और अलीपुर के लोगों ने जोरदार संघर्ष किया। रोहनात गाँव को पूरी तरह नष्ट कर दिया गया और दूसरे गाँवों को भी जला दिया गया। हाँसी की सड़क पर सैकड़ों की संख्या में लोगों को रोलर (गिरड़ी) से कुचलवा दिया गया। आज तक इस सड़क को 'लाल सड़क' के नाम से जाना जाता है। हिसार में विद्रोहियों ने वहाँ के जिलाधीश वैडरबर्न की हत्या कर दी तथा हिसार के तहसीलदार डेविड थामसन को उनके चपरासी ने मार दिया।

इस प्रकार से जनता का आक्रोश अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध एक भयंकर रूप धारण करते हुए भारत से अंग्रेजी सरकार को जड़ से उखाड़ने में प्रयत्नशील हो गया। धीरे-धीरे यह विद्रोह आम जनता में फैल गया। अंबाला छावनी में नए कारतूसों को लेकर मार्च १८५७ में ही बेचैनी पैदा हो गई थी और भारतीय सैनिकों व अन्य लोगों ने छावनी के अंग्रेज अधिकारियों व उनके सहायक भारतीयों के मकान इत्यादि में आग लगा दी और कुछ को आग लगाने का प्रयत्न किया। महान् विद्रोह का प्रारंभ अंबाला में हुआ था। आमतौर पर यह विश्वास किया जाता है कि भाग्यसूचक चिनगारी मेरठ से फैली, परंतु सरकारी आलेखों से यह सिद्ध हो गया है कि विद्रोह उसी समय अंबाला में भी हुआ, इस प्रकार शेष देश को नेतृत्व प्रदान करने का श्रेय जितना मेरठ को है, उतना ही श्रेय

अंबाला को भी जाता है। १८५७ में सतलुज राज्यों के आयुक्त जी.सी. बर्नस ने ५ फरवरी, १८५८ को अपनी रिपोर्ट में लिखा कि 'अंबाला में विद्रोह की आग भड़कने से पहले यह मार्च में शुरू हुई और कुछ अंतरालों पर यह नियंत्रण में भी रही। १० मई रविवार तक, जोकि एक स्मरणीय दिन है, ये मामले अस्थिर अवस्था में ही रहे, जब देशी सेनाओं ने बगावत कर दी। उस दिन संयुक्त रूप से अंबाला में सिपाहियों ने अपनी बैरकों से निकलकर शस्त्रागारों के ताले तोड़ डाले तथा अपने देशी अधिकारियों के निर्देश में हथियारों से लैस होकर उनमें गोलियाँ भरनी शुरू कर दीं। जनरल बनार्ड ने उन्हें माफी का आश्वासन दिया, परंतु फिर भी उस रेजीमेंट के सिपाही हथियारों और गोला-बारूद के साथ दिल्ली में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ रहे अपने साथियों के साथ मिलने के लिए उतावले रहे।'

अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम में हरियाणा के लोगों के अद्वितीय त्याग के उदाहरण हैं अलीपुर, हमीदपुर, झाड़सा, गुड़गाँव, रिवाड़ी, भिवानी, हिसार, हाँसी, रोहतक, झज्जर, बल्लभगढ़ और फर्रूखनगर, जो सशस्त्र क्रांति के केंद्र बन गए थे। मुहम्मद आजम ने हिसार के पास मंगल गाँव में अंग्रेजों के विरुद्ध बहुत संघर्ष किया। झाड़सा के शासक बख्तावर सिंह ने गुड़गाँव के आसपास अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा लिया। मेवात में सरदार हसन अली खाँ और उसके ससुर समद खाँ तथा बल्लभगढ़ के राजा नाहरसिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा खोल दिया था। रोहतक प्रमुख रूप से सामने आया और यहाँ के रहनेवाले गुज्जरों और रांघड़ों ने स्वतंत्रता संघर्ष शुरू किया। २३ मई, १८५७ के दिल्ली सम्राट् का दूत, जिले में आया और दो दिन के बाद लगभग दो लाख रुपए के खजाने के साथ वापस दिल्ली चला गया। रांघड़ों ने भूमिकर देने से इनकार कर दिया। बल्ला गाँव में मेजर ह्यूज के आधीन घुड़सवारों की रेजीमेंट का विरोध किया गया। असंध के निवासियों ने गाँव के किले में सरकारी पुलिस चौकी पर कब्जा कर लिया।

अनेक युद्धों में पराजय के पश्चात् बचे हुए स्वतंत्रता सेनानी और उनके नेता नसीबपुर (नारनौल) के पास इकट्ठे हो गए; उन्होंने रिवाड़ी के शासक राव तुलाराम के नेतृत्व में अंतिम संघर्ष किया। इस युद्ध में राव किशन सिंह, राजकुमार मोहम्मद आजम और समद खाँ के पुत्र शहीद हो गए। दूसरी ओर अंग्रेज सेनापति जेरार्ड मारा गया। अंग्रेजों की सहायता के लिए अलवर और जयपुर से सेनाएँ आ गई थीं। सूर्य के डूबते ही सेना रणभूमि से प्रस्थान कर गई। राव तुलाराम, तात्या टोपे से जा मिले और तात्या ने उन्हें अफगानिस्तान से सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए भेजा। अंत में झज्जर के नवाब अब्दुल रहमान, फरूर्खनगर के नवाब अहमद अली खाँ, झाड़सा परगना के शासक चौधरी बख्तावर सिंह और बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह को दिल्ली में फाँसी दी गई।

वैसे तो छठी-सातवीं शताब्दी में भी हरियाणावासी विदेशी आक्रांताओं से जूझते रहे। हरियाणा के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् हर्षवर्धन के पश्चात् स्थाणीश्वर (थानेसर) के महाराज हर्ष ने देश की गौरव रक्षा के अनेक प्रयास किए। पृथ्वीराज चौहान ने विदेशी हमलावरों से निर्णायक युद्ध लड़े। सोलहवीं शताब्दी में पानीपत में विदेशी हमलावरों से कड़ी टक्कर हुई थी। दिल्ली में विदेशी हुकूमतों के आने के बाद भी हरियाणा का संघर्ष जारी रहा था। बलिदानी परंपरा भी जारी रही। मराठों से मिलकर भी हरियाणा के रणबांकुरों ने आजादी और अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष जारी रखा। १८५७ में भी इस अंचल ने अपना दायित्व निभाया।

ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार हरियाणा के युवाओं ने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ बगावत में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। उससे गाँव-गाँव में क्रांति की मशाल जल उठी। देशभक्तों के सहयोगी प्रसिद्ध क्रांतिकारी लेखक स्व. कामरेड यशपाल की कामयाबी बेमिसाल रही। १८०५ में रेवाड़ी रियासत को जब्त कर लिया गया था। क्योंकि इन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ मराठों की सहायता की थी और जनरल लेक की सेनाओं से हारने के बाद दौलतराव सिंधिया ने कई दिन तक रेवाड़ी में शरण ली थी। मराठों की सहायता और शरण देने के आरोप में इस रियासत को जब्त किया गया था। १८५७ की क्रांति आरंभ हुई तब राव तुलाराम व राव गोपाल देव ने अंग्रेजों का विरोध करने का निश्चय किया। अब्दुल गफ्फार खाँ (अंबाला), उदमीरा श्योराण (भिवानी), स्वामी ओमानंद सरस्वती (रोहतक), कस्तूरबा बाई, काशीराम जोश (अंबाला), राव किशन सिंह (रिवाड़ी), गोपीचंद भार्गव (सिरसा), राव गोपाल देव (रिवाड़ी), लाला जसवंत राय (हिसार), दिल सुखराम श्योराण (भिवानी), देवानंद सरस्वती (हिसार), देशबंधु गुप्ता (पानीपत), मास्टर नान्हूराम (रोहतक), रामकिशन गुप्ता (दादरी), मूलचंद जैन (गोहाना), बलदेव सिंह (झज्जर), पृथ्वी सिंह आजाद (अंबाला) जैसे अनेक शूरवीरों ने हरियाणा की धरती पर जन्म लेकर प्राणपण से स्वाधीनता आंदोलन में अपना योगदान दिया।

स्वतंत्रता आंदोलन में हरियाणा प्रदेश का सक्रिय योगदान रहा है। इस वीर वसुंधरा के रणबाँकुरों ने जय जवान व जय किसान की भूमिका एक साथ निभाई। स्वाधीनता की सुरक्षा हेतु यहाँ की ३६ बिरादरियों ने ब्रिटिश शासन पर न केवल अंकुश लगाया अपितु उनके शासन को जड़ से उखाड़ फेंकने में सक्रिय साझेदारी निभाई।

विद्याभारती संस्कृति शिक्षा संस्थान
संस्कृति भवन, सलारपुर रोड
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
दूरभाष : ०९४१६०३५८०३

'साहित्य अमृत' का जून अंक पढ़ा। मगर स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण पत्र नहीं लिख पाया। इस बार के संपादकीय में न्यायपालिका पर चर्चा खूब जमी। 'आँखों देखी घटना', 'अखबार में दिखनेवाला पूरा सच नहीं है', 'श्रीलाल शुक्ल पत्रों में', यात्रा-संस्मरण 'इधर बुडा, उधर पेस्ट' सभी रचनाएँ खूब पसंद आईं। इस बार बाल संसार नहीं पढ़ने को मिला। आप कभी इसका स्थान खाली न रखें। यही प्रार्थना है। जुलाई अंक का संपादकीय भी मन को तरोताजा कर गया। अमृतलाल नागर जन्मशती पर सामग्री जरूर पढ़ने को मिलेगी। इस अंक की कहानी 'चिराग जो बुझ गया' विशेष तौर पर पसंद आई। कविताएँ-लघुकथाएँ भी अच्छी लगीं। ***—बद्रीप्रसाद वर्मा अनजान, गोरखपुर (उ.प्र.)***

'साहित्य अमृत' का जून अंक पढ़ा। समूची सामग्री अति विशिष्ट लगी। 'कर्ज का मूल्य' कहानी बेहद पसंद आई। भाषा प्रयोग के अंतर्गत बदरीनाथ कपूर द्वारा दी गई जानकारी ज्ञानवर्धक थी।

—ब्रह्मानंद खिच्ची, बसई (हरि.)

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक मिला। रीता गुप्ता की कहानी 'शिद्दत-ए-अहसास' पढ़कर गोविंद प्रभु के प्रति आस्था और विश्वास कायम हो जाता है। ***—रामधारी कौशिक, नई दिल्ली***

'साहित्य अमृत' के जुलाई अंक में मृदुल कीर्तिजी का 'आत्मकथ्य' पढ़ा। मानवीय संवेदना का यह रूप, छोटे-छोटे सुख और जीवन को जीने की सुंदर कला ने मन को एक साथ गहराई से छुआ। अनाम रिश्तों का गीलापन कितना प्रभावी हो सकता है, इसका अनुभव हुआ और सबकुछ सुखमय सुंदर सा लगने लगा। काश, मैं स्वयं कुछ कर पाती। ***—कमला सिंघवी, नई दिल्ली***

'साहित्य अमृत' का जून अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय में अनेक सामाजिक बिंदुओं पर गहन विश्लेषण पढ़ने को मिला। गोपालराम गहमरी की 'आँखों देखी घटना' कहानी में राग-वैराग्य का मनोहारी वर्णन है। रामदरश मिश्र के डायरी अंश में जीवन के रोचक प्रसंग पढ़कर मन प्रसन्न हो उठा। 'चार रुपए बीस पैसे' कहानी में तुलसी देवी तिवारी ने समाज के वर्ग-संघर्ष का यथार्थ चित्रण किया है। ' 'विक्रम' के पराक्रमी संपादक' आलेख में पं. सूर्यनारायण व्यास का कृतित्व और व्यक्तित्व प्रेरक एवं अनुकरणीय है। नीरजा माधव की कहानी 'पुश्ते में मकान नंबर' नक्सली समस्या का भयावह चित्र उभरता है। नारी की दिशा और दशा में राहुल जी ने 'हिंदी कथा साहित्य में नारी' विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है, जो विचारणीय है। मंजु मधुकर ने 'चौपाल' कहानी में राष्ट्रीय एकता की अवधारणा को सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। भाषा प्रयोग में बदरीनाथ कपूर ने अपने आलेख में हिंदी भाषा के भाषायी पक्ष पर सारगर्भित विवेचन किया है। 'पागल' कहानी में रघुनंदन ने बौद्धिक चिंतन और आध्यात्मिक अनुभव का सफल चित्रण किया है। राकेश भ्रमर 'कर्ज का मूल्य' कहानी में आधुनिक समाज का स्वार्थपूर्ण चित्रण करते हुए भी एक आदर्श स्थिति का संकेत करते हैं, जो एक आशा-केंद्र है मानवता का। अपने आलेख में मनोहर पुरी ने व्यंग्यात्मक शैली में वर्तमान समस्याओं को उजागर किया है। 'सरकारी तख्ता' अजीम नेसिन का तुर्की साहित्य का अनूठा लेख है। 'पापा कब लौटेंगे' राकेश चक्र की मर्मस्पर्शी रचना है। आलेख 'अज्ञेय—काव्य और पर्यावरण' में मनमीत कौर ने अज्ञेयजी के काव्य सौंदर्य और पर्यावरण के अंतर्संबंध का वर्णन किया है। कविताएँ और लघुकथाएँ सुंदर और प्रेरक हैं। संपूर्ण अंक संग्रहणीय है। ***—शंकरलाल कारपेंटर, अजमेर (राज.)***

'साहित्य अमृत' का जून अंक पढ़ा। संपादकीय विभिन्न विषयों/प्रसंगों पर होते हुए भी बहुत सधा हुआ और सटीक है। प्रतिस्मृति में गोपालराम गहमरी की रचना 'आँखों देखी घटना' बहुत रोचक है। रामदरश मिश्र की डायरी के अंश रोचक और जानकारीपूर्ण हैं। तुलसी देवी तिवारी की कहानी 'चार रुपए बीस पैसे' थोड़ा अविश्वसनीय लगती है। हिंदी भाषा पर बदरीनाथ कपूर का लेख देकर आपने पाठकों पर ही नहीं, लेखकों पर भी उपकार किया है। यात्रा संस्मरण, अज्ञेय, कथा साहित्य में नारी और लोक संस्कृति पर आलेख महत्त्वपूर्ण जानकारी देनेवाले और ज्ञानवर्धक हैं। कुल मिलाकर अंक की कहानियाँ, कविताएँ, आलेख और लघुकथाएँ प्रभावित करती हैं। ***—राकेश भ्रमर, नई दिल्ली***

'साहित्य अमृत' का जून अंक प्राप्त हुआ। इस अंक में साहित्यकार राहुलजी का आलेख 'हिंदी कथा-साहित्य में नारी', मंजु मधुकर की कहानी 'चौपाल', अशोक गुजराती की लघुकथा 'झाँसा', राकेश भ्रमर की कहानी 'कर्ज का मूल्य', मनोहर पुरी का व्यंग्य 'राष्ट्रीय भ्रष्टाचार विश्वविद्यालय', शैलेंद्र चौहान की कविताएँ 'पंछी अब बिरहा गाएँगे', राकेश चक्र की कहानी 'पापा कब लौटेंगे' और मनमीत कौर का आलेख 'अज्ञेय—काव्य और पर्यावरण' मुझे बहुत पसंद आए। ***—विनोद कुमार तिवारी, फारबिसगंज (बिहार)***

'साहित्य अमृत' का जून अंक मिला। प्रतिस्मृति में बाबू गोपालराम गहमरी की रचना 'आँखों देखी घटना' पढ़कर सुखानुभूति के साथ सन् १९२० के आसपास की हिंदी व लेखन शैली के चित्र आँखों के सामने आ गए। साहित्यकार रामदरश मिश्र का डायरी अंश रोचक है। राजशेखर व्यास का आलेख 'विक्रम के पराक्रमी संपादक' पंडित सूर्यनारायण व्यास की लेखनी के जादू को भी उद्घाटित करता है। आलोचक राहुल का आलेख 'हिंदी कथा-साहित्य में नारी' शोधार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी है। रमेशचंद्र शाह ने अपने संस्मरण के माध्यम से श्रीलालजी की बतकहिया शैली और उनके सरल-सहज व्यक्तित्व को बखूबी उद्घाटित किया है। सिद्धार्थ शंकर गौतम का आलेख 'विचार कुंभ से दुनिया को संदेश' इस बात का प्रमाण है कि आखिर क्यों भारत को विश्व का सिरमौर होने का गौरव प्राप्त है। भाषा-प्रयोग में बदरीनाथ कपूर का हिंदी क्रियाओं का विश्लेषण अत्यंत उपयोगी एवं अनिवार्य है। मनोहर पुरी का व्यंग्य भ्रष्टाचार को उद्घाटित करता है तो तुर्की व्यंग्य में अनुवादक सुरजीत भ्रष्टाचार को वैश्विक समस्या बताते हैं। रंजन कुमार सिंह का यात्रा-संस्मरण इतना भव्य है कि पाठक स्वयं यात्रा के क्षणों को जीने लगता है। इस अंक में प्रस्तुत कविताएँ साधारण किंतु मधुर हैं। कहानियों में राकेश चक्र की कहानी संवेदनात्मक है। साहित्यिक गतिविधियाँ तो जानकारी का खजाना है। ***—रजनीश कुमार त्रिवेदी, बरेली (उ.प्र.)***

'साहित्य अमृत' का जून अंक प्राप्त हुआ। सारगर्भित समसामयिक संपादकीय ऐतिहासिक संस्मरणों के पृष्ठ खोलता है। रामदरश मिश्र का डायरी अंश 'अखबार में दिखनेवाला पूरा सच नहीं है' अच्छा लगा। तुलसी देवी तिवारी की कहानी 'चार रुपए बीस पैसे' दिल को छू गई, बड़ी हृदयस्पर्शी है। नीरजा माधव तो वरिष्ठ साहित्यकार हैं। आलेख एवं संस्मरण 'श्रीलाल शुक्ल पत्रों में' ज्ञानवर्धक है। अजीज नेसिन का तुर्की व्यंग्य 'सरकारी तख्ता' रोचक दाँव-पेंच मन को गुदगुदाता है। कविताएँ अच्छी हैं और सामग्री रोचक पठनीय है। साहित्यिक गतिविधियाँ एवं समाचार संपूर्ण प्राप्त होते हैं।

—एम.डी. मिश्रा 'आनंद', टीकमगढ़ (म.प्र.)

वर्ग पहेली (१३१)

अगस्त २००५ अंक से हमने **'वर्ग पहेली'** प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान–विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ अगस्त, २०१६ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम–पते अक्तूबर २०१६ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर **'वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१२९) का शुद्ध हल

■	■	१ बा	■	२ ल	गा	३ र	ह	४ ना
■	५ मु	बा	र	की	■	ल	■	क
६ बा	सी	■	■	र	■	पा	■	क
■	ब	■	७ टी	का	का	र	■	टा
८ आ	त	९ शी	■	फ	■	१० खी	११ ज	ना
ज	■	१२ त	र	की	ब	■	हाँ	■
मा	■	दा	■	र	■	■	१३ गी	त
इ	■	य	■	१४ हो	शि	१५ या	र	■
१६ श	क	क	र	ना	■	द	■	■

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री ए. जब्बार अंसारी**
मोहल्ला–फैजुल्लाह खान
पोस्ट–लाल बाग
जिला–दरभंगा–८४६००४
(बिहार)

२. **श्री सी.आर. नाहड़िया**
मु.+पो.–कारोता वाया नारनौल
जिला–महेंद्रगढ़–१२३००१
(हरियाणा)

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई !

वर्ग-पहेली १२९ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री ब्रह्मानंद 'खिच्ची' (महेंद्रगढ़), शुभांगी सहल, राजेंद्र कुमार सिंह, शिखा जैन, सुभाष शर्मा (दिल्ली), मोहन जगदाले (उज्जैन), नीरजा शर्मा (अहमदाबाद), शिवनंद सिंह 'सहयोगी' (मेरठ), शालिग्राम एस. तिवारी (मुंबई), शिवशरण दुबे (कटनी), गिरधारी लाल अग्रवाल (यवतमाल), फकीरचंद ढुल (कैथल)।

बाएँ से दाएँ—

१. कमखर्ची (४)
४. मलिन (४)
७. पुस्तक का पृष्ठ (२)
८. सूर्य-पुत्र कर्ण (५)
९. अभी (२)
१०. धार्मिक उपदेश (२)
१२. वाद-विवाद (२-३)
१३. भाग्य (३)
१४. कागज के फटने का शब्द (२)
१५. किनारा (२)
१६. धान कूटने का डंडा (३)
१८. अंग्रेज हुकूमत में वफादारों को दी जानेवाली एक उपाधि (५)
१९. बँधी हुई मर्यादा (३)
२१. हाथ (२)
२२. वह कार्य, जिसमें दूसरों का हित हो (५)
२४. स्त्रियों की नाक में पहनने का एक आभूषण (२)
२५. भौचक्का (४)
२६. आमने-सामने लड़ना (४)

ऊपर से नीचे—

१. महत्त्वहीन (२, २, १, २)
२. पोपले मुँहवाली बुढ़िया (२)
३. बुरी तरह भीगा हुआ (२-३)
४. असीम (३)
५. चरण (२)
६. बस्ती छोड़कर जंगल में रहनेवाला (४)
९. अटल (४)
११. कहकर मुकर जाना (३, ४)
१३. नाट्यशाला (४)
१५. निबटाना (२, ३)
१७. व्यग्र (४)
२०. बूँद-बूँद गिरने का शब्द (३)
२३. दबदबा (२)
२४. दूध में पकाया हुआ चावल (२)

वर्ग पहेली (१३०) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१३१)

१	२		३	■	४	५	६	
७		■	८					■
	■	९		■		■	१०	११
१२					■	१३		
	■	१४		■	१५			
१६	१७		■	१८				
१९		■	२०	■	२१		■	
■	२२	२३				■	२४	
२५				■	२६			

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

सम्मान एवं लोकार्पण समारोह संपन्न

१० जुलाई को लखनऊ के गोमती नगर में श्रीमाँ प्रभु देवी विद्या मंदिर प्रतिष्ठान एवं शिव सिंह 'सरोज' स्मारक समिति के संयुक्त तत्त्वावधान में श्रीकृष्ण प्रताप सिंह स्मृति अध्यात्म चिंतन व्याख्यानमाला का तेरहवाँ पुष्प आयोजित किया गया, जिसमें 'लोक मर्म-लोक धर्म' विषय पर सर्वश्री केशरीनाथ त्रिपाठी, दिनेश शर्मा, विक्रम राव, मालिनी अवस्थी, जगदीश पीयूष, सूर्यप्रसाद दीक्षित, रवींद्र शुक्ल ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी को 'श्री शिव सिंह सरोज स्मृति कर्मयोगी हिंदी सेवी सम्मान', डॉ. अच्युतानंद मिश्र को 'डॉ. विद्यानिवास मिश्र स्मृति श्रीवत्स कर्मयोगी हिंदी सेवी सम्मान', श्री विश्वनाथ सिंह को 'श्रीकृष्ण प्रताप सिंह स्मृति श्रीवत्स मनीषी सम्मान', श्री राम अचल आचार्य को 'श्री दिल बहाल सिंह स्मृति श्रीवत्स कर्मयोगी देशभक्त सम्मान', डॉ. भारती गांधी को 'श्री देवनारायण सिंह स्मृति श्रीवत्स कर्मयोगी शिक्षक सम्मान', श्रीमती आरती पांडेय को 'श्रीमाँ प्रभु देवी स्मृति श्रीवत्स लोक संगीत साधना सम्मान', श्रीमती आकांक्षा सिंह को 'श्रीमाँ प्राण देवी स्मृति श्रीवत्स कला साधना सम्मान', श्री शिवनाथ सिंह को 'श्रीमती प्रभा पँवार स्मृति श्रीवत्स कला मनीषी सम्मान', डॉ. प्रियंका अग्निहोत्री को 'प्रो. शिवमंगल सिंह स्मृति श्रीवत्स पर्यावरण संरक्षण सम्मान' एवं डॉ. नकुल सिन्हा को 'डॉ. कुँवर यशवीर सिंह स्मृति श्रीवत्स स्वास्थ्य सेवा सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर 'भारतीय वाङ्मय में धर्म और संस्कृति' (निबंध-संग्रह), 'अवधी लोकगीत विरासत', 'संत विवेक' (स्मारिका) एवं 'आखर थोरे' (लघुकथा-संग्रह) कृतियों का लोकार्पण किया गया। सर्वश्री अवधेंद्र प्रताप सिंह, भारती सिंह, बृजेश तिवारी, मानसी सिंह, दीपा सिंह, आरती सिंह, ज्योति सिंह, सुधीर पांडेय ने सम्मानित विभूतियों पर विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. अमिता दुबे ने किया तथा धन्यवाद श्रीमती विभा नागर ने ज्ञापित किया। ☐

'इस पानी में आग' कृति लोकार्पित

विगत दिनों अलवर में श्री रामकुमार कृषक की अध्यक्षता में कवि एवं गजलकार श्री विनय मिश्र की चौथी पुस्तक 'इस पानी में आग' (दोहा-संग्रह) का लोकार्पण श्री रामकुमार कृषक की अध्यक्षता तथा श्री हरेराम समीप के मुख्य आतिथ्य में किया गया, जिसमें सर्वश्री हरेराम समीप, जीवन सिंह, सूर्यदेव बारेठ, शशिकांत शर्मा, श्याम शर्मा, हेमा देवरानी, अशोक शुक्ल ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री रामचरण राग ने किया तथा धन्यवाद डॉ. रमेश चंद्र खंडूरी ने ज्ञापित किया। ☐

'ये जो पायजामे में हूँ मैं' कृति लोकार्पित

१६ जून को हिमाचल प्रदेश के राजभवन में राज्यपाल आचार्य देवव्रत द्वारा श्री अशोक गौतम के व्यंग्य-संग्रह 'ये जो पायजामे में हूँ मैं' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री नेमचंद ठाकुर, राजेंद्र वर्मा, ओमप्रकाश सारस्वत, बद्रीसिंह भाटिया, संतराम शर्मा, संतराम हरनोट, बलदेव चौहान व संतोष गौतम उपस्थित थे। ☐

'छुटकी की चुटकी' कृति लोकार्पित

विगत दिनों सहारनपुर के जीपीओ रोड स्थित होटल में डॉ. अश्वघोष की अध्यक्षता में नीरजा स्मृति बाल साहित्य न्यास के तत्त्वावधान में डॉ. आर.पी. सारस्वत की कृति 'छुटकी की चुटकी' का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री नागेश पांडेय संजय, कृष्ण शलभ, प्रियंवदा शर्मा, बदीश, कुलदीप शर्मा ने रचना पाठ किया। कार्यक्रम में संस्था समन्वय और नीरजा बाल साहित्य न्यास की ओर से डॉ. आर.पी. सारस्वत एवं श्रीमती वीणा सारस्वत का शॉल ओढ़ाकर, नारियल व सम्मान पत्र देकर सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. वीरेंद्र आजम ने किया। ☐

'कुछ तो बाकी है' कृति लोकार्पित

विगत दिनों जयपुर में सर्वश्री श्रीनिवास त्यागी, प्रेम भारद्वाज, अजय नावरिया, नंद भारद्वाज, तेजेंद्र शर्मा, दुर्गाप्रसाद अग्रवाल द्वारा चर्चित कथाकार श्रीमती रजनी मोरवाल के कहानी-संग्रह 'कुछ तो बाकी है' का लोकार्पण किया गया। ☐

'रक्षक राम' कृति लोकार्पित

१ जुलाई को नई दिल्ली के ऑक्सफोर्ड बुक स्टोर में प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित युवा लेखक श्री सूरज पटेल के उपन्यास 'रक्षक राम' का लोकार्पण प्रसिद्ध लेखक-मोटीवेशन गुरु एवं समाजधर्मी श्री शिव खेड़ा के करकमलों से संपन्न हुआ। श्री शिव खेड़ा ने युवा साहित्यकार को गहन अध्ययन और शोध करके लिखी इस औपन्यासिक कृति के लिए साधुवाद दिया। पुत्री रेणू सैनी ने 'रक्षक राम' के कुछ अंशों का पाठ भी किया। ☐

'प्राचीन भारतीय अर्थ-चिंतन' कृति लोकार्पित

२८ जून को नई दिल्ली के कॉन्स्टीट्यूशन क्लब में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं समाजसेवी मान. डॉ. बजरंग लाल गुप्ता की अध्यक्षता में प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ. गोविंद राम साहनी की पुस्तक 'प्राचीन भारतीय अर्थ-चिंतन' का लोकार्पण लोकसभा सांसद तथा पूर्व केंद्रीय मंत्री मान. डॉ. मुरली मनोहर जोशी के करकमलों से संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि प्रख्यात अर्थशास्त्री एवं समाजशास्त्री मान. प्रो. वी.आर. पंचमुखी थे। विशिष्ट अतिथियों ने पुस्तक का स्वागत करते हुए कहा कि यह परंपरागत भारतीय अर्थचिंतन पर गहन प्रकाश डालनेवाली कृति है। हमारी समृद्ध अर्थव्यवस्था व आर्थिक रीति-नीति के विषय में विस्तार से बताती है। ☐

अमृत महोत्सव एवं अभिनंदन समारोह संपन्न

विगत दिनों जनकपुरी, नई दिल्ली स्थित आर्य समाज मंदिर में डॉ. रमानाथ त्रिपाठी की अध्यक्षता में डॉ. सुंदरलाल कथूरिया की ७५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर अमृत महोत्सव एवं अभिनंदन समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें उनके सम्मान में प्रकाशित 'साहित्य एवं समाजशास्त्रीय बोध : विविध आयाम' ग्रंथ का लोकार्पण किया गया। मुख्य अतिथि डॉ. रामदरश मिश्र, विशिष्ट अतिथि डॉ. विश्व प्रकाश त्रिपाठी एवं सर्वश्री पृथ्वीनाथ साहनी, स्वामी आर्यवेश, विजय प्रकाश त्रिपाठी, अनिल आर्य, चंद्रशेखर शास्त्री, शिव कुमार शास्त्री, मीना ठाकुर, राहुल, विजय गुप्त, कृष्ण बबेजा, अर्जुन कुमार अरोड़ा, दिनेश चंद्र त्यागी ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर डॉ. कथूरिया को अभिनंदन-पत्र भेंट कर 'साहित्य-गौरव' एवं 'पत्रकार-शिरोमणि' की मानद उपाधियों से अलंकृत किया गया। संचालन प्रो. वीरेंद्र अग्रवाल ने किया तथा धन्यवाद श्री हरिश्चंद्र ने ज्ञापित किया। ☐

डॉ. शंकरदयाल सिंह पुस्तकालय की वर्षगाँठ

२३ जून को पटना में पारिजात साहित्य परिषद् के तत्त्वावधान में डॉ. शंकरदयाल सिंह स्मृति पुस्तकालय की पंद्रहवीं वर्षगाँठ डॉ. शंकरदयाल सिंह के ज्येष्ठ पुत्र श्री रंजन कुमार सिंह की अध्यक्षता में आयोजित की गई। मुख्य अतिथि श्रीमती उषाकिरण खान ने अपने विचार व्यक्त किए। समारोह का समापन सरस काव्य गोष्ठी के साथ हुआ, जिसकी अध्यक्षता सुश्री भावना शेखर ने की। गोष्ठी में सर्वश्री श्रीकांत व्यास, सिद्धेश्वर, राम उपदेश सिंह 'विदेह', रूपेश दिग्विजय, विजय कुमार, संजय राही, हरिशंकर सिंह, आलोक कुमार, के.डी. सिंह सुभाष ने कविता-पाठ किया। संचालन श्री संजय कुमार ने तथा धन्यवाद श्री वीरेंद्र कुमार सिंह ने ज्ञापित किया। ☐

काव्य गोष्ठी संपन्न

विगत दिनों मध्य प्रदेश में साहित्य संस्था संघ की भोपाल इकाई द्वारा मिश्रा मार्केट, भोपाल में सरस काव्य गोष्ठी का आयोजन श्री एम.डी. मिश्रा 'आनंद' की अध्यक्षता में किया गया। मुख्य अतिथि श्री राजेंद्र भारती प्राचार्य एवं विशिष्ट अतिथि श्री अखलेश उपाध्याय व श्रीमती संध्या साहू 'साँझी' थे। इस अवसर पर सर्वश्री राजेश सुमन, राजेंद्र भारती, उमाशंकर खरे 'उमेश', प्रेम घनघौरिया, एम.डी. मिश्रा 'आनंद', अनिल बुखारिया, हेमा बुखारिया, रामानंद पाठक, संध्या साहू 'साँझी', कल्याणदास साहू 'पोषक', मुन्नालाल पांचाल, श्याम मोहन नामदेव, ओ.पी. तिवारी, निर्मल 'विद्रोही' एवं आलोक नायक ने काव्य पाठ किया। संचालन श्री कल्याणदास साहू 'पोषक' ने किया। ☐

यायावर दिवस आयोजित

१ जुलाई को दिल्ली में रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल द्वारा ऑथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के महामंत्री डॉ. शिवशंकर अवस्थी की अध्यक्षता में पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि का जन्मदिवस अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मनाया गया, जिसमें सर्वश्री योवन दमयानोविच, बैराम हलिति ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर डॉ. शशि व रोमा साहित्य की प्रदर्शनी लगाई गई और उनके प्रबंधकाव्य 'अग्निसागर' का मंचन किया गया, जिसमें विशिष्ट अतिथि सर्वश्री हरि सिंह, राजीव, एस.के. मिश्रा ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

व्याख्यानमाला आयोजित

१९ जून को कोलकाता में राष्ट्रधर्म के संपादक श्री आनंद मिश्र 'अभय' की अध्यक्षता में श्रीबड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय द्वारा पं. दीनदयाल उपाध्याय की जन्मशती पर 'पं. दीनदयाल उपाध्याय : जीवन एवं व्यक्तित्व' विषय पर द्वितीय व्याख्यानमाला आयोजित की गई, जिसमें सर्वश्री आलोक कुमार तथा विमल लाठ ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री महावीर बजाज ने किया तथा धन्यवाद डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने ज्ञापित किया। ☐

चित्र अनावरण समारोह संपन्न

२६ जून को कोलकाता में श्रीबड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के कक्ष में पुस्तकालय के मार्गदर्शक एवं पूर्व अध्यक्ष दिवंगत श्री जुगलकिशोर जैथलिया के चित्र का अनावरण समारोह आयोजित किया गया, जिसमें सर्वश्री गोविंद नारायण काकड़ा, प्रेमशंकर त्रिपाठी, राजश्री शुक्ला, गीतेश शर्मा, अशोक झा, स्नेहलता बैद, संजय सनम, रविप्रताप सिंह, सुधा जैन, करुणा पांडेय, भँवरलाल मूंधड़ा, तारा दूगड़, भागीरथ चांडक ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्रीमती दुर्गा व्यास ने किया तथा धन्यवाद श्री गिरिधर राय ने ज्ञापित किया। ☐

डॉ. इंद्रपाल सिंह 'इंद्र' स्मृति समारोह संपन्न

विगत दिनों ग्वालियर में ऋषिगालव पब्लिक स्कूल में डॉ. 'इंद्र' स्मारक समिति, ग्वालियर द्वारा श्री जगदीश तोमर की अध्यक्षता में डॉ. इंद्रपाल सिंह 'इंद्र' स्मृति सम्मान समारोह आयोजित किया गया। मुख्य अतिथि श्री अशोक रावत, विशिष्ट अतिथि सर्वश्री राजबहादुर 'राज', मुक्ता सिकरवार एवं योगेंद्र प्रताप सिंह ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री रामवरन ओझा ने किया। द्वितीय सत्र में डॉ. भगवत भट्ट की अध्यक्षता, श्री बंगाली बाबू 'विनम्र' के मुख्य आतिथ्य एवं श्री मांगीलाल मरमिट के विशिष्ट आतिथ्य में कवि सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें सर्वश्री दिव्या चौहान, उल्लास सिंह भदौरिया, सुषमा सिंह, रुक्मिणी तिवारी, त्रिमोहन 'तरल', राजबहादुर 'राज', रमा वर्मा, सुरेश ओझा, अशोक रावत, श्यामलाल, बंगाली बाबू 'विनम्र', रमेश पंडित, रामवर ओझा, अरविंद कुमार बरुआ, आर.एल. साहू, रमेश त्रिपाठी, दशरथ सिंह राजावत, रामचरन 'चिडार', मांगीलाल 'मरमिट', नवल ग्वालियरी, नरेंद्र सिंह तोमर, आदित्य 'अंशुधर', अशोक 'मस्तराज', आशा पांडे, दीप्ती गौड़, आलोक शर्मा, अशोक चैत्रवंशी, रामलखन शर्मा, मुक्ता सिकरवार, अनंगपाल सिंह 'अनंग', शिवनंदन सिंह बैस, बालक अक्षय सिंह बैस ने रचना पाठ किया। संचालन श्री रामलखन शर्मा 'अंकित' ने किया तथा आभार श्री शिवनंदन सिंह बैस ने व्यक्त किया। ☐

श्री कैलाश मड़बैया का ७३वाँ जन्मदिवस मनाया गया

२६ जून को भोपाल में अखिल भारतीय बुंदेलखंड साहित्य एवं संस्कृति परिषद् के साथ भोपाल की अनेक साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा कवि श्री कैलाश मड़बैया का ७३वाँ जन्मदिवस 'बुंदेलखंड दिवस' के रूप में मनाया गया, जिसमें सर्वश्री के.पी. रावत, मुरारी लाल, राजेश इंजीनियर, आशा श्रीवास्तव, उषा सक्सेना, रूपराज शर्मा, पारस शर्मा, अमोल सिंह सागर ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री देवेंद्र कुमार जैन ने किया। अंतिम चरण में काव्य गोष्ठी की गई, जिसमें सर्वश्री शिवनारायण जौहरी विमल, संतोष बिजावरी, एम.एल. खरे, देवेंद्र जैन, आशा श्रीवास्तव, आर.आर. शर्मा, राम किशन सेन, उषा सक्सेना व मीनू तिवारी ने काव्य पाठ किया। ☐

डॉ. कुसुम पटोरिया सम्मानित

विगत दिनों महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा बांद्रा, मुंबई के रंग शारदा नाट्य मंदिर में आयोजित भव्य समारोह में वरिष्ठ पत्रकार श्री राहुल देव द्वारा डॉ. कुसुम पटोरिया को छत्रपति शिवाजी राष्ट्रीय एकता राज्यस्तरीय सम्मान 'जीवन गौरव पुरस्कार' से शॉल, सम्मान-पत्र, स्मृति-चिह्न व ५१,००० रुपए की राशि देकर सम्मानित किया गया। ☐

श्री हरीशकुमार सिंह सम्मानित

विगत दिनों उज्जैन में कालिदास संस्कृत अकादमी के अभिरंग सभागार में दैनिक 'अग्निपथ' द्वारा ठाकुर श्री शिवप्रताप सिंह की १०१वीं जयंती पर व्यंग्यकार डॉ. हरीशकुमार सिंह को सर्वश्री शिव शर्मा, पुष्पा चौरसिया व विशाल हाडा द्वारा 'अग्निपथ साहित्य सम्मान' से सम्मानित किया गया। ☐

सन्निधि संगोष्ठी संपन्न

२० जून को नई दिल्ली में डॉ. अनामिका की अध्यक्षता में गांधी

हिंदुस्तानी साहित्य सभा और विष्णु प्रभाकर प्रतिष्ठान द्वारा संचालित सन्निधि संगोष्ठी की ओर से विष्णु प्रभाकर के १०५वें जन्मदिवस पर आयोजित एक सम्मान समारोह में श्री बालस्वरूप राही ने पाँच युवाओं को, जिनमें पत्रकारिता के लिए सुश्री बरखा लकड़ा, समाज सेवा के लिए डॉ. अमित सॉरिकवाल, संगीत के लिए चिन्मयी त्रिपाठी, साहित्य के लिए सुश्री अलका सिंह एवं चित्रकला के लिए श्री मनीष पुष्कले को सम्मानित किया। इस अवसर पर सर्वश्री नारायण कुमार, पुष्पा राही, अतुल प्रभाकर व प्रसून लतांत ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्रीमती किरण आर्या ने किया। ☐

राष्ट्रीय बालसाहित्य संगोष्ठी संपन्न

१०-१२ जून को अंजनीसैण (गढ़वाल)में बाल प्रहरी, बालसाहित्य संस्थान एवं श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम के संयुक्त तत्त्वावधान में राष्ट्रीय बालसाहित्य संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री भगवती प्रसाद द्विवेदी, एस.डी. शर्मा, देशबंधु, हरिसिंह पाल, कुसुम चौधरी, करुणा पांडे, रवि शर्मा, शमशेर कोसलिया, कमलेश चौधरी, अमरेंद्रकुमार सिंह, शंभु सौरभ, अमित कुमार, दिनेश प्रसाद साह, किसान दीवान, प्रभु चौधरी सहित ६९ साहित्यकारों ने अपने विचार व्यक्त किए। बाल काव्य संगोष्ठी के आरंभ में २० बच्चों ने काव्य पाठ किया। इस अवसर पर ज्ञान विज्ञान बुलेटिन के बालसाहित्य विशेषांक, डॉ. अशोक कुमार गुप्त की कृति 'बटोही की बाल कविताएँ', श्री नवीन डिमरी की कृति 'टॉफी का एक पेड़ लगा दो', श्री विजय लक्ष्मी की कृति 'योग और बच्चे' का लोकार्पण किया गया। ☐

गोष्ठी संपन्न

विगत दिनों भीलवाड़ा में साहित्यिक उन्नयन को समर्पित सामयिकी की ओर से श्री श्यामसुंदर सुमन की अध्यक्षता में गोष्ठी आयोजित की गई, जिसमें सर्वश्री दीपक अग्रवाल, रविंद्र जैन, नरेंद्र दधीच, अरुण अजीब, जयप्रकाश भाटिया, अजीज जख्मी, रेखा स्मित, श्यामलाल शर्मा, दीपक पारीक, कृष्णा माहेश्वरी, पुनीता भारद्वाज, अवधेश कुमार जौहरी, आर.के. जैन, सुधा तिवाड़ी 'सखी', भँवर आर्य, चिरंजी लाल देशप्रेमी, दुलारा देवीलाल, वंशीलाल पारस, रामगोपाल जांगिड़, नरेंद्र वर्मा, मनोहरलाल चंडालिया, उदयलाल सिंघवी, गोपाल पंचोली 'आशु', ओम उज्ज्वल, वीरेंद्र लोढ़ा, महेश सेन व वत्सल ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। ☐

दो दिवसीय कार्यक्रम संपन्न

१७ मई उज्जैन में रुद्रसागर स्थित काशी सुमेरू पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी नरेंद्रानंद सरस्वतीजी महाराज के भव्य पांडाल में श्री पुरुषोत्तम मिश्र की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय पत्रकार महासंघ की मध्य प्रदेश इकाई का दो दिवसीय प्रांतीय सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें मुख्य अतिथि डॉ. रामेश्वर प्रपन्नाचार्य शास्त्री, विशिष्ट अतिथि डॉ. भगवान प्रसाद उपाध्याय तथा श्री सुधीर सिंह राठौर एवं सर्वश्री मुकुंद मिश्र, संतोषकुमार मिश्र, वीरेश सिंह, वी.के. मिश्रा, राजकुमार बजाज, अवधेश पांडे, दिलीप त्रिपाठी ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर सर्वश्री त्रिफला दीनानाथ मिश्र, शैलेंद्र तिवारी, बृजेंद्र सिंह, मनोज कुमार पाठक, सतीश कुमार त्रिपाठी, प्रदीप त्रिपाठी, संतोष सिंह व अमन पांडे को अंगवस्त्र, प्रशस्ति पत्र एवं प्रतीक चिह्न देकर सम्मानित किया गया। ☐

'विश्व-विभूति विंदेश्वर पाठक महोत्सव' संपन्न

९ जुलाई को नई दिल्ली के कॉन्स्टीट्यूशन क्लब में कवि श्री पं. सुरेश नीरव की अध्यक्षता में डॉ. विंदेश्वर पाठक को '२०१६ ग्लोबल ह्यूमेनिटेरियन अवॉर्ड' से सम्मानित किए जाने के ऐतिहासिक अवसर को स्मरणीय बनाने के लिए 'विश्व-विभूति विंदेश्वर पाठक महोत्सव' आयोजित किया गया। मुख्य अतिथि श्री बलवीर सिंह भसीन थे। इस अवसर पर सर्वश्री ऋचा सूद एवं जगदीश ठकराल ने अपने विचार व्यक्त किए। सर्वश्री विजय खैरा, प्रदीप जैन, आदीश जैन व अवधेश चौबे द्वारा डॉ. पाठक को 'महारानी लक्ष्मीबाई मानव-सेवा सम्मान' से, सर्वश्री वीणा मलिक, तूलिका सेठ, ओमप्रकाश प्रजापति, पुष्पा जोशी व पूनम माटिया द्वारा मानपत्र एवं पगड़ी पहनाकर तथा श्री राजेश्वर राय ने पुष्पगुच्छ देकर सम्मानित किया। श्रीमती अमोला पाठक को श्रीमती मधु मिश्रा द्वारा 'सर्वोत्कृष्ट समाजसेवा सम्मान-२०१६' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री रुचि चतुर्वेदी, सुरेश अवस्थी, माजिद देवबंदी, पवन कुमार जैन, अरुण सागर ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन पं. सुरेश नीरव ने किया तथा धन्यवाद डॉ. जयप्रकाश मिश्र ने ज्ञापित किया। ☐

'प्रभाष परंपरा' आयोजित

१७ जुलाई को नई दिल्ली में प्रभाष परंपरा न्यास की ओर से गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के सत्याग्रह मंडप में वरिष्ठ समालोचक प्रो. नामवर सिंह की अध्यक्षता में 'जनसत्ता' के संस्थापक संपादक श्री प्रभाष जोशी के जन्मदिवस पर 'गणेश और आधुनिक बुद्धिजीवी' विषय पर व्याख्यानमाला आयोजित की गई, जिसमें सर्वश्री रामबहादुर राय, नामवर सिंह, महेंद्र पांडेय और क्लॉड अल्वारेस ने अपने विचार व्यक्त किए। वरिष्ठ पत्रकार श्री एन.के. सिंह ने 'मीडिया आयोग की जरूरत' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। श्री भुवनेश कोमकली ने शास्त्रीय कबीर संगीत प्रस्तुत किया। ☐

जयंती समारोह संपन्न

१७ जुलाई को नोएडा स्थित समाचार एजेंसी 'हिंदुस्थान समाचार' के नए मुख्यालय पर इसके संस्थापक संपादक प्रसिद्ध समाजधर्मी तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिसर के महासचिव स्वं श्री बालेश्वर अग्रवाल की स्मृति में आयोजित जयंती समारोह में सर्वश्री आर.के. सिन्हा, रामबहादुर राय, अच्युतानंद मिश्र, नंदकिशोर त्रिखा, आलोक मेहता एवं इंद्रेश कुमार ने 'हिंदुस्थान समाचार एजेंसी' की भूमिका को फिर से बढ़ाने पर अपने विचार व्यक्त किए। यह बहुभाषी समाचार एजेंसी है, जिससे देश भर के विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ समाचार तथा फीचर लेते हैं। ☐

डॉ. दया दीक्षित सम्मानित

९ जुलाई को कानुपर में स्थानीय हिंदी प्रचारिणी सभा के प्रांगण में लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. एस.बी. निमसे की अध्यक्षता में श्री श्यामनारायण पांडे के सान्निध्य में भारतीय भाषा सम्मेलन संपन्न हुआ। इस अवसर पर मुख्य अतिथि पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी ने डॉ. दया दीक्षित को 'साहित्य रत्नाकार' की मानद उपाधि देकर शॉल, प्रशस्ति-पत्र, प्रतीक-चिह्न एवं पदक प्रदान कर सम्मानित किया। सभा के प्रधानमंत्री डॉ. राजीव रंजन पांडे ने राज्यपाल महोदय को 'कीर्तिभारती' अलंकरण से अलंकृत किया। ☐

डॉ. रघुवीर चौधरी को ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदत्त

११ जुलाई को संसद् भवन में राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी द्वारा '५१वाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार' गुजराती के प्रसिद्ध लेखक डॉ. रघुवीर चौधरी को दिया गया। सम्मान-स्वरूप उन्हें ग्यारह लाख रुपए की राशि, प्रशस्ति-पत्र एवं सरस्वती की प्रतिमा प्रदान की गई। ८० से अधिक पुस्तकें लिख चुके श्री चौधरी को वर्ष १९७७ में उनकी कृति 'उप्रवास कथात्रयी' के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। □

पद्मश्री गिरिराज किशोर का ८०वाँ जन्मदिवस संपन्न

१० जुलाई को कानपुर के पंडित होटल में पद्मश्री गिरिराज किशोर का ८०वाँ जन्मदिवस वरिष्ठ कथाकार श्री प्रियंवद के संयोजन में उत्सवपूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर कानपुर नगर एवं अन्य प्रसिद्ध साहित्यकारों ने श्री गिरिराज किशोर को शुभकामनाएँ दीं। सर्वश्री सुभाषिनी अली, रामकृष्ण तैलंग, दया दीक्षित, राकेश शुक्ल एवं विष्णु त्रिपाठी ने अभिनंदन किया। □

प्रविष्टियाँ आमंत्रित

कमला गोइंका फाउंडेशन के वर्ष २०१७ के लिए 'बाबूलाल गोइंका हिंदी साहित्य पुरस्कार' एवं हिंदीतर भाषी हिंदी युवा लेखकों के लिए 'प्रो. एन. नागप्पा युवा साहित्यकार पुरस्कार' (वय सीमा ३५ वर्ष) तथा हिंदी से तमिल व तमिल से हिंदी अनुवाद के लिए 'बालकृष्ण गोइंका अनूदित साहित्य पुरस्कार' के लिए प्रविष्टियाँ आमंत्रित की हैं। अहिंदी भाषी साहित्यकार, यानी जिनकी मातृभाषा दक्षिण भारतीय भाषाओं में जैसे कन्नड़, मलयालम, तेलुगू, उड़िया अथवा कोंकणी में जो मूल रूप से हिंदी में लिख रहे हैं, इन प्रतियोगिताओं में भाग ले सकते हैं। जो हिंदी भाषी साहित्यकार अहिंदी भाषी क्षेत्रों में दस वर्षों या अधिक अवधि से हिंदी साहित्य की सेवा कर रहे हैं, वे भी इन पुरस्कारों के लिए ३१ अगस्त, २०१६ तक आवेदन भेज सकते हैं। दूरभाष : ०८०-३२००५५०२ □

प्रविष्टियाँ आमंत्रित

मीरा फाउंडेशन, साहित्य-भंडार, इलाहाबाद के सहयोग से प्रतिवर्ष हिंदी की रचनात्मक मेधा को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से 'मीरा स्मृति पुरस्कार' प्रदान करता है। पुरस्कार के रूप में २५०००/- रु., प्रशस्ति-पत्र और शॉल प्रदान किए जाते हैं। 'सातवाँ मीरा-स्मृति-पुरस्कार-२०१५' कहानी की अप्रकाशित पांडुलिपि पर प्रदान किया जाएगा। इस पुरस्कार के लिए वही कहानीकार आवेदन कर सकेंगे, जिनकी आयु ३१ दिसंबर, २०१५ को ६० वर्ष से अधिक नहीं होगी। इच्छुक कहानीकार अपने अप्रकाशित कहानी-संकलन की टंकित पांडुलिपि १५ अगस्त, २०१६ तक साहित्य भंडार, ५० चाहचंद (जीरो रोड), इलाहाबाद-२११००३ पर भेज सकते हैं। □

प्रविष्टियाँ आमंत्रित

अखिल भारतीय साहित्य परिषद् राजस्थान, जयपुर महानगर इकाई द्वारा २०१६ के लिए निम्नलिखित चार पुरस्कारों—डॉ. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ अखिल भारतीय हिंदी कहानी-संग्रह प्रतियोगिता, श्री शुकदेव शास्त्री अखिल भारतीय हिंदी निबंध-संग्रह प्रतियोगिता, स्व. श्रीमती सुधा कुलश्रेष्ठ अखिल भारतीय नाटक प्रतियोगिता एवं स्व. श्री ब्रजकिशोर कुलश्रेष्ठ अखिल भारतीय हिंदी उपन्यास प्रतियोगिता—हेतु प्रविष्टियाँ १५ अक्तूबर, २०१६ तक स्वीकार की जाएँगी। प्रविष्टि हेतु प्रस्तावित पुस्तक की तीन प्रतियाँ, पता लिखा पोस्ट कार्ड तथा लिफाफा अध्यक्ष, अखिल भारतीय साहित्य परिषद् (जयपुर महानगर इकाई), ७५/७०, मानसरोवर, जयपुर-३०२०२० पर भेज सकते हैं। प्रत्येक पुरस्कार की राशि ११०००/- रुपए है। दिनांक ०१.०१.२०१३ से १५.१०.२०१६ की अवधि में प्रथम बार प्रकाशित कृतियाँ ही स्वीकार्य होंगी। □

साहित्यिक क्षति

श्री सतीश जमाली नहीं रहे

पिछले दिनों हिंदी के महत्त्वपूर्ण कथाकार और 'कहानी' तथा 'नई कहानियाँ' पत्रिका के संपादन से संबद्ध रहे श्री सतीश जमाली का निधन हो गया। वे लगभग ७७ वर्ष के थे। सतीश जमाली 'जंग जारी', 'नागरिक', 'ठाकुर संवाद', 'प्रथम पुरुष' कहानी संग्रहों और 'प्रतिबद्ध', 'थके-हारे', 'छप्पर टोला' तथा 'तीसरी दुनिया' जैसे उपन्यासों के लिए जाने जाते हैं।

श्री भवेश चंद्र जायसवाल नहीं रहे

२२ जून को समकालीन कवि श्री भवेश चंद्र जायसवाल का मिर्जापुर में निधन हो गया। वे ६४ वर्ष के थे। उनके परिवार में उनकी पत्नी के अलावा एक पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। श्री जायसवाल का जन्म १९ जून, १९५२ को मिर्जापुर (उ.प्र.) में हुआ था। लगभग १९७५ के आसपास से शुरू उनकी साहित्यिक यात्रा में उन्होंने समकालीन कविता के साथ हिंदी की कई अन्य विधाओं में पुस्तकें लिखीं। देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से भी उनकी रचनाएँ प्रसारित होती रहीं। उन्हें कई महत्त्वपूर्ण सम्मान भी प्राप्त हुए।

डॉ. हरदयाल नहीं रहे

६ जुलाई को दिल्ली में प्रसिद्ध समालोचक डॉ. हरदयाल का निधन हो गया। वे ७७ वर्ष के थे। उनके परिवार में उनकी पत्नी के अलावा दो पुत्र हैं। आधुनिक हिंदी गद्य-साहित्य; हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य, आधुनिक बोध और विद्रोह, कालजयी कथाकृति और अन्य निबंध; समकालीन अनुभव और कविता की रचना-प्रक्रिया; हिंदी कविता : आठवाँ दशक; साहित्य और सामाजिक मूल्य; हिंदी कविता की प्रकृति; आलोचना-कर्म; कविराजा बाकीदास—जीवन और साहित्य, आधुनिक हिंदी कविता का अभिव्यंजना शिल्प; आधुनिक हिंदी कविता जैसे महत्त्वपूर्ण आलोचना ग्रंथ तथा अखबार में अँधेरा; फूल-पत्थर और कंकाल आग जैसे उल्लेखनीय कविता-संग्रहों के अलावा उन्होंने डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य के इतिहास' को परिष्कृत कर उसे समकालीन बनाया। अठारह पुस्तकों तथा समीक्षा पत्रिका का संपादन। सन् २००३ में हिंदी अकादमी, दिल्ली के साहित्यकार सम्मान से सम्मानित।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि।